हिमांशु श्रीवास्तव

लोहे के पंख

हिमांशु श्रीवास्तव

हिन्दी के आधुनिक कथाशिल्पियों में बहुचर्चित हस्ताक्षर। यशपाल जी के शब्दों में 'नदी फिर बह चली' 'गोदान' की अपेक्षा अधिक सफल है। "भारतीय किसान और मजदूर जीवन का जैसा सफल और विश्वसनीय चित्रण हिमांशु श्रीवास्तव अपने उपन्यास में करते हैं; वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।"—जैनेन्द्र कुमार। आपकी बहुचर्चित कृतियां हैं : 'लोहे के पंख', 'नदी फिर बह चली', 'सिकन्दर', 'पुरुष और महापुरुष,' 'कथा सूर्य की नयी यात्रा', 'रिहर्सल,' और 'जहाज फिर चलता रहा'।


प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो०बा०१०६,पिशाचमोचन,वाराणसी-२२१००१

लोहे के पंख



भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९७६

Himanshu Sriwastava
LOHE KE PANKH
Novel

मूल्य : ९.००

माथा मुड़वाने के दिन बाबू नहीं थे। खेंखर काका के साथ मैंने माथा मुड़वाया। वे मेरे गोतिया थे। दादा को जलाकर लौटने के बाद उस पट्टी के बिरादर शायद फिर अपनी रोजी और ठाकुर की खुशामद में लग गये। ऐसे मौके पर खबर देकर बाबू को बुलाना बहुत जरूरी था। खेंखर काका ने दादी से पूछा, "झगड़ू को भी बुलाना चाहिए न ?"

"हाँ, बुलाना तो चाहिए। बाप के मुँह में उसने आग न दी, घंट में पानी भी दे दे, तो बहुत है।" दादी बोली।

आस-पास के गाँव अथवा जर-जवार में बाजार लगता, तो खेंखर काका जूता सीने का सारा सामान लेकर दिन के दो बजे से ही बाजार के एक कोने में जा डटते थे। हाँफ-सोल अथवा सुरतल्ला लगाने के लिए अक्सर नया चमड़ा नहीं मिल सकने के कारण, आदमः पहचान-पहचान कर किसिम-किसिम का चमड़ा निकाला करते। हर बाजार को आठ-दस गंडा बना लेते थे। कल मानुपुर का बाजार था। खेंखर काका आज दादी के पास एक पोसकार्ट लेकर आये। दोपहर का वक्त था। दादी पत्ता बुहारनेवाली झाड़ू को कस रही थी। समय-समय पर मेरी दादी आम-लीची, कटहल और महुए के बगीचों में जाकर पत्ते बुहारा करती थी—सूखे पत्ते, जो डाली छोड़कर जमीन पर गिर पड़ते थे। कड़ी मिहनत के बाद जब पत्ते का एक बड़ा ढेर तैयार हो जाता, तो गाँव के किसी कानू को दे देती और उसके बदले कनुआइन सेर-आध सेर अनाज दे देती थी। हमारे यहाँ के कानू खेती के सिवाय मकान छाने और बनाने का भी काम करते हैं। दीवार पर मिट्टी चढ़ाने में ये बड़े होशियार होते हैं। इनकी औरतें घरों में घुनसारी चलाती हैं और कुछ कनुआइनें घुनसारी चलाने के अलावे मजदूरी लेकर बाबू लोगों के घर का गेहूँ-जौ भी पीसती हैं। मकई की नयी फसल के दिनों में हर गाँव की घुनसारी में किसानों की औरतें और लड़कियों की भीड़ लगी रहती है। इन लोगों के बीच मर्दों की कोई जगह नहीं होती। छोटे-छोटे

बच्चे इनके पास बैठ सकते हैं। भूँजा खाने का इच्छुक किसान-युवक गमछे में मकई बाँधे आता है और उसे बाहर ही से कनुआइन को पुकार कर दे देता है और जब तक कनुआइन भूँजा तैयार कर उसे लौटा नहीं देती, वह बाहर अकेला चुपचाप खड़ा रहता है। ऐसे मौके पर किसी अपने प्रेमी मवही को देख, जो बाहर खड़ा रहता है, उसकी उठती हुई जवानीवाली चहेती धुनसारी में औरतों की भीड़ के बीच, इस मीठी जुदाई की पीड़ा को महसूस करती रहती है।

"पोसकाट लेता आया हूं, चिट्ठी भेजकर बुला ही लो।" बोले खेंखर काका।

"लिखेगा कौन, झूलन बाबाजी के यहाँ चलना होगा।" दादी बोली।

"तुम्हारे पास झगड़ का पता-ठिकाना है न ?" अपने अँगोछे से पोसकाट को निकालकर खेंकर काका ने पूछा। पोसकाट को वे अँगोछे के एक कोने में होशियारी से बाँधकर लाये हुए थे। मैं पास ही बैठा अलमुनियम के कटोरे में आग में पकायी हुई मछली और मकई का भात खा रहा था। खेंखर काका बोले, "तुम कहाँ जाओगी, मैं मंगरुआ को लेकर चला जाऊँगा। मैं उनके जूते में बराबर चिप्पी लगाया करता हूँ। पैसे के लिए आज तक मुंह न खोला। मुझसे भी इंकार न करेंगे। तुम झगड़ू का पता-ठिकाना दे दो····।" और, उन्होंने मुझसे कहा, "मंगरुआ, तू जल्द खा ले। झूलन बाबाजी के यहाँ चलना होगा।"

मैंने जल्दबाजी शुरू कर दी। मछली काँटों से भरी थी, नही तो मैं निगल भी जाता। लेकिन, दादी ने काका से कहा, "मेरे पास पता-ठिकाना नहीं है। एक कागज में झगड़ुआ अपना पता लिखवाकर दे गया था, सो भी मैंने रखने के लिए झूलन बाबाजी को दे दिया है। अपने घर में बाकस-पेटी कहाँ है····।"

"अच्छा, तब तो बाबाजी से पता भी मिल जायगा। मगर क्या लिखवाऊँगा, सो तो बतलाओ····।"

तभी खेंखर काका की यह बात सुनकर दादी रोने लगी। काका सब कुछ समझ गये। औरत बूढ़ी हो या जवान, अपना अहिवात सबको प्यारा होता है। दादी किस मुँह से दादा की हत्या का सनेस लिखवातीं ? काका ने जब तक मुझे इशारा दिया, मैंने कटोरे का खाना खतम कर दिया। पानी पीकर कुरते के छोर

में मुँह पोंछकर मैं खदेरन पासी के घर के सामने से होता हुआ, खेंखर काका के साथ, झूलन बाबाजी के दरवाजे पर पहुँचा।

झूलन बाबाजी गाँव के लोअर प्राइमरी स्कूल में गुरुआई करते थे। सुभाव से बिल्कुल गाय। हमलोग जब उनके दरवाजे पर पहुँचे, तो पूछने से पता चला कि वे घर में नहीं, स्कूल में हैं। हमलोग स्कूल में गये। वहाँ स्कूल के ओसारे में एक चउकी पर बाबाजी बैठे थे। सामने चउकी पर ही एक बाँस की छड़ी पड़ी थी। सामने पहुँचते-पहुँचते खेंखर काका ने कहा, "गोर लागी बाबाजी !"

जवाब में झूलन बाबाजी ने हमलोगों को आसीस दिये और तब अँगोछे से पोसकार्ड को निकालते हुए खेंखर काका बोले, "इसी के बाप के यहाँ एक चिट्ठी लिखकर उसको बुला दीजिए। मरनी का तो कोई नहीं जानता था, सराध में तो आ जाय बेचारा !" खेंखर काका का इशारा मेरी ओर था। कुछ लड़के किताब खोलकर चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ रहे थे और कुछ सिलेट पर लिखे पहाड़े को गला फाड़-फाड़कर याद कर रहे थे। कुछ इसी हो-हल्ला में गप-शप भी भिड़ाये हुए थे। झूलन बाबाजी ने एक बार उनकी ओर देखकर कहा, "चुप रहो, हल्ला मत करो।"

बाबाजी के मुँह से इतनी बात सुनते ही लड़कों में शांति छा गयी और खेंखर काका बाबाजी से बातें करने लगे।

"जतन गोहराँव में न मारा गया ?"

"जी, सरकार !"

"सुना, ठाकुर झगड़ू को खेत देनेवाले हैं ?"

"सुना तो मैंने भी है सरकार, बच्चाबाबू ने तो मुझसे ही कहा था।"

"खेत मिल गया, तो झगड़ू का भाग्य पलट जायगा।"

"सो तो है बाबाजी, वे लोग किसी गरीब की ओर फूटी आँखों से भी देख लें, तो……।"

"तभी बच्चों ने शोरगुल बढ़ाया—

"……करीम की बकरी के तीन बच्चे हैं……करीम की बकरी के तीन……।"

"रामनाथ है प्यारा लड़का, सबका बड़ा दुलारा लड़का……।"

रामनाथ है प्यारा लड़का अ……।"

"एक आढ़ा अढ़इया, दु अढ़ाई पाँच, एक आढा अढ़इया……।"

यह बात ठीक है कि इस बीच झूलन बाबाजी ने बच्चों को धीरे-धीरे पढ़ने का हुकुम दे दिया था। मगर, जब बच्चे शोर करने लगे, तो बाबाजी ने बाँस की छड़ी उठायी और एक ओर से सबका दुखभंजन करने लगे। लेकिन, बाबाजी ने ज्योंही दुखभंजन शुरू किया, कि बच्चे सटक सीताराम हो गये। लड़कों का दुखभंजन होते देख खेंखर काका बोले, "जाने दीजिए बाबाजी, अब मत मारिए।"

झूलन बाबाजी फिर शांत होकर चउकी पर, आकर बैठ रहे। छड़ी उन्होंने अपने सामने रख ली और तब खेंखर काका से कहा, "इसमें शक मत करो खेंखर! ये लोग बनिया नहीं, राजा हैं। भगवान ने क्या नहीं दिया है? ईश्वर की कृपा से……।"

"सरकार क्या झूठ कहेंगे? दूध-पूत और लछमी भी कोई से छिपती है……?" खेंखर काका ने बीच ही में कहा।

"तो क्या कहते हो, झगड़ू को चिट्ठी लिख दूँ?"

"हाँ, देवता! बुला दीजिए, बेचारा बाप को पिंडा-पानी तो दे जाय। इसकी दादी ने कहा है, उसका पता-ठिकाना भी आप के ही पास है।"

"हाँ, है तो……।" कहकर बाबाजी स्कूल की उस कोठरी में घुस गये, जिसमें बहुत कागज रखा हुआ था। न-जानें, किधर से और कैसे उन्होंने मेरे बाबू का पता खोज लिया और फिर चउकी पर आकर बैठते हुए बोले, "हाँ, मिल गया पता। लाओ, पोस्टकार्ड।"

मुझे अच्छी तरह याद नहीं कि खेंखर काका ने चिट्ठी में और क्या-क्या बातें लिखवायीं, मगर इतनी याद जरूर है कि उन्होंने बाबू को चिट्ठी देखते ही गाँव पर बुलाया था। चिट्ठी लिखवाकर मैं खेंखर काका के साथ वहाँ से चला आया। बदरी पासी के घर के पास आने पर एकाएक रुककर खेंखर काका ने मुझसे कहा, "तू घर चला जा। मैं मानुपुर जाकर चिट्ठी लेटर-बाक्स में गिराऊँगा।"

खेंखर काका मानुपुर चले गये और मैं अपने यहाँ लौट आया। बाबू भोज के एक रोज पहले आये। साथ में नगदनरायन एक पैसा नहीं ले आये थे। खेंखर

काका से बतलाया था कि वहाँ कारखाने में महीना लगने के आठ रोज बाद दरमाहा मिलता है और अभी महीना भी नहीं पूरा हुआ था। वे किसी मोदी से आने रुपया सूद के हिसाब से पाँच रुपये कर्ज लेकर चल पड़े थे। जहाँ मेरा घर था, वहाँ जर-जवार तक में धान की फसल नहीं होती थी। न कोदो, न साँवाँ। रब्बी और भदई पर सारा दारोमदार था। ठाकुर के अलावे ठाकुर-घराने में में भी कई लोगों को दरभंगा और निर्मली में धान के खेत थे, मगर उनके होने या न होने से हम लोगों को क्या वास्ता? जवार से कई कोस आगे चलकर, बसन्त में हर बुध-शुक्र और एतवार को भारी बाजार लगता था। इधर से उत्तर की बस्तियों में धान की अच्छी फसल होती थी। गँरखा, पहाड़पुर, परसा, फेंदसा, फुलवरिया और खोदाईबाग के इलाकों में बड़ा धान उपजता था। यहाँ की मिट्टी को लोग हमारे यहाँ 'धनहर माटी' कहते हैं।

खेंखर काका ने बाबू से कहा कि बसन्त बाजार में चिउरा और माड़ा सस्ता मिलेगा। पैसे को बहुत जोगाकर खर्च किया जा रहा था, क्योंकि बाबू को, कलकत्ते लौटने के लिए, बच्चाबाबू के दिये हुए रुपये में ही पाँच रुपये लेने थे। इसलिए आज बाजार का भी दिन था। बसन्त चलने की बात तय हो गयी। वहाँ का बाजार हमारे गाँव से लगभग चार कोस की दूरी पर था। दोपहर से दिन ढलते-ढलते में, बाबू और खेंखर काका बसन्त बाजार चले। माड़ा और चिउरा बाँधकर ले आने के लिए बाबू ने अपनी कलकतिया चादर और दादा की एक पुरानी मैली धोती ले ली थी। यह धोती दादा को ठाकुर के यहाँ से किसी की उतारन होकर मिली थी। घर से अपने गाँव के बाहर-ही-बाहर हम लोग निकले। सबसे पहले डिस्ट्रिकबोर्ड की सड़क मिली, बगल में ही आमी बाजार। मगर आज यहाँ बाजार का दिन नहीं था। हलवाइयों के मिठाई बेंचने के छोटे-छोटे चौकोर चबूतरों पर या उनके आस-पास अनेरिया साँड़ टहल रहे थे। सड़क से होकर हमलोग उत्तर की ओर चले। पहले रेलवे-लाइन मिली और उसको पार करते ही हराजी गाँव। यह गाँव भी बहुत बड़ा है। इसकी भी कई पट्टियाँ हैं। धारीपुर, जैतीपुर, पानापुर, दरियादीधरी और न जाने क्या-क्या!

इस गाँव को पार करने के बाद आगे चारों ओर खेत-ही-खेत थे। सरसों के पीले-पीले फूल धरती की शोभा बढ़ा रहे थे। अब यहाँ से बाबू और खेंखर काका इस तरह बातें करने लगे—

"अब यही चिंता है खेंखर भाई कि घर में कोई मरद नहीं रहा। घर में दो-दो औरतें हैं। भले-बुरे के समय इनका बुरा हाल होगा। मँगरुआ का क्या, दस बरस का यह लौंडा क्या सँभालेगा और क्या नहीं? पेट साला ऐसा है कि यह एक दिन के लिए माननेवाला नहीं। मालिक लोग जैसे हैं, जानते ही हो। तोप के मुँह पर खड़ा रहना और इस गाँव में बसना दोनों बराबर है। खस्सी की माँ चाहे जितनी *खरजिउतिया करे, खस्सी चीक के हाथ से भला कब तक बचेंगे, अंबिका-स्थान में खस्सी का बल भला कैसे रुकेगा?" बाबू बोले।

"सो तो मैं भी जानता हूँ झगड़ू, मगर अब ठाकुर तुम लोगों पर जरूर नजर फेरेंगे।" तब खेंखर काका ने कहा।

अजी छोड़ो भी""ये क्या नजर फेरेंगे। वही बीस रुपये दे दिये, इसी से तुम खुश हो गये, खेंखर भाई? मेरे बाबू की जान की कीमत यही बीस रुपये! तुम लोग तो गाँव में रहते हो, इन पैसेवालों का हाल क्या जानो। ये लोग बड़े बावन वीर होते हैं। दुःख न मानना खेंखर भाई, मैं तो शहर में रहकर अँख-फोड़ हो गया हूँ। तुम्हें तो याद होगा, मेरी पलानी का एक कोना बाँस के सड़ जाने से गिर रहा था। उनकी कोठी से एक बाँस काटते हुए पकड़ा गया, तो बँधवाकर पिटवाया था। वह चोट मुझे भूलती है?"

"बात सही है झगड़ू! मगर गाँव छोड़कर जाओगे कहाँ?"

"हाँ, जाऊँगा कहाँ? शहर भी तो पैसेवालों का ही है। जादे दरमाहा मिलता तो माँ, मँगरू और मँगरू की माँ को भी ले जाता। इधर साल-डेढ़-साल से दस-पाँच रुपये काट-कपटकर घर भी भेजता हूँ। जब शुरू-शुरू में यहाँ से भागकर गया था, तब तो और बुरी हालत थी। तब हफ्ता बँटता था। उसमें एक पैसा भी बचाना मोसकिल था।'

* एक प्रकार का औरतों का पर्व, जो वे संतान की रक्षा के लिए करती हैं।

"एक बात बतलाऊँ तुम्हें !" खेंखर काका धीरे-से बोले, बाबू की ओर ध्यान से देखकर।

"बतलाओ।"

"तुमसे तो शायद काकी ने कह भी दिया होगा।"

"क्या ?"

"तुम्हें नहीं मालूम है, सच बतलाना।"

"ना, माँ ने मुझसे कुछ नहीं कहा है।"

"तुम्हारे भाग ने पल्टा खाया। ठाकुर तुम्हें खेत....।"

"क्या कहा, ठाकुर मुझे खेत....?" बाबू ने तपाक से पूछा। खुशी से शायद उनकी घिग्घी बन्द होते-होते बची।

"हाँ, जतन काका के काम-किरिया और कफ्फन के लिए रुपये देते समय कहा था कि झगड़ू को कलकत्ते जाने की कोई जरूरत नहीं। यहीं खेत दे दूँगा। जोते-बोये, खाये और मजे से पड़ा रहे। बेले-कुबेले के लिए हमलोग मौजूद ही हैं।"

"यह सच्ची बात कह रहे हो, खेंखर भाई।"

"सच ! बच्चाबाबू ने मुझसे काकी के सामने कहा था। मंगरुआ की माँ ने भी सुना, पूछोगे न।"

"तब तो सचमुच मेरा भाग्य पलट जायगा, खेंखर भाई।" इसके बाद बाबू कुछ सोचकर बोले, "मगर एक बात है....।"

"क्या ?" खेंखर काका ने पूछा।

"मालिक को तो चकले का चकला खेत है। दस-पन्द्रह बीघे भी दे देंगे तो बड़ा मोसकिल हो जायगा।"

"मोसकिल क्यों होगा ?"

"अरे, मेरे पास बैल जो नहीं है। न हल है, न हेंगा है। मालिक ने तुम्हें कुछ बतलाया है, कितना खेत देंगे ?"

"नहीं, यह तो नहीं बतलाया। मगर, चार परानी के सालभर खाने के लायक तो जरूर ही देंगे।" खेंखर काका ने कहा।

इस प्रकार की बातें होती रहीं और हमलोग सामने के गाँव परतापपुर के नजदीक पहुँचे। आस-पास कई लंबे-लंबे चरागाह थे। झुंड-के-झुंड गाय-भैंसें चर रही थीं। चरवाहे छोकड़े भैंसों की पीठ पर बैठे मस्ती में गा रहे थे। खेतों के बीच की पगडंडियों में उगी घासों को कुछ घसगढ़नी खुरपी से गढ़ रही थीं। जब तक हमलोग परतापपुर गाँव में घुस न गये, तब तक एक चरवाहे का गीत हम लोगों को सुनायी पड़ता रहा—

> पाकल-पाकल पनवाँ, खिअवले गोपीचनवाँ,
> पीरितिया लगा के, हो गोपीचनवाँ.......
> सबका के भेजे हकीमवाँ, छव रे महीनवाँ—
> करेजऊ के भेजे—
> हो रे काला पनिया, करेजऊ के भेजे....

इसके बाद बाजार में कोई खास बात नहीं हुई। अपने अन्दाज से बाबू और खेंसर काका ने माड़ा-चिउरा खरीद लिया। मोटा की छोटी-सी गठरी मेरे माथे रखी गयी। कई लोगों की दालानों में होली गायी जा रही थी—

> सदा आनन्द रहे यहि दुवारे,
> मोहन खेलत होरी हो।

झाल की झनझनाहट और ढोल की धबधबाहट से कान में छेद हो रहे थे। मैं शायद बहुत थक गया था। घर आकर मैंने माँ के सामने गठरी पटक दी।

दूसरे रोज दोपहर में बाबाजी आये थे। न जाने, कैसे-कैसे सब विध-बेहवार हुआ। बाबू दही के लिए परेशान होकर रह गये। दही नहीं मिला। पता चला कि जितने लोगों के पास लगहर हैं, सबों ने दही ठाकुर के यहाँ भेज दिया है। मलखानचक के दीयर पर वाले खेत को कब्जे में ले आने की खुशी में, मालिक ने जवार के सारे ठाकुर-घराने को भोजन करने का नेवता दिया था। निरादर लोगों को जिस समय भोज खाने के लिए बुलाया गया था, वे लोग उस समय आ गये। बाबू छटपटा रहे थे। वे कभी दलानी में समाते और कभी खेंसर काका से इसका उत्तर पूछते थे।

आखिर में कोई उपाय न सूझने पर बाबू ने बिरादर के लोगों को पलानी के सामने कतार में बैठा दिया। गोकि, मोसकिल से वे गिनती में पन्द्रह-बीस के करीब होंगे। चूतड़ के नीचे रखने के लिए एक-एक चइली भी दे दी गयी। मेरे घर न तो ज्यादा टाट थी और न पीढ़ा। केले के पत्ते पहले से काटकर रखे हुए थे। सबके आगे एक-एक पत्ता रख दिया गया और तब पहले चिउड़ा-माड़ा फेंटकर चलाया गया। इसके बाद थोड़ा-थोड़ा मीठा। लेकिन, अब बड़ा मोसकिल हुआ। चुकड़ों में पानी भर देने के बाद भी बिरादरी के लोगों ने खाना शुरू नहीं किया। न-जाने, क्या सोचकर बाबू पलानी में समा गये। तभी खेंखर काका ने बिरादरीवालों से कहा, "अब होय लछमीनरायन! दही तो मिला ही नहीं, गाँव भर का दही-गोरस तो मालिक के घर चला गया।"

शायद बिरादरी के लोग दही का ही इन्तजार कर रहे थे। खेंखर काका के इतना बतला देने पर भोज खाना लोगों ने शुरू कर दिया और किसी तरह दो घण्टे के बाद हमलोग इन सभी झंझटों से फुर्सत पा गये।

अपने गाँव और ठाकुर के घर की तो बात ही अलग है, मैं दादी के साथ छैंटी लेकर दूसरे-दूसरे गाँवों में भी, भोज के जूठे पत्तल कमाने जाता था। ऐसे मौके पर मैं अपने हाथ, एक छोटी; किंतु मजबूत और मोटी गोजी लिये रहता। जूठे पत्तल के ढेर पर कुत्ते चढ़ाई करते, तो मैं उसी गोजी से डरा-धमकाकर उन्हें भगाता था। जिस पत्तल में बहुत जूठा भात होता, तियन-तरकारी अथवा पूड़ी-मिठाई, उस पत्तल में खानेवाले को, जो हमलोगों का बेजाना-पहचाना होता, दिल से सराहते और कहते कि इस पत्तल में जरूर किसी बड़े आदमी ने भोजन किया है। कहार जब जूठे पत्तलों का ढेर लेकर उन्हें फेंकने के लिए बाहर निकलते, तो मेरे जैसे, जूठे पत्तल कमानेवालों का झुण्ड अक्सर चिल्ला पड़ता, "इधर कीरपा करो मालिक, इधर कीरपा करो..........चार कोस से आसरा लगाकर आये हैं.......!"

सो, आज ठाकुर के यहाँ भी भोज था और मेरे घर भी। आज हमलोगों में से कोई पत्तल कमाने के लिए जाना नहीं चाहता था। दादी भी उदास थी। लेकिन, बाबू ने माँ से कहा, "आज ठाकुर के यहाँ भोज है।"

"हाँ, सुना है।" माँ बोली।

"पराल कमाने कौन जायगा ?"

"आज कौन जायगा ?"

"नहीं, किसी-न-किसी को तो जाना ही चाहिए। मालिक लोग क्या कहेंगे ?"

"बच्चाबाबू मालिक तो खुद जानते हैं कि आज हम लोगों के यहाँ भोज है।" माँ बोली।

"उससे क्या ? नहीं जाने से रुष्ट हो जायेंगे। कहने लगेंगे, झगड़ुआ ने मना कर दिया है। बेकार मेरी हजामत क्यों कराना चाहती हो ? तुम और मंगरुआ चले जाना। घण्टे-भर का तो काम है, और सुना नहीं है, बच्चाबाबू हम लोगों को खेत भी देंगे।"

"सुना तो है।"

"बड़ा अच्छा होगा। मंगरुआ को झूलन बाबाजी के पास पढ़ने के लिए बैठा दूँगा।"

"पढ़ने का खरचा कहाँ से आयेगा ?"

"तुम पागल हो गयी हो मंगरू की माँ ! खरचा क्या लगेगा ? हर सनीचर को सीधा। चावल, दाल, हल्दी और एक पैसा। सो बाबाजी का गोर-हाथ पड़कर उन्हें तैयार कर लूँगा। ठाकुर खेत देंगे, तो उसमें चावल कहाँ से होगा ? चावल के बदले गेहूँ, बूँट या मकई ही दे दूँगा।"

"अच्छा………।" माँ ने सर्द आवाज में कहा था।

मैं पास ही खड़ा-खड़ा फाँड़े में माढ़ा-चिउरा लिये फाँक रहा था। बाबू ने तनिक मेरा सिर हिलाकर प्यार से पूछा, "क्यों रे, मंगरुआ ! झूलन बाबाजी के स्कूल में पढ़ेगा न ?"

"………।" मेरे मुँह से निकला। जब मैं खेखर काका के साथ झूलन बाबाजी के स्कूल में, बाबू के यहाँ चिट्ठी लिखवाने गया था और उस समय झूलन बाबाजी ने लड़कों का जो दुखभञ्जन किया था, वह मुझे याद हो आया और तभी तो बाबू के सवाल करने पर मैंने 'ना' कह दिया।

आखिर ठाकुर के दरवाजे पर पत्तल कमाने के लिए मैं माँ के साथ गया। मैंने गोजी ले ली थी। ठाकुर के यहाँ का भोज बड़ा शानदार रहा। मेरे दादा के मरन-भोज में एक कटोरा भी दही न मिला, मगर यहाँ तो जूठे पत्तलों में भी भर-ठेहुन लग गया। मैं और मेरी माँ ने मिलकर लगभग डेढ़-दो हँड़िया दही काछा था। जूठे पत्तलों से पूड़ी, मिठाई और दही-तरकारी काछकर हम-लोगों ने, उन पत्तलों को दूर के गनउरे पर फेंक दिया और तब अपने घर चले। रात में मेरे यहाँ का हो-हल्ला भी खत्म हो गया। हमलोग कोदो के पुआल पर सोने चले।

होली बहुत नजदीक आ गयी थी, शायद इसीलिए गाँव में फिर होली गायी जाने लगी। मुझे नींद तो आ रही थी। मगर, लोगों के होली गाने का गुल कानों में बेरोक-टोक के समा रहा था। अँजोरिया रात थी—टहाटह! मेरी बेमरम्मत झोपड़ी के छेदों से, अँजोरिया, मेरे पुआल के बिछावन पर और कोने में सरियाकर रखी हुई हँड़िया और लकड़ियों पर कहीं गोल-गोल और कहीं तिरछी-टेढ़ी बनकर उतर आयी थी।

दूसरे रोज दिन के लगभग बारह बजे ठाकुर के घर काम करनेवाले कहार ने आकर बाहर से मेरे बाबू का नाम लेकर पुकारा। झोपड़ी के अन्दर हम बाप-पूत ठाकुर के यहाँ से आयी भोज की जूठी पूड़ियाँ और अपने यहाँ के बचे हुए माढ़ा और चिउरा दही के साथ मिला-मिलाकर खा रहे थे। बाबू जूठे मुँह बाहर निकले।

"जयरामजी की अछैबर भाई!" बाबू ने कहा।

"जयरामजी की!" अछैबर ने जवाब दिया।

"कहाँ चले हो भैया?"

"अभी क्या कर रहे हो तुम?" जवाब न देकर अछैबर ने सवाल किया।

"अभी तो देखो, खा रहा हूँ ...।" अपना जूठा हाथ-मुँह दिखलाकर बाबू ने पूछा, "कहो न, बात क्या है?"

"चलो, छोटे सरकार ने बुलाया है।"

"छोटे सरकार ने?"

"हाँ।"

"जरा हाथ-मुँह धो लूँ।"

"मैं चलता हूँ। तुम पीछे से आ जाना।" कहकर अछैवर चला गया।

अछैवर की आवाज सुनकर जब बाबू बाहर निकले, तो मैं भी माँ के साथ झोपड़ी के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया था। अछैवर के चले जाने पर बाबू बड़ी फुर्ती के साथ पलानी में घुसे। उन्होंने माँ से कहा, "एक लोटा पानी दो। हाथ-मुँह धो लूँ। मालिक ने बुलाया है। सोचता हूँ, साथ में खेंखर भाई को भी ले लूँ। न-जानें, क्या बात हो।"

"हमको तो लगता है कि खेत बकसीस देने के लिए बुलाया है।" अलमुनियम के लोटे में भरलोटा पानी बाबू के आगे रखकर माँ बोली।

"अब राम जानें, देखो क्या बात होती है।"

पानी से हाथ-मुँह धोकर बाबू ने माथे पर अँगोछा बाँध लिया और वे चले गये। मैंने नहीं देखा, खेंखर काका बाबू के साथ गये या नहीं। लेकिन, दोपहर के गये बाबू घंटा-भर रात गये लौटे। उनके साथ खेंखर काका थे। पलानी के दरवाजे पर आते ही बाबू ने मुझे पुकारा, "मंगरुआ, मंगरुआ ?"

"हाँ, बाबू!" मैं बाहर निकला।

"टाट ले आओ।" बाबू बोले।

मैंने अँजोरिया में देखा कि बाबू के हाथ में एक लबनी थी। उससे ताड़ी की गंध आ रही थी। मैं पलानी में गया और बिछावन पर की टाट उठा लाया। इस बीच लबनी को खेंखर काका के हाथ में पकड़ा कर, बाबू बाहर ही पड़ी हुई बढ़नी से सामने की जमीन साफ करने लगे। जब टाट बिछाने के लायक अंदाज से बाबू ने जमीन बुहार ली, तो उन्होंने मेरे हाथ से टाट ले ली और साफ की हुई जमीन पर उसे बिछा दिया। इसके बाद लबनी टाट पर रखकर खेंखर काका बैठ रहे। बाबू ने एक मिनट तक इधर-उधर देखकर मुझसे कहा, "अरे मंगरुआ, माँ से चीखना माँग ला।"

"चीखना ?" मैंने अचरज जाहिर किया। घर में न मछली थी, न सालन। न घुघुनी और न फुलउड़ी। घर में आलू-टमाटर की तरकारी बनी थी। मैंने कहा, "चीखना नहीं है।"

"तो क्या है, कुछ भी ले आ।" बाबू बोले। दादी घर में नहीं थी। वह मैदान के लिए निकली थी।

"तरकारी है।" मैंने कहा।

"वही ले आ, काम चलाया जाय। क्यों खेंखर भाई?" खेंखर काका की ओर देखकर बाबू ने कहा। मैं पलानी के भीतर घुसकर माँ से कटोरे में थोड़ी सी तरकारी माँग लाया। बाबू ने मेरे हाथ का कटोरा थामकर कहा, बैठ।"

मैं टाट पर ही बाबू की बगल में बैठ गया। अब थोड़ी-थोड़ी तरकारी खा खाकर हमलोग पीने लगे। लबनी में कोई भी मुँह नहीं लगाता। अंगोछा का छनना लगा था। मुँह खोलकर सबसे पहले खेंखर काका ढालते, इसके बाद बाबू और तब मैं। मैं मुँह खोलकर ऊपर से उँड़ेली जाती हुई ताड़ी पीने का सबक दादा से ले चुका था। मगर एक ही वजनदार लबनी और ताड़ी पीने के उस अनोखे काम को सँभालना अभी मेरे लिए आसान न था। वैसे बाबू, खेंखर काका और दादा के मुकाबले में कम पीता भी। इसीलिए जब मेरे पीने की बारी आती, तो बाबू बड़े अंदाज से लबनी की पेंदी के नीचे हाथ लगाकर, मेरे खोले हुए मुँह के सामने उसे जरा-सा कज कर देते। तब ताड़ी मेरे कंठ के नीचे भी उतरने लगती थी।

"क्या कहा बच्चाबाबू ने, खेत देंगे?" खेंखर काका ने बाबू से पूछा।

"हाँ, कहा—मैं तुम्हें खेत दे देना चाहता हूँ। तुम अपने जोतने-बोने के सामानों का जोगार बाँधो।" बाबू बोले।

"कितना खेत देंगे, यह भी बतलाया है?" पूछा खेंखर काका ने।

"मैंने यह नहीं पूछा, लगता है कि बहुत ज्यादा देंगे। आज तो उनकी बात-चीत से मेरा मन प्रसन्न हो गया।"

"बड़े खुश थे?"

"और नहीं तो क्या? कहाँ, पिछली बातें भूल जाओ झगड़ू! जहाँ चार घड़े रहते हैं, आपस में टकराते ही रहते हैं।"

"ओह, हाँ भाई, वे लोग बड़े आदमी हैं। डाँटते हैं, तो दुलारते भी हैं। मगर झगड़ू, तुम कह रहे हो कि बच्चाबाबू ने दोपहर ही में बुलाया था। तो तुम इधर आधे दिन कहाँ रह गये?"

"तुम्हें खोजता रहा, मगर तुम्हारा पता ही नहीं। मैं उधर ही से केवल राउत के यहाँ चला गया। "हाँ, उससे जुताई-बुवाई के लिए हल-बैल पटाना था। मैंने उससे सारी बातें कह दीं तो वह राजी हो गया।"

"फिर क्या तय हुआ?" खेंखर काका ने बाबू से पूछा। बाबू बोले, "पहले भाँज पर बैल देने की बात चली। मगर मेरे पास बैल कहाँ हैं? केवल के दो बैल हैं। एक कुछ कमजोर है, जो बैठा रहता है। मैंने केवल से वह बैल खरीद लेने की चर्चा की, तो वह बेचने को तैयार हो गया।"

"मगर वह बैल कमजोर जो है, लेकर क्या करोगे?"

"केवल ने कहा है, खिलाने-पिलाने से सब ठीक हो जायगा। खाई भला कि माई भला! सिर्फ भूसा पर बैल का शरीर कितने दिन टिकेगा? हरीअरी की कमी से बैल टूटा हुआ है। तुमने देखा है या नहीं, खेंखर भाई?"

"और बैल का दाम?"

"केवल को मैंने उधार देने के लिए राजी कर लिया है। अनाज बेचकर पैसा-पैसा चुका दूँगा।"

"उधार दे देगा?" खेंखर काका ने पूछा। बाबू बोले, "उसने तो कहा है, मर्द की जबान एक होती है, दो नहीं। मगर सोचता हूँ कि सिर्फ एक बैल ले लेने से सारा खेत नहीं सँभलेगा। विचार हो रहा है कि मंगरुआ के मामू को बुला लूँ।"

"बुला लो। कहीं से उठाकर एक चकला मालिक लिख देंगे, तो पुश्त-दर-पुश्त का दुःख छूट जायगा।"

खेंखर काका और बाबू में इस तरह घंटों बातचीत होती रही। बाबू उधर से ही एक चिलम गाँजा लिये आये थे। साफी और चिलम खेंखर काका अपने यहाँ से ले आये। माँ ने भीतर से गिरह दी हुई रस्सी जलाकर दी। इसके बाद 'चल अलक, खोल पलक, देख दुनिएँ की झलक' कहकर खेंखर काका ने दम लगाया। बाबू ने कसकर दम मारा, तो चिलम पर की आग धधक उठी। लबनी में थोड़ी-सी ताड़ी बच गयी थी। बाबू ने कहा, "इसे ले जाओ।"

मैंने लवनी को उठाकर माँ के पास पहुँचाया। तभी खेंखर काका को विदा कर बाहर बिछी हुई टाट को उठाये बाबू भी अन्दर चले आये। फिर दादी भी आ गयी। बाबू ने दादी और माँ से वे सब बातें दुहरा दीं जो खेंखर काका से कही गयी थीं। दादी और मैं एक जगह बैठा था। माँ या दादी ने बाबू की बातों में काट-छांट न की और सुबह ही दिन चढ़ते-चढ़ते बाबू तपेसर मामा को बुलाने पटना चले गये।

● ● ●

२

मेरा जन्म जिस गाँव में हुआ, उस गाँव का नाम था—आमी। गाँव बहुत बड़ा था। गाँव के बीच में जमींदार का मकान था। गाँव के ठाकुर थे वे, गाँव के देवता। पूरे मकान की चौहद्दी करीब आठ कट्ठे की थी और मकान के चारों ओर दालान बनी थी। आँगन में कुँआ था और दरवाजे पर भी। दोनों में फर्क इतना ही था कि आँगनवाले कुएँ में हाथ से चलाकर पानी ऊपर खींचनेवाला लोहे का मजबूत नल लगा था। ठाकुर के घरवालों की गिनती ज्यादा थी। सबके नाम अब मुझे याद भी नहीं रहे। नजदीक के संबंध को टूटे पच्चीस वर्ष जो हो गये। मगर आमी को और जिंदगी से सटी रहनेवाली घटनाओं को भूल नहीं पाता हूँ। गाँव का नाम 'आमी' तो बड़ा छोटा है। लेकिन, इसका पेट कितना गहरा और चौड़ा था, क्या बतलाऊँ? शहर के कितने बड़े मुहल्ले उसमें एक साथ समा जाते। बाजार, गाँव में भी था और गाँव के किनारे भी। छपरा शहर से सीधी पूरब की ओर आनेवाली डिस्टीक बोड की सुर्खीली सड़क की

बगल में। यह बाजार हर मंगर, सुक और एतवार को लगा करता। गाँव के बाजार में, इतनी भीड़ कभी नहीं होती थी। इसकी वजह थी, गाँव के किनारे लगनेवाले बाजार में जवार-भर के लोग आया करते थे। आमी से उत्तर और पच्छिम के गाँवों में इतना नजदीक और कोई बाजार भी तो नहीं लगता था। पूरब की ओर मानुपुर था और उससे और पूरब हटकर—दिघवारा। दिघवारा तो थाना भी था और अस्पताल भी। रेलवे-स्टेशन का नाम भी दिघवारा। हमलोग कहीं से आते, तो दिघवारा ही उतरते थे। यहाँ बाजार रोज लगता था। मानुपुर में हफ्ता में दो बार बाजार लगता। यहाँ डाकखाना भी था। यहीं के मोनसीजी हमलोगों के गाँव में चिट्ठी बाँटने आते थे। चिट्ठियों के झोले के एक खाने में वे लिफाफा-पोसकाट भी लिये होते। परदेस से मेरे बाबू जब दस-पाँच रुपये मनीआडर भेजते, तो मोनसीजी ही वे रुपये मेरी माँ के हाथ में देते और उससे अँगूठे का निशान लेते थे। ऐसे समय पर मुझे खेंखर काका के घर कजरौटा माँगने के लिए दौड़ाया जाता। मोनसीजी अँगूठा दाब-दाबकर उसका निशान लेते थे। इसी बात पर कभी-कभी खेंखर काका की अरनी मेरी माँ को बुरा-भला कह देती। मेरी माँ पर इल्जाम यह लगाया जाता कि आधे से अधिक काजर को अँगूठे में पोत लिया। लेकिन, इतने ही से काम नहीं चल जाता था। फिर शीतल तिवारी और झूलन सिंह की खोज होती। मनीआडर फारम पर गवाही बनानी पड़ती। इस तरह गवाही बनाकर अपनी दस्तखत के के नीचे जब तक वे 'बाकलम खास' लिख नहीं देते, तब तक मोनसीजी झोले से रुपये नहीं निकालते थे। और रुपया निकालकर मेरी माँ के आगे रखते हुए, कहते "इनी में मेरा इनाम भी है। इस बार पंद्रह रुपये आये हैं, आठ आने से कम न लूँगा।"

"आठ आने ?" मेरी माँ अचरज से भरकर पूछती।

"हाँ, आठ गंडा" मोनसीजी कहते।

इस अचरज की हमेशा दो वजहें होती थीं। एक तो मेरी माँ इतनी गँवार थी कि पाँच रुपये की रेजगारी एक साथ गिनने के लिए मिल जाय, तो सारा दिन क्या, चौबीस घंटे में भी वह अच्छी तरह नहीं गिन सकती थी। एक आने

को यानी चार पैसे को वह एक गंडा मानकर पैसों की गिनती करती । कर्ज और फिक्र से जिंदगी तो भारी हो ही रही थी, साथ-साथ उस मनीआडर से आठ गंडे पैसे देकर मोनसीजी को खुश करना पड़ता था । हाँ, मोनसीजी कभी हमारी भलाई भी करते थे । मैं पहले कह चुका हूँ, मेरे गाँव में न पोस्ट-आफिस था और न कोई लेटर-बाकस । ऐसी हालत में ठाकुर के घर की चिट्ठियाँ लेटर-बाकस में डालने के लिए उनका नौकर मानुपुर चला जाता । पढ़े-लिखे लोग अक्सर मानुपुर जाते, तो वहाँ के लेटर-बाकस में अपनी चिट्ठियाँ डाल आते थे । मगर, जो लोग हमारे तबके के थे, उनके साथ यह सुविधा नहीं थी । एक तो हमलोग चिट्ठी ही कम लिखते थे । दो जगह से चिट्ठियों के आने की उमीद रहती । एक बाबू के यहाँ से, जो कलकत्ते के किसी छोटे-मोटे वर्क-शॉप में ब्वायलर-कुली का काम करते थे और दूसरे मामू के यहाँ से, जो पटने में फेरी देकर जूता-सिलाई करते थे । कभी-कभी मोनसीजी हमलोगों पर कीरपा करके चिट्ठी का जवाब लिख देते और लेटर-बाकस में डालने के लिए उसे साथ ही ले भी जाते थे । इस काम के लिए वे हमलोगों से कुछ भी नहीं लेते थे । गाँव के एक कोने में वे घुसते तो यह खबर गाँव के चारों कोने में फैल जाती । मोनसीजी का इन्तजार होने लगता और बेचारे मोनसीजी ऐसे थे कि अगर जमींदार के दरवाजे पर पहुँच जाते, तो दो-डेढ़ घंटा से पहले उठते ही नहीं थे । जमींदार के दरवाजे पर अकड़-कर बैठने में शायद उन्हें भी आनंद मिलता था ।

अपने होश में आने के बाद की जो सबसे पहली छोटीसी घटना है, मैं उसे नहीं भूलता । शाम हो चुकी थी । मेरी झोपड़ी में मिट्टी के तेल की ढिबरी अभी-अभी जलायी गयी थी । शायद फाल्गुन महीने का अंत हो रहा था । सूरज के डूबते-डूबते दादी मेरी गर्दन में गाँती कसकर बाँध दिया करती थी । सो, गाँती आज भी कसी थी । अभी कल तक बाबूलोगों की दालान और रैयतों की बथान में रंग-भरी होली का मंगलाचरन गाया जा रहा था । मगर, आज जैसे गाँव के इस छोर से लेकर उस छोर तक मातम छाया हुआ था । मरदों से आमी की गली-गली सूनी दीख पड़ती थी । होली का गीत कहीं सुनायी नहीं पड़ता । ढोल और झाल जैसे फिर से संदूकों में बंद कर दिये गये थे । मैं दादी

के पास भीतर झोपड़ी में बैठा, जहाँ माँ खिचड़ी पका रही थी, दो-तीन आलू पकाकर नाश्ता करने का सिलसिला जमा रहा था कि मेरी झोपड़ी के बाहर अचानक आठ-दस मरदों के बोलने की आवाज सुनायी पड़ी। दादी अभी कान पाथकर अंदाज ही लगा रही थी कि बाहर से किसी ने दादी का नाम लेकर पुकारा, "कबूतरी, कबूतरी ?"

दादी का दिल धक् से कर गया। आवाज बच्चाबाबू की थी—ठाकुर के बड़े लड़के थे वे। दादी 'आयी मालिक' कहकर बाहर निकलने लगी, तो मैं उठकर साथ लगा। मगर, माँ ने हाथ पकड़कर बिठा लिया। वह बोली, "बैठ तू। मालिक के सामने और घोड़े के पीछे रहना ठीक नहीं। तू बड़ा फटर-फटर बोलता है। मुँह से कुछ बेवाजिब बात निकल गयी, तो तेरे साथ घर-भर की चमड़ी उधेड़ दी जायगी।" माँ की बात सुनकर मुझे काठ मार गया। कछुए की गर्दन की तरह अपने हाथ-पैर समेटकर मैं माँ के पास चूल्हे से सटकर बैठ रहा। लेकिन, न-जानें, कौन ऐसी बात हुई कि मेरे और माँ के कानों में दादी के रोने की आवाज सुनायी पड़ी। वह आवाज तो महसूस की जा सकती है, बतलायी नहीं जा सकती। मेरी बूढ़ी दादी की वह रुलाई किसी औरत को न नसीब हो, यही मनाता हूँ। वह पुक्का फाड़कर रो पड़ी थी। उसने अपनी छाती में शायद कई मुक्के भी मारे थे। अब तो माँ से भी न रहा गया। चूल्हे पर खिचड़ी छोड़कर मैं माँ के पीछे-पीछे अपनी झोपड़ी के दरवाजे पर आया। आकर मैंने देखा, बाहर उजेला था। एक आदमी के हाथ में अजीब तरह की रोशनी जल रही थी। पीछे बहुत पूछने पर माँ ने मुझे बताया कि उसका नाम 'लालटेम' है। वह सात समुन्दर टपु पार से बनकर आता है और उसका दाम ? इतने गंडे पैसे होते होंगे कि शायद मेरी माँ अकेली गिन नहीं सकती थी। उसका असली दाम बतलाने मे माँ ने अपनी मजबूरी जाहिर की थी; क्योंकि रोशनी का वैसा इन्तजाम न तो उसके बाप के घर में था और न मेरे यहाँ। ऐसी चीज उसने कभी खरीदी नहीं। नाम शायद इसलिए जानती थी कि बाबूलोगों के घर अक्सर जो कूटने, गोबर पाथने और बच्चों के 'गेंतर' फींचने के लिए जाना पड़ता था। हवेली कमाने के लिए दादी ही जाया करती थी। कबूतरी का हाथ हल्का और 'जस' से भरा हुआ है, गाँव की सुहागिनें कहती थीं।

लालटेन की रोशनी में माँ के साथ मैंने देखा कि एक खाट पर, जो काफी कमजोर थी और जिसकी रस्सियाँ कई जगह से कटी हुई जान पड़ती थीं, मेरे दादा पीठ के बल बेहोश पड़े हुए थे। जाँघ के पास की भगोटी खून से रंगी हुई दीख पड़ती थी और छाती पर दो-तीन जगह हथियार के जख्म थे। दादा का कुरता छाती के पास बुरी तरह फट गया था और लहू के काले-काले कतरे चारों ओर फैलकर दादा की वफादारी की सबूत पेश कर रहे थे। दादा की यह हालत देख अपने मैले आँचल से माँ ने अपनी आँखें ढँक लीं और माँ पर नजर पड़ते ही दादी और छछन-छछनकर रोने लगी। वह खाट से सटकर जमीन पर बैठी दादा की देह पर अपने सिर को पटकने लगी। उसके रोने की आवाज धीरे-धीरे तेज होती जा रही थी। इधर माँ को भी रुलायी आ रही थी। मगर वह दादा की देह पर गिरकर भला कैसे रोती? ससुर और पतोहू का रिश्ता जो था! उस वक्त मुझे एक हाथ से टालकर माँ जहाँ खड़ी थी, रोने लगी। छाती में छेद करनेवाला खेल था, यह!

"कबूतरी?" उन लोगों में से किसी ने मेरी दादी को पुकारा।

"........।" मगर मेरी दादी कुछ बोली नहीं। वह दादा की खूबियों का बखान करती हुई लगातार सिर को पटककर और रो रही थी। उसकी फटी और पुरानी साड़ी का छोर कमर से ऊपर तक हट चुका था। पास ही खड़े बच्चा-बाबू बहुत बेचैन दीख रहे थे। दादा का यह हाल कैसे हो गया, यह तो मैं बहुत पीछे समझ सका, मगर उनकी यह हालत देख मुझे इतनी याद जरूर हो आयी कि आज दोपहर में वे ज्योंही हलवाही करके लौटे, दादी से कहा, "कुछ खाने के लिए है तो दे दे, न हो तो मेरा भाला निकाल ला, आज दोपहर पर गोहराँव में जाना है।"

"गोहराँव में जाओगे किस जगह?" दादी ने पूछा।

"बहुत दूर, मलखाचक के सामने।" दादा बोले।

उसी रोज दिन के करीब एक बजे तक मेरे यहाँ खाने के
था। माँ ठाकुर के यहाँ गोबर पाथने गयी थी। जाते वक्त
था कि वह दोपहर से सबेरे ही आ जायगी और आज मालिक

बार सेर-सवा सेर जनेरा लेती आयगी। सो, माँ मुँहझप्पे उठकर चली गयी थी। दादा सुबह बिना कुछ खाये ही ठाकुर का खेत जोतने चले गये। मुझे भूख लगी, तो फुरदेल साव के आलू के उस खेत की ओर दौड़ा जिसकी फसल कट चुकी थी, आज से दो रोज पहले। आलू उखाड़कर परसों बिक्री के लिए छपरा चला जा चुका था। वैसे गाँव में अभी आलू के खेत थे, लेकिन फुरदेल साव का आलू सबों से अगताह हुआ था। शायद शहर में ले जाकर मँहगे दाम पर बेचने के लिए ही फुरदेल साव आलू की फसल समय से कुछ पहले तैयार कर लेता था। और जगहों के बारे में तो मुझे कोई वैसी जानकारी नहीं, मगर हमारे यहाँ जब लोग खेत से आलू उखाड़ लेते हैं, तब भी खेत की गीली मिट्टी में छोटे-बड़े आलू रह जाते हैं। ऐसी मिट्टी पर एड़ी को एक जगह ताकत के साथ गड़ा करके जब आस-पास की मिट्टी को पैर के पंजे से हटाया जाता है, तो अक्सर दो-चार आलू निकल आते हैं। अपनी गरीबी की वजह से मैं तो इस काम में मँज चुका था। मेरे इलाके में इस काम को 'आलू चालना' कहते हैं और इस तरह आलू चालने का काम मेरे ही तबके के लड़के किया करते हैं—जैसा उस वक्त मैं था।

हाँ भाई, तो फुरदेल साव के खेत से मैं करीब आधा सेर आलू चाल लाया था। सो, उसी में से दादी ने कुछ आलू पका दिये थे, जिन्हें खाकर मैं दोपहर तक, माँ के ठाकुर के घर से मकई ले आने की इन्तजारी करता रहा। दादी चूल्हा सुलगाकर बड़ी देर से उस पर खपरी चढ़ाये हुई थी। बालू गर्म हो चुका था। फिर चूल्हा सुलगाने और बालू गर्म करने में देर न हो, शायद इसीलिए दादी यह सब कुछ कर रही थी। शायद यह उमीद थी कि मेरी माँ ज्योंही मकई लेकर आयगी कि खपरी में पानी डाल दी जायगी। फिर दादा पहुँचेंगे, तो उन्हें भी भुंजा तुरत मिल जायगा। इसीलिए तो दादी का इशारा पाते ही मैं भी गनेरी तुरहा के खेत से लगभग दस-बारह लाल-लाल मिरचाइयाँ उड़ा ले आया था। इन सब कामों में मैं पूरा चालू हो गया था। गनेरी के खेत में, जो उनके घर के पीछे ही था, तरह-तरह की तरकारी थी। उसमें टमाटर भी था। मौका देखकर मैं पके टमाटर तोड़ लेता और कहीं छिपकर बड़े चाव से खाता

था। अगर टमाटर चुराते समय किसी के आने की आहट मालूम होती, तो फिर कच्चे और पके का खयाल नहीं रह जाता। कच्चे टमाटर हाथ आ जाते, तो लाकर दादी के हाथ में देता। फिर, न जानें, वह कैसे-कैसे उनको काम में लाती थी।

तो इस तरह मां के साथ मकई के इंतजार में दादी ने चूल्हे पर से कई बार खपरी उतारी और चढ़ायी। उसके चनक जाने का डर जो था। दादा के हलवाही करके लौटने तक आखिर मां नहीं आयी और दादा ने अभी आकर दादी से जो कुछ कहा, उसके जवाब में दादी से कुछ कहते न बनता था। दादा ने कहा था, वे मलखाचक के दीयर पर गोहरांव में जायेंगे। दादी को यह नहीं पूछना चाहता था कि किसकी ओर से? इतना अंदाज लगाना शायद मोसकिल नहीं था कि मलखाचक के दीयर में ठाकुर का भी खेत है और गंगा के पानी के हट जाने से फिर जो नपाई हो रही है, इसीलिए मलखाचकवालों में [illegible] पैदा हो गयी होगी। मुझे नहीं मालूम कि दादा इसके पहले भी कोई [illegible] लड़ चुके थे या नहीं। मगर, मुझे इतनी याद जरूर है कि उस [illegible] काली सूरत और भी काली पड़ गयी थी। दादा ने फिर [illegible] "कुछ खाने के लिए है, तो ले आ, नहीं तो मेरा भाग्य [illegible] जायगी, फिर पैदल कब तक जाऊंगा? मेरे रहते [illegible] छेत्र लगा दे, तो यह जिनगी अकारथ है।"

तब बड़े संकोच के साथ मेरी दादी [illegible] चन के नीचे एक ओर दबाकर जो [illegible] आयी। दादा का चेहरा आज भी याद है। [illegible] पैरों में बेवाय फटी थी। वे जूता [illegible] भर उन्हें चमरखानी 'पनही' [illegible] गाल पिचके हुए थे। आंखों के [illegible] भर तेल भी अंट जाय। [illegible] होकर मुड़ा हुआ था। [illegible] करते थे।

मैं तो इन बातों को याद कर-करके तब समझने लगा, जब मुझे दुनियादारी के चक्कर में पड़ना पड़ा। हाँ, मैंने दादी और माँ से पूछने की कोशिश की थी, मगर वे दोनों मेरे सवालों के जवाब उस तरह नहीं दे सकीं, जिस तरह के जवाब से मुझे दिलजमई हो सकती थी। इसके बारे में बाबू ने भरपूर जानकारी करायी थी। इसलिए मैं समझता हूँ कि उस वक्त दादा के मुरदा को देखकर दादी पूरी रामायन समझ गयी होगी। दादा गोहराँव में गये थे, दीयर पर दोनों दलों में लठिया-लठउअल और भाला-गँरास सब कुछ हो गया। और इसी दो चक्की के पाट के बीच दादा ने परलोक का रास्ता देख लिया। इसके बाद दीयर पर के खेत के बारे में मामला-मोकदमा हुआ या नहीं, इसकी कहानी मुझे नहीं मालूम। लेकिन, उस दिन साँझ को बच्चाबाबू ने मेरी दादी के सामने दादा की नेकनीयती, ईमानदारी और वफादारी की जैसे दस्तावेज पेश कर दी थी। बच्चाबाबू और उनके आदमी दादी का मुँह देख रहे थे और दादी की आँखों से छ-छ पाँती लोर बह रहा था।

"कबूतरी सुन, अधिक रोने से काम नहीं चलेगा। जतन का गुन हमलोग नहीं भूलेंगे। यह लो········। बच्चाबाबू ने कहा था।

मेरे दादा का नाम जतन महरा था। खैर, उस समय मेरी दादी ने लालटेन की रोशनी में बच्चाबाबू की तरफ इस तरह देखा था कि क्या कहूँ? वह दबी जुबान से कुछ झिझककर बोली, "सरकार, मुझे क्या कहते हैं? मेरा तो सरवस चला गया। मेरे घर में तो डाका पड़ गया।"

"तो, आखिर रोने से जतन लौट तो नहीं आयेगा। सरवस चला गया, तो क्या हैं, हमलोग तो नहीं मर गये? जतन जिंदा ही था, तो कहाँ से कमाकर लाता था? हमलोग ही जिलाते थे या कहीं नेपाल जाता था कमाई करने? पगली कहीं की! ले इसे रख, और मुरदा को जलवा दे।" बच्चाबाबू बोले।

"मालिक, इस समय मेरे घर में भला कौन मरदाना है, जो यह काम करेगा?" मेरी माँ अपने आँसू पीकर बोली।

"तुम इसकी चिंता मत करो। तुम्हारे घर में मरदाना नहीं है तो क्या? मरदों से गाँव तो नहीं खाली हो गया?" बच्चाबाबू ने कहा। तब झेंपकर मेरी

माँ बकर-बकर उनकी ओर देखने लगी। उसी समय माँ को शायद खिचड़ी की याद हो आयी। वह खिचड़ी उतारने या सँभालने के लिए झोपड़ी में घुसी। बात यह हुई कि दादा तो दोपहर ही में गोहराँव में चले गये थे। खाना उन्हें नहीं मिला। दादी ने इतना जरूर कहा था, "भला भूखे-प्यासे गोहराँव पर कैसे जाओगे ?"

"तू इसकी परवा न कर। नाव पर चिउरा-बतासा, भूँजा और मीठा भी जा रहा है। रास्ते में भर-पेट-आधपेट भूँजा फाँककर दरिआव का पानी पी लूँगा।" दादा बोले।

तब दादी को शायद कुछ संतोष हुआ था। दादा भाला लेकर दौड़ते-भागते घाट का रास्ता पकड़े। इधर माँ करीब चार बजे पहुँची। दादी ने पूछा, "इतनी देर क्या करने लगी कनियाँ ?"

"गोंइठा ठोंकने के बाद जौ कूटना था। जौ कूटने के बाद आँगन से लेकर बाहर तक की नाली साफ करनी थी। फिर एक कठउती गँरतर फींचना था। अभी तो फिंच-सुखाकर दिये आ रही हूँ।"

और, इसके बाद दादी ने माँ की ओर देखकर कहा, "मँगरुआ के दादा भूखे गोहराँव पर चले गये।"

"कुछ मिल जाता, तो ले आती। माँगने का मौका भी नहीं मिलता था। एक-पर-एक काम था।"

माँ ने कोई ऐसा बहाना नहीं बनाया था। बात सही थी। जब कभी माँ के साथ मैं ठाकुर के घर जाता, तो माँ को ये सारे काम करते देखता था। ऐसी हालत में कभी-कभी मैं भी उसका मददगार हो रहता। उस वक्त माँ की गोद में एक डेढ़ वर्ष की मेरी बहन भी थी। वह दूध के न रहने के बावजूद भी उसकी सूखी छाती से चिपकी रहती। गोबर की ऊँची ढेरी देखकर वह हताश तो नहीं होती थी, लेकिन जब मेरी डेढ़ वर्ष की बहन 'नकटी', भूसे की छाँटी मिलाकर उन्हें गोलियाते और ऊपर से छुतिहर घड़े का पानी देकर कचारते समय रोने लगती, तो वह परेशान हो उठती। तब मुझे 'नकटी' को सँभालना पड़ता था। ऐसी हालत में नकटी कभी-कभी बेतरह छरियाती। जो रोना-चिल्लाना

शुरू करती, सो माँ की गोद में चिपटकर ही दम लेती थी। फिर तो मालिक की कौन कहे, वहाँ माल-जाल के लिए जो कुट्टी काटनेवाला नौकर था, उसकी भी फटकार सुननी पड़ती। इसी डर के मारे जब माँ गोबर के लोइये तैयार कर लेती, तो वह खुद गोंइठा पाथने की जगह पर नकटी को गोद से चिपकाकर खड़ी हो जाती और मैं छोटी-सी छँइटी में लोइये को भर-भरकर उसके पास पहुँचाया करता। अगर उस वक्त खाने-पीने का समय होता तो जूठन-कूठन भी मिल जाता था। कहारों की तरह हमलोग उस जूठे थाल में नहीं खा सकते थे। माँ केले का पत्ता काटकर ला देती और उसी में ऊपर से भात-दाल, जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाती होती, उँड़ेल दिया जाता था। लेकिन ऐसा मौका बहुत कम ही हाथ लगता। कहारों के मारे जूठन भी नहीं बचता था। ज्यादा भिनक चुका अन्न ही कहार हमलोगों को देकर हम पर कीरपा करते थे।

"खोंइछा में क्या है ?" दादी ने पूछा।

"सेर-भर दारा है और पावभर खेंसारी की दाल।" माँ ने जवाब दिया। मकई को मामूली गर्म बालू में भूनकर जिसे दल दिया जाता है, उसे हमारे यहाँ 'दारा' कहते हैं। मेरी ओर गरीब-घरों में दारा का भात भी बनता है और खिचड़ी भी। वैसे मकई की रोटी और मकई का सत्तू खाने के लिए छपरा जिला मशहूर है। जाँता चलाते वक्त किसान की बेटियाँ अक्सर ये गीत गाने लगती हैं—

मकई के सतुआ सकरपलवा हो बाबूजी,
काहेला बीअहब गंगा-परवा हो बाबूजी।

माँ के मुँह से दारा और दाल का नाम सुनकर दादी झट चूल्हे के पास चली आयी। खपरी और बालू के गर्म करने में बाँस की कितनी फट्टी और मकई की रूँटी जल चुकी थी। चूल्हे का मुँह भर गया था। सो, दादी चूल्हे के भीतर की राख निकालने लगी।

अब नकटी इस दुनिया में नहीं थी। दादा के इस तरह मारे जाने के करीब दस रोज पहले की बात है। जब बहुत गंरतर होता, तो माँ अक्सर गंगाजी में फींचने चली जाती। नकटी को थामने के लिए मैं भी साथ जाता था। उस रोज भी वही बात थी। मगर मैं साथ न जा सका। बुखार से थर-थर काँप रहा था।

दादा कुँड़ी चलाने गये थे । बाजार के इस पार, डिस्टीक बोड की सड़क के पास ठाकुर का आलू का खेत पटाता था । सो उन्हें मुँहझप्पे चला जाना पड़ा । दादी मुझे टाट से ढँककर मुरुदघटिया पर लकड़ी के लिए चली गयी । भात पकाने के लिए न मकई की खूँटी थी और न फट्टी । मुरुदघटिया में जाने पर थोड़ी-बहुत मुर्दों पर की अधजली लकड़ियाँ जरूर मिल जाती थीं । इधर माँ नकटी को लेकर गंगाजी गयी थी । माँ के कहे मुताबिक गेंरतर फींचकर जब वह दस-बीस कदम चिकनी मिट्टी पर सूखने के लिए उन्हें फैलाने गयी कि इधर नकटी पानी में समा गयी । माँ के दौड़कर वहाँ पहुँचते-पहुँचते नकटी गंगा मइया की गोद में चली जा चुकी थी । तब छाती पीटती और रोती, चिंघाड़ मारती हुई माँ अपने घर पहुँची थी । अभी नकटी के खोने का घाव भी न भरा था कि दादा ने अपनी जिंदगी का खेल, खेल लिया । वे मारे तो जरूर गये, मगर तलवार के बल पर उसी रोज से उस दीयर के खेत पर ठाकुर का हक जम गया । मलखाचकवाले जो भागे, सो फिर नजर नहीं आये ।

खेंखर काका हिताई में चले गये थे, सो उसी वक्त लौटे । खबर मिली, दौड़े हुए आये । बच्चाबाबू को खेंखर काका ने अदब के साथ झुककर सलाम किया । बच्चाबाबू ने खेंखर काका के हाथ पर चाँदी के कुछ रुपये रखकर मेरी दादी की ओर इशारा करते हुए कहा, "इन रुपयों में से बूढ़े की काम-किरिया में जो खर्च हो, सो करना और जौर जो बचे सो बुढ़िया को दे देना । अछैवर अभी लकड़ी लिये आ रहा होगा । उसे भी साथ ले लेना । अब जतन को जलाने का काम तुम्हारे जिम्मे रहा ।"

"अच्छा सरकार········।" खेंखर काका कुछ कहते-कहते रुक गये । इनके बाद अपने आदमियों को चलने का इशारा देकर बच्चाबाबू लौटने लगे । मेरी झोपड़ी के सामने से करीब दस डेग आगे जाकर वे फिर लौटे । उन्होंने खेंखर काका से दादी और मेरी माँ को सुनाकर कहा, "बुढ़िया को कह दो, रोवे-कलपे नहीं । जतन हमलोगों के लिए मर गया, हमलोग उसके घर के लिए मर जायेंगे । देखो, दो-चार रोज में कुछ खेत भी बकसीस में दे दूँगा । झगड़ू को कलकत्ता

अगोरने की क्या जरूरत है ? यहाँ मजे से रहे, अपना खेत जोते-बोये और पड़ा रहे । इस पर भी किसी वेले-कुबेले के लिए हमलोग मौजूद ही हैं । है न ?"

"सरकार, आप हमलोगों के माई-बाप हैं........।"

बच्चाबाबू के चले जाने के बाद खेंखर काका मेरी दादी के पास चले आये और मेरी माँ को बुलाकर कहा, "कोई फटी-पुरानी टाट हो, तो ले आओ । मुर्दा को झाँप देना चाहिए ।" तब माँ बड़ी बेचैनी के साथ घर में टाट खोजने लगी । दो-एक टाट थी, जिसे कोदो के पुआल पर सोकर दादा और मैं, ओढ़ा करता था । आखिर में माँ ने वही टाट दे दी । खेंखर काका ने बड़े जतन से दादा की लाश को उस टाट से ढँक दिया और तब वे दादी से बोले, "काकी, मैं भी जानता हूँ कि अपने सवाँग से बढ़कर पीरथी में कोई भी बड़ी चीज नहीं है । मगर, रोने और छाती पीटने से जतन काका सोरग से लौट नहीं आयेंगे । भगवान ने तुम्हें बेटा, पतोहू और पोता दिये हैं । अब तुम झगड़ और मंगरू का मुँह देखो । बड़े मालिक की तरह बच्चाबाबू ढेर खिसियाह मिजाज के नहीं हैं । ये दयामंत मालिक हैं....।" और, इसी सिलसिले में उन्होंने दादी को वे रुपये दिखलाकर कहा, "देखो, बच्चाबाबू ने एक, दो, तीन, चार....बीस रुपये दिये हैं । अछैबर कहार लकड़ी लेकर आता ही होगा । मैं बजाज के यहाँ से पाँच गज कफ्फन का कपड़ा लिये आता हूँ । परसों बनरसिया के यहाँ जाकर मंगरुआ मेरे साथ माथा मुड़वा आवेगा ।"

"और भोज ?" दादी ने पूछा ।

"भोज केलिए इतने पैसे काफी हैं । यहाँ हमलोग छौ-सात आदमी होंगे और हराजी में भी तो अब तीन-चार ही घर अपने बिरादर रह गये हैं । घर पीछे एक आदमी को नेवत आऊँगा । कफ्फन में कितना लगेगा ? मोसकिल से एक-डेढ़ रुपया । भोज में सबको माठ़ा-चिउरा और दही खिला देना ।"

"हूँ.......।" दादी के मुँह से निकला और वह फिर रोने लगी ।

"रोओ मत काकी ! जो होना था, सो तो हो गया । जिनगी का कौन ठिकाना है ? एक दिन तो सब को मरना है । चाहे घर में मरो चाहे बाहर मरो । चाहे बीमारी से मरो, चाहे हथियार से मरो, बात एक ही है । बात यह

है काकी कि भगवान अपने ऊपर अपजस लेना नहीं चाहते। आदमी को मारने के लिए वे कोई-न-कोई बहाना खोज ही लेते हैं। सो तो अब कलजुग है। आज भी चलते-फिरते, पूजा करते और मुंह धोते कितने लोगों की मुक्ति हो जाती है।"

लेकिन, इस पर भी दादी का मन न भरा। खेंखर काका कहने लगे, "मानता हूँ कि खेत मिला ठाकुर को और जान गयी जतन काका की। सो क्या करोगी, हमलोग कमीने हैं। बड़ों का जूता माथे पर लेना ही होगा।" दादी की समझ में न-जानें और क्या आया, वह और भी पुक्का फाड़कर रोने लगी। "मंगरुआ, मंगरुआ''''।" बाहर से किसी ने मेरा नाम लेकर पुकारा। यह आवाज मेरी झोपड़ी के पीछे से आयी थी। खेंखर काका ने तनिक जोर देकर कहा, "कौन है, अछैवर ? उधर पीछे कहाँ चले गये, इधर सामने आओ न।"

अछैवर मेरी झोपड़ी के सामने खाली जगह में आकर खड़ा हो गया। उसके माथे पर लकड़ी का एक बहुत बड़ा बोझा था। खेंखर काका बोले, "लकड़ी पटक कर बैठो। मैं जरा पाँच गज कफ़न तो लेता आऊँ।"

'राम.राम, तुम भी कैसे हो खेंखर, अभी तक कफ़न भी नहीं ले आये। मुर्दा सड़ाना चाहते हो क्या ? जाओ जाओ, दौ.ो।"

अछैवर ने लकड़ी का बोझा पास ही पटक दिया। खेंखर काका दौड़कर कफ़न ले आये, साथ में दो-चार जात बिरादर को भी लेते आये थे। कहा नहीं, गाँव बहुत बड़ा है। इस पट्टी की बात उस पट्टी पहुँचते-पहुँचते काफी देर लग जाती है। उन लोगों के आ जाने पर अछैवर वापस चला गया। खेंखर काका ने रोककर साथ में चलने के लिए कहा तो बोला; "चमार-दुसाध का मुर्दा मैं क्यों जलाऊँगा ? छोटे सरकार ने मुझे सिरफ लकड़ी पहुँचा देने के लिए कहा था।" और वह चलता बना।

मुरदे के साथ जो 'ललटेम' नाम की रोशनी आयी थी, वह बच्चाबाबू के साथ चली गयी थी। ढिबरी के मामूली उजियाले में ही दादा को कफ़न से छिपाया गया। मेरी बिरादरी का एक आदमी जमींदार की बाँस की कोठी से चार बाँस काट लाया। आज बाँस काटते वक्त उसे पकड़कर कोई बच्चाबाबू के

सामने नहीं ले गया। एक बार मेरी पलानी का एक कोना बाँस के सड़ जाने से गिर रहा था। मेरे बाबू छिपकर उसी कोठी में एक छोटा-सा बाँस काट रहे थे कि पकड़ लिये गये। अपने चरवाहे से बँधवाकर बड़े मालिक ने बुरी तरह मरम्मत करायी थी। माँ का कहना था कि उसके दूसरे दिन ही बाबू कलकत्ता भाग गये।

बाँस की रत्थी बनकर जब तैयार हुई और दादा को उस पर सुलाकर बाँधा-छाना जाने लगा, तो माँ ने मेरा हाथ पकड़कर भीतर खींच लिया। दादी दरवाजे पर बैठी रो रही थीं, सो खेखर काका ने मेरी माँ से कहा, "काकी को भीतर ले जाओ न। हमलोग अब मञ्झिल ले जा रहे हैं, कसने में कितनी देर लगेगी?"

तब माँ दादी के लाख हाथ-पैर कड़ा करने पर भी उसे खींच लायी। हम तीनों भीतर बैठे रहे। कुछ मिनट के बाद ही यह पता चला कि अधैवर जो लकड़ी पटक गया था, उसे कोई बाँधकर सिर पर रख रहा है। और, फिर तुरत ही सुनायी पड़ा—सीरी राम नाम सत्त है.... !

शायद दादा को वे लोग जलाने के लिए मुरदघटिया ले गये। थोड़ी देर के बाद माँ ने मुझे किसी तरह दारा और खेंसारी की दाल की खिचड़ी खिला दी और घण्टे-भर के अन्दर मैं शायद सो भी गया। लेकिन, मेरा अन्दाज यही है कि उस रात दादी और माँ ने उपास ही किया। मैं कोदो के पुआल पर सो गया था। सुबह मेरी आँखें तब खुलीं, जब माँ ने मुझे उठाकर बाहर बिठा दिया और वह पुआल को हटाकर उस जगह को लीपने लगी।

• • •

मामू को लेकर बाबू तीसरे रोज पटना से वापस आ गये। सुबह का समय था। माँ ठाकुर की बथान साफ करने जा रही थी। पलानी से निकलकर ज्योंही आगे बढ़ी कि सामने से आते हुए बाबू और मामू पर नजर पड़ गयी। वह तब उल्टे पाँव पलानी में लौटी। मेरे खाने के लिए घर में छूँछे भात था। न दाल और न तरकारी। इसलिए माँ की पीठ पर ही मैं भी पलानी से बाहर निकला। मोतीचन्द सुरहा के खेत में मोरहन भुरई लगी थी। तरकारी और दाल की कमी की वजह से मेरी नजर उसी ओर चली गयी। सोचा था, इधर-उधर देखकर उखाड़ लूँगा। घर पर आकर उसकी मिट्टी दादी खुद धो डालेगी। लेकिन, मामू और बाबू को देखकर मैं भी रुका। पहले माँ पलानी में घुसी तब मैं। मामू को लेकर जब बाबू अन्दर आये, तो माँ रो-रोकर अपने भाई से भेंट करने लगी। न-जाने, माँ को चुप कराने के लिए मामू ने उस वक्त क्या-क्या कहा था। लेकिन, थोड़ी देर रो लेने के बाद माँ चुप हो गयी।

"मंगरुआ ?" माँ ने पुकारा।

"क्या ?"

"फुरदेल साव के खेत से जल्दी कुछ झटक ला।" मामू से तनिक अलग ले जाकर माँ बोली।

मेरी गौती का कपड़ा बड़ा था। माँ ने मुझे एक छोटा-सा मैला टुकड़ा पकड़ा दिया और मैं फुरदेल साव के खेत की ओर चला। बाहर बाबू खड़े थे। उन्होंने पूछा, "कहाँ रे ?" जवाब में मैंने सिर्फ वह मैला टुकड़ा दिखला दिया। बाबू शायद लाल बुझक्कड़ से भी बड़े बुझक्कड़ थे। मेरा खयाल है, अपने बचपन में, ऐसे-ऐसे मौके पर उन्हें भी इस तरह के काम करने पड़े होंगे। उन्होंने इशारे से कहा, "इधर-उधर देखकर। पकड़ा मत जाना।"

"अच्छा।" तब मैंने कहा था।

तरकारी तोड़ने में देर न हुई, देर हुई तरकारी तोड़कर पलानी तक लौट आने में। रास्ता बदलकर आना पड़ा था। जाती दफा कोई डर न था। लौटती दफा डर इस बात का था कि कहीं फुरदेल साव का बेटा मिल गया, तो मारते-मारते बाँह छटका देगा। फुरदेल साव तो बिल्कुल बूढ़े थे। उन्हें सूझता भी कम था। मगर उनके लड़के बड़े कौंई थे। उनके हाथों से मैं कई बार पिट चुका था। तरकारी लेकर आने पर माँ ने दादी को समझा-बुझा दिया और अपने ठाकुर के यहाँ काम करने चली गयी। मुझे भूख लगी थी। दादी ने मेरे लिए दो टमाटर पका दिये। मैं टमाटर का भर्त्ता और मकई का भात खाने लगा। मैं जैसे ही भात-भर्त्ता खाकर मुँह धोने लगा कि तब तक बाबू और मामू ने अंबिका स्थान घाट चलकर नहाने का विचार कर लिया।

अम्बिका स्थान मेरे यहाँ का पुराना देवस्थान है। वैसे इसकी प्रसिद्धि तो पूरे बिहार में है, मगर दशहरे और चैतनवमी के अवसर पर भी अवसर जवार ही के लोग आते हैं। अम्बिका भवानी का विशाल मन्दिर गंगा के किनारे खड़ा है। इस मन्दिर के अहाते में ही भीतर एक बहुत बड़ी फुलवारी है। उसमें सुना है, तरह-तरह के फूल लगे हुए हैं। हमलोग अछूत थे। वैसे अछूत तो अब भी हैं। मगर उस वक्त के हरिजन और आज के हरिजन में बड़ा फर्क हो गया। पहले तो कुरमी-कहार भी हमलोगों में बदन नहीं छुआते थे, अब तो बाबाजी लोग तक हमलोगों का छुआ खाते हैं।

उन दिनों हमलोग किसी भी मन्दिर में नहीं समा सकते थे। मन्दिर की शोभा का वर्णन सुन-सुनकर देखने के लिए मन बड़ा लुसफुसाता था। एक बार दशहरे का अवसर आया। मैं बाहर सीढ़ी के नीचे खड़ा था। मन्दिर बहुत ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है। बड़ी-बड़ी बत्तीस सीढ़ियाँ पारकर कोई मन्दिर के आँगन में पहुँचता है। बड़ी भीड़ थी। अन्दर से बाबाजी लोगों के मन्तर पढ़ने की आवाज जोरों से सुनायी दे रही थी। हवन का धुआँ आसमान को छू रहा था। भवानी पर चढ़ाने के लिए लोग चुनरी और पकवानों से भरी चंगेली लिये मन्दिर में समा रहे थे। भीतर शायद खस्सी भी बलि चढ़ाये जा रहे थे। कटे हुए खस्सी को लेकर कितने लोग बाहर निकलते। टप्-टप् लोहू चू रहा था।

औरतें रंग-बिरंग के कपड़े पहने थीं और उनका झुंड भवानी के गीत गा रहा था। गंगा के किनारे से लेकर अम्बिका स्थान तक चमरुआ बाजे बज रहे थे। मन्दिर के दूर-दूर तक मिठाई की दूकानें खुल गयी थीं। वैसे मेला भी लगा था। मगर चैतनवमी के मेले के बराबर नहीं। चैतनवमी का मेला असल में तीन दिन रहता है। और दशहरे का मेला सिर्फ एक दिन।

बचपन में मैं चैतनवमी के मेले को इसलिए बड़ा मेला समझता था कि इस मेले में लड़के बहुत अधिक भुलाते थे और दशहरे के मेले में बहुत कम। सचमुच चैतनवमी के मेले में भीड़ भी अधिक होती है। तो ठीक दशहरे की इसी भीड़ में मैं बत्तीसों सीढ़ी पारकर मन्दिर में समा गया था। इधर-उधर घूम-फिरकर जल्दी-जल्दी देखा और भाग आया। देखा, भवानी के मन्दिर का दरवाजा और चौखट चाँदी का बना हुआ है। इस मन्दिर के बारे में लोग तरह-तरह की बातें कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि एक रोज रात में यहाँ के पंडे-घराने में किसी ने सपना देखा कि अम्बिका भवानी कह रही हैं कि वे यहाँ रहना चाहती हैं। पण्डा लोग उनका मन्दिर बनवा दें। अब तो पंडों को बड़ी चिंता हुई कि मन्दिर बनवाने के लिए खर्च कहाँ से आये। वे आपस में बहुत चिन्तित हो गये। तभी रात में, अम्बिका भवानी ने स्वप्न दिखलाकर कहा, "गंगा के किनारे जो इनार है, उसमें से ईंटें निकलेंगी। तुम लोग मिहनत से मन्दिर बना डालो।"

दूसरे रोज जब पंडा लोग उस इनार को देखने गये तो देखा, इनार ईंटों से भर गया था। लोग मजदूर लगवाकर ईंटें निकलवाने लगे। यह कुँआ आज भी मंदिर के दक्खिन और पच्छिम के कोने पर मौजूद है। इसकी गोलाई बहुत ज्यादा है। सुना जाता है, किसी जमाने में यह कुँआ भी रात में थककर आराम करने-वाले राहगीरों को, माँगने पर लोटा-थरिया दिया करता था। आवाज देकर माँगने पर पानी कुँए के मुंह तक भर आता और माँगी हुई चीज पानी के ऊपर आकर तैरने लगती थी। कहते हैं, अब कलजुग आने से इनारे का सत्त भी चला गया। अपना काम करके लोग लोटा-थरिया फिर कुँए में डाल देते थे। मगर एक बार कोई आदमी लोटा-थरिया लेकर चलता बना था। फिर तब से यह कुँआ किसी की मदद नहीं करने लगा।

तो उस घाट का नाम अंबिका स्थान घाट इसीलिए पड़ा था कि इसी जगह अम्बिका भवानी का मंदिर है। बाबू और मामू के साथ नहाने जाने के लिए मैं भी जिदिया गया। अगर इस समय मैं घर में रहता, तो भात-तरकारी बनाने में दादी की कुछ मदद जरूर करता। मगर उस वक्त इतनी अक्ल कहाँ थी। भगोटी लेकर मैं भी बाबू और मामू के साथ चला। पलानी से थोड़ी दूर निकल जाने पर मामू और बाबू बातें करने लगे और मैं उनके साथ-साथ चलता रहा।

"लेकिन अगले साल एक बैल जरूर खरीद लोगे पाहुन।" मामू बोले बाबू से।

"जरूर खरीद लूँगा। भगवान ने दिया तो एक क्यों, अच्छी जोड़ी ही खरीद लूँगा। पंद्रह बीघे मन उपज हुई तो पन्द्रह बीघे में''''दो सौ, सवा दो सौ मन अनाज होगा।" बाबू ने कहा।

"और क्या, अपने बैल हो जायेंगे तो भाँज का बखेड़ा खतम हो जायगा।"

"ठीक कहते हो तपेसर।"

"एक बात पूछूँ पाहुन।"

"पूछो।"

"बैल खरीदना होगा तो कहाँ खरीदोगे?"

"गाँव में ही खरीद लूँगा। नहीं तो चलेंगे, फकुली, गोराईपुर, मदपुर।"

"राम राम, गाँव या अरु-जवार में यह महादेव धन कभी मत खरीदना।"

"तो तुम ही कहो, तुम जहाँ कहोगे वहीं खरीदेंगे।"

"हरिहर-छत्तर के मेले में। वहाँ किसिम-किसिम के बैल रहते हैं। पाहुन! और मेले में कुछ सस्ता भी पड़ेगा।"

"देखो, एक बैल तो गाँव में ही पटाया है।"

"गाँव में?"

"हाँ, एक अहीर का है? है तो कमजोर, मगर हरीअरी के बिना टूटा हुआ है। तुम कहोगे, मंगरुआ है ही, खूब हरीअरी खिलायेंगे, बैल तो महीने-भर में हवा की तरह चलने और हाथी की तरह झूमने लगेगा।" बाबू ने कहा।

"तब तो ठीक है। हाथ रहते मूँछ क्यों टेढ़ी होगी ? शरीर कमाने-खाने के लिए ही तो है।" मामू बोले।

"बैल को जरा तुम भी देख लोगे। इसीलिए तो पहले से नहीं ले रखा।"

"अच्छा, देख लूँगा।"

"अच्छा।"

इस तरह हमलोग घाट पर पहुँच गये। बाबू और मामू ने छाती-छाती-भर पानी में नहाया और मैं कमर-भर पानी में। ऊपर घाट पर पीपल के पेड़ के नीचे एक बुढ़िया लाई-फरुही बेंच रही थी। मामू ने अपने पैसे से मेरे लिए दो पैसे की लाई-फरुही खरीद दी। बाबू इसके पक्ष में नहीं थे। मगर मामू ने बात बदलकर पूछा, "चलो पाहुन, बैल भी देख लिया जाय।"

"हाँ चलो न।" बाबू ने कहा।

वहाँ से हमलोग केवल राउत की बथान में पहुँचे। राउत का बेटा कुट्टी काट रहा था। छप्-छप् की आवाज हो रही थी। दो मजबूत खूँटों में अलग-अलग दो भैंसें बँधी थीं। एक भैंस खड़ी थी और दूसरी बैठी। नाँद पर खूँटे से बँधा एक बैल सानी खा रहा था। एक बैल बड़ के पेड़ के सोर में बँधा, अपने जख्मी कंधे और कान पर बैठी मक्खियों को गर्दन हिला-डुलाकर भगा रहा था। राउत बथान में चुपचाप बैठा खइनी मल रहा था। सामने जाकर बाबू बोले, "सलाम केवल काका!"

"खुश रहो बबुआ!"

"काका, मैं पटना चला गया था।

"अच्छा, पटना ?"

"हाँ।"

"बैल लेने के लिए कह गये थे, सो क्या हुआ झगड़ ?" थोड़ी देर जानें क्या सोचकर राउत ने पूछा।

"उसी के लिए तो आया हूँ।" बाबू ने कहा।

"हूँ....।" करके मेरे मामू को देखते हुए राउत ने पूछा, "ये कौन हैं ?"

"ये मंगरुआ के मामू हैं।" बाबू ने ऊँची आवाज में कहा।

राउत कुछ कम सुनता था। धीरे-धीरे बोलने पर या तो होंठ के हिलने से बोली का माने लगाता था और जोर से चिल्लाकर बोलने पर सुन पाता। राउत ने कहा, "ओ, कहीं नौकरी करता है ?"

"ना !"

"घर ही पर रहता है ?" राउत ने पूछा।

"ना पटना।" बाबू ने फिर ऊँची आवाज में कहा, "वहीं घूम-फिरकर अपना काम करते हैं।"

"अच्छा है। किसी तरह रोटी-नोमक का उपाय हो जाना चाहिए....।"

कहकर राउत ने पूछा, "तो बैल के लिए क्या सोचा ?"

"लूंगा, जरा इनको भी दिखला दो।" बाबू बोले।

"देखने के लिए कौन मना है। बैल बैठा है, दिखला दो।" बैठकर मक्खी भगाते हुए बैल की ओर-इशारा कर राउत ने धीरे से कहा। अब उसके बेटे ने कुट्टी काटना छोड़ दिया। छप्-छप् की जो आवाज हो रही थी, वह बंद हो गयी। बाबू ने तब मामू से कहा, "चलो न तपेसर, यह क्या बैल बँधा है, देख लो।"

हमलोगों के साथ-साथ बैल तक राउत भी आया और राउत का बेटा भी। पास आकर बैल को देखते ही मामू बोले, "कंधे पर का घाव तो बैल को सुखाये चला जा रहा है।"

"फिनाइल का तेल दे देने से सब ठीक हो जायगा। दिघवारा में तो बिकता है, मगर न कोई दिघवारा जाता है और न तेल आ पाता है। बीमार की तरह पड़ा हुआ है, नहीं तो मोट और हेंगे में तो पछैया हवा की तरह चलता है।" राउत का बेटा बोला।

"जरा उठाकर दिखलाओ न।" मामू बोले।

"उठ, उठ, उठ रे....!" राउत ने बैल के कुल्हे पर दो एड़ जमायी। बैल उठकर खड़ा हो रहा। पास से एक मकई की खूँटी उठाकर, मामू ने उस बैल के दोनों पिछले पैरों के बीच में, जंघे के पास जरा हुरपेटा तो बैल जरा-सा उछलकर रह गया। इसके बाद बैल के रंग, बैल के दाँत और उसके सींग के बारे में कुछ बातें हुई। अन्त में, बैल मामू को भी भा गया।

"पसंद है बैल ?" राउत ने पूछा।

"क्या लोगे ?" पूछा बाबू ने।

"पहले माल पसंद है कि नहीं, सो बतलाओ। माल अगर पसन्द हो, तो एक रुपया ऊँच-नीच के लिए कोई बात नहीं।"

"माल तो पसन्द है। हाँ, केवल काका, तुम्हें याद होगा—तुमने बैल उधार देने को कहा था।" बाबू बोले।

"सो तो मुझे याद है। मगर बैल दरवाजे पर से ले जाओगे, तो कुछ-न-कुछ सगुन तो करना ही होगा।"

"सगुन तो·····।" बाबू हिचकिचाने लगे।

"हाँ, हाँ, सगुन तो करेंगे ही।" तब तक मामू बोले।

"ठीक है। तो फिर क्या दोगे झगड़ू, सो कहो न ?" राउत के बेटे ने कहा।

"मैं क्या कहूँ, माल तुम्हारा है। तुम कहो, क्या लोगे ?"

"देखो झगड़ू, तुम गाँव के आदमी हो। तुम्हारे साथ क्या मोल-मोलाई करूँ। जाओ, चालीस रुपये दे देना। तुम भी क्या कहोगे, राउत ने कोई बैल दिया था।" केवल राउत बोला।

"चालीस रुपये ?" बाबू ने कहा।

"हाँ जी, सिर्फ दो बीस तो हुए।" राउत बोला।

"चालीस-रुपये तो बहुत होते हैं। केवल काका, इतना कर्ज कहाँ से तोड़ पाऊँगा ?"

"अरे, चालीस रुपये तुम्हारे लिए क्या है झगड़ू ? अब तो महादेव बाबा की कोरपा से पन्द्रह-बीस बीघे खेत के गिरहस्त हुए। इतने रुपये का अनाज तो खलिहान में उड़-पड़ जायगा।" राउत का बेटा बोला।

मुझे बाबू के उस वक्त का चेहरा-मोहरा याद आता है। वे मन-ही-मन खुशी से भर गये थे। इस तरह करीब लगभग दस मिनट तक भाव-ताव होता रहा। अन्त में बात पैंतीस रुपये पर टूटी। राउत ने पूछा, "रुपये [illegible]"

"रब्बी काटकर जिस रोज ओसा लूँगा, उसी रोज ले लेना।"

"अच्छा, तो सगुन निकालो……।" राउत बोला।

तब मामू ने अपनी टेंट से शायद दो-तीन रुपये निकाले। राउत ने पहले तो अपना दाहिना हाथ बढ़ाया, पीछे समेटकर कहा, "झगड़ू, तुम पूरब की ओर मुँह करके खड़े हो रहो, रस्सी तुम ही पकड़ोगे न। सगुन भी तुम अपने हाथ से दे देना।" और राउत अपने बेटे को देखकर बोला, "तू भी पूरब की ओर होकर रस्सी पकड़ाओ। और हाँ, माथे पर गमछा रख ले। भगवान करे, महादेव धन जिसके खूँटे पर बँधे, उसका भला हो!"

मामू ने रुपये बाबू की हथेली पर रख दिये। तब खूँटे से कहो या बड़ के पेड़ की ओर से, बैल को खोलकर राउत का बेटा पूरब की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। पूरब की ओर घूमकर बाबू ने उसके हाथ में रुपये दे दिये और राउत के बेटे ने बैल की रस्सी बाबू के हाथ में थमा दी। अब हमलोग वहाँ से चलने लगे। अपनी झोपड़ी तक पहुँचने के लिए कई आसान रास्ते थे, बहुत जल्द पहुँचा जा सकता था। न-जानें, बाबू के दिमाग में क्या आया कि वे दूसरे रास्ते से चलने लगे। यह रास्ता देर से झोपड़ी तक पहुँचानेवाला था। बाबू ने एकाएक मामू से कहा, "एक भूल हो गयी तपेसर!"

"क्या ?" मामू ने पूछा।

"खेंखर भाई को साथ नहीं लाया। वे भी देख लेते न।"

"अच्छा, अब तो नीमन-जबून जो लेना था, सो ले लिया गया। अब बैल दरवाजे पर चल रहा है, देख ही लेंगे।"

"सो तो है।" बाबू बोले।

"मैं समझता हूँ पाहुन कि मउगार अगर होशियार हो, तो माल-जाल कभी खराब न हो।" मामू ने कहा।

"सो तो ठीक है। माल-जाल भी सेवा-बरदास खोजता है।" बाबू ने कहा।

"अच्छा, इस साल तो नहीं, अबकी साल छत्तर के मेले में कौड़ी की माला खरीद लेंगे। गर्दन में डाल देने पर बैल की सुरती बढ़ जायगी।"

"माला और घाँटी तो चइतनवमी के मेले में भी बिकती है, मगर वहाँ महँगा देते हैं सब।" बाबू बोले।

मैं बैल के पीछे था। बाबू बैल को पकड़े बीच में थे, और मामू उनसे आगे। रास्ते में गनेरी मिला, रामकीरपाल, करमू साह, परभुआ, बैल सब ने देखे। बाबू ने सबों से कहा, "केवल राउत से लिया है, पैंतीस में। क्या कहूँ, लाचारी लिया है। वह भी पन्द्रह-बीस बीघे की जोत भला एक बैल से क्या सँभलेगी ? मगर हाँ, एक बैल से यह होगा कि तब तक भाँज पर काम चलेगा।"

गाँव में न-जानें, कैसे-कैसे बाबू ने यह शोर कर रखा था कि ठाकुर उन्हें खेत देनेवाले हैं। जिससे पूछो, वही इस बात को जानता कि झगड़ू को खेत मिल रहा है। बाबू की बात सुनकर रामकीरपाल ने कहा था, "भगवान् सबके दिन ऐसे ही लौटाएँ।"

"जोत-बोकर नौकरी पर चले जाओगे न ?" परभुआ ने पूछा।

"अब भला नौकरी पर क्यों जाऊँगा, परभू ! जिस गाय को घर ही में खाने को मिले, वह भला बथान क्यों जायगी ? अब तो देह में धूल लगाना है और खटकर खाना है।"

"यह भी ठीक ही कहते हो, मेरा मतलब यह था कि हेँथफेर के लिए भी तो दो-चार पैसा रखना पड़ता है।"

"सो तुम्हें नहीं मालूम क्या, बेले-कुबेले के लिए ठाकुर कुछ उठा न रखेंगे। मुँह खोलकर कहा है।" बाबू बोले।

"ताज्जुब भी नहीं। उन्हीं के लिए तो तुम्हारे बाप मारे गये।" गनेरी ने कहा।

"अच्छी बात है। अब तो गिरहस्त हुए। पाँजा लेने आऊँगा, कोताही मत करना।" परभू बोला। वह हजाम था।

"कोताही क्यों करूँगा परभू भाई, तुमलोगों के लिए यही तो सालभर का आसरा होता है।" बाबू ने कहा था।

इसके बाद चलते-चलते हमलोग वहाँ पहुँच गये, जहाँ मेरी बिरादरी के लोग रहते थे। गाँव के किनारे, पाँच-पाँच झोपड़ियाँ। दो-तीन में ईंट की पतली दीवारें थीं। आस-पास खेत थे। उत्तर की ओर डिस्टीक बोड की सड़क। सड़क से बैलगाड़ियाँ आ-जा रही थीं और सड़क के किनारे उगी हुई हरी-हरी घासों

को कुछ गाय-भैंसें चर रहीं थीं। मेरी बिरादरीवालों की झोपड़ी एक कतार में थी। उन झोपड़ियों के सामने बैठे तीन-चार कुत्ते किसी लंबी और पुरानी हड्डी को कुतर रहे थे। हड्डी गाय या भैंस की मालूम होती थी। बैलों के गले की घंटियाँ, जो सड़क पर चल रही बैलगाड़ियों में जुते थे, टन्-टन् कर बजतीं और उनकी आवाज इन झोपड़ियों तक साफ सुनायी देती थी। डिस्टीक बोड की सड़क से उतरकर दक्खिन की ओर जाने के लिए एक छोटा-सा रास्ता था, जो गाँव में घुसता था। बिरादरी के लोगों की झोपड़ियाँ इसी रास्ते की बगल में पच्छिम की ओर थीं।

हमलोग इसी रास्ते से आ रहे थे कि मेरा एक बिरादर, जो झोपड़ी के सामने टाट बिछाकर जूते मरम्मत कर रहा था, हमलोगों को देखकर बोला, "क्या समाचार है झगड़ू भाई ?"

"सब अच्छा है।" बाबू बोले। वह बिरादर जूता मरम्मत करना छोड़कर हमारी ओर आने लगा। हम भी रुक गये।

"कलकत्ता कब जाओगे ?" बिरादर ने पूछा।

"..........।" बाबू ने इसका कोई जवाब न दिया।

"असालतन नौकरी है न, छुट्टी लेकर आये हो ?" बिरादर ने पूछा।

"असालतन हो चाहे टमपरवरी, अब जाकर क्या करना है ?" बाबू बोले। मामू चुप थे।

"क्यों, लिलुआ मिल में तो पहले टमपरवरी कहकर बहाली करता था, मगर पीछे हटाता नहीं था।" बिरादर बोला। रास्ते के आस-पास उगी हुई घासों को मेरा बैल झुककर चरने लगा, तो बाबू के हाथ से उसकी रस्सी छूट गयी। बिरादर से बातें करते हुए बाबू ने मुझसे कहा, "अरे साला, बैल को पकड़। और हाँ, एक गोजी हाथों में ले ले। अभी नया है। चीन्हते-चीन्हते चीन्हेगा।"

मैंने लपककर बैल की रस्सी पकड़ ली और अंदाज से रस्सी इतनी ढीली कर दी कि वह घास खा सके।

"चाहे जो हो झगड़ू भाई, ठीकेदारी में काम मत करना। ठीकेदार साले तो वखत पर पैसे भी नहीं देते। ऐसे वखत के सिरे हफ्ता तो मिल जाता है न। बाप-

रे-बाप, ठीकेदारी में काम करके मैंने अपनी देह गला दी, मगर पेट नहीं भरा।" बिरादर आगे बोला।

"सो तो है ही·······।" बाबू बोले और बात को बदलकर, बैल की ओर बिरादर का ध्यान खींचकर, उन्होंने कहा, "देखो न भाई, यही तो एक बैल लिया है। मगर एक से काम थोड़े चलेगा।"

"बैल तुम्हारा है।" बिरादर ने पूछा।

"हाँ, केवल राउत से लिया है—पैंतीस में।" बाबू बोले।

"अरे हाँ, मैं भूल ही गया था। ठाकुर तुम्हें खेत भी दे रहे हैं न ?"

"हाँ, तभी तो बैल ले लिया है। पंद्रह-बीस बीघे खेत अकेले थोड़े सम्हाल पाऊँगा। इसीलिए तो·······।" कहते हुए बाबू ने मामू की ओर इशारा कर कहा, "पटने से इन्हें बुला लिया है। मंगरुआ के मामू हैं। कहा, चलो कहीं भी खटकर खाना है।"

धीरे-धीरे बिरादरी के सात-आठ आदमी आकर खड़े हो गये और बैल के साथ ही सबों ने मेरे बाबू और ठाकुर की सराहना की। फिर हमलोग घर की ओर चले। रास्ते में बीड़ी और दियासलाई खरीदी थी। घर पर आकर मैंने देखा कि ठाकुर के यहाँ से काम करके माँ चली आयी है। अब तक दादी मकई का भात और बैंगन-टमाटर की तरकारी बना चुकी थी। पलानी के ऊपर भींगे कपड़े फैला दिये गये। अब बैल के लिए खूँटे की बारी आयी। मामू बैल की रस्सी पकड़े बाहर खड़े थे। दादा की रत्थी बनाने के लिए जो बाँस आया था, उसका एक टुकड़ा बचा था।

"गँड़ासी लाओ। बाँस छीलकर खूँटा बना दूँ। बैल आ गया।" झोपड़ी में आकर बाबू ने माँ से कहा।

"गँड़ासी घर में कहाँ है ?" कोदो की पुआलवाले बिछावन के सिरहाने देखकर माँ बोली।

"तो कहाँ मिलेगी ?"

"बुलकिया दीदी के यहाँ गँड़ासी है।" मा बोली। 'बुलकिया दीदी' खेखर काका की जोरू को कहा करती थी।

"जाता हूँ ले आने, फिर मुझे घास के लिए भी जाना होगा। तुम खाकर कुम्हइन के यहाँ चली जाना। एक नाँद भी तो चाहिए न ?"

"अच्छा.....।" माँ बोली।

"पलानी से बाहर होते-होते बाबू रुके। पलानी के अंदर जहाँ हमलोग सोते-बैठते थे, पुआल फैल गयी थी। बाबू ने माँ से कहा, 'ऐसे घर-घर पुआल फैलाकर रखोगी, तो कैसे काम चलेगा ? इसी में सब कुछ रखना है। अब रब्बी-भदई दो फसल काट लूँगा, तब फिर कहीं देखा जायगा। ईंटों की दो कोठरियाँ उठा लूँगा। अभी तो इसी में महादेव के लिए भूसा, कराई, खली रखनी होगी। अनाज-पानी भी इसी में रखना होगा, खोंप बनाना होगा, तो अगले साल बनेगा। और हाँ, ठीक से देख ले, जहाँ-जहाँ मूस बिल किये हों, सबको बंद कर दे। ऐसा नहीं करोगी, तो वे ढोआ-ढायी लगा देंगे। बीये का अनाज भी न बचेगा।"

बाबू को चैन नहीं था। खुरपी और गँड़ासी ले आने के बाद बाबू और मामू ने भोजन किया। मैं तो आते-ही-आते भोजन में जुट गया था। भोजन करके बाबू उधर भूसा माँगने के लिए फुरदेल साव के यहाँ चले गये और जाते वक्त माँ से कहा, "पहले जरा घास लाकर बैल के आगे रख दे।"

"अरे मंगरुआ, तू जरा बैल को पानी दिखला देना।" बाबू ने फिर मुझसे कहा।

माँ कहीं आस-पास में घास ले आने के लिए चली गयी। मामू ने बाँस के टुकड़े को छील-छालकर खूँटा बना दिया और सामने ही गाड़कर बैल को ठीक से बाँध दिया। दादी ने बैल के आस-पास की जगह बुहार दी। घण्टे-भर बाद बाबू एक ढाका भूसा लेकर लौटे। उधर से माँ भी घास लिये आयी और पुल्ला बैल के आगे पटक दिया। घास में मिट्टी तनिक भी नहीं थी। फिर बाबू के माथे से ढाका उतरवाकर माँ ने कहा, "एक ढाका भूसे से क्या होगा, हींग ?"

"निकालकर खिलाओगी, तब न पता चलेगा। फलकार कर नहीं भरा है, मैंने अपने हाथ से जाँत-जाँतकर भरा है। ओजन ही से समझो।"

जमीन पर उतार लेने के बाद बाबू और माँ ने मिलकर भूसे के ढाका को पलानी के भीतर रखा। बाबू ने माँ से कहा, "तुम नाँद के लिए चली जाओ। मैं हल, पालो और हेंगा के जोगार में जा रहा हूँ।"

बाबू चले गये। मैं मामू के साथ पुआल पर चादर ओढ़कर सो रहा। लगभग पाँच बजे मामू उठे। साथ ही मुझे भी उठाया। मैंने-देखा, पलानी के बाहर नांद गड़ चुकी थी और बैल उसमें भूसा खा रहा था। बाबू पास ही खड़े सब कुछ देख रहे थे। पास ही के कुएँ से जब मेरी माँ एक बाल्टी पानी लेकर लौटी, तो उन्होंने कहा, "एक छुतिहर हंड़िया खेखर काका के यहाँ रख आओ। धोवन जमा रहेगी। दो रोज, एक रोज पर ले आना। उसके साथ बैल सानी खूब खायगा।"

कल सम्मत् जलनेवाली थी। होलिकादहन को हमारे यहाँ लोग 'सम्मत् जलाना' कहते हैं। सम्मत् जलाने के लिए गाँव के लोगों से घर-घर घूमकर बच्चे, घर के मालिक या मालकिन से गोंइठा या लकड़ी माँगते हैं। गाँव की किसी खास जगह पर हमलोग इन जलावनों को जमा करते थे। इस तरह गोंइठा या लकड़ी माँगनेवाले लड़कों में से मैं भी एक था। गोंइठा अधिक बटोरने में जितना आनंद न आता, उससे अधिक आनंद वैसे अवसर पर एक खास प्रकार के कवित्त के गाने से आता था। बच्चों का झुंड लोगों के दरवाजे पर जाकर बिना लय-सुर के कहना शुरू करता—

ए जजमानी !
तोरा सोने के केवाड़ी,
दुगो फूस-फास द।

अक्सर यह काम हमलोग शाम से शुरू करते और ज्यादा-से-ज्यादा नौ बजे रात तक यह काम होता। इसलिए समय हो जाने के कारण माँ और बाबू की आँखें बचाकर मैं निकल भागना चाहता था। एक बार निकल भागने की भी कोशिश की, तो बाबू ने टोक दिया, "मंगरुआ, कहाँ रे ?"

"कहीं नहीं।" मैंने कहा, डरकर धीरे-से।

"बैठ, देख जरा खर-पात बटोर। धुआँ करना होगा, नहीं तो बैल को डँस काट-काटकर तबाह कर देंगे।

मेरा जाना रुक गया। मैं अभी खर-पात बटोरने की बात सोच ही रहा था कि देखा, अछैवर कहार मेरी पलानी के एकदम नजदीक आ गया है। बाबू से कहा, "अछैवर आ रहा है।"

"आने दे।" बाबू ने कहा। तब तक अछैवर भी आ ही गया। आते ही उसने बाबू से पूछा, "क्या समाचार है। झगड़ ?"

"अच्छा ही है भैया, अपना कहो।" बाबू बोले। अछैवर ने कहा, "एक चिलम का पैसा खर्च करो, तो खुशखबरी सुनाऊँ।"

"क्या ?" बाबू ने कहा, "रहा, करूँगा खर्च। तुम कहो भी तो।"

"कल दोपहर में छोटे सरकार ने बुलाया है। मोनसीजी को तुम्हारे साथ कर देंगे, अपना खेत नपवा लेना ?" अछैवर बोला ?

उसके मुँह से यह खुशखबरी सुनकर जानें बाबू कितने खुश हुए थे ? मैंने तो देखा था कि उनके पिचके और झुर्री पड़े गालों पर भी खून के रंग की तरह अजीब तरह की लाली उभर आयी थी ? उस वक्त बाबू अजीब तरह से मुसका पड़े थे ?

● ● ●

४

ठाकुर के यहाँ एक मुंशीजी रहते थे। गँवारू बोली में हमलोग उन्हें 'मोनसीजी' कहते। वे घुट्ठी-भर की धोती, भर-बाँह का कुरता और सिर पर बहुत पतले कपड़े की दुपलिया टोपी पहनते थे। ठाकुर की दालान से बाहर निकलते, तो कन्धे पर एक अंगोछा रख लेते, हाथ में छड़ी ले लेते थे। बाल उनके आधे से अधिक उजले थे। गाँव के रैयतों पर धाक थी, ठाकुर घराने का एक-एक आदमी उनकी बात मानता था—साख। लोगों का कहना था कि मोनसीजी ठाकुर की जमींदारी का हींग से लेकर हल्दी तक का हाल जानते हैं।

उनका नाम सुनते ही दादा थर-थर काँपने लगते थे। सुना था, मोनसीजी की बात ठाकुर के लड़के बच्चाबाबू क्या, ठाकुर तक नहीं उठा सकते। जमींदारी की लगान वसूल करने से लेकर मोकदमा लड़ने तक का काम उन्हें देखना पड़ता था।

• यदि हमलोगों को बड़ के पेड़ से बँधवाकर पिटवाने की इच्छा होती, तो इसके लिए उन्हें ठाकुर से पूछना नहीं पड़ता। दादा को तो कई बार मोगली चढ़वाकर चरवाहों से दुलत्ती लगवा चुके थे। एक बार तो मेरे होश की बात है। चार बीघे के एक चकले में ठाकुर ने ऊख लगवाये थे। रस से भरे लाल-लाल ऊख हवा के बहने पर खेत में हिलोरें ले रहे थे। लोटा लेकर मैदान जाने के बहाने दादा खेत में एक कोने से घुसे, तो दूसरे कोने पर धार लगा ऊख लेकर निकले। न-जानें, किस खेत में पानी पटाकर अढँवरवा बैलों को ललकारता चला आया। बात मोनसीजी के कानों तक पहुँच गयी। इस बार मोनसीजी बहुत खिसिया गये। सुना, पैखाने के रास्ते में जब सवा सेर मिरचाई कराने के लिए तैयार हो गये, तो मेरी दादी जाकर सीधे उनके पैरों पर गिर पड़ी। तब कहीं बड़ी मोसकिल से दादा बचाये गये। तो ऐसे थे मोनसीजी और इन्हीं के पास बाबू को आना था।

बिहान होने पर बाबू खेंखर काका से मिलने गये, तो पता चला, खेंखर काका ठाकुर के किसी गोतिये के घर कुट्टी काटने गये हैं। माँ ठाकुर के घर गोबर पाथने चली गयी थी। मैं दादी की बगल में बैठा था। बाबू, मामू के साथ बैठे थे। चूल्हा सुलग चुका था। दादी ने उस पर खपरी चढ़ा दी थी। बाबू ने दादी से कहा, "दोपहर में मोनसीजी के साथ खेत नपवाने जाना है।"

"अकेले मत जाना बेटा!" दादी बोली।

"खेंखर भाई तो हैं नहीं। आने पर सलाह कर लूँगा।"

"यहाँ से तपेसर बबुआ को ले लेना।" दादी बोली।

"देखो माँ, कोई नहीं जानता, किसकी तकदीर कब चमकेगी। मोनसीजी हमलोगों से सीधी तरह बात नहीं करते थे। आज मेरे साथ खेत नपवाने चलेंगे.........। मैं तो खेत में ऐसे ही हल न लगाऊँगा।" बाबू ने कहा।

"भला, नया खेत है, ऐसे हल क्यों लगायेगा ? गोंजर पाठक को पाँच पैसे देकर सगुन निकलवा लेना ।" दादी ने सलाह दी ।

गोंजर पाठक कटहवा वामन थे । बाबूलोगों के यहाँ मरनी-हरनी में जब बभन-जेवनार होता, तो जब तक गोंजर पाठक दो-चार * कौर नहीं खा लेते, बाकी ब्राह्मण भी पकवान पर हाथ नहीं लगाते थे । कहते हैं, मरनी-हरनी का समूचा खतरा वे इसी तरह लील जाते थे। पतरा-पंचांग तो उनके पास मोसकिल से होता, मगर हमारे समाज के लोगों को ब्याह का लगन, दिसासूल और भी कई तरह के सगुन यों ही बतला देते। ब्याह का समय बीत जाने पर, जब जवार-भर के पुरोहित, ब्याह की कोई तिथि बतलाने से मजबूरी जाहिर करते, उस समय भी उँगलियों पर कुछ गिनकर, गोंजर पाठक हमलोगों की लगन निश्चित कर देते । कहते, "जजमान, यह लगन पुरोहित लोगों को नहीं मालूम । इस लगन को तो मैंने बस एक तुम्हारे लिए छिपाकर रखा था ।" सो बाबू बिना भूँजा खाये गोंजर पाठक के यहाँ चले गये ।

गोंजर पाठक के यहाँ से लौटकर आने में बाबू को बहुत देर हुई । तब तक बीच में खेंखर काका आ गये । बैल को तो कल ही देख गये थे । आकर दादी से पूछा, "और झगड़ आ कहाँ है काकी ?"

"गोंजर पाठक के यहाँ गया है, सगुन विचरवाने ।"

"काहे के लिए, सगुन ?"

"आज खेत नपायेगा । मोनसीजी ने बुलाया है । खेत में सगुन देखकर ही हल लगाना अच्छा होगा न ।" दादी बोली ।

"सो तो ठीक ही है । अच्छा, जब नपवाने जाने लगेगा तो कहना, मुझे भी बुला लेगा ।" कहकर खेंखर काका चले गये । उनके चले जाने के आध घण्टे बाद बाबू आये । इस बीच में मामू के साथ भर-हिक भूँजा खा चुका था ।

"सगुन विचरवा लिया ।" बाबू ने आकर दादी से कहा ।

"कब का निकला ?"पूछा दादी ने ।

---

*ग्रास

"दूज को। पाठकजी ने कहा है कि होते बिहान हल चढ़ा देना होगा।" बाबू ने बतलाया।

अब तक दिन बहुत चढ़ चुका था। दादी ने बाबू से भूँजा खा लेने के लिए कहा। मगर बाबू ने दादी से पूछा, "भात बना चुकी हो ?" दादी बोली, "हाँ" सचमुच भात बन चुका था।

"तो अब भात ही दे दे। बीस बार मुँह जूठा करना अच्छा नहीं लगता है।"

"अच्छा, भात ही खा ले।" दादी बोली।

बाबू फिर बैल के पास आकर खड़े हो रहे। जब तक अलमुनियम के थरिया में दादी भात निकालती रहीं, तब तक बाबू शायद जी भरकर बैल को देखते रहे। उस समय बैल के पुट्ठे पर हाथ रखकर उन्होंने चुचकारा, तो बैल उछल पड़ा था। उन्होंने तपेसर मामू को बैल का उछलना दिखलाकर कहा, "देखो तपेसर, मैं ठीक कहता हूँ न, हरीअरी के बिना बैल टूटा हुआ है। देखा न, कितना पनीगर है! पीठ पर हाथ रखते ही कुलाँच भरना चाहता है।"

"बैल तो पनीगर है ही....।" बैल के पास आकर मामू बोले।

"तुम भी खाओगे बबुआ तपेसर ?" दादी ने मामू से पूछा।

"ना, अभी मैं नहीं खाऊँगा।"

"नहीं, नहीं। खा लो तपेसर! फिर खेत नपवाने चलना होगा। अब कहाँ समय है ?" तुम और मंगरू दोनों खा लो। खेंखर काका के आते ही चल-चलना होगा।"

बाबू की बात मामू को मान लेनी पड़ी। दादी ने एक *छीपा में और भात निकाला। बाबू अकेले खाने लगे। मैं मामू के साथ खाने बैठा। बाबू के आगे लोटे में पानी रखकर दादी बोली, "खेंखर तो तुम्हें खोजकर चला गया, अभी तो घर में ही होगा। जाने के समय उसे बुला लोगे, कह गया है।"

"चलो, यह भी झंझट खतम !" बाबू बोले।

हमलोगों ने जब तक भोजन किया, तब तक माँ भी चली आयी। चूल्हे के पास उसे बुलाकर, दादी ने धीरे से माँ को बतलाया, "खाना खाकर तीनों × सवांग

*थाल × स्वजन।

खेत नपवाने जा रहे हैं। बाहर + ठिलिया में पानी भरकर उसमें आम का पल्लो डाल दे। सुभ चीज पर नजर पड़ने से सुभ काम भी होता है।"

गोबर पाथकर आयी हुई थकी-मांदी माँ को भी खुशी हुई। खा-पीकर, मुँह हाथ पोंछ लेने के बाद जब माथे पर अंगोछा रखकर हम तीनों पलानी से बाहर निकले तो देखा, एक ठिलिये में, जिसमें पीने का पानी रहता था, पानी भरकर उसमें आम का पल्लो डाला हुआ है। पलानी से निकलकर उस ठिलिया को देखते हुए हमलोग खेंखर काका के घर की ओर चले। मैंने फिर अपनी नजर अपने बैल की ओर डाली तो देखा, दादी और माँ हमलोगों को आगे बढ़ते देख रही थी।

खेंखर काका की हालत हमलोगों से कुछ अच्छी थी। फूस का छप्पर था, ईंट की पतली-पतली दीवारें। लेकिन, मेरी ही पलानी की तरह उनके घर में भी मुरी नवाकर घुसना पड़ता था। उनके दो छोटे भाई कानपुर में रहते थे। एक चमड़े के कारखाने में नौकरी करता था और दूसरा वहीं के स्टेशन पर रेलवे कुली का काम करता था। उनके घर के सामने पहुँचते ही बाबू ने पुकारा, "खेंखर भाई, खेंखर भाई हो?"

"कौन,झगड़ू ?" भीतर से खेंखर काका बोले।

"हाँ, चलो न।"

"खड़े रहो, आ रहा हूँ। जरा खइनी ले लूँ।" और बाहर निकलकर खेंखर काका ने पूछा, "ठाकुर के यहाँ चल रहे हो न ?"

"हाँ, मोनसीजी ने बुलाया है।"

"खेत वही देंगे ?"

"हाँ अछैबर ने तो यही कहा था। मोनसीजी खेत नपवा देंगे।"

"चलो, चलो।"

खेंखर काका हमलोगों के साथ चले। रास्ते में बाबू ने उनसे गोंजर पाठक के घर जाकर, सगुन निकलवाने की बात कह दी। खेंखर काका बोले, "अच्छा

+छोटा घड़ा।

किया। दूज का भी कितना दिन है? कल नहीं, परसों। कल फगुआ है, परसों दूज।"

"हाँ।"

"कल फगुआ है। ज्यादा मत पी लोगे; क्योंकि परसों सवेरे उठकर सगुन भी तो करोगे।" कहते हुए खेंखर काका तनिक रुक गये।

"ना खेंखर भाई, मैं क्या ज्यादा पीता हूँ? दो लवनी में तो भर-घर वहा-वही हो जाता है। सो उसमें क्या लगा है, दो छाँक कम ही पीऊँगा।"

बाबू के इस विचार की सराहना करते हुए खेंखर काका बढ़े, तो उनके पीछे-पीछे हमलोग भी चले। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर रास्ते में छकौड़ी दादा मिल गये। वे मेरे ही बिरादर थे और दादा से भाई-भाई का नाता था। इसलिए दादी ने मुझे सिखला दिया था कि मुझे उन्हें 'दादा' कहना चाहिए। हम सबों को देखकर वे भी रुक गये। बाबू और खेंखर काका ने 'पवलगी' की। दादा के भोज में छकौड़ी दादा भी माढ़ा-चिउरा खा गये थे। उन्होंने बाबू से कहा, "क्या कहूँ झगड़ू, छँउड़ी जवान हो गयी। ब्याह कर देना चाहता हूँ।"

"ठीक है काका! जै गनेश का नाम लेकर कर ही दो। दस-इगारह बरस की बेटी बिना ब्याह के?-अब तक तो उसका गौना हुआ रहता।" बाबू ने कहा।

"कुटुंब तो बड़ा मजे का मिल गया है। मगर अब इसी घात में लगा हूँ कि रामजी की कीरपा से घर में मन-आध-मन अनाज जमा हो जाय तो खिला-पिला-कर निबाह दूँ। जानते हो, वर क्या करता है?" पूछकर छकौड़ी दादा ने योंही खुद उत्तर दिया, "सुना है, पटने में किसी अंगरेज साहेब के यहाँ रहता है। बड़ा नोक काम मिल गया है। हावागाड़ी धोता-पोंछता है, लड़का खेलाता है। साहेब की मेम उसको बहुत मानती है। जब तक वह अपने हाथ से जूता नहीं पहनाता, कोठी से निकलकर हावागाड़ी में नही बैठती है। पूरा ओहदावाला काम है बाबू!"

"अच्छा, दिल लगाकर वहाँ रह जायगा तो, जिन्दगी बन जायगी।" खेंखर काका ने कहा।

"और क्या है, जानते हो?"

"क्या ?" बाबू ने पूछा। छकौड़ी दादा बोले, "दरजा चार तक पढ़ा हुआ भी है। गये थे नाव से देखने। चिन्हाता नहीं है कि चमार-दुसाध का बेटा है। हामा-सुमा ऐसा लगता ही नहीं है। एकदम बाबू-भइया की नाक काटता है— आँख-कान का नकासा भी वैसा ही है।"

"धन भाग फुलपतिया के !" बोले खेंखर काका।

"मन-आध-मन अनाज कोई बड़ी चीज नहीं है छकौड़ी काका ! आज ही तो खेत नपवाने जा रहा हूँ। अब कल खेत पर हल चढ़ेगा। रब्बी पछताह होगी। असाढ़ तक ब्याह का टण्ट-घण्ट लगाओ तो मन-दो-मन गेहूँ-बूँट के लिए मैं हरदम तैयार रहूँगा।"

"भगवान तुम्हें बरक्कत दे ! जैसे इतने दिन सही, वैसे दो-तीन महीना और। तुम्हें बड़ा पुन होगा झगड़ू ! बेटी पञ्चपरमेसर की होती है। इतनी मदद कर दे बेटा, तो फुलपतिया का रोआँ-रोआँ तेरा नाम लेगा। मगर बेटा, तुम तो भोज पर कोंहड़ा बो रहे हो। अब रब्बी छिटोगे, तो भला उपजेगा कब ?

"यह भी ठीक कहते हो काका ! पानी पटाते-पटाते मर जाऊँगा। अच्छा, कल सगुन करके विचार कर लेने दो। नहीं होगा, तो समूचे चकले में फुलगोबी ही रोप दूँगा। छपरा जाकर बेंच आने से एक मूठ नकद पैसे मिल जायेंगे। तुम एक काम करो, बइसाख में ही ब्याह कर दो। मैं केवल राउत से मन-भर गेहूँ लेकर तुम्हें दे दूँगा। फसल की ही उम्मीद पर उसने बैल तक उधार दिया है, भला मन-आध-मन गेहूँ न देगा ?" बाबू ने कहा।

बाबू की बातों पर छकौड़ी दादा मन-ही-मन गाजते चले गये। बाबू खेत नपवाने के लिए अकुला रहे थे। ठाकुर के किले-जैसे मकान की ओर बढ़ते हुए उन्होंने खेंखर काका से कहा, "जल्द चलो, दिन उतरेगा तो मोनसीजी नाराज होंगे।"

बाबू आगे बढ़कर तेजी से चलने लगे। थोड़ी देर बाद ठाकुर की दालान पर पहुँचे। पुरवारी दालान पर, जिसकी एक कोठरी में मोनसीजी सोते और दूसरी कोठरी में उनकी कचहरी थी। जाकर देखा, काठ की छोटी-सी चउकी पर, दो बड़ी-बड़ी बाल्टी में पानी भरा था। एक लोटा भी रखा हुआ था। एक बड़ी

चउकी पर मोनसीजी अकड़कर बैठे थे। अछैवर उनकी नस-नस में सरसों का तेल मालिश कर रहा था। उनकी नजर जो हमलोगों पर पड़ी, तो लगभग तीस डेग पीछे से ही हमलोगों ने खूब झुक-झुककर सलाम किया। मोनसीजी ने सलामी के जवाब में खाली 'हूँ-हूँ' किया। कुएँ के आस-पास घास जमी थी। हमलोग उसी पर बैठ गये। मोनसीजी के पुट्ठे पर तेल डालकर जब अछैवर जोरों से रगड़ता, तो मोनसीजी 'हा-हा' करके कूँखते थे।

"कहाँ चला है रे, झगड़ुआ ?" मोनसीजी ने एकाएक पूछा। पहले तो बाबू सहम गये, पीछे बोले, "सरकार ने खेत नापकर देने.......।"

"हाँ-हाँ, बैठ। नहाकर भोजनकर लेने दे, च ूँगा।"

हमलोग चुप रहे। मोनसीजी ने कई बाल्टी पानी से असनान किया। पानी भरते-भरते बेचारे अछैवर की कमर दुख गयी। इसके बाद उनकी धोती फींचकर पसारने के बाद वह खुद भोजन करने चला गया और मोनसीजी अपनी कोठरी में समा गये।

अभी अछैवर को यहाँ से गये मोसकिल से दस मिनट हुए होंगे कि हवेली की कहारिन थाल में भोजन का सामान लिये आयी। थाल को उसने आँचल से ढँक लिया था। वह आकर सीधे मोनसीजी की कोठरी में समा गयी और फिर जल्द ही वापस निकली। उसने मेरी ओर देखकर पूछा, "यहाँ क्या कर रहा है रे मंगरुआ ?"

"...............।" मेरे मुँह से कुछ न निकला।

"मोनसीजी ने बुलाया है। बैठने के लिए कहा है।" बाबू बोले।

"क्या काम है ?"

"खेत मिलेगा, सो........।"

"अच्छा, अच्छा.......।" बाबू की बात पूरी तरह न सुनकर वह बोली और चमककर चली गयी हवेली की ओर। वह बोलने में बहुत तेज थी। घर में उसका रोब-दाब था। यहाँ तक कि मोनसीजी से वह नहीं डरती। पैर की बिछिया से लेकर माथा के मंगटीके तक को पहनकर हवेली आती थी। माँग में बहुत टाँस, गाढ़ा सेनुर लगाती। दाँत में मिस्सी और आँखों में काजर। हर दो

रोज, तीन रोज पर गोर में महावर लगवाती थी। हमलोग उसका अदब-लेहाज करते थे। उसके चले जाने के बाद बाबू किसी चिन्ता में पड़ गये। उन्होंने खेंखर काका से कहा, ''एँ खेंखर भाई, अछैवर को मोनसीजी ने कहा है कि तुम खाना खाकर आ जाओ। मेरे साथ हराजी चलना होगा। सो, इसका क्या माने ?''

''नहीं मालूम।'' खेंखर काका बोले।

''दूसरे गाँव में खेत देंगे क्या ?'' मामू ने पूछा।

वही तो मैं भी सोच रहा हूँ।'' बाबू ने कहा, ''बड़ा मुश्किल हो जायगा। पन्द्रह-बीस बीघे खेत और वह भी दूसरे गाँव में। अब खेत नपवा लेना मरदई नहीं, खेत सँभाल लेना मरदई है।''

''घबड़ा क्यों गये ? हो सकता है, तुम्हारा खेत यहीं कहीं कोरार में नपवा कर खुद किसी और काम से हराजी जायँ। तुम्हारा काम ही कितनी देर का होगा ? नपवाकर अछैवरा से डँरेर दिलवा देंगे।'' खेंखर काका ने समझाया।

''हाँ, यह भी हो सकता है।'' मामू बोले।

अभी हमलोगों के बीच इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि वही कहारिन मोनसीजी के लिए लोटे में पानी लेकर आ धमकी।

''तब से यहाँ क्या कर रहा है रे झगड़ुआ ? उसने आते ही पूछा।

''क्या काम है, कहो न। हमलोगों को तो मोनसीजी ने बैठने का हुकुम दिया है।''

''मोनसीजी ने हुकुम दिया है तो क्या, वे खायेंगे-पीयेंगे नहीं ? तुमलोग इस तरह खाने के वक्त छाती पर क्यों सवार हो ? जाओ, पच्छिम बगल की दालान की सहन में, दो सिल्ली रखी हुई हैं। टँगारी निकलवाकर रख आयी हूँ। दोनों-तीनों मिलकर फाड़ दो।'' वह अपना एक हाथ चमकाती हुई गरजकर बोली। मिस्सी से रंगे उसके काले-काले- दाँत अजीब तरह से चमक रहे थे। हमलोग चुपचाप उठे। उसके हुकुम को टाल देना हमलोगों के बूते के बाहर की बात थी। बड़े ठाकुर के कमरे में, हुक्का चढ़ाकर देने के लिए घुसती, तो घंटे-भर के बाद निकलती थी। मोनसीजी को तो यह कोई चीज ही नहीं समझती। यहाँ तक कि

बड़े ठाकुर के लड़के, बच्चाबाबू, जो ठाकुर-घराने में बहुत गंभीर और समझदार समझे जाते थे, उससे हँस-हँसकर बातें करते थे।

हमलोगों को लकड़ी की सिल्ली फाड़ने का हुकुम देकर, जब चमेलिया मोनसीजी की कोठरी की ओर चली, तो घास पर से सबसे पहले बाबू उठे, तब मामू, इसके बाद खेंखर काका—फिर मैं। मेरे उठने-उठने तक चमेलिया मोनसीजी की कोठरी में समा गयी और उठकर मैं पच्छिम तरफ की दालान की ओर बढ़ा तो झटके में देखा, कि चमेलिया ने कोठरी में घुसकर भीतर से दरवाजा बंद कर दिया। मुझे याद है कि उस वक्त तक उसकी जवानी खतम हो चुकी थी। सिर्फ वह बेतरह मोटाई हुई थी और सिंगार-पटार हमेशा किये रहती थी। 'दाई' कहकर पुकारने पर कनमनातीं थी। उसके लड़के का नाम रामभजन था। एक बार मैंने उसे 'दाई' कहकर पुकारा था, तो माँ ने मेरे कान के पास एक चपत जड़ दी थी। माँ ने कहा, "या तो दादी कह, या रामभजन की माई।"

मैं दालान में जमीन पर बैठ गया। मामू खड़े रहे। बाबू और खेंखर काका लकड़ी चीरने लगे। भात खाकर अछैंबर न जाने, किधर चला गया। दो ढाई घंटे में भी दोनों सिल्लियाँ न चीरी जा सकीं। बाबू और खेंखर काका पसीने-पसीने हो गये। बड़ी देर के बाद अछैंबर के साथ मोनसीजी वहाँ आये। मोनसीजी अपना पोसाक पहने हुए थे। अछैंबर के एक कंधे पर भाला था और दूसरे कंधे पर अंगोछा। बायें हाथ से वह भाले को थामे हुए था और उसके दाहिने हाथ में कुदाल थी।

"बस, बस। हो गया, चलो।" आते ही मोनसीजी बोले।

"लो झगड़ू, तुम इसे पकड़ो।" बाबू के हाथ में कुदाल देता हुआ अछैंबर बोला। आगे-आगे मोनसीजी चले। उनके पीछे भाला लिये अछैंबर और उसके पीछे हम सभी।

जब हमलोग रेलवे-लाइन के पास पहुँचे तब देखा, पूरब की ओर से एक मालगाड़ी चली आ रही थी। मोनसीजी सबसे आगे थे, इसलिए वे मालगाड़ी के आते-आते लाइन को पार कर गये। हमलोग भी लाइन को पार करना ही चाहते थे कि मालगाड़ी ने बड़े जोरों की सीटी दी। रेल की पटरियों से खट्-

खट् की आवाज चारों ओर गूँजने लगी—झक्-झक्-झक्-झक्....। तब तो, बड़ा डर लगने लगा। हमलोग का साहस नहीं हुआ कि लाइन पार कर जाए। हमलोग इसी पार रुक गये और मालगाड़ी गरजती हुई सामने से गुजरने लगी। दो मालगाड़ियाँ जहाँ जुटती हैं, वहाँ देखा होगा, काफी खाली जगह रहती है। ऐसे ही जब एक के बाद दूसरी मालगाड़ी आने को होती, तो हमलोग देख लेते कि मोनसीजी उस पार चुपचाप खड़े हैं।

हमलोग गाँव लाँघते गये। आखिर हुराजी गाँव के उस पार, जहाँ एक ओर सिर्फ बगीचे थे और दूसरी ओर सिर्फ खेत, हमलोग आये। बाबू ने धीरे-से खेंखर काका को बतलाया, "देखना, यहीं पर कहीं एल चकला दे देंगे....।" और उन्होंने मामू से कहा, "देखो तो तपेसर, इनार भी तो ज्यादा दूर नहीं है।"

इसी जगह पर थोड़ी देर ठिठककर मोनसीजी फिर आगे बढ़े। अब कुँआ बहुत दूर छूट गया। बगीचों से उत्तर की ओर, दुधिया घास कंटइला, रेंगनी और जटही के कांटों से भरे कुछ खेत थे। उन्हीं खेतों में से एक खेत के किनारे जो करीब सात-आठ कट्ठे का था, मोनसीजी आकर रुके। हमलोग उनका मुँह देखने लगे। उन्होंने कुरते की जेब से फीता निकाला और अछैवर के हाथ में देकर कहा, "एक ओर तू पकड़ और एक ओर खेंखर पकड़ लेगा। नंबर मैं देख लूँगा। एक ओर से तीन कट्ठा नापकर, डँरेर लगा दे। देख, फुर्ती कर।"

इतना सुनते ही बाबू के मुँह का पानी एकदम उतर गया। वे तो खेत के किनारे खड़े-खड़े जैसे *सील हो गये। खेंखर काका का चेहरा भी काला पड़ गया। मोनसीजी के हाथ से फीता पकड़कर अछैवर ने कहा, "लो, पकड़ो खेंखर।"

"लाओ।" कहकर खेंखर काका ने फीते का छोर पकड़ लिया।

बाबू और मामू के साथ मैं भी चुपचाप खड़ा रहा। अछैवर के साथ बहुत पैर बचा-बचाकर खेंखर काका खेत में घुसे। मुझे याद नहीं, लेकिन किसी भी हिसाब से तीन कट्ठा खेत नापकर अछैवर ने बड़ी होशियारी से डँरेर डाल दिया। इसके बाद मोनसीजी ने फीते को लपेटकर जेब में रखा और बाबू से कहा, "मजे

*पत्थर।

से जोत, बो, और पड़ा रह। सिर्फ मालगुजारी देनी पड़ेगी। इतना खेत तुम्हारा हो गया।"

"जी, सरकार!" बाबू के मुंह से निकला।

तब मोनसीजी लौटने के लिए आगे बढ़े। हराजी गाँव में घुसते-घुसते सूरज डूब गया। हराजी गाँव के किनारे उत्तर की ओर, तीन-चार घर कायस्थ बाबू-लोगों का मकान था। मोनसीजी लौटने लगे, तो इन लोगों के दरवाजे के सामने से गुजरे। यहाँ के कोई और मोनसीजी की जान-पहचान के निकल गये। उन्होंने मोनसीजी को अपने दरवाजे पर रोक लिया। कहा, "अब नाश्ता करके जाइएगा, ठहरिए।

"तुमलोग जाओ। अब क्या खड़े हो, जाओ झगड़ू, मौज करो।" मोनसीजी ने हम सबों की ओर देखकर कहा। अछैवर ठहर गया।

हमलोग मोनसीजी को सलाम कर अपने गाँव की ओर चले। न जानें, कौन ऐसी बात हो गयी, बाबू से चला नहीं जाता था। वे जमीन को नाप-नापकर डेग डाल रहे थे। खेंखर काका और मामू भी चुप। फिर रेलवे-लाइन के पास आने पर पहले बाबू ने खाँसा, पीछे खेंखर काका को तनिक धीमी आवाज में नाम लेकर कहा, "क्याजी खेंखर भाई! इस तीन कट्ठा खेत से क्या होगा। इतने से कितने आदमी का पेट भरेगा? ऊपर से मालगुजारी देने की बात अलग सुना रहे हैं····।"

"मेरी समझ में तो और कुछ नहीं आता। खेत तो बिल्कुल ऊसर है, वह भी घर से कोस-भर दूर। न पईन, न नाला और न इनार-पोखरी। खेत में ललका साग भी छींट दो, तो पानी कहाँ से पहुँचाओगे।" खेंखर काका ने कहा।

धप्-धप् अँजोरिया उग आयी थी। हमलोग अपना-सा मुँह लिये पलानी में लौटे। खेंखर काका अपने यहाँ चले गये। पलानी में घुसते ही मामू ने बाबू से कहा, "मैं अब घर चलूँगा पाहुन! गाँव पर फगुआ बिता लूँ। पटना जाने लगूँगा, तो इधर से होता जाऊँगा।"

"बाबू बोले, जाओगे तपेसर? घर जाते कौन रोकेगा, मगर आज-भर तो ठहर जाओ।"

"ना पाहुन ! दो-तीन कोस का रास्ता है । आठ-नौ बजे तक पहुँच जाऊँगा ।
मामू ने कहा ।

तब बाबू, दादी और माँ के बहुत कहने-सुनने पर भी अपना कम्बल, चादर और मिरजई लेकर मामू चले गये। मामू के जाते समय मैंने ढिबरी की रोशनी में देखा, बाबू की आँखें डबडबा आयी थीं । तीन कट्ठा खेत मिलने की बात सुनकर मेरे घर में मातम छा गया । लगभग दस बजे रात को सम्मत् जला । मगर न तो बाबू कहीं कुछ देखने गये और न मुझे जाने दिया । मकई का भात और मट्ठा खाकर हमलोग सो रहे । बाबू अपने साथ एक पुरानी दरी ले आये थे । उसे उन्होंने पलानी के बाहर साफ की हुई जगह पर बिछाया और उसी पर अपने साथ उन्होंने मुझे सुलाया । माँ और दादी भीतर पुआल पर सो गयीं । आधी रात में, जब मुझे नींद पड़ गयी थी, बाबू ने मुझे हिलाकर धीरे से जगाया, "मँगरू, मँगरुआ ?"

मैं जगकर बोला, "ऊँ···ऽ—ऽ।"

"उठ, एक गोजी ले ले और चल मेरे साथ । देखना, बैल सींग न मारे ।"

"अच्छा ।" मैंने कहा । बाबू बोले, 'धीरे-धीरे बोल, दादी न जगे ।"

"अच्छा ।" मैंने फिर कहा और पलानी के पीछे से एक गोजी खोजकर ले आया, तो देखा, बाबू ने बैल को नाँद पर से खोल लिया था । मेरे आते ही उन्होंने धीरे-से कहा, "दरी को *गते-गते भीतर घुसका दे।" मैंने चोर की तरह दरी समेटी और उसे पलानी के दरवाजे पर रखकर हाथ से भीतर की ओर ठेल दिया । तब बाबू बैल को लेकर आगे बढ़े और मुझसे कहा, "तू गुमसुम गोजी लेकर पीछे-पीछे चल ।"

न-जानें, क्या बात थी कि बैल को लेकर बाबू गाँव के बाहर के रास्ते से आगे बढ़े। कुछ समझ में नहीं आने पर मैंने पूछा, "इधर कहाँ बाबू ?" तो बोले, "चुप रह सार । मुँह बन्द करके चल, नहीं तो गलफड़ ओदार लूँगा ।"

पन्द्रह मिनट का रास्ता घंटे-भर में तय कर, जानते हो बाबू बैल को कहाँ ले आये । केवल राउत की बथान में । मेरी समझ में अब भी कुछ नहीं आता

*धीरे-धीरे ।

था। बथान से करीब बीस डेग दूर, एक पेड़ की आड़ में खड़े होकर, न-जानें बाबू क्या सोचते रहे, क्या तजवीज करते रहे। बथान बिल्कुल सूनी थी। सिर्फ बैल और भैंसों की पूँछ से मच्छड़ भगाने और उनके उठने-बैठने की आवाज के सिवा और कोई तीसरी आवाज नहीं थी। ताड़ के डमखों की मचान भी खाली थी। राउत का बेटा उठकर शायद घर में चला गया था। बैल को लाकर, बाबू ने मचान के एक खंभे से, कसकर बांध दिया। तब बैल को बाँधते वक्त भी बाबू चारों ओर देख रहे थे। बैल को अच्छी तरह बाँधकर उन्होंने मुझसे कहा, "गोर बांधकर मत चल। चल, जल्दी चल।" फिर गाँव के बाहर के ही रास्ते से बाबू अपने घर तक आये। गाँव में ही, किसी तरफ से लोगों के फगुआ गाने का शोर सुनायी दे रहा था।



५

फगुआ के दिन की बात है।

"मंगरुआ, अरे मंगरुआ ?" कहकर माँ ने मुझे जगाया। मैं अब तक सोया था। धूप उग आयी थी। माँ के पुकारने और देह के हिलाने-डुलाने पर मैं आँख मलता हुआ उठा। पास खड़ी दादी बिल्कुल अचरज से मुझे देख रही थी।

"आ, बाबू रे ?" माँ ने पूछा।

"बाबू ?" मैंने भी सवाल किया। माँ बोली, "हाँ रे, बाबू किधर चले गये ? गंगाजी गये हैं क्या ?"

"बैल को भी ले गया है, धोता-माँजता होगा .... ।" दादी ने कहा, मगर सर्द आवाज में।

"बतला न रे, बाबू किधर गये ?" माँ ने फिर पूछा।

उसके इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए कठिन था। इतना तो मुझे याद है कि केवल राउत की बथान में बैल बांधकर, बाबू मुझे लिये हुए अपनी पलानी तक आये। माँ और दादी जगी नहीं थीं। बाबू ने चोर की तरह, बहुत धीमी आवाज में मुझसे कहा, "दरी खींच ले। सोना नहीं। देखना, दादी चाहे माँ जगे नहीं।"

"अच्छा।" मैंने कहा था और कुत्ते की तरह बनकर झुककर मैंने धीरे-से दरी खींच ली। इसके बाद बाबू ने दरी बिछा दी और उस पर हम दोनों बाप-पूत सो रहे। बैल कहाँ गया, यह तो मैं बतला सकता था। मगर बाबू कहाँ गये, यह मैं कहाँ जानता था? माँ के इस सवाल से मैं भी घबड़ाया। मैंने सीधी तरह कहा, "मैं क्या जानूँ ?"

"तुमसे कुछ कहा नहीं ?"

"ना।"

"और बैल रे ?" दादी ने पूछा।

"राउत की बथान में बाबू बांध आये।" मैंने कहा। मेरे इस जवाब से, जब दादी और माँ को दिलजमई नहीं हुई, तो मैंने अपने दरवाजे से बैल के केवल राउत की बथान तक, पहुँच जाने का हाल अच्छी तरह बतला दिया। इस पर तो दादी *भोंकर-भोंकर कर रोने लगी और माँ हाथ में एक मैले कपड़े का टुकड़ा लेकर ठाकुर के यहाँ गोबर पाथने चली गयी।

दरी पर से सोये-सोये बाबू कहाँ चले गये, यह सोचकर मुझे भी दुःख होता। अपनी बिरादरी के लोगों के घर से लेकर मैं मुरदघटिया तक बाबू को खोज आया, मगर कहीं पता न चला। मुरदघटिया पर इसलिए गया कि हो सकता है कि लकड़ी चुनने चले गये हों। फगुआ के दूसरे दिन, माँ ने खेलर काका के भतीजे के साथ मुझे मामू के यहाँ भेजा। मामू मिले, मगर बाबू न मिले। बाबू

*फूट-फूटकर।

तो जैसे गाँव-जवार से लापता हो गये थे। लौटते वक्त मेरे साथ मामू भी आये। उनका घर बहुत दूर नहीं था। आमी से दो, सवा दो कोस जमीन—फकुली। उनको भी पटना लौटना था। मेरे घर आकर, माँ और दादी को बहुत कुछ समझा-बुझाकर वे भी नाव से दरियाव पारकर पटना चले गये। माँ और दादी की आँखों का लोर नहीं सूखता था। बाबू के गायब होने की खबर मोनसीजी और बच्चाबाबू को भी मिल गयी। फगुआ के दिन भी, दिन के लगभग चार बजे, गाँव के लोग पीली धोती और कुरते में अपने को सजा रहे थे। माँ ठाकुर के घर से गोबर पाथकर लौटी। वह बहुत थकी हुई और परेशान दीख रही थी। पलानी में आकर वह हताश होकर बैठ रही। उसके ठाकुर के यहाँ जाने के थोड़ी देर बाद ही केवल राउत मेरे यहाँ आया था। पलानी के सामने आते ही उसने आवाज दी, "झगड़ू, झगड़ू हो ?"

"क्या है ?" भीतर से आँखें पोंछती हुई दादी निकली।

"झगड़ू नहीं है।" राउत ने पूछा।

"वह तो बिछावन पर से ही गायब है। न-जानें, कहाँ चला गया।" दादी बोली।

"अजब बउराह आदमी है झगड़ुआ। भला बतलाओ, होते *पराते बैल क्यों बयान में बाँध आया है ? मेरे यहाँ से लाया था, खेत जोतने के लिए। अरे, मैं क्या अभी रुपये माँग रहा था ? मैंने भी तो उसी की बात मान ली थी.........।" राउत बोला।

"आग लगाओ ऐसे खेत में। न-जाने, फिकिर के मारे मेरा बेटा कहाँ भाग गया!" दादी ने कहा।

"ऐसे क्यों बोलती हो झगड़ की माँ! खेत क्या दब मिल गया है, कोरार में नहीं मिला ?"

"कोरार में ही, अगर दु-अढ़ाई कट्ठा खेत मिले, तो उससे क्या होने जाने-वाला है ? हराजी गाँव के उत्तर मोनसीजी ने कल तीन कट्ठा खेत नपवा दिया।

*सुबह।

सुना, ×नगीच में न इनार है, न पोखरा। उस पर भी खेत में भर-ठेहुन काँट-कुस है।" दादी ने बतलाया।

"खाली तीन कट्ठा ?

"हाँ, मैं क्या झूठ बोलूँगी ?"

"राम, राम ! ऐसा नहीं चाहिए था। जतन भाई +सेंतीहें मारे गये !

"मैं तो हाय मारकर रह जाऊँगी। मगर भगवान फँसिला करेंगे !" कहकर दादी फिर रोने लगी।

"मत रोओ भउजी ! ये लोग बड़े आदमी हैं। उन लोगों की शिकायत सुनने के लिए भला किसके कान होंगे ? रहना तो इसी गाँव में है। जरा जबान सम्हाल कर बोला करो। किसी ने यहाँ की बात वहाँ तक पहुँचा दी, तो ?"

तब दादी चुप होकर सिर्फ रोती रही। केवल राउत चला गया।

गोबर पायकर आने के बाद माँ ने दादी को बतलाया, "मोनसीजी को मँगरुआ के बाबू की भाग जाने की बात मालूम हो गयी है। मुझे सुनाकर चमेलिया से कहते थे, "इन कमीनों का कौन ! खेत लेने को तो ले लिया, अब हल-फाली और बीआ के लिए कहीं चोरी करने निकला होगा। आज लकड़ी फारने के लिए बुलाना चाहता था, तो भाग ही गया। ज्यादा बदमाशी और भाग-भूग करेगा, तो थाने जाकर, 'सी' किलास के बदमाश में नाम ढलवा दूँगा।"

करीब दस रोज के बाद इस बात का पता चला कि बाबू कलकत्ता भाग गये, क्योंकि एक पोसकाट कलकत्ता से आया। बाबू ने लिखा था—"सोसती सीरी सरब उपमा जोग, लिखी कलकत्ता से, झगड़ू मेहरा के तरफ से माताजी को प्रनाम। मंगरू और मंगरू के माई को आसीरबाद *एहिजा का सब सामाचार अच्छा है। तुमलोगों का सामाचार सीरी अमीका भवानी से चाहते हैं, जो सुनकर दिल खुसी होए। आगे माताजी वो मंगरू के माई को मालूम जे, हराजी में, काँट-कूस से भरा तीन कट्ठा खेत मिलने पर हमको बहुते दुःख हुआ। इसी से हम रात में बैल को केवल राउत का बथान में रख आये।

×नजदीक। +मुफ्त ही। *यहाँ।

खाली इसी दुःख को +अंग्रेज नहीं होने के ओजह से हम भोरे का गाड़ी से कलकत्ता भाग आये। एहिजा आने पर पता चला जे हम नोकरी पर से डिसमिस कर दिये गये हैं। गाँव पर रह जाने से नोकरी चला गया। अब नाया नोकरी खोजने ×होखेगा। इसलिए इधर रुपेया-पइसा नहीं भेज सकते। किसू तरह से उधार-पईंच लेकर काम चलाना। कमाने लगेंगे, तो फेर रुपेया पेठा देंगे। घबड़ाना मत।"

—झगड़ू मेहरा

इस चिट्ठी के कितने दिन बाद तक बाबू की कभी-कभी चिट्ठी आ ही जाती। करीब हर चिट्ठी में, बाबू बेकारी, बेरोजगारी और अपने सितम की बातें लिख भेजते थे। अब तो और भी गर्दिश के दिन बीतने लगे। भात और रोटी से कभी-कभी भेंट होती। कभी सत्तू, कभी मकई का भूँजा, कभी साग, कभी तरकारी और कभी *अलुआ खाकर हमलोग रह जाते। कई बार भूखों सो जाना पड़ता। बड़ा भाग्य होता, जब कभी ठाकुर के घर से जूठा भात, दाल या और कोई भोजन का सामान मिल जाता। माँ उसे ले आती और चुपचाप मेरे आगे रख देती थीं।

ठीक इसी तरह दिन बीत रहे थे कि एक दिन मेरे दिल में आया, जाकर हराजीवाला खेत तो देख आऊँ। भले उसमें कुछ नहीं उपजता, मगर खेत तो मेरा है। बस, माँ या दादी से बिना कुछ बतलाये मैं हराजी गाँव की ओर चला। रेलवे-लाइन को पारकर, जब मैं हराजी गाँव के बगीचे में घुसा, तो न-जानें मेरे दिल में क्यों एक प्रकार का आनन्द छा गया। मेरे दिल में कुछ गाने की बात सूझ गयी। वैसे मैं कोई अच्छा गीत गाना नहीं जानता था। भिखारी ठाकुर और रसूल की पार्टी के नाच देखने का मौका मिल चुका था। ठाकुर के घर किसी लड़की का ब्याह था। बरात में भिखरिया और रसूलवा दोनों का दल आया था। नाच देखने के लिए गाँव से लेकर जवार तक के लोग उलट आये थे। उस रात को भिखारी ठाकुर के दल ने 'बिदेसिया' नाटक खेला था। पीछे पता चला कि भिखारी ठाकुर ने कई नाटक लिखे हैं। उस वक्त तो मैं जानता भी नहीं था

+वजह। ×होगा। *शकरकन्द।

कि नाटक किसको कहते हैं। गाँव के लोग अपनी भाखा में कहते थे, "आज भिखरिया 'विदेशिया' का खेल करेगा।"

इस तरह इन नामी नचनियों के अलावे, जब छोटी जातिवालों की शादी होती, तो उनकी बरात में भी, टुटपुँजिए नचनियों का दल आता-जाता। इस-लिए ऐसे नाच के मुझे कितने गीत याद थे। तभी बगीचे में पैर रखकर, आगे की ओर बढ़ता हुआ मैं सब दुःख भूलकर गाने लगा—

गंगा माई के भरलि अररिया, नगरिया डूबत बाटे हो।
गंगा मइया, पनिया में जनिया नेहात बारी, कंत मोर विदेसे गइले हो।
सोलह सौ संतावन साल, सावन सुदी, घर में ना रहे खुदी हो।
गंगा मइया, मुकवा के लुकवा लगाई के त नोचटे कठोर भइलू हो।

जब मैं थोड़ी दूर यों ही गाता हुआ चला गया, अपने से लगभग सौ कदम की दूरी पर देखा, एक उन्नीस-बीस वर्ष का आदमी, जो बगीचे में घास गढ़ रहा था—मेरे गीत को बड़े ध्यान से सुन रहा है और कभी-कभी घास गढ़ना बन्द कर देता है। लेकिन, मैं इस सम्बन्ध में पहले कुछ भी नहीं सोच सका और उसके नजदीक पहुँचते ही शायद लजाकर मैंने गाना बन्द कर दिया। पास पहुँचने पर वह मुझे बहुत ही घूर-घूरकर देखने लगा। पहले तो मुझे डर लगा, मगर पीछे हिम्मत बाँधकर मैं बढ़ने लगा।

"सुन रे बचवा!" उसने मुझे बुलाया।

"क्या है?" रुककर मैंने पूछा।

"सुनो न। मैं कुछ नहीं करूँगा।" वह बोला।

"कहो न, क्या है?"

"कहाँ रहते हो, किस गाँव में घर है?" उसने पूछा।

"आमी।" मैं बोला।

"कौन ×आसरे हो?"

"चमार।" मैंने जवाब दिया।

"चमार?" उसने फिर पूछा। मैंने कहा, "हाँ!"

×जाति।

"गला तो तुम्हारा बड़ा ×टाँसी है बबुआ, नाच में रहोगे ?" कहकर उसने पूछा।

"नाच में, किसलिए ?"

"गीत गाना और नाचना।" कहकर उसने अपने माथे पर का अँगोछा उतार दिया। तब मैंने देखा, उसके माथे में बित्ते-बित्ते भर का बाल था। उसकी आवाज, उसके हाव-भाव में भी कुछ जनानापन था, मगर उस वक्त मैं कहाँ समझ सका! वह बहुत ललचती हुई आँखों से मुझे देखने लगा। मैंने कहा, "मुझे कहाँ गाने आता है, मैं तो नाचना भी नहीं जानता।"

"मैं जानता हूँ, गाना तुम्हें सिखलाना नहीं पड़ेगा। नाच थोड़ा-बहुत मैं सिखला दूँगा।" इसी सिलसिले में अपने लंबे-लंबे बालों को बाएँ हाथ से सहलाकर उसने कहा, "देखो, मैं भी नाचता हूँ। मगर तुम्हारी तरह मेरा गला मीठा नहीं है। तुम खपसूरत भी हो।"

"मुझे गाने आयेगा ?"

"जरूर आयेगा।" वह बोला।

"मुझे सचमुच नाचना सिखला दोगे ?" मैंने पूछा।

"हाँ, बस एक पखवारे में तो तुम उड़ चलोगे।"

"किस नाच में रखवाओगे, मै तो भिखरिया में रहूँगा।"

मेरे इस तरह बोलने पर वह हँस पड़ा। लेकिन, मैं [illegible] भिखरिया का सुन चुका था। मेरे दिल में तो [illegible] थी। साथ ही मैंने यह भी पूछा, "कितने पैसे [illegible], [illegible] 'बिदेसिया', 'गंगा-नेहान', 'नहछू का ब्याह'—कई खेलों के [illegible], [illegible] के कितने पैसे मिलेंगे ?"

"सीख जाओगे, तब तो जितने का सट्टा होगा, उसमें से सब कोई बराबर-बराबर बाँट लेगा। रहने का मन हो, तो कहो, मैं अपना घर दिखला दूँ। सीखने के लिए आते-जाते रहो। एक दिन तुम्हारा घर भी देख लूँगा। गामी में तुम्हारा घर किधर है ?

मैंने अपने घर का पता उसे बतला दिया और नाच में रहने के लिए मैंने अपनी ओर से उसे मंजूरी दे दी। इसके बाद तो उसने मुझे अपने पास बैठा लिया। वह मेरे घरवालों के बारे में अनेक सवाल करता रहा और मैं जहाँ तक उचित समझता, जवाब देता गया। उसने कहा, "तब पक्की बात हुई न, आज से हम-तुम * इयार हुए।"

"हाँ।" मैं बोला।

इसी सिलसिले में मैंने उसे अपनी खेतवाली बात बतला दी थी। उसने बहुत अफसोस जाहिर किया। मैं बोला, "जाता हूँ, जरा उसी खेत को देखने। चलो, तुम भी अपना घर दिखला दो।"

"तुम जाओ। अभी मैं घास गढ़ूँगा। मौका मिलने पर मैं खुद तुम्हारे घर आऊँगा। तुम्हारे बाबू और दादा का नाम मैंने याद कर लिया है।"

उसके पास से चलकर मैं हराजी गाँव के पार गया और ठीक अपने उसी खेत के पास आकर खड़ा हुआ, जिसे मोनसीजी ने अछैवर से नपवाया था। लेकिन, रास्ते-भर मैं अब खेत की बात नहीं; नाच में रहने, गाना गाने, नाचने और बारातियों को जिस तरह का खाना मिलता है, उसी तरह का खाना खाने की बात सोचता रहा। मैंने यह भी सोचा कि लगन-भर तो बारात का ही भोजन करूँगा और जो नगद पैसे मिलेंगे, उससे घर का काम चलेगा। नाच उखड़ने के बाद घर लौटूँगा, तो दादी के लिए अपने पैसे से कड़ुआ तमाकू जरूर लेता आऊँगा। मैंने यह भी सोचा, कि भगवान की कीरपा से अगर मैं अच्छा नचनियाँ हो गया, तो घर-भर का दुःख-दरिद्दर भाग जायगा। खेत के किनारे पाँच ही मिनट खड़ा रहने के बाद मेरा मन वहाँ नहीं लगने लगा। इस खुशिहाली को माँ और दादी से कहने के लिए मेरे पैर बार-बार पीछे की ओर मुड़ने

*दोस्त।

लगे। उस आदमी की सूरत बार-बार मेरी आँखों के सामने नाच जाती। उसकी प्यारी-प्यारी बातें मेरे कानों को अब भी सुनायी दे जाती थीं।

अब जब मैं घर लौटने लगा, तो उस बगीचे में उसी आदमी को चारों ओर नजर दौड़ा-दौड़ाकर देखने लगा, मगर वह नहीं मिला। वह घास गढ़कर जा चुका था। रेलवे-लाइन को पारकर जब मैं अपने गाँव के बगीचे के अंदर घुसा, तो देखा, दादी पत्ते बुहार रही हैं। मैं दादी के पास उछलता-कूदता जा पहुँचा। मुझे देखकर दादी ने पूछा, कहाँ चला गया था रे ?"

"हराजी। अपना खेत देखने।" मैं बोला।

मेरे खेत देखने जाने की बात सुनकर दादी ने कुछ देर के लिए पत्ते बुहारने के काम को रोक दिया। वह जैसे थक गयीं। एक जगह बैठकर दादी ने मुझसे कहा, "खेत देखने गया था, या दादा का + कबुर देखने। अब मत जाना वहाँ, नहीं तो हड्डी-गुड्डी तोड़ दूँगी।"

"क्यों दादी, वह खेत तो मोनसीजी ने हमलोगों को दिया है।"

"चुप रह। देह मत जला। थूक चाटने से भला * पीयास जाती है ?"

अब समझता हूँ कि मेरी बातों से दादी ने देह की जलन को कैसे महसूस किया था। अब समझ पाता हूँ कि थूक चाटने से प्यास जाने की मानी क्या है। इसके बाद दादी के जोर देने पर मैं घर चला आया। उसने कहा था, "जा-जा, तुझे भूख लगी होगी, वैसा खेत देखने से भूख नहीं मिटती। घर में लट्टा कूटकर रख आयी हूँ, खा लेना और पलानी छोड़कर कहीं जाना मत।"

दादी के पास से हटकर जब मैं अपने घर की ओर चला, तो याद आया कि मैंने दादी से नाच में भरती होनेवाली बात नहीं कही। मगर यह भी मैं नहीं भूल सका था कि अभी दादी का रुख भी नहीं अच्छा है। मैं वहाँ से सीधे अपने यहाँ चला आया। पलानी में घुसते ही माँ ने मुझसे कहा, "लट्टा खा ले बेटा!" और खुद एक मैला टुकड़ा लेकर कहीं जाने को तैयार होने लगी।

"तू कहाँ जाती है ?" मैंने पूछा।

+ कब्र। × प्यास।

तव मेरे आगे महुआ और वर्रे के मूंजा के दो गोले, जिसे मेरे जिला में लोग 'लट्टा' कहते हैं, रखकर बोली, मैं गोपाल बनिया के यहां जा रही हूं।" मैं सुनकर अभी चुप रहा। लट्टा खाना शुरू कर दिया। वड़ा मजा आने लगा। कमीनों के घरों में तो लट्टा भोजन के रूप में भी मंजूर है, मगर लालाबाबू, बाबाजी और ठाकुर-घरानों में यह कभी-कभी शौकिया बन जाता है.।'

"गोपाल बनिया के यहां जा रही हो, क्या ले आओगी ?" मैंने पूछा। "मकई।" माँ बोली। मुझे यह मालूम था कि बच्चाबाबू के कह देने पर गोपाल बनिया हमलोगों को उधार अनाज देने के लिए राजी हो गया था। इसके बदले दादी और माँ ने, उनके सामने मेरे माथे पर, हाथ और अँचरा रखकर, कसम खायी थी कि जब मंगरुआ का बाप रुपये भेजेगा या लेकर आयेगा, तो सबसे पहले वे गोपाल बनिया का कर्ज भुगतान करेंगी। लेकिन इस पर भी बच्चाबाबू ने शायद यह रोक लगा दी थी कि महीने में छः रुपये से अधिक का सामान हमलोगों को न दिया जाय। उनका कहना था कि, इन लोगों का कौन ? खाने के लिए तो ये सौ रुपये महीना खा जायेंगे। मगर देंगे कहाँ से ? ये सिर्फ खाने ही के लिए तो जीते हैं। लेकिन तब भी + हिआव बाँधकर मैंने माँ से कहा, "नहीं माँ, आज × चाउर ले आओ। आज चाउर का भात खाने का मन करता है।"

"चुप रह। चाउर का भात खाने का मन था, तो क्यों नहीं बाप के साथ* उप्फर पड़ने चला गया। बड़ी भारी कमाई पर चाउर का भात खाने का मन करता है। गोपाल साव तेरा बाप है न, तेरे लिए तो लगता है, मुझे दूसरा भतार करना पड़ेगा।" माँ खीस में आकर बोली।

"क्यों, गोपाल साव चाउर उधार नहीं देगा ?"

"महीने में छौ रुपये का हिसाब है ? छौ रुपये में चाउर खाओ या जनेरा ?"

"मगर एक बात तुम्हें बतलाऊं, माँ ?"

"क्या बतलाएगा, बतला।" माँ बोली, जैसे उसका दिल जल रहा था।

"अब महीने में हमलोग पंद्रह रुपये भी खायें, तो उधार नहीं रहेगा।"

"चुप रह, लबरा !"

+ हिम्मत। × चावल। *एक प्रकार की शाप।

"सच कहता हूँ माँ, मैं अब नाच में रहूँगा ! हराजी गया था न, एक आदमी से बात पक्की हो गयी है।"

"चल चल, तुम्हें नाचने भी आता है ?" माँ बोली।

"नाचना नहीं आता। मगर वह आदमी सिखला देगा। लगन-भर तो सिर्फ पूड़ी-कचौड़ियाँ ही खाऊँगा। सट्टा के जो रुपये मिलेंगे, सो तुम लेना। उसने कहा है कि तेरा गला बड़ा टाँसी है। महीने-भर में तो तू उड़ चलेगा।"

"वह आदमी है कौन ?" माँ ने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम। मगर वह भी नचनिया है। मेरे घर आयेगा। उसने मेरा पता पूछ लिया है।"

"अपने नचनिया हो जाने की बात सोचकर, मेरे मन में कोई और तरह की आशा नहीं बँधी थी। लेकिन मुझे इतना यकीन हो गया था कि अब भोजन और कपड़े का दुःख भाग जायेगा। और, यही बात मुझसे जहाँ तक हो सका, मैंने अच्छी तरह से माँ को समझा दी। शायद माँ को भी मेरी बातों पर यकीन हो आया। न जानें, गोपाल साव से क्या-क्या कहकर, वह उस रात चाउर ले आयी और हम तीनों ने डटकर भात खाया। दादी ने सुना, तो उसकी खुशी का भी कोई पारावार न रहा।

इसके ठीक तीसरे या चौथे दिन, वही आदमी, जो हराजी गाँव के बगीचे में मिला था, मेरे घर आया। मैंने दादी और माँ से उसका परिचय कराया। पता चला कि वह बिरादर का दुसाध है और करीब सात बरसों से नाच में रहता आ रहा है। दादी बैठी रही। माँ उठकर गयी, तो गोपाल साव के यहाँ से दो पैसे का मीठा लेकर लौटी। मीठा की सरबत बनने पर, एक अलमुनियम के लोटे में भरकर, दादी ने उसे सरबत पीने के लिए कहा। वह लोटा उठाकर सरबत पीने लगा, तो दादी की बगल में बैठकर माँ से बोली, "हमलोगों का मन नहीं था कि मंगरुआ नाच में रहे। मगर पेट का दुःख जो नहीं सहा जाता। अब मंगरुआ तुम्हारे हाथ में है। इसे आदमी बनाना, न बनाना तुम्हारे बस की बात है। जब और बच्चा था, तब तो इसको *अँगुठिया केस था। मगर,

*घुँघराले बाल।

क्या मालूम कि मंगरुआ नाच में रहेगा! केस तो इसके ऐसे थे कि औरत के केस की नाक काट लेते।"

"फिकिर मत करो काकी! अमिका भवानी चाहेगी, तो तुमलोगों का भाग्य पलट जायगा। मंगरुआ को मैं अपना छोटा भाई समझता हूँ।"

जिस आदमी ने मुझे नाच में रहने की सलाह दी थी, उसका नाम मोती था। अब मैं समय-समय पर उसके घर जाकर नाचना सीखने लगा। अब तो शहरों में मेहतर और रिक्शेवाले तक पक्के राग और पक्के नाच का नाम जानते हैं, पान बेंचनेवाले भी दूकान पर रेडियो लगाये मालकोस और नायिकी कान्हड़ा सुना करते हैं, मगर तब का जमाना और था और उस पर भी गाँव में भी छपरा जिला का गाँव, जहाँ भिखारी ठाकुर का नाम बच्चे से लेकर बूढ़े तक जानते हैं। वैसे तो मुझे भी कई देहाती गीत याद थे, मगर मोती भाई के बतलाने पर भी मैं उनके गीत गाता और नाचना सीखता। अब मैंने मोती भाई के बतलाने पर बाल बढ़ाना भी शुरू कर दिया था। उन्होंने मेरी माँ को मेरे बाल में रोज तेल डाल देने की सलाह दी थी। सो, माँ अब याद करके रोज ही मेरे बालों में तेल लगाकर ककहा से सुलझा देती थी। एक दिन मोती भाई ने कहा, "जरा आँखों में काजर भी लगाया कर।"

"काजर?"

'हाँ, नाचेगा कैसे? पहले से काजर लगाकर सबके सामने निकलेगा, तब न बारात में भी लाज नहीं लगेगी।"

"अच्छा।"

और इस तरह अब मैं काजर भी लगाने लगा। नाचने का रेयाज करने के लिए मोती भाई अपना घुँघुरू देते थे। मुझे याद है, मोती भाई कंसी लेकर सामने खड़े हो जाते थे। एक आदमी ढोलक बजाता और तीसरा सरंगी। उस नाच के सीखने में पक्के नाच की तरह न तो कुछ ताल-लय गिनने की जरूरत पड़ती थी और न सिनेमा के नाच की तरह उसमें बहुत-से बाजे बजते थे। मोटा-मोटी भाव

का इशारा करते हुए दोनों पैरों को पटकना पड़ता था। मान लो, जब मोती भाई गाते—

सुतल में रहली रामा, लाली हो पलंगिया,
पिअऊ जगावे लपलन ना·······

बीच-बीच में आवाज आती, "कइसे हो, भाव बता के।"

रामा पीटी-पीटी केंवरिया,
पिअऊ जगावे लपलन ना।

फिर भीड़ से देखनेवाले बोलते, "जिय ए कांटी·····।"

तो इस भाव को बतलाने के लिए मुझे अपने दोनों हाथों को जोड़कर बायें कान से सटाना पड़ता, और आँखें मूँदकर बहुत थोड़ा-सा बायीं ओर झुकना होता और फिर ताली बजा-बजाकर यह भाव दिखलाना पड़ता कि जब मैं लाल पलंग पर सोयी हुई थी, तो मेरे बालम दरवाजा पीट-पीटकर मुझे जगाने लगे। इस तरह के नाच को सीखने में भी कुछ रोज बड़ा दुःख हुआ। घुँघुरू के वजनदार होने से पैर फुर्ती के साथ नहीं उठते थे। बार-बार पटकने के कारण चोट भी लगती थी। मगर करीब डेढ़ महीने के बाद मोती भाई ने कहा कि अब मैं काम का आदमी हो गया हूँ। शादी-ब्याह के दिन आ गये, तो मेरा नाच दिखला-दिखलाकर वे *सट्टा-बेयाना लेने-लिखवाने लगे। नाच देखकर ही तो फीस की बात तय होती थी। इस बात को तय करने के लिए जब कोई आनेवाला होता, तो वे मुझे बहुत सवेरे बुलाकर ले जाते। मुझे साबुन से मुँह साफ करने के लिए कहते। लोगों के आते-आते, वे मुझे साड़ी और कुरती पहना देते। बिसाती की दूकान से खरीदे गये शीशे और नकली मूंगे के जेवर मैं पहन लेता। मोती भाई अपने हाथों से घुँघुरू बाँध देते, गालों पर पौडर पोत देते और × लिलार पर टहकार बूँदा भी कर देते थे।

अब मैं करीब पंद्रह बरस का हो गया। नाच में रहते पाँच साल हो गये। मगर नचनियाँ बनने पर भी घर की हालत नहीं सुधरी। ठाकुर के घर माँ को बेगार करने जाना ही पड़ता था। इस बीच कलकत्ते से बाबू तीन-चार बार आये।

* Advance & Agreement. × ललाट।

मगर न जाने क्यों, हवड़ा से दिघवारा टीसन पर पहुँचते-पहुँचते उनकी तबियत खराब हो जाती थी। टीसन पर उतरते ही, किसी गाँव के आदमी के मिलने पर खबर देते, तो मैं उन्हें लिवा लाने जाता था। वे वहाँ से कंबल ओढ़कर अपने घर आते। हाँ, साथ में कुछ नगदनरायन जरूर लाते। उन रुपयों से कर्ज नहीं अदा किया जाता। मैं भी उठती बाजार के समय, मछली खरीद लाता। जब तक बाबू घर पर रहते, खूब कटती थी। ठाकुर के घर से जब कोई बेगार खटने के लिए बाबू को बुलाने आता, तो बाबू झटपट अपनी देह में कम्बल लपेटकर सो जाते और तब माँ या दादी, तनिक दूर से ही उन्हें दिखलाकर कहती, "क्या कहूँ, मेरी किस्मत फूट गयी है! बारह बरीस पर परदेस से आया भी, तो जाड़ा बुखार लेकर। देखो न, बुखार से तो बदन चूल्हे पर चढ़ा हुआ तावा हो रहा है। पास में एक कानी कौड़ी भी नहीं है कि काढ़ा भी लाकर पिला दूँ।"

इन दिनों जब कभी राह में रामभजन की माँ मिलती, तो कहती, "कहाँ जा रहा है रे, आजकल तो तुमलोग गुलछर्रे उड़ा रहे होगे। तुम्हारा बाप पूरबी देश से कमाई करके आया है न?"

"कमाई करके क्या आये है। जड़इया से तो थर-थर काँप रहे हैं।"

"अगनू मिसिर के यहाँ। काढ़े की पुड़िया देने को कहा।" मैं जवाब देता।

हमलोगों को देखकर न-जाने, रामभजन की माँ क्यों जला करती थी। हमलोगों के समाज में उसका रोब-दाब था। मैंने देखा था, कई चमार भाइयों को बेगार खटते समय देह चुराने के जुर्म में जब मोनसीजी ने जुर्माना किया, तो कितनों के जुर्माने माफ करा चुकी थी। दादा की जगह पर मुझे रोज तो नहीं, लेकिन अक्सर कुट्टी काटने के लिए ठाकुर के यहाँ जाना पड़ता था।

एक रोज की बात है। कुट्टी काटते-काटते मेरे हाथ थक गये। सुबह से ही कुट्टी काट रहा था। सूरज बीच आसमान में आकर खड़ा हो गया। ठाकुर के घर से जलखावा के लिए भूँजा मिलने की उम्मीद थी, मगर भूँजा अब तक न मिला। हाथों में कमजोरी मालूम होने लगी, कलेजे की धड़कन धीमी पड़ गयी, माथे पर पसीना आने लगा। हारकर मैंने गँड़ासी रख दी और वहीं चुपचाप बैठकर जरा

विन्नी के बोरा, महुआ के लट्टा,
काट खुरे खुर, काट खुरे खुर
चहुए पर, चहुए पर ···· ···· ····।

तब मेरे नाच का कमाल देखकर मोती भाई, जो उस वक्त वंसी बजाते होते, अपने पास खड़े सरङ्गीवाह के कान में मुँह सटाकर कहते, "देखा न, मंगरुआ बेस पाउटी काटता है।" जवाब में सरङ्गीवाह मुस्कुरा देता। नाचते समय कमर हिलाने के काम को, मेरे यहाँ के लोग 'पाउटी काटना' कहते हैं। सो, मेरे पाउटी काटने पर तो देखनेवाले बहुत खुश होते, मोती भाई का कलेजा ऊँचा हो जाता। मगर, पाउटी काटने से मुझे जो तकलीफ होती थी, उसे कोई नहीं समझता था। नाचते समय बराबर पैर पटकते रहने के कारण ×सुपली में इतने जोरों का दर्द होता कि लगता सुपली काटकर फेंक दूँ। पैर की उँगलियों की गिरह-गिरह में टीस उठती थी। चार-चार घण्टे लगातार नाचने के बाद, जब बराती लोग खा लेते, तब नचनियाँ समाज को खाने के सामान दिये जाते थे। न-जानें, मुझमें कौन ऐसी खूबी थी कि जब दूसरा लौंडा नाचने लगता, तब भी बारात के लोग मोती भाई से मुझे ही खड़ा कराने के लिए कहते।

इस तरह बहुत रात बीत जाने पर जब नाच खत्म हो जाता तो तुमसे क्या छिपाऊँ ? मैली चादर और धोती से बनी तंबू के घेरे में सोने लगता, सो खुद अपने समाजी मुझे दिक करते। कोई कहता, मेरी बगल में सोओ, कोई कहता, मेरी बगल में सोओ।—मैं परेशान हो उठता। लेकिन जब अपने घर की हालत देखता, तो नाच के समाज से अलग होने की हिम्मत टूट जाती थी। आगे चलकर मुझे और कुछ होना है, कोई ऐसी उम्मीद भी नहीं थी। इसलिए नाच में गानेवाले गीतों को अकेले में बैठकर खूब तैयार किया करता।

×घुट्टी से नीचे तक का भाग।



६

इन्हीं दिनों की एक-दो और बातें सुन लो।

बाबू जब हबड़ा से कमाई करके लौटते, तो अलबत्त किसिम की पट्टी छँटवाकर आते . वैसी हजामत को गँवारू भाखा में हमलोग 'छील-पट्टी' कहते थे। आते तो साथ में एक नयी दरी, एक छाता और बाल्टी भी ले आते। इस बार आये तो चीनी का पीआला और छोटी-छोटी छिपुनी भी ले आये। इसी छिपुनी को शहर के बाबूलोग 'डिश' कहा करते हैं। बाबू ने खुद बतलाया कि उनका कोई दोस्त वहीं अंग्रेज साहब की कोठी में काम करता है, सो उससे थोड़ी-सी चाय भी माँग ली थी। देहात में, अगर तुम किसी से चाय माँगो, तो ठाकुर-घराने को छोड़कर, और घरों से चाय बहुत मोसिकल से मिलेगी। और मिल भी जायगी, तो कप और डिश में नहीं। वहाँ केटली और 'टी-पॉट' का नाम भी कोई नहीं जानता। वहाँ तो बटुई में चाय बनती है और पीनेवाले को कटोरे या लोटे में दी जाती है। बाबू जैसा बतलाते थे, उन्हें चाय पीने की आदत पड़ गयी थी।

भोर के करीब आठ बज रहे थे। पलानी से बाहर, सहन में बाबू ने मुझसे दरी बिछवायी और मेरी माँ को बुलाकर पूछा, "चाह बनाना जानती हो?"

"चाह?" माँ समझ न सकीं।

"हाँ, चाह।" कहते हुए बाबू खुद पलानी में घुस गये और साथ में लायी हुई गठरी से चाय की पुड़िया ले आये। माँ की हथेली पर उस पुड़िया को रखकर बोले, "करीब आध सेर या तीन पाव पानी गर्म होने के लिए चढ़ा दो। जब पानी गर्म होकर खूब 'खल-खल' करने लगे, तो इससे थोड़ी-सी चाह निकालकर उसमें छोड़ देना। फिर पानी उतारकर ढकनी या छीपा से उसे तुरत झाँप देना। भाफ उड़ने न पावे। और हाँ, घर में चीनी है या नहीं, दूध कहीं मिलेगा?"

"ना।" माँ ने बाबू के दोनों सवाल का एक ही जवाब दिया। बाबू की इन सारी बातों से उसकी आँखों में अचरज का पानी भरा आ रहा था। इतना कहकर वह बाबू का मुँह देखने लगी।

"जाने दो, दूध छोड़ दो। चीनी मँगवा लो।" बाबू बोले।

"हाँ।" माँ बोली।

तब बाबू ने मुझे एक इकन्नी दी। मैं दौड़कर मोदी की दूकान से चीनी ले आया। चीनी लेकर लौटने के पहले चाय बन चुकी थी। बाबू अंदाज से चीनी मिलाकर बोले, "अब चाह तैयार हो गयी।" इसके बाद माँ ने लोटे के मुँह पर अँगोछा बांधकर चाय छान दी। चीनी के पीआले में चाय भरकर बाबू ने मुझसे कहा, "ले, एक कप तू पी ले। और एक अपनी माँ को दे दे।"

बाबू के मुंह से इतनी बातें सुनकर माँ लजा गयी। वह पास ही खड़ी थी। उसने कहा, "मैं यह सब न पीऊँगी, तुम्हीं बाप-बेटा पी लो। मैं चली, ठाकुर की हवेली। गोबर पाथना है।"

आखिर माँ बिना चाय पीये ही चली गयी। अपनी पीआली की चाय लेकर, बाबू पलानी के बाहर बिछायी हुई दरी पर आकर बैठ गये। बाबू के सामने चाय पीने में मुझे भी लाज लग रही थी। मैं अंदर ही पलानी में रह गया। चाय बहुत गर्म थी। पीआली में मुँह सटाने पर ठोर जलने लगा। जीभ सुन होने लगी। पास ही अलमुनियम का कटोरा पड़ा था। पीआली की चाय को कटोरे में उंड़ेलकर, धीरे-धीरे फूँक-फूँककर, लगा पीने। पलानी के भीतर ही मैं इस प्रकार सँभलकर चाय पीने बैठा था कि बाबू के चाय पीने का ढंग अच्छी तरह देख सकूँ। वे बड़े ठाट से पीआली में भरी चाय को, सवाद ले-लेकर पी रहे थे।

ठीक इसी समय की बात है। ठाकुर के बेटे बच्चाबाबू सामने से गुजर रहे थे। मेरी पलानी से वे करीब डेढ़-दो सौ क़दम की दूरी पर चले जा रहे थे। नहीं कह सकता, बाबू को देखकर, या यों हीं—मगर बच्चाबाबू बड़े जोर से खँखारे। मैंने देखा, उस वक्त बाबू की देह में कँपकपी समा गयी। वे मेरी ओर मुंह फेरकर चिल्ला पड़े, "मंगरुआ?"

"हाँ, बाबू!" मैंने कहा।

"जल्दी कंबल लाओ।"

बात क्या है ? यह नहीं समझकर भी मैंने पलानी के भीतर से कंबल खींचकर बाबू के पास फेंक दिया। बाबू उस कंबल को झटपट ओढ़ लिये और लगे देह कँपाने, जैसे जड़इया से काँप रहे हों। मगर तभी मैंने देखा कि बच्चाबाबू चुपचाप चले गये। उनके बहुत दूर चले जाने पर बाबू ने मुझसे पूछा, "बच्चाबाबू से भेंट होगी तो क्या कहेगा, बाबू चाह पी रहे थे ?"

"...........।" मैं चुप उनका मुंह देखता रहा।

"कहना, बाबू पुरुज से बीमार होकर लौटे हैं।" बाबू ने सिखलाया।

"और, तुम्हें चाह पीते हुए देख लिया है, सो ?"

"बतलाना, वे तो काढ़ा पी रहे थे।" बाबू बोले।

"पूछेंगे, बीमार हैं तो पलानी से बाहर क्यों था ?" मैंने पूछा।

"बतलाना, जड़इया महारानी आ गयी थीं। एक कंबल से जाड़ा नहीं जा रहा था, तो बाहर घाम में आकर बैठे थे। अगर ऐसे नहीं बतलायेगा, तो बहुत बुरा होगा। गोपाल साव बनिया का पाई-पाई अदा करना ही होगा, साथ ही बेगार खटनी होगी, सो अलग।" बाबू ने सिखलाया।

मैंने बाबू की सिखलायी हुई बातों को गुरु-मंतर की तरह याद कर लिया। मगर झूठ क्यों बोलूँ, बच्चाबाबू ने मुझसे इस तरह का कभी कोई सवाल न किया और न मुझे बाबू के सिखाये हुये जवाब ही पेश करने पड़े। मेरा अंदाज यह है कि बाबू के बीमार होकर आने की सबूत के लिए, अपने हर मिलनेवालों से रो-रोकर उनकी बीमारी की चर्चा करना ही काफी था। और, इस परचार के सारे भार को दादी अपने ऊपर लिये फिरती थी। इसी तरह वह गोपाल साव को भी साध चुकी थी। वह एक बार भी तगादा करने नहीं आया।

लेकिन इस तरह झूठ बोलने से काम नहीं ही चल सका। यह १९३६-१९३७ ई० का जमाना था। बड़ी जाति के लोग अपने कुएँ पर हमलोगों को नहीं नहाने देते थे। नहाना और बर्तन साफ करने देने की तो बात [illegible] हमलोगों को उन दिनों उनके कुएँ से पानी [illegible] था। हमारा बर्तन उनके कुएँ में डूबता, तो सम्पूर्ण कुआँ [illegible]

जाता और ठाकुर, का कुएँ को उलिचवाने में जितना खर्च लगता, उससे दुगुने रुपये जुर्माना करते थे। सो, मेरी ही तरह बाबू भी भोरे उठकर दरियाव में नहा आते थे। मैं तो कुछ देर-सबेर भी जाता था। मगर बाबू मुँहझप्पे उठकर चले जाते। और, जब कभी उनके उठने में देर हो जाती, तो नहीं ही जाते थे।

आज मैं भी भोर में ही उठ गया था। सोचा, उधर दरियाव-किनारे ही दिसा-मैदान से फरागत हो लेंगे। सो मैं भी बाबू के साथ ही दरियाव-किनारे चल पड़ा। दिसा-मैदान से फरागत होकर दोनों बाप-बेटे घाट पर बैठकर बालू से दाँत साफ करने लगे। बाबू ने दरियाव के उस पार की ओर हाथ उठाकर कहा, "देख मंगरू, ठीक इसी के सामने उस पार पटना है—छपरा से लाख दरजे अच्छा शहर।"

"हूँ····।" मैं बोला।

पटने से भी एकगाड़ी सीधे कलकत्ते जाती है।"

"हूँ····।" मैंने फिर कहा।

घाट से सटे पानी के ऊपर मटमैले फेन बह रहे थे। इंच-दो-इंच की छोटी छोटी मछलियाँ हमारे पैरों तक तैरती हुई आतीं और चली जाती थीं। दरियाव का पानी धीरे-धीरे हिल रहा था। दाँत साफ कर मुँह धो लेने के बाद हमलोग छाती-भर पानी में जाकर खड़े हो गये। पहले बाबू ने डुबकी लगायी, तब मैंने डुबकी लगाकर, जैसे ही सिर बाहर निकाला कि देखा, घाट के ऊपर से एक-पर-एक चार-पाँच बैल उतरते हुए चले आ रहे हैं।

"इतना सवेरे कौन बैल ला रहा है?" बाबू ने मुझसे पूछा।

"नहीं मालूम।"

बाबू ने दूसरी डुबकी नहीं लगायी। दूसरी डुबकी लगाकर जब मैंने गर्दन बाहर निकाली, तो मेरे कानों में बहुत नजदीक से यह देहाती गीत सुनायी पड़ने लगा—

सबका के देल रामा, धन-धन सोनवाँ,
बनवारी हो, हमरा के लड़िका भतार।

मैं अपने कान खोलकर गानेवाले की आवाज पहचानने लगा। आवाज धीरे-धीरे पहचान में आ गयी।

लड़िका नदान लेके सुतली अंगनवा,
बनवारी हो, रोये लगले लड़िका भतार।
चुप रहु चुप रहु, लड़िका भतरवा,
बनवारी हो, रहरी में बोलेला हुँरार।

"बैल तो ठाकुर के जान पड़ते हैं?" मैंने बाबू से कहा।

"ठाकुर के हैं?"

"हाँ।"

"सो कैसे?" बाबू ने पूछा।

"अछैंवरा गाता हुआ·········।"

मैं अपना जवाब भी न पूरा कर सका था कि बाबू झटपट पानी से बाहर निकल गये। साथ ही मुझे कहा, "चल, जल्दी निकल। अछैंवरा बड़ा खँचरा है, दौड़कर बच्चाबाबू से कह आयेगा।"

"अच्छा।" मैंने कहा और फुर्ती के साथ पानी से बाहर आने लगा, तभी मेरी नजर घाट के ऊपर गयी। देखा; बैलों के पीछे-पीछे अछैंवरा चला आ रहा है। बाबू को देखते ही उसने पूछा, क्या झगड़ू, अच्छे हो गये?"

"········।" बाबू का जैसे बकार बंद हो गया।

कदम-कदम पर अछैंवर हमलोगों के नजदीक पहुँचता आ रहा था। आज की साइत बहुत खराब थी। बाबू को या मुझे, हममें से किसी को उम्मीद नहीं थी कि अछैंवरा इतना सबेरे और दरिआव-किनारे ही बैल धोने चला आयगा। पानी से निकलकर मैं भी बाहर आ गया। पाँच मिनट तक बाबू गूँगे बने रहे। बाद में अछैंवर से बोले, "अच्छे क्या हो गये, अछैंवर भाई!····"

"तो?"

"देह गला रहा हूँ। देख नहीं रहे हो, शरीर में एक चिड़िए का भी माँस नहीं रहा।" बाबू बोले। अछैंवरा हमलोगों के सामने आकर खड़ा हो गया। बैल किनारे खड़े हो-होकर, पानी में सिर लटकाकर पानी पीने लगे। पूँछ झटकारकर

कभी-कभी वे अपने पैरों में सटे हुए मच्छड़ों को भगा देते थे। बाबू की बात सुन-कर अछैवरा बोला, "कैसी बातें करते हो झगड़ू, तुम्हें देखकर तो कोई बीमार भी नहीं कह सकता और तुम कहते हो कि शरीर में चिड़िया का भी मांस नहीं रहा। बीमार पड़े, तुम्हारा मुद्दई!"

अछैवरा की यह बात सुनकर मेरा कलेजा चाक होने लगा; क्योंकि उसकी और रामभजन की माँ को लेकर मैं दो-एक गर्म खबरें सुन चुका था। सुना था, रामभजन की माँ और अछैवरा में कुछ भीतरिया लटपट चल रहा है। अभी नहाकर पानी से बाहर हुआ था, मगर सारी देह सूख गयी। वैसे तो अछैवरा भी खुद अड़िगल था। मगर अब डर और इसलिए बढ़ गया कि अगर बाबू के नहाने की बात रामभजन की माँ के कानों में चली गयी, तो फिर बात ठाकुर और मोनसीजी तक जरूर पहुँच जायगी। मैंने बाबू की ओर उदास होकर देखा।

"बीमार तो ऐसा हूँ अछैवर कि चलना-फिरना मोहाल है।" बाबू ने कहा।

"तो फिर नहाने कैसे चले आये?" अछैवरा ने पूछा।

"बात सुनाऊँगा तो तुम्हें हँसी आयेगी, मगर देवता-पितर का डर जोगाना ही पड़ता है।"

"सो क्या?" अछैवरा ने पूछा।

"अभी कल की बात है। मेरी माँ दरियाव नहाने आयी थी। उसने देखा, एक मुसमात ब्राह्मनी आयी। दरियाव में नहाकर उसने कपड़े बदले और तब घाट ही पर अपनी मोटरी से रोटी और मछली निकालकर खाने लगी। माँ को इस पर बड़ा अचरज हुआ। उसने पूछा, "तुम कौन हो?"

"माँ ब्राह्मनी हूँ।" ब्राह्मनी बोली।

"तुम्हारे दुल्हा क्या करते हैं, तुम कौन गाँव की रहनेवाली हो?" मेरी माँ ने पूछा।

"हर गाँव में मेरा घर है। मैं मुसमात हूँ।" ब्राह्मनी ने कहा।

"तो एक तो ब्राह्मनी उस पर मुसमात! तुम मछली कैसे खा रही हो?" माँ ने पूछा तो वह बोली, "मुझसे यह सब सवाल मत करो, नहीं तो तेरा सतेयानास

"अच्छा !" अछैवरा तनिक घबड़ाया। बाबू बोले, "तब माँ उसके पैरों पर गिरकर बोली, "मुझे माफ कर दो। मैं तुम्हें नहीं पहचानती। मेरा बेटा आज कितने रोज से बीमार है, उसे बकस दो।" तब उस ब्राह्मनी ने कहा, "देख बुढ़िया मैं जड़इया हूँ। मैं तुम्हारे बेटे को बकसने ही आयी हूँ। तू उसे गंगाजी में नहाकर, पाँच बार मेरा नाम लेकर, मछली-भात खाने के लिए कह, वह अगले शनीचर तक अच्छा हो जायगा।"

"वाह !" अछैवरा बोला।

"तब क्या बतलाऊँ अछैवर, जैसा माँ कहती है, इसके बाद वह ब्राह्मनी बिला गयी। अब समझ जाओ कि लाचार होकर नहाने के लिए आना ही पड़ा। मंगरुआ न होता, तो मेरा आना भी मुश्किल था। देह देखने से तो सचमुच बीमार की तरह नहीं लगता, लेकिन भीतर तो बस खोखा-ही-खोखा है।" बाबू समझा गये।

इस बीच हमलोग अंगोछा बदलकर भगोटी पहन चुके थे। अब जल्द-से-जल्द यहाँ से भागने का ही इरादा था। अछैवरा बोला, "ठीक किया, जाड़-बुखार में मछली मना नहीं है।"

"पकड़ मंगरू, दोनों बाँह के नीचे हाथ लगाना और बहुत धीरे-धीरे चल। हँफनी आती है।" अछैवरा को सुनाकर बाबू बोले। मैं सब समझ गया। मैं जब बाबू को सम्हालकर पकड़ने लगा तो देखा, अछैवरा बैलों की ओर दौड़ा जा रहा है। पानी पीते समय ही दो बैल आपस में बेतरह उलझने लगे थे। दोनों बैल बड़े जोर-जोर से फोंफिया रहे थे।

अछैवरा तो बैलों का झगड़ा छुड़ाने लगा, मगर फिर भी बाबू की हिम्मत न हुई कि वहाँ से बिना बीमार की तरह चलकर अपनी पलानी तक आवें। अरार से ऊपर चले आने पर, जब अछैवरा हमारी आँखों से छिप गया तब भी बाबू बोले, "बाँह के नीचे से हाथ मत निकालना। अपनी पलानी तक ऐसे ही चल।"

"अच्छा।" मैंने ठंढी आवाज में कहा और उसी तरह बाबू मेरे साथ पलानी तक आ गये।

दादी पलानी में थी। माँ जमींदार के यहाँ गोबर पाथने चली गयी थी। पलानी के भीतर आकर बैठते ही बाबू ने दादी से सारी बातें कह दीं। सुनकर दादी की आँखों से लोर टपकने लगा। बाबू ने पूछा, "अब क्या होगा माँ ?"

"भगवान मालिक हैं।" दादी बोली।

लेकिन, मन में हजार तरह की घबराहट रहने पर भी यह बात घंटे-आध घंटे के बाद पुरानी पड़ गयी। दिन के करीब दस बजे जब दादी हमलोगों के लिए खिचड़ी बनाकर चूल्हे की आग बुझा रही थी, तभी झूलन बाबाजी के यहाँ की कहारिन दादी को बुलाने आयी। उनके घर में कोई परसौत कमाना था। इसलिए दादी हमलोगों को अपने सामने बैठकर न खिला सकी। कहारिन ने आते ही कहा था, "जल्द चलो। दुलहिन दर्द के मारे *छावाछीत हो रही है।

"महीना पूरा है न।" दादी ने कहारिन से पूछा।

"महीना तो पूरा हो ही गया। इधर एक पख और खींच लिया है।" कहारिन बोली।

"मैं हवेली कमाने चली झगड़्.........।" और दादी ने फिर मुझसे कहा, "मंगरुआ, दोनों थरिया माँजा रखा है। निकालकर बाप-पूत खा लोगे।"

इतना कहकर दादी हवेली कमाने चली गयी। उसके चले जाने के बाद, मैंने दोनों थरिया में अलग-अलग खिचड़ी निकाली और बाबू को पुकारकर कहा, "आओ न बाबू, खा लो अब।" इसके बाद बाबू खाने के लिए बैठे। लेकिन मैंने देखा कि बाबू मन से नहीं खा रहे थे। उनके चेहरे पर उदासी कट रही थी। उनको अनमनाते देखकर मैंने उनसे कहा, "चोखा फीका है क्या ? कहो तो पुआल जलाकर दो-तीन मिरचाई पका दूँ।"

"ना, छोड़ दे।" बाबू बोले।

"भूख नहीं है क्या ?"

"ना। जरा-मना है, सो खा ही ले रहा हूँ।" वे बोले।

*कष्टावेश से अस्त-व्यस्त।

बाबू का चेहरा देखने से पता चलता था कि वे कोई बहुत पुरानी बात सोच रहे हों, उनकी धँसी हुई आँखों की पुतली चारों ओर घूम रही थी। खिचड़ी खाते वक्त वे बार-बार पलानी के बाहर देखने की कोशिश कर रहे थे। ऐसा लगता था, जैसे बाबू खिचड़ी और चोखा को, सवाद ले-लेकर नहीं खा रहे। भूख मिटाने के लिए वे खिचड़ी का कौर लील रहे हों। चाहे जो हो, मेरा अन्दाज अपने मन में अब तक पक्का है कि बाबू उस वक्त भरपेट नहीं खा सके। उन्होंने आधे से अधिक खिचड़ी थरिया में छोड़ दी। मैंने भरपेट खा लिया था। सो अपने थरिया को माँजकर मैंने बाबू के थरिया में पड़ी खिचड़ी को झाँप दिया।

बाबू हाथ-मुँह धोकर पलानी में ही सोने की कोशिश करने लगे और मैं पेशाब करने के लिए पलानी से बाहर निकला। जैसे ही मैं पेशाब करके उठा कि मेरी नजर खेलावन पर पड़ी। खेलावन ठाकुर के यहाँ का नौकर था।

"पाव लागू, खेलावन भैया!" मैंने कहा।

"मंगरुआ ?" जवाब में खेलावन बोला।

"ऊँ....।" मैं।

"तुम्हारा बाप है घर में ?"

"हाँ, बाबू हैं ?" मैंने कहा।

"बुलाओ।"

"क्या बात है ?" मैंने पूछा।

"छोटे सरकार ने बुलाया है।"

"छोटे सरकार ने ?"

"हाँ बच्चाबाबू ने।"

"किसलिए, तुम्हें कुछ मालूम है खेलावन भाई ?"

"उँहूँ....मुझे कुछ नहीं मालूम है....। मगर मुझे हुकुम मिला है कि अपने साथ ही लिवाते आओ।" खेलावन बोला।

बच्चाबाबू का नाम सुनते ही मेरा दिल धक् से कर गया। पीछे बड़ा अफसोस हुआ कि मैंने खेलावन को क्यों बतला दिया कि बाबू हैं। मगर अफसोस बेकार ही हुआ। बच्चाबाबू से छिप जाना बहुत अजगुत बात होती। खेलावन

मेरे साथ-साथ मेरी पलानी तक आया। वह बाहर सहन में ही खड़ा रहा और मैं भीतर पलानी में घुस आया। देखा, कंबल ओढ़कर बाबू सोना चाह रहे हैं। मेरे आने के पहले वे अपना मुंह कंबल से झांपने लगे थे।

"क्या है रे मंगरुआ, तू भी सोयेगा ?" बाबू ने मुझे देखकर पूछा।

"ना।" मैं बोला।

"सो न। इस वक्त कहाँ जायगा ?"

"छोटे सरकार ने बुलाया है।" मैंने कहा।

"किसे, तुम्हें ? ठीक है, जा हो आ।"

"मुझे नहीं, तुम्हें। खेलावन बुलाने आया है।"

"खेलावन बुलाने आया है····।" बाबू घबड़ाकर तनिक जोर से बोले।

"हत् तेरी के····चुप रहो न। यहीं तो खड़ा है।" मैंने कहा।

"मेरे मुँह से इतनी बात सुनकर बाबू जैसे ठंढे पड़ गये। उन्होंने अपनी देह से कंबल उतारकर फेंक दिया। तभी बाहर खड़े खेलावन ने तनिक जोर से कहा, "चलो झगड़ू देर मत करो। मुझे भी गाली सुनवाओगे क्या ?"

"मंगरुआ ?" बाबू बोले।

"क्या ?"

"मेरे साथ तू भी चल।"

"चलो।" कहकर मैं तैयार हो गया।

बाबू फिर से कंबल ओढ़ लिये और पलानी की टाटी को दरवाजे पर ठीक से सटाकर हमलोग खेलावन के साथ चल पड़े। मेरी पलानी से ठाकुर के दरवाजे तक आने में आध घंटे से कम वक्त नहीं लगा होगा, मगर रास्ते में खेलावन ने हमलोगों को तनिक भी नहीं बतलाया कि बाबू को छोटे सरकार ने किसलिए बुलवाया है। रास्ते में बाबू ने कई तरह से इस बुलाने की वजह को जानने की कोशिश की, मगर खेलावन हमलोगों को कुछ बतला न सका। रास्ते में उन्होंने अन्दाज लगाना चाहा।

"छोटे सरकार का मिजाज ही कुछ और है, किसी को दुखाते नहीं।" बाबू बोले।

"क्या करना है, किसी के लिए बैगन ×पंथ तो किसी के लिए माहुर।" खेलावन ने कहा।

"मेरे बाबू तो बूढ़े ठाकुर का ही नाम जपते थे।" बाबू बोले।

"जब जैसा, तब तैसा।" खेलावन ने कहा।

"लकड़ी-उकड़ी फाड़नी है क्या खेलावन ?" बाबू ने पूछा।

"नहीं मालूम।" खेलावन बोला।

"दालान के सामने लकड़ी की सिल्ली तो देखी होगी ?" बाबू ने पूछा।

"नहीं, वहाँ तो सिल्ली-विल्ली कुछ नहीं है।" खेलावन बोला।

"अच्छा, अब समझ गया। सुना था, कोई लगहर भैंस बिसुख गयी है। उसी की झाड़-फूँक के लिए बुलाया होगा।"

"नहीं, कहाँ कोई भैंस बिसुखी है?"

इस तरह और कई बातें पूछकर भी बाबू थक गये। कुछ पता नहीं चला। आखिर हमलोग ठाकुर के दरवाजे पर पहुँच गये। पश्चिम ओर की दालान के सामने एक इमली का पेड़ था। हमलोगों के साथ ही खेलावन वहाँ ठिठक गया और कुछ सोचकर बाबू से कहा, "तुम दोनों यहीं ठहरो। मैं सरकार को खबर कर आता हूँ।"

"अरे भाई, बात क्या है, तुम्हें कुछ नहीं मालूम है? सच बतलाना खेलावन!" बाबू ने खेलावन को रोककर पूछा। मगर खेलावन हमलोगों को बिना कोई जवाब दिये झटककर चला गया। मैं भी कुछ नहीं समझ पा रहा था। बाबू कभी दालान की ओर नजर घुमाते, कभी इमली के पेड़ के इर्द-गिर्द देखते और कभी बकर-बकर मेरा मुँह निहार रहे थे। मेरी कमर में ढाई गज की धोती थी और बाबू की कमर में चरखंदे का कलकतिया अँगोछा था। ऊपर से वे कम्बल लपेटे हुए थे। मैं कुरता नहीं पहने था। कमर से ऊपर नंगा, मगर सिर के बड़े-बड़े बाल एक मैले गमछे से समेटकर छिपाये हुए था। इसी समय अछैबरा सामने से गुजरता हुआ दीख पड़ा। उसने हम दोनों को एक बार फिरकर देखा और भूसे की बखार की ओर चल दिया।

×पथ्य।

तभी हमने देखा, हवेली के दरवाजे की ओर से बच्चाबाबू निकले और इसी दालान की ओर आने लगे। इस वक्त उनके पैरों में चाँदी की खूँटी लगी खड़ाऊँ थी। आधी धोती कमर में थी, आधी धोती कन्धे पर। ढीली जनेऊ ठेहुने तक लटक रही थी। हम दोनों ने खूब झुक-झुककर उनको सलाम किया। हमलोगों को देखते ही उनकी आँखें चढ़ गयीं।

"क्या है रे झगड़ुआ, तू बीमार है रे बेटीचोद?" छोटे सरकार ने घूरकर पूछा।

"जी, सरकार! बुखार से देह टूट गयी है।" बाबू बोले।

"हवड़ा की कमाई चुक गयी या अभी है गरमी?"

"सरकार, यहाँ से जाकर महीने रोज भी नीरोग न रहा। भागकर फिर आपलोगों की सरन में आना पड़ा।"

"बुखार है या जाड़ा भी लगता है?" बच्चाबाबू ने पूछा।

"जाड़ा और बुखार दोनों तामल-तुल हैं माई-बाप!"

इसी बीच खेलावन आकर बच्चाबाबू के पीछे खड़ा हो गया। बच्चाबाबू ने गरजकर पुकारा, खेलवना?"

"हुकुम मालिक!"

"अछैवरा को बुलाओ।"

खेलावन अछैवरा को बुलाने के लिए दौड़ा।

"अच्छा रह, तेरी दवा करा देता हूँ।" छोटे सरकार बोले।

"………।" हमलोगों ने सिर नीचे कर लिया।

"दरिआव में नहाने से बुखार नहीं छूटता, तेरा बुखार मैं छुड़वा देता हूँ।" बोले छोटे सरकार।

अब अछैवरा को साथ लिये खेलावन आकर हाजिर हो गया। छोटे सरकार कहने लगे, "मुझे सब कुछ मालूम है कि दरियाव-किनारे कबूतरी को जड़इया मिली थी। और, तुम्हारे लिए कहा था कि जब गंगाजी में स्नानकर मछली-भात खाओगे तो दुःख दूर हो जायगा।"

"खेलावन?" वे गरज पड़े।

"सरकार।" खेलावन और अछैवर दोनों उनके आगे आ गये।

"रस्सी ले आ। मोगली लगाकर उतार साले का बुखार।" सरकार ने कहा।

अछैवरा लपककर आगे बढ़ा और उसने बाबू को कसकर पकड़ लिया। खेलावन दौड़कर रस्सी ले आया। उसके आने में बहुत तनिक देर लगी। जैसे रस्सी पहले से ही इस काम के लिए कहीं रखी गयी थी। मैं तनिक हटकर खड़ा हो गया। रस्सी आ जाने पर एक ही लंगी में अछैवरा ने बाबू को जमीन पर गिरा दिया। जमीन बहुत कड़ी थी, कङ्कड़ी और खपड़ों के टुकड़े चारों ओर फैले थे। बाबू को जमीन पर पटक देने के बाद अछैवरा ने झुककर अपने दाहिने ठेहुने से बाबू की छाती को कसकर दबाया, फिर दोनों हाथ पकड़ लिये।

"अब क्या देखता है, मोगली चढ़ाओ।" बच्चाबाबू ने खेलावन से कहा।

छोटे सरकार के कहने पर खेलावन ने मूँज की दोहरी रस्सी से बाबू को मोगली चढ़ायी। पहले रस्सी के दोनों छोर को बाबू के पैर के अँगूठे में सरकफाँसी देकर फँसाया और उसकी गोलाई को गर्दन से लगा दिया। इसके बाद उसने दोनों हाथ कसकर बाँध दिये और तब बाबू की छाती, पैर, जाँध और पेट पर लात और घूँसे की मार पड़ने लगी।

"और मारो साले को....!" बच्चाबाबू बोले।

"अब नहीं सरकार....!" बाबू ने माफी माँगी।

"चुप रह साले....!"

मेरा मन घबड़ाने लगा। बाबू साइत यही खेल देखने के लिए मुझे अपने साथ ले आये थे। मैंने देखा, बच्चाबाबू की आँखें लाल हो गयी थीं। बाबू लोटपोटकर मार खा रहे थे। वे ज्यों-ज्यों मार खाते जाते, उनके मुँह से थूक और लार निकलता जाता था। उनके रोने की आवाज सुनकर उस ओर से मेरी माँ भी निकल पड़ी, जिस ओर ठाकुर के माल-जाल बाँधे जाते थे, जहाँ माँ गोबर के लोइये तैयार करती होती थी। मैंने देखा, माँ के हाथ में गोबर की लोइयों से भरी टोकरी थी, वह उन्हें पाथने जा रही थी। बाबू को उसने दूर से पहचान लिया, मगर मुँह से कुछ न बोल सकी और न हमलोगों के नजदीक आने की

हिम्मत हुई। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त माँ की आँखों से टप्-टप् लोर चलने लगा था और वह अपने मैले अँचरा से उन लोरों को पोंछती हुई गोबर पाथने लग गयी।

ऐसे ही माँ की ओर से आँखें फेरकर जब मैंने बाबू की ओर देखा, तो बाबू को अँगोछे में ही पेशाब हो रहा था। बच्चाबाबू ने खेलावन की ओर देखकर कहा, "अब ऐसे मारना छोड़ दे। साले को बेंत से पीट।"

तब बाबू को छोड़कर खेलावन बेंत लेने के लिए दौड़ा। इसी बीच अछैबरा ने फिर बाबू की छाती को ठेहुने से कसकर दबा दिया था और चारों ओर लोटने की वजह से बाबू की देह कई जगह छिल गयी थी। खेलावन जब लौटा, तो बेंतों की मार शुरू हुई। अब बाबू और भोंकर-भोंकर कर रोने लगे। बच्चाबाबू को तनिक भी दया नहीं आ रही थी। बाबू भी बोल रहे थे और बेंत भी बोल रही थी। बाबू कहते—आह! बेंत कहती—सट्!!

बेंत की चोट हर जगह खानी पड़ी। बाबू के कान और नाक से लहू बहने लगा। अपने लहू पर जब बाबू की नजर गयी, तो बोले, "अब छोड़ दीजिए सरकार, नहीं तो मर जाऊँगा।" और, तभी मुझे यह भी देखने का मौका मिला कि बाबू को उल्टी होने लगी। उन्होंने जो थोड़ी-सी खिचड़ी खायी थी, वह खिचड़ी उनकी छाती और गर्दन के चारों निकलकर फैल गयी। लेकिन बेंतों की मार अब भी बंद न हुई। अब मुझसे यह सब नहीं देखा जा सकता था। न-जानें, क्या सोचकर माँ ने इधर देखना ही बंद कर दिया था। वह चुपचाप गोबर पाथ रही थी। मुझसे जब न रहा गया, तो उल्टे पाँव पलानी की ओर भागा।

● ● ●

भादों का महीना था। गंगा नदी अरार के ऊपर चढ़ी आ रही थी। लोग कह रहे थे कि गंगा मइया अमिका भवानी से भेंट करने आ रही हैं। पानी जब तक मंदिर को छू नहीं लेगा, नहीं हटेगा। मालूम होता था, नदी उलट जायगी। अमिका भवानी के मन्दिर के तीन ओर पानी आ गया। अब पानी गाँव में भी घुसने लगा। बड़े जोरों की बाढ़ आयी। आस-पास के गाँव पानी से घिर गये। कुछ गाँवों के भीतर भी पोरसा-दो-पोरसा पानी समा गया। रेलवई पर भी पानी चढ़ गया। रेलगाड़ी बहुत मुश्किल से आ-जा पा रही थी। गाँवों में नावें चलनी लगीं। मालिक का मकान बहुत ऊँची जगह पर था। यहाँ पानी का अधिक खतरा नहीं था। मेरी पलानी भी इस बाढ़ में साफ हो गयी। जिस पुराने और कच्चे मकान में मालिक के माल-जाल बाँधे जाते थे, उसी मकान के एक ओसारे पर बच्चाबाबू ने हमलोगों को रहने का हुकुम दे दिया।

ओसारे के एक ही कोने में मेरे घर का सारा सामान अँट गया। सामान ही क्या था? अलमुनियम के थरिया, दो तसले, एक तसली, एक *डुम्मा और एक बाल्टी। जब मेरी पलानी में पानी समाने लगा, तब मैंने उसमें लगे हुए बाँस निकाल लिये। ओसारे के कोने से सटाकर ही, माँ ने पुआल बिछा दिया और पुआल इधर-उधर सिसककर नुकसान मत हो, इसलिए मैंने उसके तीन ओर सीधे बाँस बिछा दिये। अपनी पलानी में रहने पर मुझे सिर्फ कुट्टी काटने के लिए आना पड़ता। कुट्टी काटकर बारह-एक बजे तक लौट जाता था। मगर, अब यहाँ आने पर मैं चौबीस घंटे के लिए नौकर हो गया। माँ को भी बथान साफ करने और गोबर पाथने से फुर्सत नहीं मिलती थी। दम मारने के लिए ओसारे पर आ भी जाती, तो अन्दर से रामभजन की माँ आँगन का नाला साफ करवाने के लिए, बुलाकर ले जाती थी! फिर गोंसार को फोंकने की तो ठेकेदारी थी ही। इस काम के बदले माँ की मजदूरी में कुछ तरक्की नहीं हुई थी!

*कटोरा।

मैं पहले बतला चुका हूँ कि हराजी गाँव में भी ठाकुर के खेत थे। बाढ़ के इन्हीं दिनों में, गंदे पानी में, हराजी गाँव के बधार में, जो यहाँ से दो-तीन मील की दूरी पर था, माल-जाल के खिलाने के लिए मसुरिया काटकर ले आना पड़ता था। खूब भोरे उठकर, कमर में हँसुआ और रस्सी बाँधकर, जो पानी में कूदता, सो फिर ऊपरी बेला आता था। रेलवई पार करके आने पर, बाढ़ की हालत और भी खतरनाक दीख पड़ती थी। पानी में डोंर साँप और बिच्छू ×पँवर रहे थे। मैंने सुन रखा था कि डोंर साँप काटते नहीं, इसलिए डर कम लगता था। मगर जब आम और महुआ के पेड़ की डालियों में गेहुअन साँपों को चिपका देखता, तो अकल गुम होने लगती थी। कभी किसी ओर से मरी हुई बकरी बहकर आती दीखती, कभी पारी, कभी बाछे, कभी छप्पड़, कभी सन्दूक और कभी चिथड़े। कभी देखता, लोग पेड़ की डाली पर बैठकर पैखाना फिर रहे हैं। तैयार हुई भदई की फसल मारी गयी थी। हाथ-हाथ-भर के मकई के बाल पानी में डूबकर सड़ रहे थे। ठाकुर के खेत भी डूब चुके थे। बधार में पहुँचने पर मैं कमर से हँसुआ निकालता और डुबकी मार-मारकर मसुरिया काटने लगता था। इन दिनों हर रोज रात में देह गर्म हो आती और किसी और काम से फुर्सत निकालकर भी देह को खुजलाना पड़ता था। बड़ी नोचनी बरती थी।

इस ओसारे पर आकर रह जाने के कारण अढ़ैवरा भी काम करने से जी चुराने लगा था। बाढ़ का पानी नाच-नाचकर बहता। मैं मसुरिया के बोझे को आगे की ओर धकेलता हुआ आता था। पैर में जब कभी जोंक सट जाते, तो जानकार भी उन्हें पैर से नोंचकर फेंकते नहीं बनता था। वजह यह थी कि मसुरिया के बोझ को तनिक भी छोड़ देने पर वह इधर-उधर बह जाता और बहता तो बहुत फुर्ती के साथ। फिर उसे पकड़ने में दूनी मिहनत लगती। मैं हाँफ जाता था। इस काम के बदले में रामभजन की माँ मेरी दादी के हाथ पर मकई की दो रोटियाँ, जूठी तरकारी के साथ रख जाती थी। एक बार ऐसे ही मसुरिया काटने में बायें हाथ में हँसुआ लग गया। मगर बच्चाबाबू नहीं पतिआये।

×तैरना।

"आँख रहते तू अंधों-सा काम करता है।" वे बोले।

"सरकार, कमर-भर पानी में डूबकर काटना हो, तो कोई बात नहीं। वहाँ तो भर-छाती पानी है।" मैं बोला।

"हाथ का अन्दाज रख। छाती-भर पानी है, तो क्या? इतना भी अन्दाज नहीं कि हाथ कहाँ है और हँसुआ कहाँ है?"

"अन्दाज से तो काटना ही होता है माई-बाप!" मैंने कहा।

"तो फिर हाथ कैसे काट लिया? झूठा, बदमाश कहीं का! अन्धेरे में खाने को मिले तो मुँह सूझेगा?" उन्होंने डाँटा।

बच्चाबाबू की दलील के आगे मैं चुप रह गया। वैसा ही हाथ लिये मुझे फिर मसुरिया के लिए जाना ही पड़ा। देह की मोचनी तो नहीं ही कम हुई थी, आज माथे में जोरों का दर्द भी हो आया था। तेल-नीमक रखने के लिए ठकुराइन ने बिस्कुट और तेल के डिब्बे दिये थे। मेरे माथे में सरसों का तेल ठोंकने के लिए माँ और दादी छटपटाकर रह गयीं, मगर तेल का एक *ठोप भी न मिला। दर्द के मारे मेरी आँखों के आगे अन्हरिया छा रही थी। दादी मेरे माथे को दबा रही थी और न जानें क्यों, माँ दौड़कर उस ओर जाती, जिधर कल-परसों की बीआई हुई गाय बँधी थी और फिर दौड़कर मेरे पास चली आती थी।

"काहे रे झगड़ू या बहू, कहाँ दचड़-धुप रही है?" मेरी दादी ने माँ से पूछा।

"एक जुगुत है माँ!" माँ ने कहा।

"क्या? कह।" दादी ने पूछा।

"मगर कोई देख लेगा, तो?"

"कह भी तो, क्या जुगुत है?" दादी ने पूछा।

"ललकी गाय बीआई है न·······।"

"हाँ।" दादी बीच ही में बोली।

"उसके सींग और माथे में लगाने के लिए सरसों का तेल ढकनी में रखा हुआ है।

---

*बूँद।

"कहाँ ?"

"जहाँ ललकी गाय बँधी है। लगाकर अछँवरा ने वहीं रख दिया है।"

"हूँ....।" दादी कुछ सोचने लगी।

"उसी में से ले आऊँ ?"

"ले आओ, मगर इधर-उधर *हुलुक लेना।"

"अच्छा।"

"मैं पुआल पर पड़ा-पड़ा सब सुन रहा था। माँ और दादी के विचार से मैं डर गया। मैंने दादी और माँ दोनों को देखकर कहा, "ना, छोड़ दो। किसी ने देख लिया तो, बड़ा बुरा होगा।"

"दर्द से मर रहा है, सो अच्छा है ?" दादी ने कहा।

"यही अच्छा है, छोड़ दो।"

"अच्छा, रहो, मैं माँगकर ले आती हूँ।" कहकर माँ ने अलमुनियम का कलछुल उठा लिया। मेरे माथे का दर्द बढ़ा जा रहा था। तकलीफ के मारे मैंने आँखें बंद कर लीं। दादी पहले की तरह मेरा माथा दबाती रही। आँखें बंद किये-किये ही मैं कभी-कभी अपनी देह नोच ले रहा था। माँ तेल माँगने के लिए चली गयी थी। मगर माँ के जाने के दस मिनट बाद ही बथान में रामभजन की माँ के गाली बकने की आवाज सुनायी पड़ी।

"चोरिनी कहीं की ! छिनार, भतरा चिबउनी !! भला, गाय-गोहार का तेल चुरा रही है ? छि:-छि: ! चल-चल, आज तुमको बिना छिला हुआ बाँस घँसवाती हूँ। छिनार मरवनों !"

रामभजन की माँ जोर-जोर से गाली बकने लगी थी। मैं उठकर बैठ गया। मैंने अंदाज लगाया कि माँ तेल माँगने नहीं, बथान में तेल चुराने चली गयी थी। और, तभी मैंने देखा कि वह मेरी माँ को घसीटती हुई लिये आ रही है। मैं दौड़कर ओसारे पर से नीचे उतर गया। दादी ढिबरी लेकर मेरे पीछे आयी। पास पहुँचने पर रामभजन की माँ हमलोगों को भी गाली देने लगी। मेरी माँ अलमुनियम के कलछुल में सचमुच तेल चुराये हुई थी। मेरे माथे का दर्द तो

*देख लेना।

और बढ़ ही गया, मेरी घबड़ाहट का कोई ठिकाना न रहा। इस समय रामभजन की माँ की आँखें किसी चुड़ैल से कम खतरनाक नहीं जान पड़ती थीं। मैंने कहा, "जाने दो रामभजन की माँ, इस बार बचा दो।"

"हाँ बेटी! देखो न तेल के बिना तुम्हारा भतीजा माथे के दर्द से मरा जा रहा है।" दादी ने कहा।

"चुप रह। चमाइन-दुसाधिन मेरी माँ-पीतिआइन बनने आयी है। मैं तुम्हारी कैसी बेटी हूँ और यह चोर मंगरुआ मेरा कैसा भतीजा है? हमलोग जिसका नीमक खाते हैं, उसके नीमक का सँरियत देते हैं। जाने कैसे दूँ, यह एक दिन की बात तो नहीं है। आज तेल चुराया, कल बर्तन चुरायेगी, परसों रुपये-पैसे चुरायेगी। आँगन-हवेली की बात है, चौथे रोज गहना-गुड़िया उठा लेगी, तो बीच में पीसे जायेंगे हमलोग दाई-नौकर। चल, यहाँ क्या खड़ी है.......।" कहकर रामभजन की माँ ने मेरी माँ के गाल पर दो थप्पड़ लगा दिये। मैं कुछ बोल न सका। हाँ, दूसरे रोज ठकुराइन ने माँ को झाड़ू से पीटा और माँग में राख भरकर माफी दे दी थी। उस रोज दादी बहुत रोई थी।

तीन-चार महीने बाद बाढ़ का पानी सूख सका। गाँवों में बड़ा अकाल पड़ा। अलुआ-गजरा खा-खाकर लोग दिन काटने लगे। इसी समय सुना कि रेलवे के अफसरों ने ऐसा पता लगाया है कि दिघवारा से संठा टीसन के बीच की रेलवई बाढ़के पानी से खराब हो गयी है और जमीन भीतर से इतनी गीली हो गयी है कि रेलवई के धँस जाने का डर है। गंगा नदी का कटाव उत्तर की ओर बढ़ता जा रहा था। दस-पंद्रह रोज के बाद से ही ठेलागाड़ी पर रेलवे के अफसर लोग आये और आमीहराजी के बीच से जो रेलवई गयी थी, उसे उत्तर की ओर ले चलने के लिए, आमी के सेवान से बहुत उत्तर की ओर बढ़कर जमीन नापने लगे। अफसर लोग कनटोप लगाये हुए थे। जमीन की नपाई शुरू हो गयी। चूने से चिह्न लगाया जाने लगा, खूँटे गाड़े जाने लगे। जमीन नापने और जमीन की सिधाई-टेढ़ाई देखने लिए वे लोग तरह-तरह के *जंतर ले आये थे। उन अफसरों और जंतरों को देखने के लिए गाँव के लड़कों की भीड़ उनके पीछे-

पीछे बहुत दूर तक चली जाती थी। कभी-कभी बच्चों की भीड़ में दो-एक कुत्ते भी होते थे।

गाँव में इस बात का बड़ा शोर हुआ। जिसकी जमीन ली गयी है, उसे खूब रुपया मिलेगा। सुना कि ठाकुर के बेटे बच्चाबाबू से एक अफसर ने यह भी कहा कि गाँव में जितने लोग बेकार हैं, उन सबों को रेलवे में काम दिया जायगा। लेकिन, जमीन की नपाई हो जाने के एक महीना बाद तक, फिर कुछ पता न चला। एकाएक देखा कि रेलवई बनने लगी। न जाने, कहाँ से हजारों मजदूर आ गये थे। लाइन बनाने लायक जगह छोड़कर दोनों ओर से माटी खोदी जा रही थी। सुना कि पैंतालीस फुट माटी ऊपर उठ जाने के बाद उस पर रेल की पटरी बिछेगी। दूसरे रोज से मेरे गाँव के अलावा चारों ओर के गाँव से लोग काम करने के लिए दौड़ने लगे। काम करनेवालों की भीड़ अलग, देखनेवालों का दल अलग। तीसरे रोज जाकर, माटी ढोने के काम में मैं भी बहाल हो गया।

बाढ़ का पानी सूख जाने के बाद खेखर काका की मदद से मैंने फिर पहली ही जगह पर पलानी खड़ी कर ली थी। मगर, यह पलानी पहली पलानी से ज्यादा कमजोर तैयार हुई थी। माटी ढोने का काम ठीके पर का था। दस-इगारह बजे तक ठाकुर के यहाँ बेगार खटकर माटी ढोने चला जाता। दो बजे तक माँ भी आती। साँझ होते-होते माटी ढोने का काम बंद हो जाता। हजारों मजूर जुटे हुए थे। मजूरी के लिए कुछ पैसा तय नहीं था। टीले की ऊँचाई पर, जहाँ माटी गिरानी पड़ती थी, वहाँ ठीकेदार का आदमी बड़े-बड़े बोरों में कउड़ी भरकर बैठा रहता। एक टोकरी माटी लाकर गिराने पर वह एक मजूर को एक गंडा कउड़ी देता। उसे हमलोग गमछे का झोला बनाकर उसमें बटोरते जाते थे। साँझ को जब काम खतम होने लगता, तो उन कउड़ियों को वही आदमी गिनती करके हमसे वापस ले लेता था। साठ गंडा कउड़ी पर एक आना पैसा के हिसाब से मजूरी होती और उसी हिसाब को ठीकेदार का मोनसी एक कागज पर माटी ढोनेवाले के नाम से लिख लेता था। मतलब साठ टोकरी माटी ढोआई की मजूरी चार

*यंत्र।

पैसे होते थे। माटी की टोकरी करीब सौ-डेढ़ सौ कदम की दूरी से लाकर बीस फुट, पचीस फुट, तीस फुट ऐसे ही चालीस,बेआलिस फुट की ऊँचाई पर चढ़कर माटी गिरानी पड़ती थी। माटी से भरी टोकरी ऊपर लेकर चढ़ते समय लगता था, जैसे गर्दन अब टूटकर ही रहेगी। कभी-कभी कउड़ी देनेवाला जवान मजूरिनों से बातें करने में उलझ जाता।

"कउड़ी दो बाबू!"

"मैं जैसे कहता हूँ, वैसे मन लगाकर काम करो। पैसा तो हाथ का मैल है।" कउड़ी बाँटनेवाला जवान मजूरिन से कहता।

"कउड़ी दो बाबू!"

"चुप रह साले, क्या बक-बक करता है?" वह हमलोगों से कहता।

"कउड़ी चाहिए सरकार, माटी गिरा दिया।"

"तू बड़ा बदमाश है। आधी-आधी टोकरी माटी ले आता है और कउड़ी के लिए छाती पर सवार हो जाता है। जा, अब से तुम्हें हर खेवे में तीन कउड़ी दूँगा। पाँच सेर माटी लेकर पटक देता है और"''''वह बिगड़ता था।

इस तरह कुछ समय माटी ले आने में बीतता और कुछ समय कउड़ी माँगने में। मैंने कई बार देखा कि जिस जवान मजूरिन से कउड़ी बाँटनेवाला हँसा-बोला करता था, उसके खोंइछे में जान-बूझकर चार की जगह छः कउड़ियाँ डाल देता था। और, वह मजूरिन मचलती हुई टोकरी लेकर उतरने लगती थी। जवान और बूढ़ों के अलावे छोटे-छोटे बच्चे भी माटी ढो रहे थे। मगर, उन बच्चों को सयानों से बहुत ही सस्ता रेट मिलता था।

इस भीड़ के एक ओर सत्तू और भूँजा की दूकानें बन गयी थीं। ऐसी दूकानों के लिए न तो कोई मकान बना था और न कोई मामूली किस्म की पलानी ही गिरी थी। दूकान करनेवालों ने मोनसी को कुछ पैसे देकर माटी के ढेलों का चबूतरा बना लिया था। वे उसी चबूतरे पर सत्तू, मिरचाई और चटनी लेकर बैठते। भूँजे की दूकान भी ऐसे ही चलने लगी। दिन में, एक-दो बजे तो सत्तू की दूकान पर ऐसी भीड़ लगती, जैसे गरमी के दिनों में दूकानदार पनसाला चलाता रहा हो। पाव-पावभर सत्तू तौलने में दूकानदार परेशान हो उठता। मगर ग्राहकों की

की ओर लचल-ललचकर देखा करते थे। वे रोते हुए माटी ढोते और उनकी आँखों के लोर गालों से होते हुए उनकी गर्दन पर आकर फैल जाते थे।

हाँ, बच्चाबाबू ने बाबू को जी भरकर पिटवाया। पीछे पता लगा था कि अछँवरा ने खुद बच्चाबाबू से सारी बातें कह दी थीं। दरियाव-किनारे जड़इया महारानी में भेंट होने की बात को ठाकुर और मोनसोजी पतिया गये, मगर बच्चाबाबू शहर में रहकर बहुत अंगरेजी पढ़ आये थे। सो, वे नहीं पतिआये। उनके दरवाजे पर से आकर बाबू चार रोज तक कँहरते रहे। अच्छी तरह चल-फिर नहीं सकते थे। कान और नाक से खून का आना सातवें रोज बंद हुआ। मैं कुट्टी काटने रोज जाता था। माँ भी गोबर पाथने से इन्कार नहीं कर सकती थी। दसवें रोज बाबू जरा टनमनाये। खेंखर काका भी मेरे यहाँ आये थे। उनसे बाबू ने कहा, "अब इस गाँव में रहना अकारथ है, खेंखर भाई!"

"दूसरे गाँव में जाकर क्या करोगे, पैसेवाले का हर जगह राज है। सुराज, सुराज हल्ला हो रहा है। सुना है, जब गांही बाबा का राज हो जायगा, तब जिमदारी खतम हो जायगी। तब की बात दूसरी होगी।" बोले खेंखर काका।

"सो तो ठीक कहते हो खेंखर भाई!"

"अब रामजी की दया से मंगरुआ भी कमाने-खाने लायक हो चला है। अभी कलकत्ते चले जाओ और जोगार में लगे रहो। जहाँ मंगरुआ के लायक कोई काम नजर आवे कि बस चिट्ठी भेजकर इसे बुला लेना।" खेंखर काका ने सलाह दी।

"तुम ठीक कहते हो।" तब बाबू बोले।

बाबू दूसरे रोज रात की गाड़ी से कलकत्ते चले गये। तब से उनकी चार-पाँच चिट्ठियाँ आयीं। दस-दस रुपये करके तीन बार में अब तक तीस रुपये भेज चुके थे। अपनी चिट्ठियों में गाँव पर आने की कोई चर्चा नहीं की थी। तब के जमाने में अपनी ओर से चिट्ठी में माँ अपने पेट में बच्चा रहने की बात नहीं लिखवा सकती थी। लिखनेवाला तो खुद भी हँसता, राम राम! दादी की आँखें धीरे-धीरे जवाब दे रही थीं। हाथ काँपने लगे थे। इसलिए माटी ढोने का काम उससे नहीं हो सकता था। रेलवई की माटी जब पैंतालीस फुट ऊपर चढ़ गयी,

सो उस पर लोहे की पटरियाँ बिछायी जाने लगीं और हमारे सरीखे माटी ढोने-वाले हजारों लोग चौबीस घण्टे के अंदर बिना रोजी के हो गये। इनमें बहुत ऐसे भी थे जिनके पास दो, चार और दस कट्ठा खेत भी था। मगर अब तो वे खेत लाइन के नीचे दब गये थे। जब रेल की पटरियाँ बिछ गयीं और पटरियों के दोनों ओर गिट्टी और पत्थर गिराये जाने लगे, तब उन पटरियों पर पत्थर और मिट्टी गिरानेवाली मुंडा मालगाड़ी चलने लगी। हमलोग उस वक्त ऐसी मालगाड़ी को 'बालिश टेन' कहते थे।

अब जिन लोगों का खेत रेलवे ने ले लिया था, उन लोगों को रेलवे की ओर से रुपये मिलने की बारी आयी। हराजी गाँव के पच्छिम ओर के बगीचे में अफसरों का शामियाना गड़ गया। पंद्रह-बीस शामियाने थे। दो शामियाने में बंदूक-वाले सिपाही भी थे। ऐसी बंदूक मैंने यहाँ पहली बार देखी। गाँव में एक ठाकुर के घर ही बंदूक थी। मगर वह छोटी थी और दूसरे किस्म की। इन बंदूकों के मुँह पर तो बड़ा-सा छूरा भी लगा था। सुना कि सरकार ने खेत के झगड़े को सुलझाने और सरकारी कागज को पक्का कराने के लिए एक बड़ा अफसर भी भेज दिया है। उस अफसर को गँवार लोग 'हाकिम' और बाबूलोग 'डिप्टी' कहा करते थे। शामियाने में दिनभर खेतवालों की भीड़ लगी होती। गमछे में लोग खतियान और दस्तावेज बाँधे पहुँचते थे। तमाशा देखने के लिए मैं भी उस भीड़ में शामिल हो लेता था। हाकिम कुर्सी पर बैठते थे। उनके आस-पास खजांची बाबू और बहुत-से छोटे छोटे अफसर होते। हाकिम का चेहरा-मोहरा देखते ही बनता था। लोग उनके पास डर के मारे खँखरते तक नहीं थे। उनके आगे चौड़ी टेबुल पर नोटों से भरा बक्स रखा रहता था। और पास ही दो सिपाही बंदूक लिये खड़े रहते थे। सिपाही जिस शामियाने में रहते थे, उनमें तो बहुत-सी बंदूकें थीं और वहाँ भी एक सिपाही बंदूक ताने खड़ा रहता था। उतने रुपये देखकर मेरे मन में बड़ा अचरज होता कि बाप रे, इतने रुपये कहाँ से आते हैं! मैं उस हाकिम को देवता ही समझ रहा था। गाँव के बहुत-से लड़के भी बंदूक देखने जाते थे।

एक दिन की बात है। मैं यहीं तमाशा देखकर हराजी से लौट रहा था। मगर, गाँव के बाहर-बाहर नयी लाइन देखता हुआ आ रहा था। इसी ओर मेरा तीन कट्ठा

खेत था, जिसे बच्चाबाबू ने दिलवाया था। दादा के खून की कीमत ! जान देने की यादगारी ! बाबू तो कलकत्ते भाग गये थे। यह खेत ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था। इधर आकर मैंने देखा कि वह खेत लाइन के घेरे में आ गया है। उसके डँरेर पर पत्थर का खम्भा गाड़ा हुआ है और वह खेत पोरसा-भर गहरा बना दिया गया है। इस ओर की लाइन में इस खेत से भी माटी ली गयी थी। घर आकर मैंने दादी से यह बात कही।

"सच रे मंगरू, तूने देखा है ?" माँ ने पूछा।

"हाँ।" मैं बोला।

"तब ?"

"तब क्या, उसका दाम हमलोगों को मिलेगा।" मैंने कहा।

"तुमने किसी से पूछा है ?" दादी ने पूछा।

हाँ, एक दोस्त से पूछा है। जिसका खेत है, रुपये उसे ही मिलेंगे।" मैंने बतलाया।

अब मुझे एक बहन भी हो चुकी थी। अभी वह एक महीने की थी। इसी समय पटने से मामू आये। माँ ने जब मेरी बहन को उनकी गोदी में दिया, तो मामू ने मेरी बहन के हाथ में एक दुअन्नी पकड़ा दी। उस दुअन्नी को माँ ने रख लिया। बहन दुअन्नी कैसे संभालती ? मामू ने यह दुअन्नी मुँहदेखायी में दी थी। मैंने मामू से बतला दिया कि मेरा तीन कट्ठा खेत रेलवई में पड़ा है—दादा-वाला।

"रुपये मिल गये ?" मामू ने पूछा।

"नहीं।" मैंने कहा।

"तो ?" मामू ने पूछा। मैं चुप रहा।

हमलोग मामू-भगीना पलानी के बाहर बैठकर बातें कर रहे थे कि इसी बीच खेंखर काका आ गये। मामू ने खेंखर काका को देखकर 'जयरामजी की' किया। काका टाट पर आकर बैठ गये। खेत की बात चल पड़ी।

"खेत तो तुम्हारा पड़ा ही है।" खेंखर काका बोले।

"रुपये तो मिलेंगे न पाहुन ?" मामू ने खेंखर काका से पूछा।

"क्यों नहीं, तीन कट्ठा है। तीन बीस से क्या कम मिलेगा ?" खेंखर काका बोले।

सलाह हुई कि झूलन बाबाजी को लेकर हाकिम के पास चला जाये। मगर, झूलन बाबाजी ने चलने से साफ इन्कार कर दिया। पूछा, "तुम्हारे पास सबूत के लिए कुछ कागज-पत्तर है ?"

"नहीं।" मैंने कहा।

"फिर कैसे चलोगे ?"

"यह तो सब कोई जानता है कि तीन कट्ठा खेत बच्चाबाबू ने झगड़ू पाहुन को दिया था।" मामू बोले।

"उससे क्या ? लिखतंग के आगे बकतंग कुछ काम नहीं करेगा।" झूलन बाबाजी बोले।

"दो-चार आदमी गोआही दें, तब ?" खेंखर काका ने पूछा।

"बच्चाबाबू के बरखिलाफ में गवाही कौन देगा ?" झूलन बाबाजी ने पूछा।

उनकी यह बात सुनकर हमलोग चुप हो गये। तय यह हुआ कि बच्चाबाबू से ही यह काम होगा। उन्ही से चलकर कहा जाये। मगर बच्चाबाबू से चलकर इस बात को कहेगा कौन ? इसके लिए न तो मामू तैयार हुए और न खेंखर काका।

"आप ही चलिए न बाबाजी ! हमलोगों से तो कहते न बनेगा।" मामू ने कहा।

"ठीक है, मैं तुम्हारा काम कर दूँगा। मगर, मेरा भी काम कर दो।"

"इसके लिए तो हरदम तैयार है, सरकार !" मामू बोले।

"डीह पर का सतकठवा खेत कोर-बना दो। बच्चाबाबू को तो जहाँ दो चार कसकर समझाया कि फिर वे दाँत नहीं हिलायेंगे।"

"अच्छा सरकार, मामू-भगीना मिलकर दो रोज में कर देंगे।" मामू ने कहा।

"तो मैं भी चलकर कह-सुन दूँगा।" बाबाजी ने कहा।

मैं, मामू और खेंखर काका इमली के पेड़ के पास बैठ गये। उसी इमली के पेड़ के पास, जिसके नीचे बाबू पीटे गये थे। झूलन बाबाजी लपककर बच्चा-बाबू की बैठकी की ओर बढ़े। कहा, "इशारा करूँगा तो तुमलोग चले आना।" बहुत थोड़ी देर राह देखनी पड़ी। खेलावन ने आकर हमलोगों से कहा, "जाओ, मालिक बुला रहे हैं।"

बैठकी उत्तर की ओर थी, बहुत ऊँची। ऊपर चढ़ने के लिए चार सीढ़ियाँ थीं। जाकर हमलोगों ने झुक-झुककर बच्चाबाबू को सलाम किया और ओटा से नीचे ही खड़े हो गये। झूलन बाबाजी ने हमलोगों के सामने सारी बातें समझा-कर बच्चाबाबू से कहीं। बच्चाबाबू खिसियाये नहीं। वे बड़े प्रसन्न होकर बोले, "मंगरुआ का ब्याह हो जाये, तो मुझे भी खुशी ही होगी। लेकिन, आप तो जानते हैं बाबाजी कि अभी उस खेत के रुपये नहीं मिले हैं, हाँ मिलेंगे जरूर। जब मैंने वह खेत दे दिया, तो उस खेत के रुपये देने में मैं क्यों आगा-पीछा करूँगा? ब्याह का काम शुरू भी तो हो।"

"बस, बस, सरकार की ही दी हुई रोटी तो हमलोग खा रहे हैं।" इतना कहकर मामू और खेंखर काका ने अहसान जाहिर किया। पीछे उनको सलाम करके खेंखर काका और मामू चले आये और मैं फुलवारी में पानी पटाने के लिए पकड़ा गया। मुझे बथान से छुतिहर घइला लेकर गंगाजी चला जाना पड़ा। हाँ, जब झूलन बाबाजी लौटने लगे, तो उनको बच्चाबाबू ने एक सेर बसमत्ती चाउर, पावभर मूंग की दाल, हरदी, दूब और नीमक छूकर दिया था। छुतिहर घइला लेकर पानी के लिए जब मैं गंगाजी की ओर चला, तो मैं यही सोच रहा था कि ब्याह होने पर जब मेरी औरत मेरे माथे में इतने बड़े-बड़े बाल देखेगी, तो क्या पूछेगी, "तुम नाच में रहते हो न?"



बच्चाबाबू से रुपये के बारे में बात हो लेने के दूसरे दिन मामू फकुली चले गये। फकुली उनका अपना घर था। मेरी माँ की नइहर, जाते वक्त खेंखर काका से कह गये कि वे लड़की पटियाने जा रहे हैं। झूलन बाबाजी से एक चिट्ठी लिखवाकर बाबू को बुलाया गया। तीसरे रोज मामू लड़की के बाप को लेकर आये। मैं करीब बारह बजे मालिक के यहाँ से कुट्टी काटकर लौट रहा था। अपनी पलानी में पहुँचने के पहले खेंखर काका मिल गये। उन्होंने मुझे बुलाया, "अरे मंगरुआ ?"

"क्या है, खेंखर काका!"

"सुन, सुन। इधर आ।"

मैं खेंखर काका के पास चला आया। वे बोले, "मालिक के यहाँ से आ रहा है न, ऐसे घर मत जा।"

"क्या बात है?"

"फकुली से तेरे मामू कुटुम ले आये हैं। यहीं ठहरकर जरा मुँह-कान पोंछ ले। केश में ककहा कर ले और टिपुआ का एक पुराना कुरता घर में पड़ा है। जा, उसकी घरवाली से माँगकर पहन ले।" खेंखर काका बोले ?"

टीपू भाई खेंखर काका के बेटा थे। मैं उनकी औरत को 'भउजी' कहता था। खेंखर काका की बात सुनकर मुझे खुशी तो हुई, मगर मैं उनके सामने लजा भी गया। इसलिए मैं चुपचाप खड़ा उनका मुँह देखता रहा और जान-बूझकर पूछा, "कैसा कुटुम ले आये हैं मामू, तुम्हें कुछ मालूम है काका ?"

"धत् ससुरा, तेरी माँ के साथ बान्हो! अपने बाप से ही अंठियाता है ? अरे तेरा अगुआ आया है। जा जा, जरा बन-सोन ले। देर मत करना। तू आ पीछे से, मैं तुम्हारे ही यहाँ चलता हूँ" वे बोले।

"अच्छा।"

खेंखर काका की ऐसी बातें सुनकर मुझे हँसी आ गयी। मैं लजाता हुआ खेंखर काका के घर में घुसा। टीपू भाई की औरत को देखा, वह बर्तन माँज रही थी। वह मेरे कुछ भी बोलने के पहले मुस्कुरा पड़ी।

"भउजी ?" मैंने कहा।

"अब भला तुम भउजी को पूछोगे मंगरू ?"

"क्यों ?"

"मुझसे ही छँवड़खेल मत खेलो मंगरू ! मुझे तो सब मालूम है। मेरी गोतनी आ रही है न ! फकुली की बेटी होगी। सुना है, वहाँ आम का बगइचा है। आम के बगइचे में खेली-खायी होगी बेचारी।" भउजी बोली। बातें करने में मैं वह बहुत मुँहफट थी। हाँ, उसके दिल में तनिक भी काला नहीं रहता था। जो कुछ कहना होता था, मुँह पर कह दिया करती। मुझे अपने ही देवर की तरह मानती थी। टीपू भाई कानपुर में नौकरी करते थे। छुट्टी में कभी-कभी आते, तो मुझे खूब ताड़ी पिलाते थे। बीड़ी पीना मैंने उन्हीं से सीखा। जब कभी मैं उनसे कहता, "जरा एक बीड़ी निकालो टीपू भाई !"

"मेरे पास बीड़ी नहीं, खाकी सिगरेट है।" वे कहते और कुरते की जेब से झट एक बीड़ी निकालकर मुझे दे देते थे।

टीपू भाई-बहू भउजी को सिर्फ एक लड़का हुआ था। जो पैदा होने के एक महीना बाद ही झुक गया। तब से अब तक कोई बच्चा नहीं हुआ। देह-हाथ से अच्छा पोटगर थी। गले में चाँदी की हँसुली थी। दोनों कलाई में पहुँची। उस पर भी आध-आध बाँह लहठी पहनती थी। टीपू भाई कानपुर से आते, तो खूब सँवारकर जूड़े बाँधती और एकदम टहकार सेनुर से माँग भरती थी।

"जरा एक लोटा पानी देना भउजी।" मैंने टीपू-बहू भउजी से कहा।

"क्या करोगे, पियोगे ?"

"ना, हाथ-मुँह धोऊँगा।"

"अच्छा, ठहरो।" कहकर भउजी ने एक लोटा पानी मेरे आगे रख दिया। मेरी कमर में सिर्फ एक अढ़ाई गज की मैली धोती थी। देह में गंजी या कुरता

कुछ नहीं। पानी से मैंने हाथ-मुंह धोया और सिर से गमछा उतारकर मुंह-कान पोंछ लिये। इसके बाद मैंने भउजी से कहा, "जरा ककहा देना।"

भउजी के पास एक लकड़ी का ककहा था। उसने ककहा लाकर मेरे हाथ में रख दिया और बोली, "इससे मैं भी केश झाड़ती हूँ। यह ककहा मेरी नइहर का है। तुम्हारे भइया से कई बार कहा कि परदेश की ×चिन्हांसी एक ककहा लेते आओगे। मगर वे कहां ले आये।"

भउजी ने मुझे कुरता दे दिया। कुरता पहनकर मैं अपनी पलानी के दरवाजे पर आ गया। देखा, बाहर मामू के साथ खेंखर काका बैठे हैं। एक और अधेड़ आदमी बैठा हुआ था, जिसे देखकर मैंने अंदाज लगाया कि यही कुटुम है।

"आओ, बैठो मंगरू।" मुझे देखकर खेंखर काका बोले।

मैं उन लोगों के पास जाकर बैठ गया, मगर टाट पर नहीं, नीचे ही जमीन पर। मामू बोले, "बैठ न यहां, टाट पर। नीचे क्यों बैठता है? इतनी देर क्या हाकिम के पास ही रह गया?"

"बड़ा लेहाजु है, हमलोगों के साथ बैठते तो इसकी नानी मरती है।" कुटुम की ओर देखकर खेंखर काका ने कहा।

"हाकिम के यहां? कुटुम को अचरज हुआ।

"हां, हाकिम के यहां। खेत का दाम मिलनेवाला है न।" मामू बोले।

"कितना खेत है?" कुटुम ने पूछा।

"यही दो-अढ़ाई विगहा है? खेंखर काका ने जवाब दिया।

मैं अब तक खिसककर टाट पर आ गया था। खेंखर काका का जवाब सुनकर मैंने देखा, कुटुम बहुत खुश हो गया। उसने कहा, "तब तो अच्छा दाम मिलेगा।"

"हां, आज जिसके पास दो कट्ठे खेत है, वही आदमी है।" खेंखर काका बोले।

"इसका जो दाम मिलेगा, उससे दूसरा खेत ले लिया जायगा।" मामू बोले।

× चिह्न।

"ठीक है, घर में रहने से रुपये खर्च हो जाते हैं। पैसे को तो हाथ-पैर होते हैं।" कुटुम बोला।

"अच्छा मंगरू, अब तुम जाओ। खाओ-पीओ।" मामू बोले।

मैं अब पलानी में आ गया। न जानें, दादी कहाँ से चावल ले आयी थी। उसने खाने के लिए मेरे आगे दाल, भात और टमाटर की चटनी रख दी। मैंने पूछा, यह सब कहाँ से ले आयी ?"

"तेरे मामू ने पैसे दिये थे। कुटुम को जो खिलाना था।"

"यह कुटुम कौन है ?"

"लड़की का बाप।" दादी बोली।

मैं इस बार फिर लजा गया था। भोजन करके मैं पलानी से बाहर नहीं निकला। भीतर ही सोने की तैयारी करने लगा। नींद नहीं आ रही थी। मन में हुदबुदी लगी थी, मैं लड़की के बाप को पसंद आया या नहीं! तभी खेंखर काका ने पुकारा, "मंगरुआ ?"

"आँयँ....!" मैं अंदर से बोला।

"इधर आ रे, भीतर क्या बैठ गया !" मामू की आवाज आयी। बाहर निकलते वक्त दादी बोली, "लड़की का बाप कुछ हाथ में दे, तो पयलगी कर लेना।" मैंने जल्दबाजी में कहा था, "अच्छा।"

"क्या है मामू ?" बाहर आकर मैंने मामू से पूछा।

"इधर आ, बैठ।" खेंखर काका बोले।

मैं आगे बढ़कर टाट के एक कोने बैठ गया। मामू बोले, "पुरुब की ओर मुँह करके बैठ।" मैं पूरब की ओर होकर बैठ गया। खेंखर काका ने तब कुटुम से कहा "बस लड़का छेंक दो। अमिका भवानी चाहेंगी तो दो-चार रोज में झगड़ू भा भी आ जायेंगे। पुरोहित गाँव के हैं। लगनपाती दिखला लिया जायगा।"

"हाँ, सुना है कि झूलन बाबाजी अच्छा लगन देखते हैं।" मामू बोले। त मैं जरा और सम्हलकर बैठ रहा। अब मेरे होनेवाले ससुर मेरे सामने आक बैठ गये और मेरे हाथ में एक चाँदी का रुपया रख दिया। दादी ने पहले सिखला दिया था। झुककर मैंने उसके पाँव छू लिये। इसके बाद वहाँ से उठ

मैं फिर पलानी में चला आया और जरा आड़ में दबकर इन लोगों की बातें सुनने लगा।

"तो बात पक्की रही जी, खेंखर महरा !" मेरे ससुर बोले।

"एकदम।"

"लड़के के बाप तो तैयार हो जायेंगे न ?"

"कौन झगड़ू न ? झगड़ू तैयार होनेवाले नहीं होते, तो उनके पीछे मैं तुमसे ब्याह की बातचीत ही न करता। और इसमें तैयार होने या न होने की कौन-सी बात है ? उनका बेटा है, तुम्हारी बेटी है। घाटे में कौन है, भला ?" मामू बोले।

"सो ही मैंने पूछ लिया।" मेरे ससुर बोले।

"ना ना, तुमने अब लड़का छेंक दिया। अब लड़का तुम्हारा हो गया।" खेंखर काका ने कहा।

"लड़का तो तुम्हें पसंद है न ?" मामू ने पूछा।

"पसंद न होता, तो छेंकता भला !"

कुटुम को मेरी दादी खिला चुकी थी। अब उन्हें फकुली लौटना था। सो, खेंखर काका और मामू उन्हें अपने साथ आमी बाजार तक पहुँचा आये। वहाँ से वे फिर अकेले फकुली लौट गये।

अब हवड़ा से बाबू के आने की राह देखी जा रही थी। कुटुम के फकुली लौट जाने के थोड़ी देर बाद ही डाकखाने के मोनसीजी एक चिट्ठी दे गये। उस चिट्ठी को लेकर हमलोग झूलन बाबाजी के पास दौड़े। चिट्ठी कलकत्ते से आयी थी। अब नाच में रहने की वजह से मैं भी कुछ पढ़ गया था। नाच का सट्टा होता, तो सिर्फ नाच थोड़े ही होता था ? उसमें हमलोग भिखारी ठाकुर का लिखा हुआ नाटक भी खेलते थे। और, नाटक याद करने के लिए मुझे हिंदी की जानकारी करनी पड़ी थी। तभी तो मैं 'सुरवा नाटक', 'गंगा नेहान', 'विदेसिया' और 'नहछू का ब्याह' को बिलकुल रट गया था। कलकत्ते से जो यह चिट्ठी आयी थी, बहुत ही घसीट हरफ में लिखी हुई थी, इसीलिए मैं नहीं पढ़ सका। झूलन बाबाजी को भी उसे पढ़ने में कसरत करनी पड़ी थी। बाबू ने लिखा था

कि वे दो-तीन रोज में आ रहे हैं। साथ में जितना बन पड़ेगा, नगदनरायन भी लेते आयेंगे। ब्याह का दिन ठीक कर दिया जाय।

झूलन बाबाजी को एक दुअन्नी देकर मामू ने पतरा दिखलवाया। ब्याह का दिन आज से पन्द्रह रोज आगे का निकला। मामू फकुली चले गये। उनके चले जाने के सात रोज बाद बाबू हवड़ा से आये। आते कैसे नहीं? झूलन बाबाजी ने खूब रच-रचकर चिट्ठी लिखी थी। अपनी जलमभूमि भी कोई छोड़ता है। जिमदार-मालिक का काम ही है—डाँटने-मारने का। बेटे के ब्याह में न आओगे, तो भला कब आओगे?

मेरे ब्याह में कोई अधिक तैयारी नहीं हुई। बाबू अपने साथ कुल पन्द्रह रुपये ले आये थे। घर में अब फिर सवाल उठा कि बच्चाबाबू से रुपया माँगा जाय। मगर इस काम को करे कौन? बाबू उनको सिर्फ सलाम करके लौट आये। रुपये माँगने की हिम्मत न पड़ी। लौटकर उन्होंने दादी से कहा, "माँ, तुम एक काम करो।"

"क्या?" दादी ने पूछा।

"तुम ठकुराइन से जाकर रुपये के लिए कहो, वे बच्चाबाबू से कहेंगी।"

दादी उस बात पर राजी हो गयी। माँ जब गोबर पाथने के लिए ठाकुर के यहाँ जाने लगी, तो दादी भी उसके साथ गयी। लेकिन लौटी, तो उसके चेहरे पर बड़ी उदासी थी। बाबू ने पूछा, "क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।"

"बच्चाबाबू ने क्या कहा?"

"वे खिसिया गये। ठकुराइन ने तो कहा था कि बेचारी के पोते का ब्याह है, दस रुपये भी दे दो।"

"तब?" बाबू ने पूछा।"

"बच्चाबाबू खिसियाकर बोले, तीन बीस रुपये के लिए तो छाती फट रही है और मेरी जमीन पर दस पुस्त से रह रहा है, इसका कोई खयाल नहीं। रुपये के लिए इतनी आँख लग गयी है तो कहो, मैं दे देता हूँ। लेकिन, आज ही और

अभी वहाँ से अपनी पलानी उखाड़कर किसी दूसरे गाँव में चलो। ऐसे रइयत को बसाने की कोई गरज नहीं है।"

"तुमने क्या कहा ?" बाबू ने पूछा।

"मैं क्या कहती, चली आयी।"

"अच्छा किया। कहकर बाबू ने सब्र कर लिया।

इस ब्याह में खेंखर काका ने तीन रुपये की मदद की। नये कपड़े सिर्फ मेरे लिए बने। एक धोती, एक कुरता, एक पनही और एक सादा अँगोछा। मेरी जनाना को देने के लिए एक साड़ी खरीदकर रंग दी गयी। कुल मिलाकर हमलोग दस जने बारात गये। बारात पैदल ही गयी और एक पीपल के पेड़ के नीचे टहरी। बारात जब दरवाजे पर लगी, तो एक ढोल बजा और एक तुतुही। दो लालटेन जल रहे थे। खेंखर काका के हाथ में *चोरबत्ती थी। टीपू भाई यह बत्ती कानपुर से ले आयें थे। उसी रात को चार पञ्च के बीच में मैंने अपनी जनाना के माँग में सेनुर लगाया। लड़कीवालों ने रात में हमलोगों को ×दोस्ती खिलायी। रात में हमलोग पीपल के पेड़ के नीचे ही सो रहे। आधी रात हो गयी, तो मैं अन्दर लड़कीवाले की झोपड़ी में बुला लिया गया। भोर तक मैं वहीं रहा। फिर बारात के और लोग अलग से आगे लौट आये और मैं अपनी जनाना को लेकर उसके साथ अकेला और पैदल अपने घर लौटा। मुझे ससुराल में ही पता लग गया था। वह 'सनीचरी' नाम से पुकारी जाती थी। मैं बगीचे-बगीचे उसको लिया ला रहा था। आसपास से भैंसें लेकर गुजरनेवाले चरवाहे और घसगढ़े मेरी जनाना को देखते तो दूसरी ओर मुँह घुमाकर ऊँची आवाज में कहते—'जियऽ राजा, बनल रह धन !' मैं सनीचरी से रास्ते में कुछ पूछता, तो जवाब देने के बदले वह हाथ-भर घूँघट तान लेती थी। उसे लेकर घर आने के चार-पाँच रोज बाद तक मैं मालिक के यहाँ कुट्टी काटने नहीं गया। मेरे बदले में बाबू कुट्टी काट आते थे। चार-पाँच रोज पीली धोती पहने मैं पूरा दुलहा बना रहा।

---

*टॉर्च। × तेल लगी रोटी।

इसके दो रोज बाद बाबू फिर हवड़ा चले गये। मैं फिर मालिक के यहाँ कुट्टी काटने के लिए जाने लगा। बाबू हवड़ा गये, तो फिर करीब एक महीने के बाद दस रुपये भेजे और पीछे एक उनकी चिट्ठी भी आयी। उसमें लिखा हुआ था कि हवड़ा से वे चटगाँव जा रहे हैं। वहाँ ज्यादा मजदूरी मिलती है। काम का जब पक्का-पक्की हो जायेगा, तब फिर वहाँ से चिट्ठी भेजेंगे। लेकिन, कुछ महीने के बाद ही यह खबर बड़े जोर से फैलने लगी कि जरमन का राजा विलायत पर चढ़ाई कर रहा है। सुना कि उसके पास बड़े-बड़े बमगोले हैं। सामने-सामनी लड़ाई का जमाना गया। उसी समय पटने से हिन्दी में एक अखबार निकलने लगा। झूलन बाबाजी मँगाने लगे थे। एक अखबार का दाम एक पैसा था। उसमें लड़ाई की खबरें छपी होती थीं। झूलन बाबाजी से गाँव के बहुत लोग लड़ाई का समाचार पूछने जाते। तब बमगोला गिरने की बात सुनकर अचरज भी होता और डर भी लगता था। झूलन बाबाजी कहते थे कि विलायत पर कब्जा कर लेने के बाद जरमन हिंदुस्तान पर चढ़ाई करेगा। और, उसके बम-गोले में इतनी ताकत थी कि झूलन बाबाजी ने कहा, "एक बमगोला गिरा देगा तो पचास गाँव जलकर राख हो जायगा, रूख-बीरिछ, आदमी, गाय-गोरू सब कुछ।"

तभी से गल्ले का भाव चढ़ने लगा। चावल महँगा होने लगा। दाल की महँगी हो गयी। मकई का बाजार चढ़ गया, कपड़े बेचने में बजाज अकड़कर बातें करने लगा। दो पाई लबनी से ताड़ी सात पाई लबनी हो गयी। तीन पाई बंडिल बीड़ी बिकने लगी। दियासलाई पैसे-पैसे मिलती थी, सो दो-दो पैसे मिलने लगी। तभी हल्ला हुआ कि लोग पलटन में भरती किये जा रहे हैं। किरासन तेल भी महँगा हो गया। मेरे घर आकर पंद्रह रोज रहने के बाद ही सनीचरी नइहर चली गयी। फिर चार महीने के बाद मैं जाकर लिवा लाया। इसकी भी वजह थी। चावल या मकई मिलना हमलोगों के लिए सपना हो गया। दादी को सूझता नहीं था। माँ ठाकुर के घर गोबर पाथने, गँरतर फींचने और नाला साफ करने में उलझी होती थी। तीन-चार रोज पर ठाकुर के यहाँ से सेर-डेढ़ सेर मसुरिया मिल जाती। उससे तीन-चार आदमी का पेट नहीं भर

सकता था। इधर नाच का सट्टा-बट्टा भी बहुत कम होने लगा। कहीं भोज भी होता, तो दादी पहले की तरह पत्तल कमाने नहीं जा सकती थी। मैं अब बड़ा हो गया था। मुझे यह काम करने में लाज लगती थी। मैं किसी के खेत में कुछ काम कर देता तो आध सेर, पावभर मकई या सेर-दो-सेर आलू दे देता था। इस तरह ऐसी हालत में ज्यादातर हमलोग आलू, गजरा और सकरकंद खाकर जीने लगे। दादी कुछ कमजोर हो गयी थी। आलू उसीन कर खाती, तो पेट में दर्द हो जाता। मगर, उसके लिए चावल ले आना बड़ा मुश्किल काम था। ऐसी हालत में उसे एक रोज हैजा हो गया और डेढ़ रोज तक उल्टी-दस्त होती रही। दूसरे रोज दोपहर के बाद बेचारी मर भी गयी। दादी के मरने के पाँच-सात रोज बाद जब एक दिन माँ मेरी बहन को गोद में लिये ठाकुर के घर गोबर पाथने जाने लगी, तो तनिक रुककर बोली, "मेरी एक बात मान मंगरुआ।"

"कौन-सी बात, कह।" मैं बोला।

"घर अकेला छोड़ना ठीक नहीं।"

"तो ?"

"चार आने का बतासा बाँधकर फकुली चला जा।"

"फकुली, मामी के यहाँ ?"

"ना, तुम अपने ससुरार चले जाओ। कनियाँ को ले आओ।" माँ बोली।

"मगर·······।" मैं माँ का मतलब समझ गया। मैंने पूछा, "मगर वह खायगी क्या ?

"जो हमलोग खायेंगे, सो ही वह भी खायगी।"

"हमलोग तो भूखे भी मर लेते हैं।"

"वह भी मर लेगी।"

"सो कैसे होगा ? उसे इस वक्त ले आना ठीक नहीं। उसके बाप जब मुझे छेंकने आये थे, तो उनसे कहा गया था कि हमलोगों के पास अढ़ाई-तीन बिगहा खेत है। यह यहाँ भूखों मरेगी, तो फिर फकुली जाकर क्या कहेगी ?"

"तू इसकी फिकर क्यों करता है ? जब वह मेरी पुतोहू हो गयी, तो मेरे घर की लाज रखेगी या मेरे घर की हँसारत करायेगी ? मैं उस लड़की को खूब

जानत हूँ। फकीरा महरा की बेटी है। अब तक फकीरा के घर की बेटी-पुतोहू ने दूसरी सगाई नहीं की, ससुरार से कभी भी नहीं भागकर आयी-गयी—किसी को लेकर निकलने-पइसने की बात तो अलग रही। बहू-बेटी जब रसने-बसने लगती है, तभी समझती है कि नइहर कितने दिनों का है और ससुरार कितने दिन का। जा, तू उसे ले आ।" माँ ने मुझे समझाया।

"मगर आज नहीं।"

"कब जायगा?"

"कल।"

"कल ही सही। तू उसे ले आ।"

और, माँ के इस प्रकार दबाव देने पर मुझे सनीचरी को आमी लाना ही पड़ा। सनीचरी मेरी पलानी में आकर रहने लगी। मैं लड़ाई की खबरें सुनने में बड़ी दिलचस्पी लिया करता। नयी बहू को घर में अकेली पाकर भी मैं झूलन बाबाजी के यहाँ एक चक्कर लगा आता। सुना कि पल्टन में लोग तीन-चार जगहों से भरती किये जा रहे हैं। दिघवारा, सोनपुर और छपरा। एक दिन दिघवारा जाकर पल्टन में भरती होने का दफ्तर भी देख आया। थाने के एक ओर इसका दफ्तर बना हुआ था। मेरे गाँव के पन्द्रह-बीस लोग पल्टन में भरती होकर चले भी गये। सुनने में आया कि भरती कर लेने के बाद आदमी सरकार का आदमी हो जाता है। लोग बतलाते थे कि पहले यहाँ से लखनऊ ले जाता है और फिर वहाँ बंदूक चलाना सिखलाकर लाम पर (मोर्चे पर) भेज देता है। जैसे-जैसे लड़ाई बढ़ती जाती, अन्न का भाव तेज होता चला जा रहा था। बेकारी और भुखमरी जोर पकड़ती जा रही थी। सुना कि सरकार ने जान-बूझकर अन्न महँगा कर दिया है कि लोग मजबूर होकर पल्टन में भरती होंगे। मेरे गाँव के कुछ लोग, जो पल्टन में भरती हो गये थे, छुट्टियों में घर भी आने लगे थे। उनके दरवाजे पर, मालिक के घर के लोगों को छोड़कर, गाँव के सभी लोग जाते। मेरे गाँव के देवनंदन तिवारी के बेटा नन्दजी भी गये थे। नंदजी को चिट्ठी लिखना भी नहीं आता था। गाँव पर थे, तो मालिक की ओर से आमी बाजार में हर दूकानवाले से दो-दो पैसे जमींदारी वसूल करते थे। कोई

हैं। अंग्रेज उसके नाम से डरने लगे थे। गल्ले का भाव और चढ़ा जा रहा था। माँ का अन्दाज सही निकला। सनीचरी सचमुच अच्छी जनाना मिली।

"इधर आओ, बैठो न।" मैंने कहा। सनीचरी पलानी में अकेली थी। माँ नहाने के लिए दरियाव किनारे चली गयी थी।

"क्या है? कहो न, मैं बहरी थोड़े ही हूँ।"

"इधर मेरे पास आओ न।"

"कहो।" सनीचरी पास आकर बैठ गयी।

"एक बात पूछूँ, तुमसे?"

"पूछो।" सनीचरी बहुत सीधी तरह बोली। मैं टाट पर जरा और सँभल-कर बैठ गया। इस बार वह मेरा मुँह देखने लगी, तो मैंने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया।

"धत्....!" कहकर वह हाथ खींचने लगी।

"कोई नहीं है, लजाओ मत।" मैं बोला।

"नहीं, नहीं, माँ आवेगी।" वह बोली। अपनी सास को सनीचरी 'माँ' कहती थी।

"वह अभी नहीं आयेंगी।"

"अच्छा, हुआ। कहो क्या है?"

अब मैं उसका मुँह देखने लगा। इसलिए नहीं कि वह सूरतगर थी, इसलिए नहीं कि मेरे मन में कोई पाप जग आया था। बल्कि इसलिए कि वह रात से भूखी थी। सनीचरी अभी बहुत कमसीन थी। भूख से उसके होंठ सूख गये थे। चेहरा उदास हो गया था। मैंने उससे पूछा, "भूख नहीं लगी है?"

"ना।" वह बोली।

"कैसे?"

"तुम्हें कैसे भूख नहीं लगती?"

"धत्, झूठ बोलती हो।"

"तुम्हीं झूठ बोलते हो। माँ, मालिक के घर से सेर-भर जो ले आयी हैं। आती हैं, तो खपरी चढ़ाऊँगी। भूँजकर सतुआ तैयार होगा।"

"तुमसे एक सलाह करती हूँ।"

"करो"

"लोग पल्टन में भरती होकर बहुत रुपये कमा रहे हैं। चाहता हूँ, मैं भी भरती हो जाऊँ।" कहकर इसी सिलसिले में मैंने सनीचरी से पल्टन पर की सुनी सुनायी बातें कहीं। सुनकर सनीचरी घबड़ा गयी। वह तभी मुझे ऐसा न करने से लिए कसमें देने लगी। मैंने कहा, "अच्छा, नहीं भरती होऊँगा। माँ से यह सब मत कहना।"

"नहीं, मैं तो कह दूँगी। नहीं तो अपने चुपचाप भाग जाओगे।"

"ना, ऐसा कभी नहीं होगा।"

इसके थोड़ी देर बाद मैं बाहर निकल आया। फुरदेल साव के गजरे में मैंने पानी पटाया था। सोचा, चलकर सेर-भर गजरा माँग लूँ। सत्तू तैयार होने में देर लगेगी। स्कूल के पास डाकखाने के मोनसीजी मिल गये। मुझे पुकारकर कहा, "तुम्हारे नाम का रुपया आया है! लेगा, तो यहीं ले ले। बाबाजी गवाही बना देंगे।"

"दीजिये।" मैंने कहा।

अब मैं बड़ा हो गया था। इसलिए बाबू मेरे ही नाम से रुपये भेजने लगे थे। मेरे सही कर देने के बाद झूलन बाबाजी ने गवाही बना दी और मुझे पंद्रह रुपये मिल गये। इधर आकर फुरदेल साव से मैंने गजरा ले लिया और आठ आने का चावल भी खरीदा। घर लौटकर आया, तो देखा, माँ दरियाव किनारे से आ गयी हैं। गमछे से गजरा और चावल निकालते हुए मैंने कहा, "यह लो, पहले गजरे खा लो। फिर पीछे भात बनाना। जो अभी रहने दो।"

"चावल कहाँ से रे?" माँ ने पूछा।

"बाबू ने दस रुपये भेजे हैं। आठ आने का यह चावल है, एक सेर।" माँ से मुझे झूठ बोलना पड़ा। मैंने पाँच रुपये अपने पास रख लिये।

माँ के हाथ में साढ़े नौ रुपये रखकर मैं चुप बैठ गया और उस पाँच रुपये के एक नोट को छिपाकर रख दिया। सुना, लड़ाई और बढ़ती जा रही है। अन्न मँहगा होता जा रहा था। इन्हीं दिनों सुना कि छपरा कचहरी से एक्का ले जाते

हुए एक कोचवान ने जब घोड़े को यह कहकर ललकारा कि, वाह रे बेटा घोड़ा, हिटलर का चाल चल !—तो उसे एक सिपाही ने गिरफ्तार कर लिया और उसे छः महीने की सजा हो गयी। बाबू अभी चटगाँव में ही थे कि सुना बच्चाबाबू कांग्रेसी हो रहे हैं।

अब अखबारों में यह समाचार आने लगा कि हिटलर हार रहा है, अंग्रेजों के सिपाही उसे पीछे भगा रहे हैं, हिटलर भागता जा रहा है और एक दिन सुनने में आया कि हिटलर हार गया। अंग्रेज जीत गये।

हाँ, तो जवार में बड़ा शोर था कि बच्चाबाबू कांग्रेसी हो रहे हैं। अमिका भवानी के मंदिर के सामने इसके लिए सभा होनेवाली थी। जिस दिन सभा हो रही थी, उस रोज इस बात की भी चर्चा थी कि बच्चाबाबू को पकड़ने के लिए दारोगा भी आयेंगे। लेकिन, ठीक समय पर सभा हुई। सभा के पास, तनिक हट-कर मैं भी खड़ा था। बच्चाबाबू फूल और मालाओं से लदे थे। वे खद्दर की पोशाक पहने थे। उनके माथे पर गांधी टोपी थी। सभा के बीच में तिरंगा झंडा गड़ा था। झडे के बीच में चर्खे की तस्वीर थी। गाँव के सभी पढ़े-लिखे बाबूलोग सभा में जुटे थे। स्कूली लड़कों की भीड़ थी। सभा का काम शुरू होने के पहले लोगों ने बड़े जोर-जोर से नारे लगाये थे—

महात्मा गांधी की, जय !
हिंदुस्तान, आजाद !!
इन्कलाब, जिन्दाबाद !!!

इसके बाद बच्चाबाबू अंग्रेजों के खिलाफ बोलने लगे। उनकी पूरी बातें याद नहीं। वैसे तो कुछ दिन भी गुजर चुके हैं और पहले वैसी बातों को अच्छी तरह समझ सकने की अकल भी नहीं थी। इसी बीच स्कूल के लड़के चिल्ला पड़ते, बच्चाबाबू, जिन्दाबाद !

बच्चाबाबू अभी बोल ही रहे थे कि इसी वक्त थाने से दारोगा आ गये। उनके साथ जमादार और सिपाही भी थे। जब बच्चाबाबू का बोलना खत्म हो गया, तो लोगों ने फिर उन्हें मालाएँ पहनायीं। इसके बाद दारोगा ने अपने-आप उनके हाथों में हथकड़ी लगा दी और कहा, "चलिए, हमलोग अपनी घोड़ागाड़ी

ते आये हैं।" थानेदार के साथ बच्चाबाबू घोड़ागाड़ी पर जा बैठे। घोड़ागाड़ी जब वहाँ से चलने लगी, तो स्कूल के लड़कों ने नारे लगाये—

हक के लिए, लड़ेंगे!
इसके चलते, जो कुछ हो!!

○ ○ ○

९

अब मैं बीस-इक्कीस वर्ष का हो गया था। बीच में बाबू चटगाँव से तीन-चार बार आ चुके थे। मुझे दाढ़ी-मूँछें हो आयी थीं। मोती भाई मेरी जगह और दो नये-नये छोकड़ों को अपने नाच में भरती कर चुके थे। उनकी उम्र मुझसे कम थी और उनके सामने नाच में अब मेरी कदर बहुत कम होती। मैं बराबर दाढ़ी-मूँछ साफ रखता। जब मैं औरत बनकर, पैरों में घुँघरू बाँधकर, नाचने के लिए बीच शामियाने में खड़ा होता, तो मुझे देखते ही लोग ठठाकर हँस पड़ते। और, जब मैं गाना शुरू करता, तो चारों ओर से आवाज आने लगती, "बुढ़िया को भगाओ, बुढ़िया को भगाओ!" वही दोनों छोकड़े स्तन के बदले छोटी-छोटी ढकनी बाँधकर, ऊपर से कुरती पहन लेते। फिर जब वे झूम-झूमकर नाचने लगते, तो सारी मण्डली में आनन्द छा जाता। वे दोनों छोकड़े औरतों की तरह नखरे करना खूब जानते थे। जब वे गाते—

बाग - बगइचा भँवरवा गुँजरे,
अलबेला हो बलमुआ के जिया ललचे।
मँगही के पनवाँ नरम लागेला,
हो कोठरिया में जात सरम लागेला।
ढाल-तरवार पिअऊ हमरा के द,
जोवनवाँ भइल भारी, पिया कान्हाँ पर ल।

तब चारों ओर से लोग आवाजें कसते—जियऽ''''काट द राजा''''।
फिर एक गाता—

लाली पलँगिया जालीदारी तकिया,
करवा फेर हो बलमुआ सटा ल छतिया।

तभी कंसी बजाते हुए मोती भाई उछलकर इसका जवाब देते थे—

कइसे में फिरूँ धनिया तोहरे ओरियां,
तोरा हएकल के गुँजवा गरेला छतिया।

इस तरह के गीत सुनकर लोग कहते थे कि अभी जरा मिजाज हरा हो रहा है। अब नाच में मेरा मन भी नहीं लगता था और मैं इतनी बातें बराबर सोचा करता कि आखिर इस पेशे से धरम-करम नहीं चलनेवाला है। कोई और काम कर लेना चाहिए। मगर, हर ओर बेरोजगारी थी। हमारी तरह के लोग भूखों मर रहे थे। अन्न का बाजार बड़ी तेजी पर जा रहा था। झूलन बाबाजी कहते कि जब गाँधीजी राजा हो जायेंगे, तो सब दुःख दूर हो जायगा। कांग्रेस के लोग हर जगह खुले-आम सभा करते और गिरफ्तार किये जा रहे थे। शायद यह सन् १९४२ ई० का जमाना आ गया था। सुनने में आता कि गाँधीजी देवता के अवतार हैं। कहते थे, सरकार उनको जेल में बन्द कर देती है और वे भीतर से अपने-आप बाहर निकल आते हैं। पुलिसवाले उन्हें मारते हैं, तो उन्हें चोट नहीं लगती और वे ऐसे हैं कि किसी से भी छुआ-छूत का भेद नहीं रखते। चमार हो या दुसाध, किसी का भी दिया हुआ पानी पी लेते हैं। झूलन बाबाजी यह भी बतलाते कि गाँधीबाबा के राज में जमींदारी नहीं रहेगी, ठाकुर बेगार खटने के लिए नहीं दबायेंगे। जो काम करायेगा, उसे मजदूरी देनी होगी। इन्हीं दिनों,

कांग्रेस की आम-सभाओं में अंग्रेजों के खिलाफ गीत गाये जाते थे, उनकी कठोरता की पोलें खोली जाती थीं—

भारत के बच्चे भूखों मरते, रोदन करते जी ।
इंगलैण्ड के कुत्ते बिस्कुट खाते, बैठे-बैठे जी ।।

इन्हीं दिनों स्कूल के लड़के तिरङ्गा झण्डा लिये गाँव-गाँव में जुलूस निकालने लगे । वे बार-बार गिरफ्तार होते और बार-बार रिहा किये जाते थे । उस वक्त वे नारे लगाते—

गुलामी राज, नाश हो !
कांग्रेसी राज, कायम हो !!
भारत, आजाद !
हिन्दुस्तान, आजाद !!

सावन का महीना था । सुना कि बच्चाबाबू बम्बई से आये हैं और एक बहुत बड़ी सभा करेंगे । तब इतनी अकल कहाँ थी, मगर अब समझता हूँ कि तभी बम्बई में कांग्रेस का गोलमेज कांफ्रेंस हुआ था । बच्चाबाबू की इस सभा में जर-जवार के लोग भी जुटे । बाप रे बाप, बड़ी भीड़ लगी थी ! उसी सभा में बच्चाबाबू ने गांधीजी का सन्देश पढ़कर लोगों को सुनाया था । गांधीजी ने लोगों से अंग्रेजी सरकार की नौकरी छोड़ देने के लिए कहा था । 'भारत छोड़ो' का एलान गांधीजी ने इसी सन्देश में कर दिया था और भारत की जनता से उन्होंने अंग्रेजों को निकाल भगाने की अपील की थी—'करो या मरो ।'

लगता था कि गांधीजी का यह सन्देश हिन्दुस्तान के कोने-कोने में बिजली की तरह फैल गया और इसके चार-पाँच रोज बाद की हालत तो कहते ही बनती है । १९४२ का आन्दोलन ! १९४२ !!

रेलवे लाइनें उखड़ने लगीं । डाकखाने लूटे जाने लगे । तार-घर के सामान बरबाद कर दिये गये । रेल के पुलों में आग लगायी गयी । स्टेशन में स्कूल के लड़कों ने ताले भर दिये । आन्दोलन ने जब जरा और जोर पकड़ा, तो बैंकों और कचहरियों में संगीनें चमकने लगीं । कहा जाता था कि दो-चार घण्टे के आगे-पीछे ही सारे देश में यह व्यापक आन्दोलन फैल गया । रेल के डब्बे और रोड-

हाउस बरबाद किये जाने लगे। रेलगाड़ी को लड़के जिधर चाहते, उधर ले जाते थे। लेकिन, अब जब लोग थाने, कचहरी और अन्य सरकारी महकमों पर सरकार के सभी कानून को भंग कर, अपना झंडा गाड़ने और उन पर कब्जे करने लगे, तो फिर अंग्रेज सरकार के कान खड़े हुए। अब आंदोलन करनेवालों के जुलूस को लेकर आगे बढ़नेवाले बच्चों की छातियों पर गोलियाँ दगने लगीं। सिवान की ओर से जब रेलगाड़ी आती, तो डब्बे के फाटक के आस-पास खल्ली से लिखा होता था—

सिवान में पुलिस और विद्यार्थियों में मुठभेड़! थाने पर झंडा गाड़ दिया गया !!

उन्नीस विद्यार्थी गोली के घाट उतरे! आंदोलन जारी रखिये!

यह सब तमाशा देखने में मेरा भी बड़ा समय लगा। सुनने में आया कि कई जगह हिंदुस्तानी सिपाहियों ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। चारों ओर हल्ला हो रहा था कि अंग्रेज सरकार की ताकत खत्म हो रही है। अंग्रेजी हुकूमत का तख्ता हिल रहा है। तभी इंगलैंड से सरकार ने गोरी फौज मँगा ली। अब गोरे सिपाहियों ने क्रांतिकारियों का शिकार करना शुरू किया। हिंदुस्तानी लोगों पर वे इस तरह गोली चलाने लगे, जैसे हमलोग भेंड़-बकरियों पर ढेले चलाते हैं। जिस जगह उन्हें रेल से पहुँचने में दिक्कत होती, वहाँ वे लारी से जाने लगे। जब इस बात की खबर फैली, तो लोग सड़कें काटने लगे। बीच सड़क पर बड़े-बड़े पेड़ काटकर गिराने लगे। ऐसी हालत में गोरी फौज सड़क के आस-पास रहनेवाले लोगों को पकड़कर ले जाती और उनसे सड़कें मरम्मत करवाती थी, पेड़ हटवाती थी। और, जो ऐसा करने में हिचकते थे, उन्हें बंदूक के कुंदे से खूब पीटती। दिघवारा के एक बहुत बड़े काँग्रेसी के मकान को उनलोगों ने पेट्रोल छिड़क कर जला दिया। उनकी गल्ले की आढ़त भी थी। उन लोगों ने समूचे गोदाम में आग लगा दी। लाखों मन गेहूँ जलकर राख हो गया। औरत और बच्चों का घर से निकलना बंद हो गया। सयाने लोग भी डरते-डरते गली से बाहर निकलते थे।

बड़ी तबाही मच गयी। रेलवे-लाइन और सभी सरकारी महकमें पर गोरे सिपाही पहरा देने लगे। हाँ, उनके साथ एक-दो हिंदुस्तानी अफसर और खुफिया विभागवाले भी होते थे। बड़े जोरों की गिरफ्तारी शुरू हुई और कांग्रेसी लोग जेलों में ठूँसे जाने लगे। बच्चाबाबू को भी पुलिस पकड़कर ले गयी। गाँव के लोगों पर जुर्माने लगने लगे और जुर्माने की रकम संगीन के बल पर वसूल की जा रही थी। कांग्रेसियों को गिरफ्तार करवाने और क्रांतिकारियों को गोली के घाट उतारने के लिए कई पुलिसवालों को तरक्की हो गयी। गोरे सिपाही बड़े बदमाश थे। खाने के लिए वे जिसकी गाय को चाहते, संगीन से भोंककर उठा लेते थे। कितने बछड़े गायब हो गये, कितनी बकरियाँ उनके पेट में चली गयीं। कई जगह तो उन लोगों ने हिंदुस्तानी औरतों के साथ निर्दयतापूर्वक व्यभिचार किया और जब वे मर गयीं, तो उन्हें पास के नदी-नाले में फेंक भी दिया। इस प्रकार जब तक आंदोलन दबाया नहीं गया, तब तक झूलन बाबाजी के यहाँ पटने से अखबार नहीं आया। जब आंदोलन दबा, तो अखबार आने लगा। झूलन बाबाजी के पढ़कर बतलाने से पता चलता था कि इस आंदोलन में पन्चानबे फी सदी स्कूल और कॉलिज के लड़के ही मारे गये हैं। सरकारी मुहकमों पर झंडा गाड़ते समय, जब पुलिस उन्हें रोकती—

पीछे हटो, नहीं तो गोली मार देंगे।

लड़के आगे बढ़ते हुए कहते—अँग्रेजी राज नाश हो!

"धाँय'''''''''!" गोली घुटने के नीचे लगी।

"तुमलोग कायर हो! गोली मारनी है तो छाती में मारो।" लड़के सीना तानकर कहते।

"छाती में?"

"हाँ, यह लो!" कहते हुए लड़के अपने सीने से कुरता-कोट हटा देते और झंडा लिये आगे बढ़ते थे।

"हट जाओ, पीछे हटो!" पुलिस कहती।

"कभी नहीं, कभी नहीं। महात्मा गाँधी की जय!"

"धाँय, धाँय, धाँय....!" और, तब पुलिस की गोली उनके सीने में समा जाती। आजादी के दीवाने वहीं गिरकर मिट्टी पर लोटने लगते थे।

अभी आन्दोलन के दबे कुछ ही महीने हुए थे कि फिर लड़ाई का समाचार सुनने को मिला। इस बार सुना गया कि जापान का राजा चढ़ाई कर रहा है। पिछली लड़ाई की तरह ही हवाई जहाज का आना-जाना शुरू हो गया। जब मेरे गाँव के ऊपर से होकर हवाई जहाज जाने लगता, तो घरों की औरतें आँगन में और बच्चे बाहर निकलकर आसमान में देखने लगते। फिर लोग पल्टन में बहाल होने लगे। गल्ले की तेजी बढ़ती जा रही थी। सुना जाता था कि जापान जीतता हुआ चला आ रहा है। पूरब की तरफ मुँहा मालगाड़ी पर लड़ाई पर वाली हजारों लारियाँ जा रही थीं। हर लारी पर दो-एक सिपाही बैठे होते।

भुखमरी और जोर पकड़ती जा रही थी, अब मैंने फैसला कर लिया कि मुझे पल्टन में बहाल होना ही है। इस बार मैंने सनीचरी से इस तरह की कोई भी चर्चा नहीं की। माँ से कहा, "आज मैं छपरा जाऊँगा।"

"किसलिए, क्या काम है ?" माँ ने पूछा।

"नौकरी खोजने।"

"छपरा में नौकरी मिल जायगी ?"

"हाँ।" मैंने कहा।

"वहाँ कोई तेरी जान-पहचान का भी है ?"

"हाँ, ओकील साहब ने कहा है। वहाँ आओ, तो कहीं-न-कहीं ठिकाना लगा दूँगा।" मैं बोला।

मेरे गाँव के एक लालाजी छपरा-कचहरी में वकील थे। वकील लोगों का क्या काम है, माँ यह तो नहीं जानती थी। मगर, उसे इतना मालूम था कि लालाजी बड़े आदमी हैं। बाल-बच्चे के साथ शहर में रहते हैं। वह बोला, "जा, मगर जल्द चला आना।"

"अच्छा....।" मैंने कहा, "मगर पैसे दे न।"

"पैसे, कितने चाहिए ?"

"दे कुछ।"

"दस आने पैसे तो हैं।"

"दे न वही।"

माँ से दस आने पैसे लेकर नौ बजे की गाड़ी से मैं छपरा-कचहरी स्टेशन पर उतरा। गाड़ी में बड़ी भीड़ थी। लोग गाड़ी की छतों पर बैठकर आ रहे थे। पावदान पर लटकनेवालों का तमाशा देखते ही बनता था। ज्यादा बोझ हो जाने के कारण खुलते-खुलते गाड़ी रुक जाती थी। तब आकर गार्ड लोगों को कई बार पावदानों पर से उतारता और लोग फिर चढ़ जाते थे। इसी रेल-पेल में मैं भी घुस गया था। लोग कहते थे कि जिस ओर से जापान चढ़ाई किये हुए हैं, उधर ही से काम करनेवाले लोग जान लेकर भागे आ रहे हैं। मगर, मैंने कलेजे को मजबूत किया। सोचा, जब आ गया हूँ, तो बिना भरती हुए लौटकर नहीं जाऊँगा। मेरी कमर में एक फटी और मैली धोती थी। ब्याह में जो नया कुरता बना था, उसे इज्जत-मौके के लिए माँ ने छिपाकर रख दिया था। आज वही कुरता मेरे बदन पर था। कंधे पर एक पुराना गमछा और टेंट में साढ़े छः आने पैसे। साढ़े तीन आने का मैंने टिकट खरीदा था।

छपरा-कचहरी स्टेशन से मैं जैसे ही बाहर निकलने लगा कि एक आदमी ने मेरा पीछा किया। देखने से वह पढ़ा-लिखा जान पड़ता था। स्टेशन के बाहर सवारियाँ खड़ी थीं। उस आदमी ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखकर पूछा, "तुम्हें कहाँ जाना है, भाई?"

"किसे पूछते हो, मुझे?" मैंने फिरकर पूछा।

"हाँ, तुम्हें।"

"तुम कौन हो?"

"मैं यहीं शहर का आदमी हूँ। बतलाओ न, तुम्हें कहाँ जाना है? डरो नहीं, मैं कोई तुम्हारा बुरा न करूँगा।"

अगल-बगल सवारियाँ खड़ी थीं। मैं बीच से आगे बढ़ता जा रहा था। और, वह आदमी अब मेरे पीछे से मेरी बगल में होकर चलने लगा। मैंने सुन रखा था कि शहर में बहुत पाकेटमार होते हैं। यों तो मेरे पास बहुत थोड़े पैसे थे। लेकिन, उस वक्त वही साढ़े छः आने पैसे मेरे लिए साढ़े छः लाख थे। मैंने

सोच लिया था कि अगर भरती न किया गया, तो फिर तीन बजे की गाड़ी से साढ़े तीन आने पैसे का टिकट लेकर लौट आऊँगा और अगर भरती हो गया, तब तो कोई बात ही नहीं। फिर तो नंदजी और सिंहासन तिवारी की तरह मैं भी हर महीने रुपये भेजूंगा। मैंने उस आदमी से कहा, "मैं यहाँ नौकरी के लिए आया हूँ।"

"सच ?"

"हाँ, सच।"

"नौकरी करोगे ?"

"हाँ, इसी के लिए तो आया हूँ।"

"कैसी नौकरी करना चाहते हो ?"

"मैं·······।" मैं बतलाने में जरा लजा गया।

"कहो न, शरमाते क्यों हो ?" उसने मेरी झिझक तोड़ी।

"बाबू, मैं पल्टन में भरती होना चाहता हूँ।" मैंने तनिक हँसकर कहा।

"हूँ, होगे पल्टन में भरती ?"

"हाँ।"

"ठीक है, चलो मैं तुम्हें भरती करा देता हूँ। मगर, आगे चलकर ऐसा मत कहना कि भरती नहीं होना है। कौन जाति हो ?"

"चमार।" मैंने बतलाया।

"ठीक है, तुम भरती कर लिये जाओगे। अच्छी तनख्वाह मिलेगी !" उसने कहा। मैं तनख्वाह का मतलब नहीं समझ सका था। इसलिए पूछा, "तनख्वाह क्या ?" उसने जवाब दिया, "मोसहरा, दरमाहाँ। गरीब आदमी जान पड़ते हो, तुम्हारे लिए यह अच्छा मौका है।"

उस आदमी की बातें मेरे मन में जमने लगी थीं। अगल-बगल से बहुत लोग आ-जा रहे थे। सवारियों की आवाज भी मेरे कानों में समा रही थी। मैंने उसी रोज पहली बार आदमी-रिक्शा देखा। आदमी को आदमी खींच रहा था। आदमी के कंधे पर आदमी सवार हो रहे थे।

स्टेशन के अहाते से निकलकर, उस आदमी के साथ जब मैं एक चौक पर पहुँचा, तो उसने फिर मेरे कंधे पर हाथ रखा और तनिक अपनी ओर खींचकर कहा, "पढ़ना जानते हो, वह देखो।"

"क्या ?"

"वह सामने देखो, क्या है ?"

"अरे हाँ, यह तो सिपाही की तस्वीर है।"

"हिन्दी पढ़ना जानते हो ?"

"हाँ, थोड़ा-बहुत सीख गया हूँ।"

"तो पढ़ लो न, उस पर क्या लिखा है ?" उस आदमी ने कहा।

"हाँ, हाँ····।"

चौक के एक कोने पर, दो मजबूत खंभे के सहारे एक बहुत बड़ी तस्वीर टँगी थी। उसमें एक सिपाही संगीन लिये शान के साथ सामने की ओर देख रहा था और दूसरा ? दूसरा एक खिड़की के पास खड़ा हाथ में नोट लिये खड़ा था। खिड़की की तस्वीर के ऊपर हिन्दी में लिखा था—'डाकघर'।

"देखो, मैं फौज में भरती होकर दुश्मनों से देश की हिफाजत भी करता हूँ और हर महीने की पहली तारीख को अपने घरवालों के लिए निश्चित रकम भी भेजता हूँ। तुम भी चाहो, तो ऐसा कर सकते हो।"

"देखा ?" उस आदमी ने पूछा।

"लिखा क्या है, सो पढ़ा ?" उसने दो सवाल किये।

"हाँ।" मैंने कहा।

"क्या विचार है, भरती होने आये हो न ?"

"हाँ, मगर भरती करा दोगे न ?" मैंने यों ही पूछा।

"हाँ जी, चलो न। मेरा काम क्या है।" वह बोला।

उस आदमी से इस तरह की बातें करता हुआ मैं कचहरी आ गया। मालिक के काम से, उनकी खिदमत करने के लिए ही मैं दो-चार बार शहर आ चुका था। यह कचहरी भी देखी थी। इसलिए कचहरी की बड़ी-बड़ी इमारतें देखकर मुझे कुछ अचरज नहीं हो रहा था। मगर, मुझे तब बिल्कुल ही अचरज होने लगा,

जब मैंने देखा कि कचहरी की छतों पर बालू के पहाड़ उठे हैं। कुछ की छतों पर बालू बोरे में कसकर रखे गये थे। कचहरियों के ओसारे में, एक तरफ पचासों लाल-लाल बाल्टियाँ रखी थीं।

"कचहरी के मुँड़ेरे पर इतना बालू किसलिए रखा है ? मैंने उससे पूछा।

"बालू ?"

"हाँ, और उधर छत पर बोरे कैसे रखे गये हैं ?" मैंने पूछा।

"उसमें भी बालू है।"

"बालू किसलिए ?" मैंने पूछा।

"कचहरी की हिफ़ाजत के लिए।" उसने जवाब दिया। मैं समझ न सका।

"हिफ़ाजत के लिए ?"

"हाँ।"

बरसा के पानी से हिफ़ाजत के लिए ? पानी से तो बालू *भिहला जाता है।

"नहीं, पानी के लिए नहीं।"

"तो ?"

"बम से बचने के लिए। बालू पर बम गिरेगा, तो फूटेगा नहीं ?"

"और अगर फूट जाये, तो ?"

"फूट जाये, तब तो सब नष्ट हो जायगा। मगर बालू पर बम फूट ही नहीं सकता।" उसने बतलाया।

"और इतनी बाल्टियाँ किसलिए हैं ?"

"उन सब में पानी भरा है। कहीं आग लग जाय, तो झट उसे बुझा देंगे।"

मैं उस आदमी के साथ आगे बढ़ता जा रहा था। अब मुझे अपनी माँ और सनीचरी की याद आने लगी थी। अगर मैं पल्टन में भरती होकर चला गया, तो माँ रोती-रोती मर जायगी। सनीचरी मेरे बारे में क्या सोचेगी ? पटगाँव से बाबू आयेंगे, तो क्या कहेंगे ? और, कहीं पल्टन में जाकर मैं मारा गया, तो ? मगर फिर मैं सोचता, नन्दजी गये तो कहाँ उन्हें बमगोला लगा, सिंहासन तिवारी को कहाँ गोली लगी ? हरिजी जब गाँव पर थे, तो बदन भरा नहीं

---

*बिखर जाता।

लगता था। पल्टन पर से आये, तो मोटाकर गुलगुल्ला हो गये थे। गाँव पर खाये-खाये बिना मरता हूँ, सो कहाँ का अच्छा है। वहाँ रहकर माँ और सनीचरी के लिए भी तो कुछ भेज सकूँगा। जब इतने लोग पल्टन में जाते हैं, तो कुछ तो मरेंगे ही। और सो क्या हर्ज है, मैं मोर्चे पर सबसे पीछे रहूँगा। न आगे जाऊँगा, न खतरा होगा।

"किस जगह पल्टन में भरती किया जाता है?" तभी मैंने पूछा।

"आगे, अगले मोड़ के बाद।"

"अच्छा....।"

कचहरी चालू थी। लोग बहुत थे। कई जगह लोग घेरा बाँधकर खड़े थे। उसके बीच में एक आदमी ताश के खेल दिखला रहा था। ऐसे ही आदमियों के घेरे के बीच एक आदमी 'रतनजोत' पत्थर बेंच रहा था। एक ऐसी ही भीड़ में एक आदमी कई किस्म के साँप लिये बैठा था और एक साँप का मुँह खोलकर उसके दाँत दिखला रहा था। ऐसा साँप मैंने अब तक नहीं देखा।

जरा इसे देख लूँ बाबू, यह तो मनियारा साँप बुझाता है।" मैंने उस आदमी से कहा।

"देखो, मैं भी देख लेता हूँ। लेकिन, वहाँ भी जल्द चलना है।"

"हाँ, अब ऐसा जोगार लगाओ कि मैं भरती कर लिया जाऊँ।"

"चलो।"

वह आदमी भी मेरे साथ साँप देखने के लिए बढ़ा। लोग चारों ओर से खड़े थे। साँपों की टोकरियों के बीच में थोड़ी-सी घास रखी थी। साँप दिखलानेवाला चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "आपलोग जरा अपने प्यारे-प्यारे कदमों को तकलीफ देकर एक डेग और आगे बढ़ आइये। बाबूजी, आपलोगों ने देहात में बड़े-बड़े साँप देखे होंगे। हाथ-दो हाथ, लाठी-दो लाठी का साँप मारकर फेंक दिया होगा, मगर यह काला तच्छक नाग"—फिर वह जरा गरजकर कहने लगा, "मगर यह काला तच्छक नाग, वही नाग है, जिसने राजा + परिच्छित को काटा था। भाईसाहब, जब यह हरी घास पर चलता है, तो इसके जहर से

+ परीक्षित।

घास में आग लग जाती है। यह जहर का राजा तच्छक आगे बढ़ता जाता है और इसके पीछे-पीछे घास जलती जाती है।—

इतना कहते-कहते वह अपनी गर्दन जरा ऊँची करके गा-गाकर कहने लगा—

मरते-मरते हम बचे कि खैर की अल्लाह ने,
कि रातभर सोने के बदले सर मरोड़ा साँप का।

उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर मैं मन-ही-मन उसकी तारीफ करने लगा कि भगवान ने आदमी में ही सारी खूबी भर दी है। अपनी खूबियों को पहचानकर आदमी चले, तो दुनिया में जीना उसके लिए मुश्किल नहीं। एक हमलोग हैं, जो साँप का नाम सुनते ही काँपने लगते हैं और एक आदमी यह है, जो रातभर सोने के बदले साँप का माथा ही ऐंठता रहता है। मैंने अपने मन में कहा, तुम धन्य हो भगवान्! तुमने अपनी दुनिया में अजीब-अजीब हिम्मतवालों को पैदा किया है। तभी वह आदमी फिर बोलने लगा, "अभी मैं उस साँप को पिटारी से निकालूँगा। आपलोग यह देखकर जाइये कि कैसे यह साँप इस घास पर चलता है, तो आग लगती है····।"

तब मुझे उस आदमी ने पीछे की ओर खींचकर कहा, "चलो, 'रतनजोत' पत्थर देख लो।"

"चलो।"

उसके साथ मैं फिर इस भीड़ में आया। वहाँ भी भीड़ के बीच में एक आदमी, पैसे के आकार के बराबर, पतले-पतले लाल-लाल पत्थर लिये कह रहा था, "बाबूजी, इसका नाम है, असली रतनजोत पत्थर। यह पत्थर मंसूरी के पहाड़ में, गरपू के पहाड़ में होता है। इसका फायदा सुन लीजिये—आँखों में माड़ा हो, आँखों में जाला हो, रतौंधी हो, आँखें लाल हो जाती हों, आँख से पानी गिरता हो—मतलब आँख की हर बीमारी के लिए यह पत्थर रामबान है। और इसकी कीमत? कीमत इसकी उतनी भी नहीं है बाबू, जितने पैसे के आपलोग पान-बीड़ी खाकर थूक देते हैं····।"

"........आर्यावर्त्त पढ़िये....ताजा समाचार....बिलकुल गरम-गरम खबर.... दो पैसे में ताजा समाचार....चटगाँव पर बम-वर्षा ! एक लाख पल्टन स्वाहा !! चार हवाई जहाजों में आग लग गयी !!!.....।"

तभी मेरे कानों में यह आवाज सुनायी पड़ी। मैं झटपट भीड़ से बाहर निकल आया। एक आदमी अपने साथ बहुत-सा अखबार लिये चिल्ला रहा था। दो-दो पैसे देकर लोग उससे अखबार खरीदने लगे। भीड़ से कुछ और लोग बाहर निकल आये। मुझे बाबू याद पड़ गये। बाबू भी तो चटगाँव में ही रहते हैं। बाबू का चेहरा मेरी आँखों के सामने से गुजर गया।

"क्यों बाबू, लड़ाई में बहुत लोग मारे जा रहे हैं ?" मैंने उस आदमी से पूछा।

"नहीं।"

"और यह अखबारवाला कह रहा है, सो ?

"सब झूठ।"

"झूठ कह रहा है ?"

"हाँ।"

"यह झूठ क्यों कह रहा है ?"

"अखबार की बिक्री के लिए ये लोग झूठे समाचार छापते हैं। जापान तो रोज हार रहा है।"

तब तक मेरे कानों में ढोलक के बजने और किसी के गाने की आवाज सुनायी पड़ी। छपरा कचहरी के बीच में सरकारी बैंक है। बाहर संतरी संगीन लिये पहरा दिया करता है। आवाज उसी ओर से आ रही थी। वह आदमी नहीं चाहते हुए भी मेरे साथ उस ओर बढ़ा। सरकारी बैंक के पूरब की ओर लोगों की भीड़ थी। भीड़ के बीच बैठा एक सूरदास ढोलक बजा-बजाकर गा रहा था। उसने अपने आगे एक गमछा फैलाकर रख दिया था, जिस पर लोग पैसे-दो-पैसे फेंक दिया करते थे। गीत सुननेवालों की जमघट थी। पीपल और नीम के पेड़ों के नीचे बैठे कुछ लोग लिख रहे थे।

"चलो, यह सब क्या सुनोगे ?"

"जरा सुन लेता हूँ बाबू ! बड़ा मजेदार गीत गा रहा है।"

"पल्टन में रहकर देखना। जहाँ अंग्रेजी बाजे सुनकर मस्त हो जाओगे।"

"वहाँ बाजा सुनने के लिए भी मिलता है ?" मैंने पूछा।

"बाजे-गाजे तो पल्टन के साथ रहते हैं, वहाँ किस बात की कमी है।" वह आदमी बोला।

मगर सूरदास के गीत में न-जाने कौन-सा जादू था कि बिना उसे सुने वहाँ से हटना मेरे लिए मुश्किल हो गया। उसके बार-बार हाथ पकड़कर खींचने पर भी मैं हट न सका। सूरदास सिर हिला-हिलाकर बड़ी मस्ती से गा रहा था—

अब ना बाँची कलकाता बिधाता,
अब ना बाँची कलकाता····।
जरमन-जपान मिल के गोला गिरावे,
सुन-सुन के जिउआ घबड़ाता—
बरमा-रंगून पूरा माटी में मिल गइल,
हबड़ा में मोरचा खोदाता, बिधाता,
अब ना बाँची कलकाता····।

मैंने अपनी टेंट से दो पैसे निकालकर सूरदास के गमछे पर फेंक दिये। मगर वह गा रहा था—

आज - काल्ह में रुपेया आई,
*रहता +जोहाता·······
मोरचा का नीचे-नीचे पल्टन लुकाता,
बिधाता, अब ना बाँची····।"

अब मैं पूरी तरह डर गया। उसके गाने से मुझे इतना पता लगा कि अब कलकत्ता बचनेवाला नहीं है। जरमन और जापान दोनों गोले गिरा रहे हैं। बर्मा और रंगून भी खत्म हो गया। अब कलकत्ते में मोर्चा खोदा जा रहा है। जिसका बेटा उस ओर कमाने गया है, उसके गाँव पर लोग मनीआर्डर का इंतजार कर रहे हैं। मोर्चे के भीतर फौज छिप रही है और जहाँ ऊपर से बम गिरता है कि सिपाही मर जाते हैं। मैंने कहा कि अब पल्टन में भरती होना

*रास्ता। +इंतजार करना।

बेकार हूँ। वहाँ जाकर माँ और सनीचरी के लिए रुपये भी न भेज सकूँ और मुफ्त में बमगोले से मारा जाऊँ, तो क्या फायदा ? मैंने उस आदमी से पूछा, "बाबू, अभी क्या समय हुआ है ?"

"दो।" उस आदमी ने अपनी घड़ी देखकर कहा।

"अब मैं पल्टन में नहीं जाऊँगा।"

"क्यों, तुम इसी गीत से डर गये ? अरे, तुम तो बड़े डरपोक हो! चलो, चलो।"

"ना, किसकी जान फिजूल है? अब मैं घर लौट जाऊँगा।"

"घबराओ नहीं, चलो। यह अंधा क्या लड़ाई का मैदान देखकर आया है?"

"ना बाबा, अब मेरे बाप भी आकर कहेंगे, तो मैं नहीं भरती होऊँगा।" मैं बोला। मेरे लाख कहने पर भी वह आदमी मुझे ले चलने की कोशिश करता रहा, मगर मेरी हिम्मत न हुई कि मैं उसके साथ भरती होने के लिए जाऊँ। आखिर मैं दो बजे की गाड़ी से आमी लौट ही आया।

● ● ●

१०

बाजार से चावल उठा जा रहा था। गेहूँ गायब हो रहा था। पहले चावल पीसकर लोग रोटी बनाने लगे। फिर चावल पाँच सेर का हुआ, इसके बाद तीन सेर का, फिर डेढ़ सेर का और तब रुपये का तीन पाव। इसी समय सुना कि कलकत्ते के बाजार से चावल गायब हो गया। वहाँ बारह आने बोतल माड़

बिकने लगा था। लोगों में अफवाह फैल रही थी कि हिंदुस्तानियों को तबाह करने के लिए अंग्रेज सरकार महँगे-से-महँगे भाव पर गल्ले खरीदकर समुद्र में फेंक देती है।

इन्हीं दिनों झूलन बाबाजी बतला रहे थे कि जापान कलकत्ते तक आ गया है। इधर बाबू के यहाँ से चिट्ठी का आना-जाना बन्द हो गया था। पूरब की ओर से जो भी रेलगाड़ी आती, लोग उसमें जानवर की तरह कसे होते थे। पावदान और छतें नजर नहीं आती थीं। पावदानों पर लोग टँगे होते और छतों पर बैठे रहते थे। छत से कितने लोग गिरकर मर गये। ये सभी लोग पूरबी देश से भागे चले आ रहे थे। किसी के पास एक दरी होती; तो किसी के पास लोटा। लोग अपना सब कुछ छोड़कर अपने गाँव पर भागे आ रहे थे। इन भागनेवालों में से बहुत घायल भी नजर आते थे। किसी के माथे पर पट्टी बँधी होती, तो किसी की मोठ में। किसी का एक हाथ साफ था, तो किसी का एक कान गायब। दिघवारा स्टेशन पर, जब गाड़ी रुकती, तो वे लोग 'पानी-पानी' चिल्लाने लगते थे। पावदानों पर लटके हुए लोग तो घूँट-दो-घूँट पानी पी लेते, मगर छत पर बैठे मुसाफिरों तक पानी पहुँचाना पानी-पाँड़े के लिए मुश्किल हो जाता। जब पानी-पाँड़े का पानी खतम हो जाता, तब बहुत से प्यासे मुसाफिर पानी खरीदकर पीते थे—चार आने गिलास। आइस-क्रीम-वेण्डरवाले स्टेशनों पर उतरकर पानी बेचने लगते थे। जिसके पास खरीदने के लिए पैसा न होता, वह पावदान पर लटका-लटका अपनी जीभ को होठों पर घुमाया करता।

जब पूरबी देश में कमानेवाले लोग भी इधर आने लगे और बनिये बाजार से अन्न को गायब करने लगे, तब मेरे घर में बाबू के लिए चिंता की जाने लगी। बाबू का कुछ पता नहीं चलता था। हमलोग पहले ही सुन चुके थे कि चटगाँव में भी बमगोले गिरे हैं। इसलिए भीतर-ही-भीतर मन बड़ा घबड़ा रहा था। कभी-कभी फौज की रेलगाड़ी भी इधर से होकर जाती। उनमें हिन्दुस्तानी और गोरी फौजें होतीं। वे सभी घायल होकर लौट रहे थे। मेरे घर में भुख-मरी हो रही थी।

एक रोज, करीब नौ बजे रात में हमलोग माँ, सनीचरी और मैं, + रहरी की छीमी * उसीन कर खा रहे थे। दीये में तेल नहीं था। माँ पत्ते लहरा रही थी। तभी हमारे कानों में बैलगाड़ी की आवाज सुनायी पड़ी—चूर्र, चर्र-मर्र-चूर्र! धीरे-धीरे यह आवाज मेरी पलानी के नजदीक चली आ रही थी। मगर, मेरे मन में कोई अचरज की बात नहीं पैदा हुई। मैं रहरी की छीमी खाता रहा। कुछ मिनटों के बाद ही ऐसा लगा, जैसे बैलगाड़ी मेरी पलानी के पीछे आकर रुक गयी।

"यही घर है?"

"हाँ।"

"तुम्हारा ही घर है, पहचानते हो न?"

"हाँ, अपना घर पहचान में न आयेगा?"

"तो उतर जाओ अब।"

मैं आवाज पहचानने लगा।

"उतरा नहीं जायेगा।"

"तब?"

"जरा उतार दोगे?"

"मुझसे अकेले कैसे होगा?"

"मेरे लड़के का नाम मंगरू है। मंगरू, मंगरू कहकर पुकारो न। वह आ जायेगा।"

"अरे माँ, यह तो बाबू हैं!" मेरे मुंह से निकला।

भीतर से बाहर निकलकर मैं पलानी के पीछे आया, जहाँ बलुआही सड़क पर बैलगाड़ी खड़ी थी। जुए के बीच में एक छोटा-सा लालटेन लटका था। कालिख से उसके शीशे की चमक गायब हो गयी थी और बहुत धीमी-सी रोशनी आ रही थी। पहले मैं बैलगाड़ी के पास आकर खड़ा हो गया, फिर जरा इधर-उधर देखकर मैंने पूछा, "कौन, बाबू?"

"कौन है तू, मंगरुआ?"

+अरहर की हरी फलियाँ। *उबालकर।

"हाँ।"

"आ बेटा, उतारकर ले चल पलानी में।"

"क्यों बाबू, ऐसे काहे बोलते हो ?" बाबू की ओर बढ़ते हुए मैंने पूछा।

"देह का दुरदासा हो गया बेटा! अभी अस्पताल से नाम नहीं कट रहा था। मगर मैंने नाम कटवा लिया। सोचा, मरना है तो अपनी जलमभूम पर जाकर मरूँ। कम-से-कम तुमलोग तो आँख के सामने रहोगे।" थरथराते हुए बाबू बोले।

गाड़ीवान की मदद से मैंने बाबू को बैलगाड़ी से उतारा और पलानी में ले आया। अपने पास से चार रुपये निकालकर बाबू ने मुझे दिये और कहा, "इसे गाड़ीवान को दे दो।"

"बाप रे, चार रुपये! कोस-भर जमीन का ?" मैंने कहा।

"कोस-भर से नहीं आ रहा हूँ। परमानंदपुर से ही गाड़ी कर ली थी।"

मैंने गाड़ीवान को रुपये दे दिये। बैलगाड़ी के लौटने की आवाज थोड़ी देर तक मेरी पलानी में आती रही, फिर बन्द हो गयी। मैं बाबू के पास आकर बैठ गया। सनीचरी कोने में सिकुड़कर बैठी रही। मेरी बहन भूख के मारे रोती-रोती सो चुकी थी। माँ ने उसे पुआल पर लेटा दिया था।

"मुझे धीरे-धीरे अउंधे × लेटा दो।" बाबू ने कहा।

"क्यों, पेटकुनिएँ क्यों सोओगे ?" माँ ने पूछा।

"पहले लेटा दे न, दर्द हो रहा है।"

मैंने धीरे-धीरे पेट के बल ही बाबू को लेटा दिया। जब जलते हुए पत्ते की रोशनी खत्म होने लगती, तब माँ उसमें थोड़े पत्ते और डाल देती थी। तब एकाएक बड़े जोरों की रोशनी फैल जाती। बाबू को ऐसी हालत में पाकर हमलोग बहुत उदास हो गये थे। माँ चुपचाप उनका मुँह निहार रही थी। बाबू ने पूछा, "और यहां का क्या समाचार ?"

"सब पुराना है।" माँ बोली।

× पेट के बल।

"मालिक के घर गोबर पाथने जाती हो न ?"

"हाँ।"

"और दुलहिन ?"

"वह भी अच्छी है।" माँ बोली।

"इतने जोर से बीमार पड़ गये, तो घर क्यों नहीं चले आये ?" मैंने पूछा।

"घर कैसे आता ?"

"क्यों, तुमने तो चिट्ठी भी नहीं भेजी। घर की बात दूसरी होती है। और नहीं तो क्या अगनू मिसिर भी कहीं गये थे ? दो चोट काढ़ा पिलाते और मालिश करने का तेल देते कि सब दर्द भाग जाता।" मैंने कहा।

"और नहीं तो क्या ? परदेस में कौन किसका होता है ! कहा भी है कि, परदेस नरेस कलेस। परदेस में राजा को भी तकलीफ हो जाती है। फिर हमलोग तो रङ्क हैं।" माँ बोली।

"अरे भाई, तुमलोग बात नहीं समझ रहे हो। मुझे न तो सर्दी हुई है और गेंठिया।"

"तो फिर, पिलही-उलही पड़ गयी क्या ? घबड़ाओ नहीं, हराजी में बाबू प्रहलाद लाल मालिक के बगीचे में गुरुच का लत्तर बहुत फैला है। पैरों पर गिरकर थोड़ा-सा माँग लाऊँगा। जहाँ पन्द्रह रोज उसका रस छानकर पी लोगे कि पिलही हवा हो जायगी।" मैं बोला।

'पिलही हो, तब तो। मुझे तो बम लग गया है !" बाबू बोले।

"बम, बमगोला ? जो हवाई जहाज से गिरता है ?",

"हाँ रे पगला, वही बम।" बाबू बोले।

बाबू के मुँह से यह बात सुनकर मेरा होश-हवास जाता रहा। मन-ही-मन बड़ा अचरज होने लगा, कि आखिर बम लगने से बाबू बच कैसे गये ! मैंने तो सुन रखा था कि एक बमगोला के गिरने से पचासों गाँव की बस्ती बरबाद हो जाती है। वह कैसा बमगोला था, जो सिर्फ बाबू को भी न मार सका ! एक मिनट तक मुझे बाबू की बातों पर यकीन न हुआ। तभी तो मैंने कहा, "धत् बाबू, बमगोले से भी कोई बचता है ?"

"तुझे +परतीत नहीं होता तो देख, बहुत धीरे-धीरे मेरी पीठ पर का कुरता हटाकर मेरा जख्म देख ले।"

बाबू के मुँह से इतनी बातें सुनकर मुझे विश्वास तो हो गया, मगर झटपट इस बात की हिम्मत न हुई कि उनका कुरता हटाकर जख्म देखूँ। मगर बाबू ने जोर देकर कहा, "देख न, इसीलिए तो पेटकुनियें सो रहा हूँ।"

बाबू के जोर देने पर मैंने धीरे-धीरे उनकी पीठ पर का कुरता हटाया। पीठ पर ऊपर की ओर हुआ बहुत बड़ा घाव था। मगर, वह पट्टियों से ढँका था। माँ ने देखकर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया और रोने लगी। इसके बाद मैंने देखा कि दुबककर बैठी सनीचरी भी सिसकने लगी है। बाबू की पीठ को ज्यों-की-त्यों ढँककर मैंने पूछा, "यह तो बहुत बड़ा जख्म है न, बाबू ?"

"ऊपर से कुछ नहीं है। ऊपर तो पट्टी-ही-पट्टी है। जख्म भीतर बहुत गहरा है। भीतर तो गड्ढा हो गया है।" बाबू ने बतलाया।

अब माँ और जोर-जोर से रोने लगी। सनीचरी रोती जरूर थी, मगर ससुर के सामने खुलकर रोया नहीं जाता था। रुलायी तो मुझे भी आ रही थी, लेकिन मैंने जान-बूझकर अपने कलेजे को काठ बना लिया। जब सब लोग रोने लगते, तो बाबू का भी साहस टूट जाता। चटगाँव के अस्पताल से वे इतनी दूर घर क्यों भाग आये थे ? हमलोगों के लिए, हमलोगों की मुहब्बत के लिए, हमसे सेवा कराने के लिए, हमसे धीरज पाने के वास्ते। उनकी सेवा करना जरूरी था, रोना नहीं।

घर आने के सात-आठ रोज बाद तक बाबू कहीं ले जाने लायक नहीं हुए। एक तो कमजोरी थी, दूसरे घाव था, तीसरे उनके मन में बहुत डर समाया हुआ था। बाबू के पास चार रुपये और थे, उसका अन्न खरीदा गया। लेकिन, हम-लोग उस अन्न को नहीं खाते थे। सोचा गया था कि अगर उसी से सब कोई खाने लगेगा, तो दस रोज में ही खत्म हो जायगा और बाबू की कमजोरी बनी ही रह जायगी। फिर आठ-दस रोज के बाद भी उन्हें पैदल नहीं ले जाया जा सकता था। कोस-भर का रास्ता बिलकुल झुककर तय करना मुश्किल था। सनकर

+विश्वास।

चलने से दर्द होता। हारकर मैं केवल राउत के दरवाजे पर पहुँचा। राउत से बाबू की हालत कह सुनायी। उसने मुझ पर बड़ी दया की।

"दिघवारा अस्पताल ले जाओगे न ?" राउत ने पूछा।

"हाँ।" मैंने कहा।

"बैल तो आजकल बैठे ही हैं, बैलगाड़ी भी है। ले जाओ।"

"मगर मुझसे भाड़ा कुछ कम लेना होगा।" मैंने कहा।

"भाड़े की कोई बात नहीं हैं, भाड़ा तुम एक पैसा भी मत देना। कल नौ बजे आ जाओ। बैल खा-पीकर तैयार रहेंगे। जोतकर अपने ले जाना। हाँकना जानते हो न ?"

"हाँ।"—मैंने कहा, "मगर तुम तो नौ बजे बुला रहे हो राउत! सुना है, अस्पताल बारह बजे बन्द हो जाता है। एक-डेढ़ घण्टा तो रास्ते में ही लग जायगा। कुछ और सवेरे बैलों को खिला दो।" मैंने कहा।

"अच्छा, तुम और सवेरे आ जाना। मैं बैलों को खिला दूँगा।"

"राउत, तुम्हें बड़ा धरम होगा।"

"इस समय चाहिए था कि ठाकुर तुम्हारी मदद करें।"

"चाहने की बात कुछ और, और करने की बात कुछ और होती है राउत!" मेरे मुँह से निकला।

"अब तो सुना है, बच्चाबाबू कंगरेसी हो गये है।"

"सो तो सही है। वे भी कहते हैं, जमींदारी राज नाश हो।"

"और कर क्या रहे हैं, सो तो देख ही रहे हो।" राउत बोला।

उस वक्त उस बुड्ढे की आँखें अजीब तरह से मेरी ओर उठीं और चमककर रह गयीं। उसने मुस्कुराकर कहा, "अब हुँड़ार भी बकरी की रखवारी करने के लिए जंगल छोड़-छोड़कर गाँवों में आ रहे हैं""हो हो हो""।"

इस तरह राउत के हँस देने पर मैंने उसके तम्बाकू से सड़े हुए दाँतों को देख लिया। मुझे ऐसा लगा, जैसे राउत की उस फीकी हँसी में बहुत-सी बातें छिपी हों। हँसने के बाद उसकी आँखें एक बार उस ओर घूम गयीं थीं, जिधर ठाकुर का बहुत बड़ा मकान था।

दूसरे रोज ठाकुर से मैंने यह कहना चाहा कि अस्पताल के डाक्टर के नाम एक चिट्ठी लिख दें। मगर बाबू ने मना किया।

"डाक्टर उनके यहाँ बराबर आते हैं।"

"तो ?"

"उनकी चिट्ठी से डाक्टर खयाल करेंगे।"

"तुम्हारा यह सब सोचना बेकार है मँगरुआ !"

क्यों ?"

"ठाकुर तो पहले चिट्ठी देंगे ही नहीं, देंगे भी तो उससे कुछ फायदा नहीं होगा। चिट्ठी के साथ दो-चार-दस रुपये की मदद तो नहीं करेंगे। फिर चिट्ठी लेने से क्या फायदा ? आखरी वक्त यह दाग मत लगवाओ।" बाबू बोले।

"दाग ?" मैंने अचरज से पूछा।

"हाँ, दाग नहीं तो और क्या ? तीन *पुसुत तक हमलोग इनके दरवाजे की ×घूर बने रहे। अब ठाकुर हमलोगों को बुहार कर फेंक दें, यही अच्छा है। वे तो चाहते ही हैं कि हमलोग इतने मजबूर बने रहें कि दुनिया देखने का मौका ही न मिले।"

उस रोज बाबू की बात मैं अच्छी तरह नहीं समझ सका था। बाप-बेटे हम दोनों मूर्ख थे। मगर, बाबू की उस बात का माने आज लगाता हूँ, तो उसमें बहुत कुछ मिलता है। बैलगाड़ी माँगते समय राउत ने भी जो बातें कहीं थीं, उनमें भी जान थी। राउत की बातें तब मुझे बे-जान जान पड़ी थीं। सिर्फ राउत के उस समय के चेहरे से मैंने अन्दाज लगाया था कि उसने कोई गहरी बात जरूर कही है, मगर वह गहरी बात क्या हो सकती है, मैं नहीं समझ सका था।

शाम को मैं ठाकुर के यहाँ गया। मैं जिधर बैठकर कुट्टी काटता था, उधर ही दुबका रहा। थोड़ी देर में अछँवरा आया।

"अरे, यहाँ क्यों बैठा है मँगरुआ ! कुट्टी काट चुका है न ?" अछँवरा ने पूछा।

---

*पुश्त। ×धूल।

"हाँ, कुट्टी तो भोरे आकर काट ही गया।"

"तब अभी कैसे ? मैं सब समझता हूँ।"

"क्या समझते हो ?"

"कुछ झटकने आये होंगे।"

"धृत्....।"

"तो ?"

"तुमसे एक बात कहने आया हूँ।"

"मुझसे ? क्या कहेगा, कह।" अछैंवरा बोला।

"मेरे बाबू चटगाँव से आ गये हैं, सो तो जानते ही हो ? बाबू को बमगोला लग गया है, यह भी तुमसे बतलाया था।"

"हाँ, वह तो कहा था।"

"कल बाबू को अस्पताल ले जा रहा हूँ। कुट्टी काटने नहीं आऊँगा।"

"मुझसे क्या कहता है, मैं मालिक हूँ क्या ?"

"मालिक से यह बात कैसे कहने जाऊँगा ?"

"किससे कहने से अच्छा होगा, बतलाओ न। बाबू को अस्पताल ले जाना जरूरी है।"

"मोनसीजी से कह दो।"

"बाप रे बाप, वे तो खिसियाने लगेंगे।"

"सो मोनसीजी जानें।"

"अच्छा, एक बात।"

"क्या ?"

"तुमसे कह दे रहा हूँ। वे लोग पूछें, तो तुम बतला देना। इतना तो कर सकते हो।"

"बतला दूँगा।"

"अच्छा, अब मैं चला।"

अछैंवरा से इतनी बातें करके मैं ठाकुर के यहाँ से लौट आया। सोचा, जो होगा सो देखा जायगा। पर आकर मैंने बाबू से यह सब नहीं बतलाया। मोनसी-

जी से छुट्टी न माँगने की वजह थी। वे किसी के दुःख को समझनेवाले आदमी नहीं थे। एक रोज के लिए फुर्सत देने के बदले वे डाँट-फटकार सुनाने लगते। और, तब मुझे दूसरे दिन बाबू को अस्पताल नहीं ही ले जाना पड़ता। दूसरे रोज ठीक वक्त पर मैं राउत के यहाँ से बैलगाड़ी ले आया। बाबू बोले, "राउत का नाम कभी भूला नहीं जायगा।"

"बड़ा दयामंत आदमी है" माँ बोली।

मैंने पहले बैलों को जुए से निकाल दिया। अब बाबू को गाड़ी पर चढ़ाने में आसानी हो गयी। धीरे-धीरे बाबू को सहारा देकर पलानी से बाहर निकाल लाया और गाड़ी के बीच में बैठा दिया। फिर बैलों को जुए से लगाया। मैंने बाबू से पूछा, "सरकारी अस्पताल का कागज ले लिया है न ?"

"हाँ।" बाबू बोले।

"अच्छा, अब अमिका भवानी का नाम लेकर चलो!" मैंने कहा और बैल-गाड़ी पर चढ़कर बैलों को ललकारा।

बैलों को एक पतले पेड़ में बाँधकर बाबू को लेकर जब अस्पताल में आया, तो देखा, बड़ी भीड़ है। रंग-बिरंग के रोगी आये थे। डाक्टर का पता नहीं था। सभी डाक्टर के आने की राह देख रहे थे। पूछ-ताछ करने पर पता चला कि कहीं फीस पर गये हैं। इंतजारी में ही दस बज गये। दस बजे आये भी तो पहले उन लोगों के लिए दवा लिखने लगे, जो अच्छे-अच्छे कपड़े पहने हुए थे। जिनकी जुल्की सँवारी हुई थी। जिनके बालों में महकनेवाला तेल था, जिनके हाथ में घड़ी बँधी थी। मेरे बाबू की तरह दो-तीन मरीज और थे और उनके पास भी चटगाँव के सरकारी अस्पताल का कागज था। मेरी एक आँख डाक्टर की ओर थी और दूसरी आँख गाड़ी और बैलों की ओर। बाबू वहीं ओसारे पर पेट की ओर से झुककर बैठे थे।

हमलोगों का नंबर पीछे आया। मैं बाबू के साथ डाक्टर के पास पहुँचा। मैंने सबसे पहले डाक्टर के सामने चटगाँव के सरकारी अस्पताल से मिला हुआ कागज रखा। डाक्टर ने गुस्से में कहा, "यह सब क्या पोथी-पतरा है ?"

"मालिक, ये मेरे बाप हैं।"

"तो इस कागज से क्या मतलब ?"

"सरकार, मैं वहीं कमाता था। बमगोला लग गया !" बाबू बोले।

"यह कागज वहीं के सरकारी अस्पताल का है।" मैंने कहा।

"अच्छा....।" कहकर डाक्टर उस कागज को पढ़ने लगा। थोड़ी देर कागज को उलट-पुलटकर देखने के बाद उसने बड़ी जल्दीबाजी के साथ कहा, "कहाँ है जख्म, दिखलाओ।"

बाबू डाक्टर के और नजदीक आकर खड़े हो गये। मैं समझ रहा था कि डाक्टर अपने से देख लेंगे। मगर उसने मुझे कहा, "अरे, मुँह क्या देख रहा है, कुरता हटाओ न।"

"अच्छा, मालिक....।" कहकर मैंने बाबू की पीठ से कुरता हटाया। डाक्टर बोला, "ऐसे नहीं होगा, अंदर चलो !"

बगल में ही एक कोठरी थी। उसके दरवाजे पर परदा टँगा था। बाबू डाक्टर के साथ उसी में चले गये। मैं बाहर ही खड़ा रहा। मुझे बाहर से ही बाबू के चिल्लाने की आवाज सुनायी पड़ी। लेकिन, थोड़ी देर बाद ही डाक्टर ने बाबू को उस कोठरी से बाहर कर दिया। वे फिर बरामदे पर आकर बैठ गये। मैंने पूछा, "भीतर चिल्ला क्यों रहे थे, डाक्टर ने क्या किया ?"

"घाव खोलकर देख रहा था। दबा-दबाकर पूछता था, यहाँ दुखता है ?" बाबू बोले। इसके बाद डाक्टर पुर्जा लिखने लगा। मुझसे पूछा, "नाम क्या है ?"

"झगड़ू महरा।" मैंने कहा।

"लो, जिधर दवा मिलती है, उधर जाकर दवा ले लो। अभी एक सूई दी जायेगी। और पट्टी भी बँधवा देना।" पुर्जा देकर डाक्टर बोला।

"अच्छा सरकार !"

"सरकार, घाव छूट जायगा न ?" अपनी जगह से उठकर बाबू ने पूछा।

"जाओ, पट्टी बँधवाओ। बकबक मत करो।" डाक्टर ने डाँट दिया।

दूसरी ओर बड़ी-बड़ी दो कोठरियाँ थीं। एक में दवा मिल रही थी। दूसरी में मरहम। पट्टी भी उसी कोठरी में बाँधी जा रही थी।

खिड़कियों में शीशे लगे हुए थे। दवा मिलनेवाली कोठरी की खिड़की पर लोग कसमकस किये हुए थे। शोर हो रहा था—

"मेरा पुर्जा पहले से लिखाया हुआ है, कम्पोटर बाबू!"

"बाबू हमको चार कोस जाना है।"

"सरकार मेरा दे दीजिए। बच्चा बेहोश पड़ा है।"

"मेरा, सिर चक्कर खा रहा है मालिक, मुझे मत खड़ा कराइए।"

"सभी चुपचाप खड़े रहो। जिनका नम्बर आयेगा, उसे दवा मिलेगी। तकलीफ तो सभी को है। जो लोग ज्यादा शोर मचायेंगे, मैं उनका पुर्जा फेंक दूँगा, नहीं तो चुपचाप खड़े रहो।" भीतर से कम्पोटर बोला।

"सलाम हुजूर!" एक सिपाही आकर बोला।

"सलाम।" कम्पोटर ने कहा।

"दवा चाहिए।"

"कैसी दवा, पुर्जा देखूँ।"

"दारोगाजी के नौकर की है। उसे सर्दी हो गयी है न।"

"हाँ, वह तो खुद आकर ले जाता था। आज क्यों नहीं आया?" कम्पोटर ने पूछा।

"आज डेरे पर काम में फँसा है।"

"दीजिए पुर्जा।"

और, तब कम्पोटर ने शीशी में दवा भरकर दे दी। लोग, जो खिड़की पर खड़े थे, चुपचाप मुँह ताकते रहे। मुझे ऐसा लगता था, जैसे कम्पोटर को अपने-पराये से ही फुर्सत नहीं थी। मैंने कम्पोटर को पुर्जा दिखलाया तो उसने कहा, "उस कोठरी में जाकर पट्टी बँधवा लो!"

मैं बाबू को लेकर दूसरी कोठरी में गया। पट्टी बँधवाते वक्त बाबू ज्यादा चिल्लाये। मेरे सामने जब उनका घाव खुला था, तो देखकर मैंने आँखें बन्द कर लीं। पट्टी बँधवा लेने के बाद मैंने पूछा, "सरकार, डाक्टरबाबू ने कहा है सूई दी जायगी और दवा भी मिलेगी! सो नहीं मिलेगी, क्या?"

"मिलेगी, उस कोठरी में जाओ।" वहाँ के कम्पोटर ने उसी ओर इशा
किया, जिस ओर दवा मिल रही थी। अब मैंने बाबू को ओसारे में बैठा दिय
और दौड़कर जरा बैल और बैलगाड़ी को देख आया। फिर वहाँ के कम्पोटर से मिलकर कहा, "मालिक, सूई और दवा भी मिलेगी न? डाक्टरबाबू ने कहा था।"

"पुर्जा नीचे रखो। नम्बर आने पर जो होगा, सो मिलेगा।" कम्पोटर बोला। मेरा पुर्जा करीब पचास पुर्जों के नीचे पड़ गया और उसका नम्बर तब आया, जब देखा कि अस्पताल बन्द हो रहा है। हल्ला हो रहा था—चलो चलो। बन्द करो।

"सरकार, मेरी दवा और सूई? मेरा पुर्जा देखिए न।" मैंने हाथ जोड़कर कम्पोटर से कहा। तब मेरा पुर्जा देखकर उसे मेरे हाथ में लौटाते हुए उसने कहा, "यह सब यहाँ नहीं है। बाजार से खरीदकर ले आओ, यहाँ दे दी जायगी।"

तब मैं कुछ बोल न सका। बाबू ताक रहे थे।

• • •

११

उस रोज बाबू को फिर बैलगाड़ी पर बैठाकर मैं वापस चला आया। रावत को बैलगाड़ी वापस कर दी। डाक्टर से चलकर कहने की हिम्मत न पड़ी कि कम्पोटर कह रहा है कि न तो यहाँ सूई है और न दवा। डाक्टर ने कहा था, "रोज आकर पट्टी बँधवा जाना।"

दूसरे रोज फिर राउत की बैलगाड़ी पर बाबू को बैठाकर ले गया। आज जाते-जाते ही डाक्टर मिल गया। मैं डरते-डरते उसके पास जाकर खड़ा हो गया। बाबू को सामने ही ओसारे में बैठा दिया था।

"क्या है ?" डाक्टर ने मेरी ओर देखकर पूछा।

"सरकार....।" इससे आगे मुझसे बोला न गया।

"साफ कहो न, सरकार-सरकार क्या....?"

"सरकार, कल पट्टी तो बँध गयी। मगर सूई न मिली।"

"क्यों ?

"मालिक, कम्पोटर बाबू कहते हैं कि यह सब यहाँ नहीं है। खरीदकर ले आओ। सूई यहाँ दे दी जायगी।"

"ठीक है, ले आओ खरीदकर।"

"सरकार, रुपये मिलेंगे तब तो खरीदकर लाऊँगा।" मैं बोला। पीछे पता चला कि यह मेरी बेवकूफी थी।

"रुपये यहाँ थोड़े मिलेंगे ? यहाँ दवा बँटती है, रुपये नहीं बँटते।"

"सरकार, बाबू तो कहते हैं कि उनके कागज पर अस्पाल से सूई, दवा, पट्टी और मलहम सब कुछ मुफ्त ही मिलेगा।"

'हाँ, मिल सकता है। मगर जब अस्पताल में इस वक्त नहीं है, तो खरीदकर ले आना होगा।"

बाबू को अभी पट्टी नहीं बँधवायी। वे ओसारे पर बैठे थे। ओसारे के सामने ही एक पेड़ में बैल बँधे थे। मैंने बाबू के पास आकर कहा, "तुम एक काम करो, बाबू !"

"क्या कहते हो, मुझसे कौन काम होगा ?"

"कुछ करना नहीं है। तुम चुपचाप यहीं बैठे-बैठे सामने बैलगाड़ी को देखते रहो।"

"और, तू ?"

"मैं जरा दवाखाने में जाता हूँ। आगे दवा की दूकान से तुम्हारी सूई और दवा का दाम बूझ आता हूँ।"

"मगर पैसे हैं जो खरीदेगा ?"

"इसीलिए तो पहले दाम बूझ आता हूँ। रुपये-आठ आने के भीतर होनेवाला होगा, तो कोई उपाय सोचूँगा।"

"अच्छा, जा। मगर जल्द आना।"

"बस, जाते देर होगी, आते नहीं।" कहकर मैं अस्पताल से बाहर निकला और जिधर दवा की दूकानें थीं, उधर बढ़ा।

दवाखाने में दाम बूझने पर पता चला कि चौदह रुपये नौ आने का हिसाब है। मैं दवाखाने से उल्टे पाँव भागकर बाबू के पास चला आया। चौदह रुपये नौ आने की दवा खरीदना बड़ा मुश्किल काम था। मैं दूकानदार से यह भी न पूछ सका कि हर दो रोज के बाद जो सूई पड़ने के लिए लिखा है, उसमें कितने दिनों तक ऐसी सूई पड़ती रहेगी ? रुपये-आठ आने की वहाँ कोई बात ही नहीं थी। जब मैं बाबू के पास आ गया, तो बाबू ने पूछा, "क्या हुआ मंगरुआ ?"

"कुछ नहीं।" मैं बोला।

'दवे का दाम बूझने गया था न ?"

"हाँ, उतने की दवा खरीदना हमारे बूते से बाहर की बात है!"

"कितना बतलाया, तीन-चार रुपये लगेंगे क्या ?"

"दवा और सूई दोनों का दाम चौदह रुपये नौ आने। और, ऐसी सूई न-जाने कितनी बार लेनी पड़ेगी।" मैं बोला।

"तो क्या ?" बाबू ने पूछा।

"दूकानदार ने बतलाया कि हर दो रोज पर एक सूई पड़ने के लिए लिखा है।'

"अरे बाप····इतने रुपये कहाँ से····?····।"

"चलो, पहले पट्टी बँधवा लो। घर पर चलकर सोचेंगे।" मैं बोला।

"यह बतला मंगरुआ कि मरने में कितने पैसे खर्च होंगे ?"

"मरे तुम्हारा दुश्मन ! ऐसे मत बोलो !" मेरी आँखों में आँसू भर आये।

मैं तो समझता हूँ कि मरने में इससे कम ही पैसे खर्च होंगे। पाँच-सात बिरादर को चिउड़ा-दही खिला देना।"

"चलो, उठो। यह सब मत बोलो।" मैंने कहा।

इसके बाद बाबू को मैं धीरे-धीरे उस कोठरी में ले गया, जिसमें पट्टी बांधी जाती थी। पट्टी बँधवाते वक्त बाबू पहले रोज की तरह फिर चिल्लाये। मगर फिर चुप हो गये। उस कोठरी से बाहर आते ही बाबू ने मुझसे कहा, "मन बड़ा थका लगता है। पहले यहीं ओसारे पर बैठ लेने दे, फिर चलूँगा।"

"अच्छी बात है, बैठ लो।" मैंने कहा और बाबू के साथ वहीं बैठ गया।

अभी बाबू के साथ वहाँ बैठा था कि वही कंपोटर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, जो दवा बाँटता था। उसने मुझे बहुत धीरे-से बुलाकर कहा, "इधर आओ।"

"क्या हुकुम है, सरकार!"

"दवा और सूई खरीद लाये?"

"नहीं मालिक, दाम बूझ आया हूँ।"

"कितना दाम है?"

"चौदह रुपये नौ आने, मालिक!"

"तो दवा खरीदी नहीं?" कंपोटर ने पूछा।

"नहीं मालिक, इतने रुपये कहाँ पाऊँगा?"

"कुछ कम दाम में दिलवा दूँ, तो खरीदोगे?

"कितने में सरकार?" मैंने पूछा।

"आठ-नौ रुपये में हो जायगा। रुपये है, तो मुझे दो, मैं ला देता हूँ।"

"मगर सरकार, इतने रुपये भी नहीं हैं मेरे पास। मैं तो समझता था कि रुपये-आठ आने में हो जायगा।"

"पाँच रुपये भी हैं, तो निकालो। मैं सूई और दवा दोनों देता हूँ।" कंपोटर बोला।

"सरकार, मेरे पास सिर्फ सात आने पैसे हैं। एक रुपये में काम चलनेवाला हो तो कहिये, कल दस आने और लेता आऊँ।" मैंने कहा।

"अस्पताल, थाने और कचहरी में इतना कंजूस नहीं बना जाता।" कंपोटर बोला।

"मैं सच कह रहा हूँ सरकार, मेरे पास छः आने से ज्यादा एक धेला भी नहीं है।"

"तो जाओ, मौज करो। नौ की लकड़ी नब्बे खर्च करो।"

"सरकार....?" मैं बोलता रह गया।

"जाओ बकवास मत करो। मुझे अपना काम करने दो।" कहकर कंपोटर फिर दवा बांटनेवाली कोठरी में घुस गया।

इस रोज भी बाबू को पट्टी बँधवाकर मैं गाँव वापस चला आया। राउत को फिर बैलगाड़ी लौटा दी। जब शाम हुई, तो खेंखर काका मेरी पलानी के सामने आकर खड़े हो गये। पुकारा, "मंगरुआ, मंगरुआ ?

"क्या है खेंखर काका ?" मैं पलानी से बाहर निकल आया।

झगड़ू भाई की दवा हो रही है ?" उन्होंने पूछा।

"हाँ, सिर्फ पट्टी बँधती है ? दवा और सूई खरीदकर लानी पड़ेगी।"

"और अस्पताल में ?"

"अस्पताल में कंपोटर ने बताया कि वहाँ नहीं है।

"फिर कैसे काम चलेगा ?

"बड़ी मुसीबत है खेंखर भाई...."। कहते हुए बाबू भी घुसुकते-घुसुकते पलानी से बाहर चले आये। मैं दौड़कर भीतर से टाट ले आया। खेंखर काका और बाबू की ओर देखकर कहा, "इस पर बैठो न।"

बाबू और खेंखर काका दोनों टाट पर बैठ रहे। मैं भी बगल में बैठ गया। खेंखर काका अपने अँगोछे के एक कोने में बीड़ी-दियासलाई बाँधे हुए थे। उन्होंने बाबू से पूछा, "बीड़ी पीओगे, झगड़ू भाई ?"

"है तो पिलाओ। बाबू बोले।

लो...."। बाबू को एक बीड़ी देते हुए खेंखर काका ने मुझसे भी पूछा, तू भी लेगा ?

दे दो, है तो। मैं बोला।

उन दिनों मेरे समाज के लोगों को इतनी अक्ल कहाँ थी कि बाप के सामने बीड़ी नहीं पीनी चाहिए। सो, हम तीनों ने पहले बीड़ी सुलगायी और तब बाबू

की बीमारी के बारे में बातें होने लगीं। बाबू ने खेंसर काका से कहा, "अपनी देह की हालत मैं तो खूब जानता हूँ, खेंसर भाई ! मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे भीतर-ही-भीतर मेरा घाव बढ़ रहा है।

"और पट्टी बँधवा आते हो, सो ?"

"उससे कुछ आराम नहीं मालूम होता। दर्द और टीस पहले से ज्यादा है।"

"दवा और सूई खरीदने के लिए पैसे भी तो नहीं हैं।" खेंखर काका बोले।

"वही तो और आफत है। क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आता, खेंसर काका !" मैंने कहा।

मेरे इतना कहने के बाद सिर नीचे-झुकाकर खेंसर काका कुछ तजवीज करने लगे। पीछे सिर उठाकर बोले, "मेरी नजर में एक उपाय सूझ रहा है, करो तो अच्छा होगा।"

"क्या, कहो।" मैं बोला।

"थोड़ी तकलीफ उठानी पड़ेगी। मगर कौन जानता है, किसके हाथ का जस लिखा हो।"

"सो तो है। कहो न।" बाबू ने कहा।

तब खेंखर काका चुप होकर अधजली बीड़ी पीकर, जब तक उन्होंने उसे फेंक नहीं दी, तब तक न-जानें क्यों चुप रहे। बीड़ी फेंककर बोले, तुम चुपचाप छपरा चले जाओ, झगड़ू !

"छपरा ?" बाबू को अचरज हुआ।

"हाँ, छपरा सरकारी अस्पताल में।"

"वहाँ क्या दवा और सूई मुफ्त मिल जायगी ?" मैंने पूछा।

हाँ, वहाँ तो खाने के लिए भी खैराती मिलेगा। जिला का अस्पताल है, कोई खेल थोड़े ही है ?"

"तुम इस बात को ठीक से जानते हो, खेंखर भाई ? बाबू ने पूछा।"

"हाँ मैं ठीक कह रहा हूँ !"

"तब तो बड़ा अच्छा है। वहीं चलना चाहिए।" बाबू बोले।

"एक आदमी का साथ में रहना बड़ा जरूरी है।" खेंखर काका ने कहा।

"सो तो मैं साथ रहूँगा ही।" मैंने कहा।

"तुम्हें अपने खाने और रहने का इंतजाम अलग करना होगा।" खेंखर काका ने बतलाया।

"तुम कहते हो कि खाने के लिए खैराती मिलेगा।" मैं बोला।

"खैराती खाना तो सिर्फ रोगी को मिलता है।" खेंखर काका बोले।

अब मुझे फिर सोचना पड़ गया। यहाँ तो सुबह खाने के लिए गजरे का इन्तजाम करता, तो शाम को भूखे सो रहता था। कभी-कभी ठाकुर के घर से सेर-आध सेर रहरी मिल जाती, तो भूंज-पीसकर माँ सत्तू बना देती थी। मगर, वहाँ क्या होगा? खाने-पीने में *कोताही होने की वजह से मेरा बदन भी टूटता जा रहा था। बदन की हड्डी-हड्डी निकली आ रही थी। मुझे देख-देखकर अकेले में माँ रोती थी। सनीचरी से पता चलता कि रो-रोकर कहती है कि मेरे बेटे की जवानी में घुन लग रहा है। मगर मेरी जवानी को बचाने के लिए उसके पास रोने के सिवा और कोई दूसरा रास्ता नहीं था। सनीचरी भी गल-गलकर पानी हो रही थी।

एक दिन मैंने सनीचरी से कहा, "घर की हालत देख रही हो। तुम नइहर चली जाओ। जवानी की भूख नहीं सही जाती। वहाँ भर-पेट रूखा-सूखा खाने के लिए तो मिलेगा।"

"तुम मेरे मरद हो, तुम्हें छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? मुझे पाप जो लगेगा।" सनीचरी ने कहा था।

"भूखे मरते अच्छा लगता है?" मैंने पूछा।

"अच्छा तो नहीं लगता। मगर जब रामजी तुम्हारा दिन लौटायेंगे, तो मेरे बदले और कौन सुख करेगा? मैं भाई-बाप के दरवाजे पर नहीं जाऊँगी।" सनीचरी ने जवाब दिया।

हाँ, तो खेंखर काका के सुझाव से हमलोगों को बड़ा संतोष मिला। अब एक सवाल यह आ खड़ा हुआ कि छपरा में मेरे खाने और रहने का कौन-सा इन्तजाम

*कमी।

होगा ? इस पर बाप-बेटे दोनों का माथा चकराने लगा। गाँव में पैसेवाले तो बहुत थे, मगर कर्ज देनेवाला कोई नजर नहीं आ रहा था। इस बातचीत के दूसरे ही दिन खेखर काका के लड़के टीपू भाई आ पहुँचे। वे रात में आये थे। मुझसे सुबह दरियाव किनारे भेंट हुई। पवलग्गी हो लेने के बाद मैंने टीपू भाई से बाबू की हालत बतलायी।

"छपरा ले जाने की सलाह किसने दी ?" टीपू भाई ने पूछा।

"छपरा भी अच्छा अस्पताल है। मगर, छपरा से अच्छा पटना ले जाना होगा।"

"सो कैसे ?" मैंने पूछा।

वहाँ का अस्पताल बहुत बड़ा है। वहाँ छपरा अस्पताल से बड़े-बड़े डाक्टर हैं।" वे बोले।

"तो बाबू से कहूँ ?" मैंने पूछा।

"कहो, मेरे खयाल से पटना लाख दर्जे अच्छा रहेगा। वहाँ के अस्पताल का बड़ा नाम है।"

"मगर एक बात सुनो न, टीपू भइया !"

"कहो।"

"इस समय हाथ बहुत *सकेत पड़ा है। बाबू भी चटगाँव से आये, तो कुछ लेकर नहीं आये। बमगोला लग गया था, सो वहीं अस्पताल में भरती थे। खाली हाथ छपरा-पटना जाते बड़ा डर लगता है।"

"तो ?"

"तो फिर बतलाऊँ ? सुना है, अस्पताल में खैराती खाना मिलता है, मगर सिर्फ रोगी को। मान लो, बाबू को अस्पताल से खाना मिल जायगा, मगर मैं ? कहते हैं, पटना बहुत बड़ा शहर है। मगर, जहाँ कोई अपनी जान-पहचान का नहीं, वहाँ भला किसे कौन पूछता है ?"

"सो तो है। मगर सुना है, तुम्हारा कोई वहाँ रहता है।"

"अरे हाँ, ठीक तो कहा ! मेरे मामा वहीं रहते हैं।"

* खाली।

"तो फिर बाबू को पटने ही ले जाओ। रामजी चाहेंगे, तो सब रोग भाग जायगा।"

"मगर, फिर भी हाथ में कुछ तो रखना चाहिए न।"

"कुछ तो रखना ही चाहिए। मामा कब तक खिलायेंगे ? कुछ अपनी कमर का भी भरोसा करके जाना।"

इतनी बातें हो लेने के बीच हमलोग बालू से दाँत साफ करके हाथ-मुँह धो चुके थे। अब पलानी की ओर लौटने की बारी आयी। अभी ही मैं टीपू भाई से कुछ कहना चाहता था, मगर हिम्मत नहीं होती थी। अँगोछे से मुँह पोंछकर जैसे ही टीपू भाई मेरे साथ घाट पर चढ़ने लगे कि मैंने कहा, "खाकी सिगरेट हैं तो निकालो न टीपू भइया!"

"हैं, निकालता हूँ।" जरा हँसकर टीपू भाई बोले और उन्होंने अपने कुरते से एक बीड़ी निकालकर मेरी ओर बढ़ा दी।

"और तुम ?" बीड़ी लेकर मैंने पूछा।

"मैं भी पीता हूँ।" कहकर टीपू भाई ने खुद भी एक बीड़ी निकाली और दियासलाई से उसे सुलगाकर हम दोनों पीने लगे। इस तरह बीड़ी पीते-पीते हम दोनों घाट के ऊपर आ गये। इन दिनों मैं कुछ देर करके भी ठाकुर के यहाँ कुट्टी काटने जाता, तो मुझे जरा-सा डपटकर छोड़ दिया जाता था। बाबू की बीमारी और लाचारी की वजह से मुझसे भी कुछ देर हो ही जाती थी। मैं भी बेपर हो गया था। इसलिए संकोच तो हो रहा था, मगर मैंने सोच लिया कि किसी तरह टीपू भाई से मुझे वह बात कह देनी ही चाहिए, जो मैं कहना चाहता हूँ। बीड़ी पीते-पीते मैंने टीपू भाई की ओर एक बार एकटक से ही देखना शुरू कर दिया। ऐसा जान-बूझकर नहीं किया, बल्कि मुझसे ऐसा अपने आप होने लगा। टीपू भाई की बीड़ी खतम हो गयी, तो उसे एक ओर फेंककर उन्होंने कहा, "बस, आँख मूँदकर बाबू को पटने ही ले जाओ।"

"वही तो मेरा भी विचार हो रहा है।" मैंने कहा।

"वहाँ बड़े-बड़े डाक्टर रहते हैं, कोई खेल नहीं है, पटना अस्पताल!"

"ठीक कहते हो टीपू भइया, सूबेदार सिंह का बेटा जब आम के पेड़ से गिरा था, तो उसके दोनों पैर टूट गये थे। उसी रोज सूबेदार सिंह उसे पटना ले गये। महीने-भर के बाद देखा कि लौंडा गली-गली दौड़ने लगा। मगर सूबेदार सिंह के पास तो पैसे है, टीपू भइया! ठाकुर के गोतिया हैं न?" मैंने बताया।

"इससे क्या? जिसके पास ज्यादा पैसा होता है, ज्यादा खर्च करता है। तुम उधर-पईंच लेकर जाओगे, हिसाब से खर्च करना।"

"तुमसे एक बात कहूँ, टीपू भइया?"

"कहो।"

"गाँव में कोई एक पैसा भी हमलोगों को उधार नहीं दे सकता।"

"हाँ जी, कोई सीधी तरह बात करने को तैयार हो, तब तो कुछ कहा जाय।"

"ठीक कहते हो टीपू भइया! तुम तो खुद समझदार हो। लेकिन, तुमसे मैं एक बात कहूँगा।"

"कहो न।"

"कहूँ?" मैंने सवाल दुहराया। कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

"हाँ, कहो।"

"ऐसी हालत में तुम कुछ नहीं मदद करोगे?" कहकर मैं टीपू भाई का मुँह देखने लगा।

"करूँगा, मगर तुम कैसी मदद चाहते हो?"

"तुम समझे नहीं? परदेश से कमाकर आये हो। दस-पाँच भी दे दो, तो बाबू की जान बच जाय। बाबू बच गये, तो जिंदगी-भर तुम्हारा नाम लूँगा, टीपू भाई!" अब मैंने बात इस तरह साफ कर दी। इतनी बातें करते-करते हम खेंखर काका के घर के पिछवाड़े में आ गये थे। घर बहुत नजदीक था। बात साफ करके कह देने के बाद टीपू भाई मेरा मुँह देखने लगे, चुपचाप।

"क्यों, नहीं होगा तुमसे?" इस बार मैंने अधीर होकर पूछा। और मन में दुःख भी हुआ कि मैंने कहाँ-से-कहाँ रुपये माँग भी दिये।

"होगा।" टीपू भाई बोले।

"कितना दे सकते हो?"

"यह नहीं कह सकता। घर में जाने दो।"

'अभी दोगे ?"

"हाँ, अभी दे दूँगा। तुम झगड़ू काका को लेकर चले ही जाओ।"

"अच्छा, मैं आज ही चला जाऊँगा।"

"एक काम करो। तुम यहीं बाहर खड़े रहो। मैं लेकर आता हूँ। मगर मेरे बाबू से मत बतलाना।"

"नहीं बतलाऊँगा।"

'तो ठहरो, मैं अभी आता हूँ।"

मुझे वहीं पिछवाड़े में ठहराकर टीपू भाई अपने घर में चले गये। थोड़ी देर बाद निकलकर मेरे पास आये तो बोले, "चलो, उधर मंदिर की ओर। वहीं बात कर लेंगे।"

"चलो।"

हम दोनों अम्बिका भवानी के मंदिर की ओर बढ़े। अब शायद पंडा लोग अम्बिका भवानी को जगा रहे थे। मंदिर से घंटे की टनटनाहट सुनायी दे रही थी। वहाँ से चलकर हमलोग नीम के पेड़ के नीचे आकर खड़े हो गये।

"तुमने जितना कहा था, उतना नहीं हो सका।" टीपू भाई बोले।

"कितना हुआ ?"

"लो न।" कहते हुए टीपू भाई ने मेरे हाथ पर चाँदी के छः रुपये रख दिये।

"इस मौके पर इतना भी मेरे लिए सपना था, टीपू भइया।" मैंने कहा।

"इसे रखो और बाबू को ले जाने का इंतजाम करो।"

"मैं कमाने लगूँगा, तो तुम नहीं रहोगे तो भी भउजी को लौटा दूँगा।"

"अच्छा, जब कमाओगे, तब मैं तुमसे खुद उधार माँग लिया करूँगा।"

इसके बाद टीपू भाई अपने घर चले गये और मैं अपनी पलानी में आया। माँ ठाकुर के घर गोबर पाथने चली गयी थी। बाबू पुआल पर पेटकुनियें पड़े थे और सनीचरी, ठाकुर के घर से जो घुनाया हुआ जो और मटर मिला था, उसमें

से भूँजने के लिए मटर बीन रही थी। मैंने आते-आते बाबू से कहा, "अब चलना ही है बाबू, तो छपरा नहीं पटना ही चलो।"

"पटना ?"

"हाँ, वहाँ का अस्पताल बहुत बड़ा है। वहाँ बड़े-बड़े डाक्टर हैं। टीपू भाई ने कहा है कि छपरा से पटने में लाख दर्जे अच्छा इलाज होगा। और, पटने में अपने मामा भी तो हैं"। मैंने कहा। जवाब में करवट होने की कोशिश करते हुए बाबू मेरा मुँह देखने लगे।

"घबड़ाओ नहीं, मैंने पैसे का जोगार लगा लिया है।"

"कहाँ से रे ?" बाबू ने पूछा।

मैंने उन्हें सारी बातें बतला दीं। बाबू पटना चलने को तैयार हो गये। रात की गाड़ी से चलने की बात ठहरी। खेंखर काका ने बतलाया था कि रात की गाड़ी से जाने पर हमलोग सुबह पटना पहुँच जायेंगे। दिन की गाड़ी से जाने पर तकलीफ होगी! रात-भर जहाज और पटना स्टेशन पर यों ही बैठना होगा। मैं दौड़कर राउत के यहाँ बैलगाड़ी के लिए पहुँचा।

"बैलगाड़ी पर तो तुम बाप-बेटे जाओगे। टीसन से बैलगाड़ी लौटा कौन लायेगा ?" मेरा बेटा तो ससुरार गया है। और, मैं जाऊँगा तो यहाँ का काम कौन देखेगा ?" राउत ने कहा। बात मेरी समझ में आ गयी।

"खेंखर काका का लड़का बैलगाड़ी हाँकना जानता है।"

"कौन, टिपुआ ?" राउत ने पूछा।

"हाँ।"

"ठीक है, उसे साथ लेते जाओ। तुमलोगों को टीसन पर उतारकर बैलगाड़ी ले आयेगा।"

ठाकुर के घर से मैं बुट्टी काटकर लौटा, स्टेशन से बैलगाड़ी लौटाकर ले आने के लिए टीपू भाई को तैयार कर लिया। वे बोले, "जरूर चलूँगा। तुम्हारे बाबू अच्छे हो जायेंगे, तो भरपेट ताड़ी पिलाना। अपने सामने लबनी उतरवाऊँगा।"

"जरूर पिलाऊँगा। भगवान तुम्हारी बात सच निकालें।"

खेलावन के जरिये मैंने यह बात बूढ़े ठाकुर के कानों तक पहुँचा दी थी कि मैं अपने बाप को लेकर पटने जा रहा हूँ। कोई ठीक नहीं है, कब तक लौट सकूँगा। जवाब में ठाकुर ने बुलवाकर कुछ कहा नहीं था। इसलिए मन में उतना डर नहीं रहा। बिना बतलाये नहीं आने में बड़ा डर लगता था। अलमुनियम का थरिया, लोटा और कम्बल लेकर हमलोग बैलगाड़ी पर सवार हुए। अँजोरिया उग आयी थी। हमलोगों को बैलगाड़ी पर चढ़ते देख माँ रोने लगी। टीपू भाई बोले, "घबड़ाने की बात नहीं काकी! पटना में बहुत बड़ा अस्पताल है। वहाँ जाने से काका का घाव जरूर छूट जायगा।"

"आओ, बैठो टीपू!" बाबू बोले।

"आया!"

मैं बाबू को ठीक से पकड़े बैठा था। जुए की ओर से उछलकर टीपू भाई बैलगाड़ी पर आ बैठे और बैलगाड़ी स्टेशन की ओर चली। और, तब मुझे अन्दाज लगा कि माँ जोरों से रोने लगी है। उसकी आवाज दूर तक सुनायी पड़ती रही थी। बाबू को बहुत ढाढ़स बँध गया था कि पटना अस्पताल में जाकर वे अच्छे हो जायेंगे। इसलिए जब कभी मैं उनके मुँह की ओर देखता, तो वे खुद मुझे समझाते, "तू घबड़ना मत। मैं अच्छा हो जाऊँगा। वहाँ तुम्हारे मामा भी तो हैं।"

हमलोगों को स्टेशन पर उतारकर टीपू भाई बैलगाड़ी लेकर आभी वापस चले गये। आज के पहले मैं कभी पटना नहीं आया था। बाबू तो कई बार आ चुके थे। इसलिए जब टिकट कटने की घण्टी बजी, तो मैंने बाबू से पूछा, "बाबू, कहाँ का टिकट लूँ?"

"महेन्द्र घाट, महेन्द्र कहना।" तब बाबू मेरी ओर देखते हुए कुछ गर्दन ऊँची करके बोले।

मैंने कहा, "अच्छा, ले लूँगा।"

गाड़ी में भीड़ नहीं थी। जगह काफी होने की वजह से बाबू आराम से पेट के बल लेट गये। मैंने कम्बल बिछा दिया था। मैं भी बगल में बैठ गया। दिघवारा से हमलोग सोनपुर आये और सोनपुर से पहलेजा घाट। रात आधी से

अधिक बीत चुकी था। पहलेजा घाट आकर, गाड़ी से बाहर निकलते ही गंगा नदी में मैंने एक अजीब चीज देखी। दूर से देखकर ही घबड़ा गया। पानी में दोतल्ला मकान खड़ा था। उसमें बत्तियाँ जल रही थीं और मकान के ऊपर से धुँआ निकल रहा था—काला-काला।

"यह क्या है, बाबू ?" मैंने बाबू से पूछा।

"जहाज है। इसी से न पटना चलना है।"

"जहाज ?" मैंने पूछा।

"हाँ, यह जहाज गंगाजी में चलता है।"

"यह तो बहुत बड़ा है।"

"हाँ, जो जहाज कलकत्ते में बर्मा और रंगून से, विलायत और अमेरिका से आते हैं, उनके सामने तो यह कुछ भी नहीं है। वह तो छः महीने में भरती होता है और छः महीने में खाली। यह तो बहुत छोटा है, रे ?" बाबू बोले।

"बाप रे बाप! अलबत्ता होता है जहाज!" मैंने अचरज से कहा।

गाड़ी से उतरे हुए सभी लोग उस जहाज की ओर लपके जा रहे थे। बाबू ने मुझे भी उधर ही चलने के लिए कहा था। मैं ज्यों-ज्यों उस जहाज के नजदीक आता-जाता, मेरी अकचकाहट बढ़ती जाती थी। आखिर मुझे बाबू के साथ जहाज में आकर बैठ जाना पड़ा। हमलोग नीचे ही बैठे। मैं तो ऊपर चला जा रहा था। मगर, बाबू ने मुझे यह कहकर रोक लिया कि ऊपर ड्योढ़ा दर्जा है। उस पर सिर्फ बड़े लोग बैठते हैं। और, सचमुच मैंने देखा भी कि ऊपर सीढ़ी से से जितने लोग जा रहे थे, रेलवे के कुलियों के सिवा सब बाबू-भइया जान पड़ते थे। उनमें से आधे से कुछ कम कनटोप पहने हुए थे। हमलोगों के आस-पास और लोग भी बैठ गये। थोड़ी देर के बाद बड़े जोरों की आवाज हुई। मैं डर गया। समझा, जहाज डूब रहा है। बाबू से पूछा, "बाबू, यह क्या ?"

"भोंपा बजा है। अब जहाज खुलेगा।" बाबू बोले।

इसके बाद बड़े जोरों से 'टन-टन' की आवाज सुनायी पड़ी और जहाज खुल गया। मैंने किनारे की ओर आकर देखा, ठीक नाव की तरह ही लगता था कि पानी चल रहा है और जहाज खड़ा है। अब जहाज बीच दरियाव में आ गया,

तो फिर भोंपा बजा ! जहाज के आगे एक बड़ा-सा लालटेन लगा था, जो अपने ही मन से जिधर चाहता, घूम जाता था। यह सब देख-देखकर मैं मन-ही-मन अचरज कर रहा था। लेकिन एकाएक मैंने बाबू से पूछा, "पटने में मामा कहाँ रहते हैं, वह जगह मालूम है ?

"मालूम है।" बाबू बोले।

मेरे और बाबू के बीच इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि जहाज का भोंपा फिर दो बार बजा और बाबू ने मुझे बतलाया कि महेंद्रू आ गया। जहाज किनारे लगने लगा। मैंने घाट की ओर नजर दौड़ायी। जहाज का लालटेन इस वक्त घाट की ओर ही घूम रहा था। मैंने देखा, इस पार बड़े-बड़े दो-मंजिले-तिमंजिले मकान खड़े थे। अब जहाज का लालटेन कभी उन मकानों की ओर, कभी सीधे घाट की ओर घूमने लगा था।

● ●

१२

जिस समय हमलोग महेंद्रू घाट पर उतरे, उस वक्त अभी आध पहर रात बाकी थी। स्टेशन के ओसारे में बैठ जाना पड़ा। बिजली-बत्ती जल रही थी। मैंने कम्बल बिछा दिया, तो बाबू उस पर पेटकुनिएँ सो गये। कभी-कभी उनके घाव में बड़े जोरों का दर्द हो आता था। हम भोर का इंतजार कर रहे थे। बाबू का दर्द बढ़ने से मेरी चिंता बढ़ती जा रही थी। पटना मेरे लिए बिल्कुल नया था। मैं कुछ सोच नहीं पाता था कि किस तरह से क्या होगा। बाबू को तकलीफ होती तो कहते "इससे तो मर जाना ही अच्छा है !"

"घबड़ाओ नहीं, सब अच्छा हो जायगा।" मैं कहता।

राम-राम करके बाकी रात भी कट गयी। पौ फटने लगी और धीरे-धीरे काफी उजेला हो गया। अब बात यह ठहरने लगी कि पहले अस्पताल चला जाय या मामा के यहाँ। बाबू की सलाह हुई कि पहले मामा से भेंट की जाय।

मैंने बाबू की सलाह मान ली। आजकल की तरह मुरादपुर की सड़क उतनी अच्छी नहीं बनी थी। फुटपाथ भी इतने अच्छे नहीं थे। मैं बाबू के साथ सड़क की बगल होकर पूरब की ओर चला। बाबू को जहाँ दर्द होता, तकलीफ मालूम होती, वे वहाँ बैठ जाते थे। तब मैं भी उनकी बगल में बैठ जाता। चलते-चलते आखिर हमलोग सुल्तानगंज पहुँच ही गये। मेरे तपेसर मामा इसी मुहल्ले में रहते थे।

"देखो, यह सुल्तानगंज है।" बाबू बोले।

"हाँ।" मैंने कहा।

"देखो, यह सुल्तानगंज थाना है।" थाने की ओर इशारा कर बाबू ने कहा।

"अच्छा, यह थाना है? बाबू, इस पर तो कोठा है।" मैंने अचरज से कहा; क्योंकि मैंने देखा था दिघवारा थाने के ऊपर कोठा नहीं था। और मेरा यही अन्दाज था कि सभी थाने एक ही किस्म के होते हैं।

"अरे, यह शहर का थाना है!" बाबू ने कहा।

"अब किधर चलना है बाबू?" मैंने पूछा।

"आ, अब तो पहुँच गया।"

"कहीं ऐसा न हो कि मामा फेरी में चले गये हों।"

"ना, इतना सबेरे?" बाबू बोले।

इसके थोड़ी देर बाद ही बाबू बायीं ओर की गली में घुसने लगे। मुझसे कहा, "चल, अब आ गये।" मैं बाबू के पीछे-पीछे गली में घुसा। वह गली पुरानी, चौड़ी और गंदी थी। आस-पास की पतली नालियों से गंदा पानी बह रहा था। आगे एक चौड़ी नाली मिली, जो बीच से बहकर गली के दोनों किनारे को आपस में मिला रही थी। यहाँ पर के सामने का मकान शायद किसी मुसलमान का था। उस चौड़ी नाली के किनारे-किनारे मुर्गियाँ खड़ी होकर नाली के

पिल्लू खा रही थीं। हमलोगों के नजदीक जाते ही वे उछलकर जरा बगल में हट गयीं, फिर हमारे आगे बढ़ जाने पर पिल्लू चुन-चुनकर खाने लगीं।

"अब किधर ?" मैंने बाबू से पूछा।

"बस, अब आगे ही।" बाबू बोले।

उनके साथ मुझे भी बहुत धीरे-धीरे चलना पड़ता था। बाबू खाली हाथ थे। पास में जो कुछ था, उसकी गठरी मेरे माथे पर थी। मगर एक लाठी बाबू लिये थे, एक लाठी मेरे हाथ में थी। आस-पास में बैठे हुए कुत्ते जब हमें देखते, तो खड़े होकर भूँकने लगते थे। कुछ दूर तक तो वे मेरा पीछा भी करते। कभी तो मैं डर जाता, कहीं काट न लें। जरा और आगे जाने पर बाबू ने तनिक दूर ही से उँगली उठाकर कहा, "देख, उसी में तुम्हारे मामा रहते हैं।"

"चलो।"

बाबू के साथ मैं उसी घर के दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया, जिसे तनिक दूर ही से बाबू ने दिखलाया था। छोटा-सा एक कच्चा घर था। ओसारे के लिए थोड़ी-सी जगह थी, मगर ओसारा बनाया हुआ नहीं था। उस जगह में ताड़ के पत्तों से घेरकर एक छोटी-सी पलानी बना दी गयी थी। मुश्किल से उसमें तीन आदमी बैठ सकते थे। घर तो कच्चा था ही, उसकी दीवारें बहुत पुरानी और बेमरम्मत दीख रही थीं। काठ का दरवाजा था, जिस पर लगाये हुए अलकतरे का कालापन उड़ता चला जा रहा था। छप्पर के अधिक-से-अधिक खपड़े टूटे जान पड़ते थे। लगता था, छप्पर नीचे की ओर धँसा जा रहा है। उस छोटे-से घर के भीतर ताड़ की चटाई बिछी थी। घर के एक कोने में दो बड़े-बड़े घड़े रखे थे। उनके मुँह पर मक्खियाँ भन-भना रही थीं। भीतर दो मर्द बैठे हुए थे, वे आपस में न-जानें, क्या बात कर रहे थे। मैंने सुनने की कोशिश न की। घर के बाहर, जो ताड़ के पत्तों की छोटी-सी पलानी बनी थी, उसमें एक जवान औरत बैठी हुई थी। उसके आगे एक घड़े में ताड़ी भरी रखी थी, जिसे मैंने जाते-जाते ही देख लिया। उस घड़े के आस-पास छोटी-छोटी लबनियाँ भी थीं और एक बहुत-छोटे-से खोमचे में घुघुनी, पकौड़ी, मछली और न जानें क्या-क्या रखा था। वह औरत काली थी, मगर बड़ी तगड़ी दीख रही थी। उसने

अपने गले में बड़ी मोटी हँसुली पहन रखी थी, आँखों का कोसा काजल से भरा था। देखने और बातें करने से वह चाल-चलन की खराब जान पड़ी। वहाँ पहुँचते ही उसने हमलोगों को बड़े गौर से देखा।

"आओ, आओ। भीतर ही पियोगे या बाहर?" उस जवान औरत ने कहा।

"………।" हमलोग उसका मुँह देखने लगे।

"आओ न।" वह बोली।

"नहीं, पीना नहीं है।" बाबू बोले।

"पियो, पियो। फेंट-फाँट नहीं है। कसम खाकर कहती हूँ, एक बूँद भी पानी नहीं है। खजूर-ताड़ दोनों का है। एकदम ताजा, अभी का उतारा हुआ! देख लो, दूध की तरह फेन निकल रहा है।"—वह औरत बहुत जल्दी-जल्दी आँखें मटका-मटकाकर बोलने लगी, "पियोगे, तब इसका सवाद बुझोगे। चिखना भी है। तली हुई मछली है, ताजी पकौड़ी……घुघुनी……।"

"सुनो, इसमें पहले मोची लोग रहते थे न?" बाबू ने पूछा।

"हाँ, रहते तो थे।" वह औरत बोली।

"अब नहीं रहते क्या?"

"नहीं, अब नहीं रहते।"

"डेरा बदल दिया?"

"हाँ।"

"फिर कहाँ डेरा लिया है, तुम्हें मालूम है?"

"उँ हूँ……। मुझे कुछ नहीं मालूम। तुम बैठकर पियो न। एकदम सस्ता है, छै आने लबनी……।"

"नहीं, हमलोग उनको खोज रहे हैं।"

"तो जाओ खोजो, मुझे नहीं मालूम।"

"कहीं अगल-बगल में ही तो नहीं हैं?"

"सो मैं कह नहीं सकती।" कहकर उस औरत ने हमलोगों की ओर से अपनी आँखें फेर लीं।

उस घर से थोड़ी दूर इधर आकर बाबू बैठ गये। अब वे बहुत उदास हो गये थे। उनके चेहरे से परेशानी टपकने लगी थी। एक लम्बी साँस खींचकर बाबू ने मुझसे पूछा, "क्या मन है मंगरुआ, तू पियेगा ?"

"नहीं ?" मैं बोला।

"तो चल अब। मामा ने तो यह डेरा छोड़ दिया। अब इतने बड़े शहर में खोज निकालना बड़ा मुश्किल काम है।" बाबू बोले।

"कहाँ चलोगे, अस्पताल ?" मैंने पूछा।

"और कहाँ चलेगा ? चल देख, वहाँ क्या होता है।"

"चलो, सबसे पहले तुम्हें भरती हो जाना चाहिए।" मैंने कहा। तब बाबू वहाँ से उठे और हमलोग गली से निकलकर फिर सड़क पर आ गये।

अब सूरज भगवान उग चुके थे। शहर में धूप फैल रही थी। छपरा की सड़कों पर मैंने मोटरगाड़ी देखी थी, मुण्डा मालगाड़ी पर जाते और सड़कों पर लारियाँ देखी थीं, मगर यहाँ सड़क पर आज मैंने एक और किस्म की हवागाड़ी दौड़ती हुई देखी। इसकी बनावट भी अजीब थी। इसके पहिए बड़े-बड़े थे। इसकी तो ऊँचाई भी बहुत ज्यादा थी। इसमें छावनी थी और रेलगाड़ी की तरह इसमें भी खिड़कियाँ थीं। इसमें दो दरवाजे थे। इसके पिछले दरवाजे पर एक आदमी खड़ा होकर चिल्ला रहा था—आइए चलिए बाँकीपुर, स्टेशन, दानापुर, हाईकोर्ट....।"

"चलो, इसी में बैठें। मुरादपुर तो नहीं, चौहट्टे पर उतर जायेंगे। अस्पताल वहाँ से नजदीक है।" बाबू बोले।

"इसमें ?" मैंने पूछा। मुझे तो अचरज हो रहा था।

"हाँ, इसी में। यह 'बस' है।"

"बस ?" मैं फिर भी नहीं समझ सका।

"हाँ, यह भाड़े पर चलता है।"

"कोई कुछ कहेगा तो नहीं, इस पर सभी चढ़ सकते हैं, हमलोग भी।" मैंने डरते-डरते बाबू से पूछा। 'हमलोग भी' से मेरा मतलब था कि क्या इतनी अच्छी सवारी में चमार-दुसाध भी चढ़ सकते हैं। बाबू बोले, "सब ..."

"तो चलो ।"

"यहाँ से चौहट्टे का छै पैसा लगता है । तीन आने दे देना ।"

बाबू के साथ मैं उस 'बस' में आकर बैठ रहा । एक आदमी ने हमलोगों से तीन आने पैसे ले लिये और दो छोटे-छोटे लाल लाल पुर्जे पकड़ा दिये । चढ़नेवाले बहुत थोड़े थे, मगर 'बस' तुरत ही खुल गयी । थोड़ी देर में मन-ही-मन बड़ा खुश हुआ कि छः पैसे में ही हवागाड़ी पर चढ़ने का मौका मिल गया था । पच्छिम की ओर से और भी ऐसी ही सवारियाँ हमलोगों की 'बस' की अगल-बगल से जाने लगी थीं । कोई लाल रंग की थी, कोई हरे रंग की ! मुझे यह सब देख-देखकर बड़ा अचरज हो रहा था । तभी हमलोगों से पैसे लेनेवाले आदमी ने 'बस' की दीवार में थपथपाहट दी । कहा, "रोक के !"

"यह क्या बाबू ?" मैंने बाबू से पूछा ।

"चौहट्टा आ गया, उतरो ।" बाबू बोले ।

'बस' रुक गयी और मैं बाबू के साथ नीचे उतर गया । फिर वह शानदार सवारी आगे बढ़ गयी । बाबू के साथ चलता हुआ मैं सड़क के दोनों ओर नजर दौड़ा-दौड़ाकर देख रहा था । बाप रे बाप, किसिम-किसिम के मकान थे । एक मकान तो इतना ऊँचा था कि जब मैं उसकी छत को देखने लगा कि इधर माथे पर से मेरा अँगोछा गिर गया । दूकानें खुल रही थीं । और, इसी तरह से दूकानों और मकानों को देखता हुआ मैं अस्पताल के बिल्कुल पास पहुँच गया । बाबू बोले, "देखो, यही पटना अस्पताल है ।"

"यही है ?"

"हाँ''''।"

"बाप रे बाप, यह तो अलबत्त मकान बना है बाबू !" मेरे मुँह से निकला । इतना लम्बा-चौड़ा मकान मैंने आज तक नहीं देखा था । जहाँ पर बाहर से अस्पताल में घुसने का फाटक है, वहीं मोड़ पर एक सिपाही लाल मुरेठा पहने खड़ा था । उसके हाथ उठाने पर सवारियाँ रुक जातीं और उसके हाथ गिरा देने पर सवारियाँ खुल जाती थीं । उस सिपाही ने तो एक हवागाड़ी तक को दो मिनट रोक रखा । तभी मैंने मन में कहा कि जिंदगी में अगर नौकरी करनी हो, तो

सिपाही की नौकरी करे। यहाँ के अस्पताल का मैदान देखकर मैं दङ्ग रह गया। मकान के तो क्या कहने! दिघवारा अस्पताल इसके सामने क्या था। एक झोपड़ी कह लो। खैर, बाबू ने पटने को देखा था, पटने के मकान देखे थे, मगर पटना अस्पताल भी देखा था। लेकिन, उन्हें इस बात को जानकारी नहीं थी कि यहाँ कौन काम कैसे होता है। इसलिए आस-पास से जाते हुए कई लोगों से पूछ-ताछ करनी पड़ी। अस्पताल के फाटक पर जो बड़ा-सा पीपल का पेड़ है, हमलोग वहीं जाकर खड़े हुए थे।

"भरती कहाँ हुआ जाता है, बाबू?"

"घाव की दवा किधर होती है?"

"डाक्टर बाबू से किधर भेंट होगी?"

बाबू ने इस तरह के सवाल कई लोगों से किये। अन्त में एक आदमी ने बतला दिया, "वहाँ जाकर दिखलाओ, भरती करने लायक होगे, तो भरती कर लिये जाओगे।"

यह जगह अस्पताल के शुरू में ही थी। मैंने अपनी गठरी सम्हाल ली और बाबू के साथ उस मकान के भीतर घुसा। भीतर कई कोठरियाँ थीं और एक-से-एक रोगी पहुँचे हुए थे। कोई पेड़ से गिरा था, तो कोई कोठे पर से। किसी को चोर ने भाला मार दिया था, तो कोई मियादी बुखार का शिकार हो रहा था। किसी के गले में घाव निकल आया था, तो किसी को साँप ने काट लिया था। किसी के दोनों पैर सूज गये थे, तो किसी का पूरा पेट चढ़ गया था। रोगियों से जगह भरने लगी थी। मैंने बाबू को एक ओर दीवार से लगाकर बैठाया। डाक्टर बारी-बारी से रोगियों को देख रहे थे। मगर रोगियों में तबाही मची थी।

"सरकार, मेरे बाबू को चटगाँव में बमगोला लग गया है...।"

"सरकार, दिघवारा अस्पताल में भी दिखलाया था, मगर...।"

"क्या कहें माई-बाप, इनके पास चटगाँव के सरकारी अस्पताल का कागज भी है।" मैं डाक्टर के आस-पास खड़ा होकर कहता।

"चलो, बैठो देखा जायगा।"

बहुत देर के बाद डाक्टर मेरे बाबू के पास आ खड़ा हुआ। मैंने सबसे पहले अपनी गठरी खोली और चटगाँव के सरकारी अस्पताल से मिला हुआ कागज निकाला। डाक्टर ने मेरे बाबू से पूछा, "क्या तकलीफ है तुमको ?"

"सरकार ! मुझे चटगाँव में बम लग गया था····। वहाँ से नाम कटवाकर बाल-बच्चों से मिलने के लिए घर चला आया। दिघवारा अस्पताल में भी दिखलाया था, मगर····।" बाबू बोलने लगे !

अभी वे बोल ही रहे थे कि मैंने वह सरकारी कागज डाक्टर के हाथ में दे दिया। मेरे हाथ से उस कागज को लेकर डाक्टर पढ़ने लगे। पढ़ लेने के बाद कहा, "खोलो कुरता, जख्म दिखलाओ।"

यह कहने की जरूरत नहीं कि हमलोगों ने डाक्टर को जख्म दिखला दिया। जख्म को देखकर डाक्टर ने कहा, "भरती तो कर लेगें, मगर अभी पलंग नहीं मिलेगा। खाली होने पर मिल जायगा।"

"सरकार, मैं गरीब मोची हूँ। पलंग पर सोने की मेरी आदत नहीं। पलंग पर सोकर क्या करूँगा ! मगर, मालिक ऐसी दवा दीजिए कि मैं अच्छा हो जाऊँ। बस, यही अरज है माई-बाप !" बाबू डाक्टर के आगे हाथ जोड़कर बोले। मैं डाक्टर और बाबू दोनों के मुँह देख रहा था।

"घबड़ाओ नहीं, मैं भरती कर लेता हूँ।" डाक्टर बोले।

डाक्टर के हुक्म देने पर अस्पताल के दो आदमी बाबू को टाट की खटिया पर लादने लगे। इस खटिये में पउआ नहीं थे। करीब डेढ़ हाथ चौड़ी टाट में, जो एक आदमी के बराबर लम्बी थी, दो काठ के डंडे लगे थे। बाबू को उन दो आदमियों ने कंधे पर उठाया और तब मुझसे कहा, "चलो।"

वहाँ से वे लोग मेरे बाबू को बाहर ले आये और उत्तर की ओर बढ़े। उत्तर की ओर भी अस्पताल ही था। उस ओर से बहुत लोग आ रहे थे। सामने दो-तीन हवागाड़ियाँ खड़ी थीं। यह सब देख-देखकर मैं अकचका रहा था। वहाँ से जब मैं उन लोगों के साथ इस अस्पताल में पहुँचा, तो देखा, एक आदमी खाकी रंग का कोट और धोती पहने खड़ा था। हमलोगों को देखते ही उस आदमी ने सामने के लोहे के फाटक को खोल दिया। वे दोनों आदमी मेरे बाबू को लिये

उसमें घुस गये और उस खाट को जमीन पर रख दिया। उन लोगों ने फिर मुझसे कहा, "तुम भीतर आ जाओ और उस कोने में चुपचाप खड़े हो रहो।"

मैं, बाबू जिस खाट पर पेटकुनिएँ सोये हुए थे, उसकी बगल में चुपचाप खड़ा हो गया। फिर उस पहले आदमी ने जिसने लोहे के फाटक को खोला था, हम-लोगों के बीच चला आया और लोहे के फाटक को फिर बन्द कर दिया। अब वह जगह एक कोठरी बन गयी। मैं उस कोठरी को अचरज से देख ही रहा था कि वह कोठरी हिली। मेरे मुँह से निकला, "अरे बाप, भूकम्प····!"

"चुप रहो, ऊपर चल रहे हो।" मुझे सुनायी पड़ा।

मैं इस बात को समझ भी न पाया था कि देखते-देखते वह कोठरी झटपट दोतल्ले पर आ गयी। मैं क्या समझता था कि 'लिफ्ट' क्या बला है। यहाँ भी एक लोहे का वैसा ही फाटक लगा था। उस आदमी ने यहाँ का फाटक भी खोल दिया और वे दोनों आदमी मेरे बाबू को उठा लिये। यह दोतल्ला देखकर तो मैं और घबड़ा गया। बहुत बड़े-बड़े ओसारे थे। बाबू को उठाकर जब वे लोग भीतर घुसे, तो सैकड़ों पलंग देखे। सब पर रोगी पड़े थे। कोई फल खा रहा था, कोई अखबार पढ़ रहा था। किसी की नाक में रबड़ की नली घुसेरी थी, तो किसी के हाथ में। किसी के ठेहुने के पास बित्ते-भर का सूआ आर-पार किया हुआ था। कोई दर्द से चीख रहा था। कोई रो रहा था। किसी के माथे में पट्टी बँधी थी, तो किसी के हाथ में। यह सब देखकर मैं घबड़ा तो जरूर गया, मगर मन में सोचा कि जब पटना अस्पताल बड़ा और अच्छा है, तभी तो इतने रोगी यहाँ आये हैं। बाबू भी जरूर अच्छे हो जायँगे। बाबू को उन दो आदमियों ने ओसारे पर ही एक ओर उतारकर रख दिया। मैंने उन दो आदमियों से पूछा, "अब क्या होगा।"

"अब डाक्टर आयेंगे तो देखेंगे। कम्बल या कोई बिछावन हो, तो बिछाकर इसे लेटा दो।"

"सुनो मेरे भइया····?' वे जाने लगे, तो मैंने पुकारा।

"क्या है ?"

"खाने के लिए तो यहीं मिलेगा न ?"

"मेम साहब से कहना होगा।"

इतना कहकर वे दोनों आदमी वह खाट लेकर लौट गये। मैंने कम्बल विछा दिया, तो बाबू उसी पर जरा-सा करवट होकर लेट गये।

इस तरह बाबू पटना अस्पताल में भरती कर लिये गये। किसिम-किसिम के लोग आ-जा रहे थे। मैं बाबू के पास आधा घंटा तक बैठा रहा। इसके बाद मुझे पैखाना लगा। मैं तो इतना बड़ा मकान देखकर ही घबड़ाया हुआ था, पैखाने के लिए कहाँ जाता ?

"बाबू ?"

"क्या है ?"

"मुझे पैखाना लगा है।"

"जा, कहीं से हो आ। बाहर कहीं मैदान देखकर बैठ जाना।

"अच्छा, मैं जाता हूँ,। तुरत चला आऊँगा।"

बाबू के पास सामान की गठरी छोड़कर मैं दो-तल्ले से नीचे उतर आया। उतरने और चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं। न जाने, बाबू को उस वक्त वैसे क्यों ले आया गया। नीचे उतरकर मैंने उस लोहे के फ़ाटक को ही बड़े ध्यान से देखा था। लेकिन, उस लम्बे-चौड़े मकान से निकलकर जब-जब मैं बाहर आया, तो चारों ओर देखने लगा। मगर, मेरे काम के लायक कोई जगह नहीं नजर आ रही थी। सामने एक मैदान था, मगर बहुत साफ ! उसमें दूबें उगी थीं। मैदान के चारों ओर से आदमी आ-जा रहे थे। उस काम के लिए मेरी हिम्मत न पड़ी। मैंने एक आदमी से जो मेरी ही तरह देहाती जान पड़ता था, पूछा, "एक बात बतलाओगे भाई ?"

"क्या ?" उसने पूछा।

"यहाँ फरागत होने के लिए किधर जगह है ?"

"उधर चले जाओ, पच्छिम की ओर। गंगा-किनारे।"

देहात की तरह यहाँ खेत कहाँ थे। उस आदमी के बतलाने पर खोजते-खोजते मैं दरियाव किनारे पहुँचा। यहाँ भी लोग थे। मगर, मेरे काम के लिए इधर जगह मिल गयी। पैखाने से होकर मैंने गंगाजी में ही मुँह-हाथ धो लिया

और तब फिर अस्पताल पहुँचा। उस लोहे के फाटक पर आकर अब मैं भीतर घुसने लगा, तो खाकी कोटवाले आदमी ने पुकारा, "अजी सुनो, किधर चले ?"

"ऊपर, मेरे बाबू भरती हुए हैं।" मैंने उसके पास आकर कहा।

"पास है ?"

"पास ?" मैं समझ न सका।

"हाँ, पास। अन्दर जाने का 'पास'।"

"पास क्या ?"

"डाक्टर साहब का लिखा हुआ 'गेट-पास' ?"

"नहीं, डाक्टर साहब ने तो बाबू को भरती ही किया है ?"

"ठीक है। अन्दर मत जाओ।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

वह बोला, "क्यों क्या ? सरकारी हुकुम है। जाओ, टहलो। बारह बजे आना।"

इसके बाद मैं उस आदमी के हाथ-पैर पड़ता रहा, मगर उस आदमी ने मुझे अन्दर न जाने दिया। बारह बजे तक मैं बाहर ही खड़ा रहा। बाबू से न मिल सकने के लिए मुझे बहुत दुःख हो रहा था। मगर, मैं तो लाचार था। हाँ, एक बार उस आदमी ने मुझे, इशारा करके बतलाया था कि अगर मैं उसे चार आने पैसे दे दूँ, तो वह जाने देगा। मेरी इच्छा हुई कि उसे पैसे दे दूँ, मगर मैं सब कुछ बाबू के पास छोड़ आया था। ठीक बारह बजे जब मैं बाबू के पास पहुँचा, तो पता चला कि बाबू को खाने के लिए मिल गया है। कम्बल के पास एक कागज भी रखा हुआ था, जिसके बारे में बाबू ने बतलाया कि उसे एक मैम रख गयी है। मैंने अपने वहाँ न पहुँच सकने की वजह बाबू से बतला दी। बाबू ने मुझसे कहा कि मैं पैसे लेकर बाहर से कुछ खा आऊँ और उसी ओर इधर-उधर मामा को भी देखूँगा।

वहाँ से फिर बाहर आकर मैंने फुटपाथ पर चार आने की रोटी खायी। पेट नहीं भरा। मगर क्या करता ? पास में पैसे, जो थोड़े थे। चार आने की चार रोटियाँ मिली थीं पत्ते की तरह पतली-पतली। वह रोटी की दूकान काठ के

खोमचे में थी। खाने की चीजों पर हजारों मक्खियाँ भनभना रही थीं। आस-पास से गुजरनेवाले बाबू-भइया उस दूकान की ओर से मुँह घुमाकर चल देते थे। रोटी खा लेने के बाद मैंने मामा को खूब खोजा मगर मामा कहीं भी नजर नहीं आये। लौटकर फिर उस लोहे के फाटक पर आया तो मैं फिर रोक लिया गया। इस बार मेरे पास पैसे थे। रोकनेवाले को चार आने पैसे देकर मैं बाबू के पास पहुँच गया। "मामा के नहीं मिल सकने के कारण बाबू बहुत ही उदास दीख रहे थे। उन्होंने कहा, "अब भेंट नहीं होगी।"

"ऐसे क्यों बोलते हो बाबू! अच्छे होकर घर चलना तो मामा को बुलवा लेंगे।" मैंने कहा।

"........।" इस पर बाबू चुप हो गये।

मैं नहीं समझ सका था कि बाबू का इलाज कैसा हो रहा है। मगर इतना जरूर देखता था कि उनके घाव की पट्टी रोज खोली और बाँधी जाती है। अस्पताल के दरवान मुझे अंदर नहीं रहने देते थे। मेरी ही तरह कुछ और लोग भी थे जो समय-समय पर अपने रोगियों के पास से भगा दिये जाते थे। अस्पताल के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे मैं गमछा बिछाकर सो रहता। खूब सवेरे दरियाव किनारे चला जाता। और फिर बाबू के पास पहुँचता। इसके घंटे-भर के बाद दरवान निकाल देता था। पास में इतने पैसे नहीं थे कि बार-बार उन्हें खुश कर पाता। 'पास' के लिए न मेम साहब बात सुनती और न डाक्टर। मैं बाजार में ही जैसे-तैसे खा लेता। एक रोज सवेरे जब मैं बाबू के पास गया था तो एक बाबू हाथ में कागज लिये हुए आये।

"यह तुम्हारा मरीज है?" उस बाबू ने मुझसे पूछा।

"जी मालिक!" मैं बोला।

"क्या नाम है?" उसी बाबू ने पूछा।

"झगड़ू महरा सरकार!" मेरे बाबू ने जवाब दिया।

"अभी तुमको एक सूई पड़ेगी। इसके बाद तुम्हारा ऑपरेशन होगा।"

"ऑपरेशन क्या सरकार?" मैंने पूछा। उन दिनों अंग्रेजी के शब्दों की कहाँ जानकारी थी।

"चीर-फाड़ करके घाव साफ कर दिया जायगा। भीतर घाव सड़ गया है।"

"जी।" मेरे मुँह से निकला।

"ट्राली लेकर आदमी आयेंगे। अच्छा?"

"जी।" मैंने फिर कहा। इसके बाद वह पढ़ा-लिखा बाबू चला गया।

"अब क्या होगा, बाबू?" मैंने बाबू से पूछा।

"घाव साफ किया जायगा। तू घबड़ाना मत, सब ठीक हो जायगा।"

करीब आध घंटे के बाद एक मेम साहब आयी और उसने बाबू को सूई दे दी। सूई देकर लौटते वक्त उसने कहा, "पानी मत पीना। तुमको ऑपरेशन के लिए जाने होगा।"

"जी मेम साहब!" बाबू बोले। इसके बाद वह ऐंठती हुई चली गयी। लोग कहते थे कि मेम लोग मरीज की सेवा करने के लिए रहती हैं। मगर, ये तो सीधी तरह किसी से बात भी नहीं करती थीं। कुछ पूछो, तो वह थोड़े में और चिढ़कर जवाब देती थीं। शायद मरीजों के आदमियों को झिड़कने में ही उन लोगों को खुशी होती थी। मैं उदास होकर बाबू का मुँह देख रहा था।

"तुझे तकलीफ हो, तो तू बाहर चला जा।" बाबू बोले।

"नहीं, तकलीफ कैसी, तुमसे एक बात पूछ रहा हूँ।" मैंने कहा।

"क्या, पूछो।"

"तुम तो चटगाँव तक के सरकारी अस्पताल देख चुके। कुछ फायदा है या नहीं?"

"फायदा यह है कि दर्द पहले से कम है। मगर ऐसा लगता है, जैसे घाव भीतर-ही-भीतर बढ़ रहा हो। घाव की टीस पूरी पीठ में फैलती जा रही है। जरा साँस लेने में भी तकलीफ होती है।" बाबू ने जवाब दिया।

"चीर-फाड़ से फायदा पहुँचेगा?"

"वह तो डाक्टर और भगवान जानें! ऑपरेशन से कितने लोग अच्छे हो जाते हैं और मर भी जाते हैं।" बाबू बोले।

"तब ऐसा मत कराओ, घर चलो।" मैं बोला।

"घर चलने से क्या होगा ? भगवान और अम्बिका भवानी का नाम लो। जो होना होगा, सो होगा।" बाबू ने कहा।

अभी मैं बाबू के साथ इस तरह बातें कर ही रहा था कि चार पहियोंवाली एक गाड़ी वहाँ आ गयी। उसे अस्पताल के दो आदमी ठेलते हुए ले आये थे। उनकी नाकों पर कपड़े का झंपना लगा था। उन लोगों ने बाबू को बड़ी फुर्ती से उठाकर उस गाड़ी पर रख लिया। मैंने उन आदमियों से पूछा, "मैं भी चलूँ ?"

"तुमको वहाँ कौन जाने देगा, यहीं बैठो।" वे लोग बोले।

"घबड़ाना मत मंगरुआ, अम्बिका भवानी का नाम ले!" बाबू बोले।

"........।" मेरे मुँह से कुछ न निकला; क्योंकि मैंने देख लिया कि बाबू की आँखों में पानी भर आया था। मेरे सामने वे रोते-रोते बचे। मैं उन्हें सिर्फ देखता रहा और वे दोनों आदमी, उस गाड़ी को, जिस पर बाबू सुला दिये गये थे, ठेलते हुए उत्तर की ओर ले गये।

मैं वहीं पर बैठा रहा, जहाँ पहले बाबू सोते थे। मैं कभी गठरी को देखता, कभी फटे-पुराने कंबल को और कभी उस ओर देखता था, जिधर चार पहियोंवाली गाड़ी पर सुलाकर बाबू ले जाये गये थे। करीब एक घंटे के बाद उसी गाड़ी पर बाबू लौटे। वे लाल कंबल से ढँक दिये गये थे। उनको होश नहीं था। आँखें बंद थीं और चेहरा उतरा हुआ था। गाड़ी ठेलकर ले आनेवाले वही दो आदमी थे। इस बार एक पलंग खाली कर बाबू को उसी पर सुलाया गया, उन दो आदमियों ने मुझसे कहा, "यहीं रहना, कहीं जाना मत।"

"अच्छा।" मैंने कहा।

मैं बाबू के सिरहाने खड़ा-खड़ा उनका मुँह देख रहा था। वे कभी-कभी बड़े-जोर से चिहुँक जाते थे। मुझे यह सब देखकर घबड़ाहट होती थी। थोड़ी देर में अस्पताल का एक आदमी मेरे हाथ पर छः संतरे रख गया। मैंने उस आदमी से पूछा, "सुनो भाई! बाबू ऐसे क्यों कर रहे हैं ?"

"होश आ रहा है।" उस आदमी ने कहा और चला गया।

आज मैं खाने के लिए अस्पताल से बाहर नहीं निकला। भूख ही नहीं लग रही थी। ऐसी हालत में न कोई संतोष देनेवाला मिल रहा था और न

कोई यह बतला रहा था कि अब मुझे क्या करना चाहिए ! करीब दो घंटे के बाद बाबू की आँखें खुलीं; मगर वे बोल नहीं पाते थे। हाँ, उन्होंने जब अपनी आँखें मेरी ओर घुमायीं, तो मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो रहा। मुझे देखकर वे रोने लगे। मुँह से आवाज नहीं निकल रही थी। इसी समय एक आदमी, जो डाक्टर जान पड़ता था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया।

"यह मरीज तुम्हारा है ?" उसने पूछा।

"जी माई-बाप !" मैं बोला।

"इसका खून घट गया है ? तुम दो-तीन पौंड खून का इन्तजाम करो। कल खून चढ़ाया जायगा। बाहर से कोई देनेवाला मिल सके, तो ले आओ। अगर नहीं मिले, तो दाम देने पर अस्पताल से भी मिल सकता है।"

"तीन पौंड, कितना सरकार ?"

"करीब डेढ़ सेर।" कहता हुआ वह आदमी बड़ी फुर्ती के साथ लौट गया। मैं समझ भी न सका कि खून कैसे आयेगा, कैसे दिया जायगा। और, वह आदमी चला भी गया। बाबू को जब होश आया, तो मैंने बहुत धीरे-धीरे कहा, "बाबू, कल तुम्हें खून चढ़ाया जायेगा। डाक्टर ने कहा है कि दाम देने पर अस्पताल से भी खून मिल सकता है। पास में तो अब पाँच ही आने पैसे हैं। गाँव जाकर टीपू भाई से मिलना चाहता हूँ। वहीं कुछ रुपये और दे दें।"

"टीपू गाँव पर होगा ?"

"कौन जानता है। कहीं टीपू भाई मिल गये, तो कोई-न-कोई रास्ता जरूर ही निकालेंगे। देर नहीं होगी। एक पैर से जाऊँगा और दूसरे पैर से चला आऊँगा। खून देने से तुम्हारा सब रोग भाग जायेगा।" मैं बोला।

"और इधर मेरा कुछ हो जाय, तो"" वे बोले। बाबू की बात मेरे दिल पर लग गयी। इतना कहने के बाद बाबू फिर रोने लगे थे। इसके बाद तो मैं बारह बजे दिन के जहाज से आमी के लिए चल पड़ा था। मगर, बाबू की वह गरीबी से रँगी सूरत आज भी याद है।

रेलगाड़ी बढ़ती जा रही थी। पास में टिकट के पैसे जो नहीं थे। मैं भगवान का नाम लेकर जहाज पर बिना टिकट लिये ही बैठ गया था। जहाज में किसी ने टिकट न माँगा। पहलेजा घाट उतरा, तो बाँस के बने छोटे से फाटक पर बड़ी भीड़ थी। टिकट देखनेवाले की आँखों ने काम न किया और उनकी नजरें बचाकर मैं फाटक पार कर गया। सोनपुर जाने के लिए आगे रेलगाड़ी लगी थी। चुपचाप जाकर रेलगाड़ी में बैठ गया। वहाँ से भी गाड़ी खुली, तो किसी ने रास्ते में टिकट न माँगा और मैं सोनपुर पहुँच गया। सोनपुर से मेरे घर के स्टेशन के बीच तीन स्टेशन और भी तो थे। पहले सोनपुर, तब परमानंदपुर, इसके बाद नया गाँव, फिर शीतलपुर और तब दिघवारा। लोगों से पूछ-ताछ करके छपरा जानेवाली गाड़ी में बैठ गया। थोड़ी देर के बाद इञ्जन ने बड़े जोर की सीटी दी। लोगों ने कहा, "अब गाड़ी खुल रही है।"

और तब गाड़ी खुल भी गयी। गाड़ी के पहिये से आवाज आ रही थी—झिझी-झिझी काली, झिझी काली! तभी एक आदमी माथे पर कनटोप रखे उस डिब्बे में घुस आया, जिसमें मैं भी बैठा था। वह आदमी देखने में तो साँवला था, मगर उसके पोशाक बिल्कुल अँग्रेज की तरह थे। उसके दाहिने हाथ में कैंची की तरह एक लोहे का यंत्र था। वह जैसे ही मेरे डिब्बे में घुसा कि सब लोगों ने उसकी ओर देखा। उस आदमी की नजर भी डिब्बे के कोने-कोने में घूम गयी। और, इसके बाद ही उसने एक-एक कर लोगों से टिकट माँगना शुरू किया। मैंने मन-ही-मन सोच लिया कि यह आदमी जरूर ही टी०टी आई० होगा। उसे देखकर मेरा कलेजा धड़कने लगा। मैं अपनी जगह से उठकर धीरे से पैखाने की ओर कोने में, सीट के नीचे बैठ गया। जब मैं यह काम कर रहा था, तो वह टिकट माँगनेवाला आदमी मुझे कनखियों से देख रहा था। मैंने उसे कनखियों से देखते हुए देख लिया था। मैंने सोचा बड़ा बुरा हुआ! पकड़ेगा, तो छोड़ेगा नहीं। वह मुसाफिरों से टिकट माँग-माँगकर देख रहा था। मुसाफिर उसे टिकट दिखला रहे

थे। मैं अपने ऊपर पहाड़ टूटने का इन्तजार कर ही रहा था कि वह आदमी मेरे पीछे आकर खड़ा हो गया। उसने बड़ी कड़ी आवाज में कहा, टिकट निकालो, इधर देखो।

"...............।" मैं जान-बूझकर चुप रहा। मरता क्या न करता!

"अबे टिकट दिखला, उधर क्या देखता है?" उसने कड़ककर कहा।

"जी, बाबू.......।" कहता हुआ मैं उसकी ओर घूम गया।

"जी बाबू क्या करता है, टिकट दिखलाओ।"

"जी मालिक, टिकट तो नहीं है।"

"तो बिना टिकट चलने के लिए किसने कहा।"

"कहा किसी ने नहीं सरकार!"

"तो क्या समझा था, यह गाड़ी तुम्हारे बाप की है?"

"नहीं सरकार, गाड़ी मेरे बाप की कैसे हो सकती है?"

"तो फिर निकालो महसूल, कहाँ से आ रहे हो?"

"पटना से माई-बाप!"

"झूठ बोलता है। कहाँ जायगा?"

"दिघवारा उतरूँगा सरकार! पास में फूटा हुआ पैसा भी नहीं है। बाप मेरे पटना सरकारी अस्पताल में भरती हैं। चटगाँव की लड़ाई में बमगोला लग गया था। आज ही तो घाव चीरा गया है, मालिक! खून खतम हो गया।" मैंने गिड़गिड़ाकर कहा।

"चुप बदमाश! मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मेरी नजर से बचने के लिए तुम लाख बहाने बनाओ, मैं नहीं छोड़ूँगा। निकालो कटिहार से लेकर दिघवारा तक का मय जुर्माना के आठ रुपये चौदह आने।"

रेलगाड़ी धीरे-धीरे तेज होती जा रही थी। पहियों की आवाज भी बदलने लगी थी—झक्-झक् झिकी-झिकी! आठ रुपये चौदह आने का नाम सुनते ही मेरी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। इतने रुपये लेकर तो मैं अस्पताल भी नहीं गया था। वह तो टीपू भाई ने दया करके छः रुपये दे दिये, नहीं तो बाबू को पटना भी नहीं ला सकता। मैंने उस टिकट माँगनेवाले के आगे हाथ जोड़-

कर कहा, "सरकार, इतने रुपये मैं कहाँ पाऊँगा ! मेरे पास तो आठ आने पैसे भी नहीं हैं।"

"जब पुलिस में दूँगा, तो अपने-आप पैसे हो जायँगे।"

"सरकार, पुलिस में मत दीजिए। मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

"खबरदार, बदमाश !"

इतने ही में सोनपुर के आगे परमानन्दपुर स्टेशन आ गया। रेलगाड़ी धीरे-धीरे खड़ी हो गयी। सूरज डूब रहा था। जब रेलगाड़ी रुकने लगी, तो टिकट माँगनेवाला आदमी उतरने लगा और जब गाड़ी रुकी, तो वह उतर गया। मैंने सोचा, बेचारे ने दया करके छोड़ दिया। डाँट-डपटकर छोड़ दिया, क्या यही कम है। तभी मेरे कानों में उसी आदमी की आवाज सुनायी पड़ी, "अबे, उतर नीचे।"

"..............." मैं चुप रहा।

"अरे, तुझे कह रहा हूँ। चल, उतर नीचे।" फाटक की खिड़की में सिर घुसाकर उसने मुझे पुकारा।

"मुझे सरकार....?" मैंने जान-बूझकर पूछा। शायद उसे दया आ जाय। मगर उसने कड़ककर कहा, "और किसे, रेलगाड़ी तुम्हारे ही बाप की है न ?"

गाड़ी में बैठे मुसाफिर मुझे देख रहे थे। मुझे भी लाज लग रही थी। आखिर मुझे उसी दम रेलगाड़ी से निकलकर नीचे आना पड़ा।

"इधर आओ।" मेरे नीचे उतर जाने पर उस आदमी ने कहा।

"किधर ?"

"बस यहीं।" वह बोला। रेलगाड़ी के फाटक से थोड़ी दूर हटकर वह आदमी खड़ा हो गया। उसने मुझे अपने और नजदीक बुला लिया। मुसाफिर रेल पर चढ़ रहे थे, मुसाफिर रेल से उतर रहे थे। मैंने उस आदमी से कहा, "सरकार, गाड़ी खुल जायगी।"

"मैं नीचे हूँ, गाड़ी नहीं खुलेगी। सुनो।"

"कहिये, सरकार !"

"तुम्हें दिघवारा उतरना है ?"

"जी, मालिक !" मैं बोला।

"तुम्हारे पास कितने पैसे हैं ? दो रुपये भी हो तो निकालो, मैं वहाँ गेट पर तुम्हें निकाल दूँगा।"

"सरकार, आपसे झूठ न बोलूँगा।"

"कितना है, बतला न।"

"सरकार, सिर्फ एक आना।"

"जी।"

"तो बैठ यहीं। गाड़ी में घुसेगा, तो पुलिस में दे दूँगा।" उसने बड़े रोब से कहा। मैं डर गया।

परमानन्दपुर देहात का छोटा-सा स्टेशन है। गाड़ी अधिक देर नहीं टिकती। इञ्जन ने सीटी दे दी। गाड़ी खुली और वह आदमी उछलकर दूसरे डिब्बे में घुस गया। गाड़ी मेरी आँखों के सामने से आगे बढ़ गयी और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा। गाड़ी खुल जाने के बाद तक मैं वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा। पाँच आने पैसे तो बचे थे। उसमें से मैंने चार आने का एक पाव सत्तू खा लिया था—सीधे अस्पताल से पच्छिम अदालत में आकर। सिर्फ एक आना पैसा बच गया था। हो सकता है कि पाँच आने पैसा ले लेने पर वह मुझे इतनी कड़ी सज़ा न देता। मुझे कभी माँ याद आती और कभी सतीचरी। मेरी आँखों के सामने कभी बाबू का बीमार चेहरा नाच जाता और कभी टीपू भाई की दया-भरी सूरत नाच जाती। उधर अस्पताल में बाबू का क्या हाल हो रहा है, मैं सोच नहीं सकता था। इधर गाँव पर टीपू भाई होंगे या नहीं ? अगर होंगे, तो अबकी बार कुछ मदद कर सकेंगे या वह भी मजबूर हो जायेंगे ? अपने मन में तब कोई भी रास्ता तय नहीं हो पा रहा था। लगता था, बुरी साइत के पानी में मैं डूब गया हूँ और मेरा दिमाग उजबुजा रहा है। न पैर आगे बढ़ रहे थे, न पीछे। दिन की रोशनी खत्म होती जा रही थी।

"यहाँ क्यों खड़े हो, कहाँ से आये हो ?" तभी स्टेशन का एक आदमी मेरे पीछे आकर खड़ा हो गया।

"पटना से आया हूँ। टिकट नहीं था। टी० टी० आई० बाबू ने उतार दिया है।"

"उतार दिया है तो ठीक किया है। जाओ, प्लेटफार्म से बाहर जाओ। यहाँ मत खड़े रहो।" उस आदमी ने रूखी बोली में कहा।

स्टेशन के अहाते से बाहर निकलकर मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि आमी जाने का कौन-सा आसान उपाय है। एक आदमी से पूछा तो पता चला कि अब पच्छिम जानेवाली गाड़ी तीन बजे भोर में आयेगी। लेकिन, गाड़ी पर सवार होकर जाने की हिम्मत टूट चुकी थी। आखिर, जब साँझ से भी कुछ वक्त निकल गया, चारों ओर अँधेरा छा गया, तो मैं पैदल ही आमी के लिए चल पड़ा। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क पकड़कर पच्छिम की ओर चला। यहाँ से मेरा गाँव 'आमी' करीब सात कोस की दूरी पर था। सड़क के दोनों ओर आम-लीची, कटहल और महुए के पेड़ थे। उनके हिलने से जब हवा चलती, इस गर्मी में मुझे शान्ति मिलती थी। रास्ता बड़ा भयावना था। सूनी सड़क पर एक आदमी भी नहीं मिलता। मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता, रात चढ़ती जा रही थी। सड़क के आस-पास के गाँवों से कुत्तों के भूँकने की आवाज मेरे कानों में सुनायी दे रही थी। खेतों में सियार बोल रहे थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सुर्खीली सड़क की लाल-लाल धूल मेरे ठेहुने पर तक चढ़ गयी और मैं भूखा-प्यासा करीब तीन-साढ़े-तीन बजे आमी गाँव में घुसा। यहाँ भी गाँव की गलियों में कुत्ते भूँक रहे थे। जब मैं अपनी पलानी के पास पहुँचा, तो मेरे पैर भारी हो गये। हिम्मत नहीं होती थी कि माँ को जगाऊँ। पहले मैं पलानी के सामने आकर कुछ देर तक खड़ा रहा। फिर एकाएक पुकारा, "माई, माई रे ?"

"कौन है ?" भीतर से माँ ने पूछा।

"मै, मगरुआ।"

मेरा नाम सुनते ही माँ ने पलानी के दरवाजे पर लगी हुई टट्टी खोल दी। मैं भीतर गया, तो सनीचरी भी उठकर बैठ गयी। माँ ने पहले थोड़े-से पत्ते जलाकर उजेला किया, तब कहा, "बाबू का समाचार कह।"

"बाबू का घाव तो चीर दिया गया। डाक्टर कहता था कि भीतर घाव सड़ गया है।"

"तब ?"

"आज ही तो घाव चीरा गया है। मगर एक बात है।"

"एक बात क्या ?" माँ ने पूछा। साथ ही इसका जवाब सुनने के लिए सनीचरी भी मेरा मुँह देखने लगी।

"घाव चीरने से खून घट गया है।"

"खून घट गया है ?" माँ ने अचरज से पूछा।

"हाँ।"—मैंने कहा, "डाक्टर ने कहा है, डेढ़ सेर खून देना होगा। बात मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आयी मगर इतना जरूर समझ गया कि दाम देने पर अस्पताल से खून मिल जायगा।"—मैंने तभी माँ से यह भी पूछा, "दादा के मारे जाने में बच्चाबाबू ने कितने रुपये दिये थे, दस या बीस ?"

"याद नहीं है।

"मुझे याद तो नहीं है। मगर, याद करता हूँ कि इससे कुछ ज्यादा नहीं दिया था। तीन कट्ठा खेत दिया था, सो रेलवे में आ जाने पर उसके रुपये भी नहीं दिये। इसलिए मैं सोचता हूँ कि जब जान का दाम दस-बीस रुपये हैं, तो सेर-डेढ़ सेर खून का दाम दो-तीन रुपये से क्या ज्यादा होगा ? तुम्हें मालूम है, टीपू भाई कानपुर चले गये ? न होगा, तो दो-तीन रुपये और माँग लूँगा।" मैं बोला।

"कौन, टिपुआ ?" माँ ने पूछा।

"हाँ।"

"ना, टिपुआ कहाँ है, वह तो चला गया।"

"चला गया, कब ?" मैंने पूछा।

"आज साँझ को।"

माँ के इतना कहने पर मुझे और भी दुख हुआ। टीपू भाई उसी गाड़ी से चले गये थे, जिस गाड़ी से टिकट न रहने की वजह से मैं उतार दिया गया था। मेरा माथा चकरा गया। भोर तक मुझे नींद नहीं आयी। भोर होने पर माँ

मेरी बहन को गोद से चिपकाये ठाकुर के घर गोबर पाथने चली गयी। सनीचरी से न तो प्यार की बातें करने का मौका था और न बाबू की पूरी हालत कह सुनाने का। दरियाव-किनारे से लौटकर मैं भी फकुली चला गया–ममहर। घर पर कुछ नहीं खाया था। ममहर में भात खाने को मिला। मामी से बाबू का सारा हाल कह सुनाया। साथ ही मैंने कहा, "मामा को पटने में बड़ा खोजा मामी, माम मिले नहीं।"

"नहीं मालूम कहाँ रहते हैं। पिछली बार आये थे, तो बतला रहे थे कि अब दानापुर रहते हैं। कहते थे, दानापुर पटने ही में है।"

आखिर ममहर से भी शाम को लौट आया। पता लगा, लैंखर काका अपनी बेटी की ससुराल गये हैं। हारकर, बिना माँ से कुछ बतलाये ठाकुर के यहाँ पहुँचा। अभी सूरज डूबने में देर भी थी। बड़े ठाकुर बैठकी में बैठे थे। लम्बी-चौड़ी चौकी बिछी थी। मोनसीजी ठाकुर को कोई कागज दिखला रहे थे। जाते ही मैंने झुककर सलाम किया। मोनसीजी ने चुपचाप बैठने का इशारा किया। मैं चुपचाप बैठ गया।

"यह हैंडनोट कितने का है ?" ठाकुर ने मोनसीजी से पूछा।

"है तो यह सरकार पचास ही का। मगर·······।" मोनसीजी रुके।

"मगर·······?" ठाकुर ने पूछा।

"मैंने जरा-सा कलम लगा दिया है, अन्नदाता!" मोनसीजी बोले।

"मतलब ?"

"पचास के आगे एक सुन्ना रखकर अँगूठे का निशान ले लिया था·····।" कहकर मोनसीजी ने दाँत दिखला दिये।

"देखूँ·······।"

"देखा जाय, सरकार·······?" मोनसीजी ने इस तरह एक कागज ठाकुर के हाथ पर रख दिया। ठाकुर उसे ध्यान से देखने लगे।

"शाबास, मोनसीजी! रहा इसमें आपका भी दो आना। इस पर भी एक भोंता दायर कीजिए·····।" खुश होकर ठाकुर बोले।

नहीं, नहीं, मैं तो सरकार का ही नमक खाता हूँ……।' हम कायस्थ लोगों की कलम ही से लोग डरते हैं। धर्मराज के दरबार में भी चित्रगुप्त महाराज…… हें…हें…हें।" कहकर मोनसीजी अजीब तरह से हँसे। चश्मा उनकी नाक से नीचे उतर आया। कंधे से चादर खिसक गयी। मोनसीजी ने जरा बगल में झाँका और फिर चश्मा सम्भाल लिया। चादर कन्धे पर रख ली। फिर उनकी नजर चउकी के नीचे रखी 'पनही' पर गयी। ठाकुर और मोनसीजी बहुत खुश थे। मगर, मेरा धीरज टूट रहा था। मैंने तनिक एकटक होकर मोनसीजी से आँखें मिलायीं। हिम्मत का ऐसा काम मैंने आज के पहले कभी नहीं किया था।

"क्या है रे मंगरुआ, तुम्हें क्या चाहिए ?" मोनसीजी ने पूछा।

"सरकार……।" मैं रुका।

"तेरा बाप ठीक हो गया ?" ठाकुर ने पूछा। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें मेरी ओर घूम गयीं।

"नहीं मालिक, कल उनके घाव को डाक्टर ने चीर दिया है।

"तू यहाँ कैसे आ गया ?" मोनसीजी ने पूछा।

"क्या बताऊँ मालिक, डाक्टर ने कहा, खून घट गया है। खून देना होगा।"

"ठीक है, खून दिलवा दे। अच्छा, एक काम कर। अभी तो तुम्हें फुर्सत होगी। *ढाका लेकर चला जा। बाजार पर की खलिहान में भूसा पड़ा है। लाकर खोंप में भर दे। जा जा, जल्दी जा।" मोनसीजी ने कहा।

इस बात को मोनसीजी ने इस तरह कहा कि मेरे दिमाग ने काम न किया कि किस तरह से अपनी मजबूरी का बयान करूँ। जरा-सा भी मौका मिलता, तो कुछ कह पाता, मगर मौका कहाँ मिला ? मैंने कहा, "अच्छा सरकार।" और, दौड़ा-दौड़ा मालखाने में अछैबरा के पास पहुँचा। भेंट होते ही अछैबरा बोला, "खूब देह बना ले मंगरुआ, भगवान करें, सबका बाप ऐसे ही बीमार पड़े !"

---

*बड़ी टोकरी।

"तुम नहीं जानते तो क्या कहूँ, बाबू की हालत ठीक नहीं है।" मैं बोला।

"क्या हुआ है ?"

"घाव चीरकर साफ किया गया है। भीतर घाव सड़ गया था।"

"तब तो अच्छा ही हो जायगा।"

खून घट गया है, भइया !"

"अच्छा, खून घट गया है....।" कहते-कहते अछैबरा ने पूछा; "अच्छा बतला; तू यहाँ कहाँ आया है; कोई काम करना है ?"

"हाँ।"

"क्या करेगा ? गोबर काछेगा, लकड़ी फाड़ेगा....?"

"नहीं, बाजार की खलिहान से भूसा ले आना है। ढाका है ?"

"है तो, ले जा। बड़े मौके पर तू आया, नहीं तो यह काम मेरे ही मत्थे पड़ता।"

अछैबरा से ढाका लेकर मैं खलिहान चला गया। भूसे का बहुत बड़ा टाल था। ढोते-ढोते रात के ग्यारह बज गये। जब गर्दन टूटने लगी, तो मैंने ढाका बथान में रख दिया और बिना किसी को कुछ बतलाये चला आया। भोर उठकर सोचा कि ठाकुर के हाथ-पैर पड़कर दो-चार रुपये माँगूगा। सो ज्योंही ठाकुर के दरवाजे पर पहुँचा कि पता लगा कि काली बछिया उठी हुई है। पहुँचते-पहुँचते मैं बछिया को बरदाने के लिए पकड़ा गया। कहा गया, "मंगरुआ, तू करियवकी बछिया को बरदा ला। ठीक से बरदाना। पहले इस काम को तुम्हारे दादा किया करते थे। बरदा कर आयेगा, तो भरपेट सतुआ मिलेगा। जा, फुर्ती चला जा।"

फिर मेरे मुँह से कुछ न निकला। लठिया लेकर मैंने खूँटे से बछिया खोल ली। मैं अब उसे बरदाने के लिए ले चला। आमी, हराजी, मानुपुर, दिघवारा, मद्दुपुर, गोराईपुर और मलखाचक तक हो आया। बदकिसमती के कारण इन गाँवों में कहीं भी साँड़ न मिला। मैं हाथ में लठिया लिये, बछिया की रस्सी पकड़े चिल्लाता फिर रहा था—अर्र, छो हो, छो हो, छोहो....!

आखिर इस तरह साँड़ खोजता हुआ मैं नरौंव पहुँचा। वहीं एक बगीचे में साँड़ मिल गया। बछिया वहीं बरदा गयी। इसके बाद बछिया को लिये मैं आमी की ओर लौटा। आठ-नौ बजे रात में मालिक के दरवाजे पर पहुँचा। गर्मी का दिन था। सभी जगे थे। रामभजन की माँ भी अभी हवेली में ही थी। मोनसीजी ने पूछा, "बरदा गयी बछिया।"

"जी मालिक!" मैं बोला।

"कुछ खाया है या नहीं?

"नहीं सरकार, भोर से तो इसी काम में लगा था।"

"अच्छा, खड़ा रह! मैं तुम्हें खाना दिलवाता हूँ.....।" बोले मोनसीजी।

मैं चुपचाप खड़ा-खड़ा यह सोचता रहा कि अब तो यह खाने-पीने का समय है। दिन रहता, तब सत्तू मिलती। अब लगता है, हवेली से भात ही मिल जायेगा। भात मिलेगा, तो केले के पत्ते में रखकर घर ले जाऊँगा! माँ भी खायेगी, मेरी बहन और सनीचरी भी। तभी एक थाल में रामभजन की माँ मोनसीजी के लिए भोजन लेकर आँगन से निकली। मैंने देखा, थाल में तीन-चार किस्म की तरकारी थी। कटोरे में दाल थी और दाल के ऊपर घी तैर रहा था। मोनसीजी ने रामभजन की माँ से कहा, "अभी एक काम करो, रामभजन की माँ!"

"क्या?"

"मंगरुआ बछिया बरदाने ले गया था। दिन-भर का भूखा है। भीतर से न हो, तो इसे आध सेर, डेढ़ पाव मसूरिया का सतुआ लाकर दे दो। नमक भी दे देना, हो सके तो एक-आध मिरचाई भी।" मोनसीजी ने रामभजन की माँ से कहा।

"आप खाइएगा कब, आपके लिए पानी कब आयेगा?"

"पहले तुम इसे दे दो।"

रामभजन की माँ भोजन का थाल वहीं रखकर आँगन में चली गयी। उसके पैरों की झाँझ से झन्-झन् की आवाज हो रही थी। मैं अपनी जगह पर सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर के बाद ही रामभजन की माँ एक

कागज में मसूरिया की सत्तू लिये लौटी। पास आते ही मुझसे कहा, "किस चीज में लोगे, गमछा फैलाओ।"

"यह क्या है गमछा, इसी में दे दो।" कहकर मैंने गमछा फैला दिया। मुझे करीब पाव-भर सत्तू मिली और उसे लेकर नौ-साढ़े-नौ बजे तक मैं अपनी पलानी में पहुँचा। इस तरह मेरा दो रोज का वक्त यों ही बीत गया। तीसरे रोज भी सोचा कि ठाकुर के यहाँ चलूँ, कुछ माँगूँ। मगर, हिम्मत न हुई। मैंने सोचा, अगर इसी तरह रोज बेगार में फँसता गया, तो महीने रोज के बाद भी ये लोग फुर्सत नहीं देंगे। मतलब यह है कि मैं जान-बूझकर नहीं गया। खेंखर काका बेटी की ससुराल से अब तक नहीं लौटे। मेरा ध्यान एक बार टीपू भाई की जनाना की तरफ गया। हो सकता है, उसके पास कुछ हो। उसे इतना तो जरूर मालूम हो गया था कि मेरे बाबू पटना अस्पताल में भरती हुए हैं और उनका घाव चीरा गया है। मेरा अन्दाज तो इतना जरूर था कि माँ यह बात कह आयी होगी। मगर दो-तीन रुपये के लिए किन-किन परेशानियों के बीच से होकर गुजरना पड़ रहा है, यह उसे मालूम है कि नहीं, मैं नहीं जान रहा था। आखिर मैं उसी भउजी से मिलकर रुपये माँगने का मौका निकालने लगा। कभी जाता तो चाची मिल जाती, कभी जाता तो टीपू भाई की भौजाई ही रहती। बड़ा बुरा हुआ! एक बार फिर मौका देखकर, जब सूरज पच्छिम की ओर ढलता जा रहा था, मैं खेंखर काका के यहाँ पहुँचा। मैंने देखा, टीपू भाई की जनाना जौ कूट रही है। झोंपड़ी सुनसान जान पड़ी। मैंने कहा, "आऊँ भउजी?"

"आओ न।"

"और, चाची?"

"अनाज भुँजवाने गयी है।"

"बड़की भउजी?"

"दरिआव कपड़े फींचने गयी हैं।"

"तब तो ठीक है!"

"क्या हुआ तुम्हारे बाबू का?" भउजी ने पूछा।

"वहीं अस्पताल में हैं। घाव चीरा गया है।"

"सो तो चाची कह रही थीं।"

"हाँ, घाव चीरने से बाबू का खून घट गया है। दो-तीन रुपये का खून खरीदकर देना होगा। अस्पताल में खून मिलता है। मगर करम की बात क्या कहूँ भउजी, पास में फूटी कौड़ी भी नहीं है। दो-तीन रुपये कहाँ से ले आऊँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

मेरे मुँह से यह बात सुनकर भउजी ने जो कूटना छोड़ दिया। मूसल जमीन पर रखकर चुपचाप बैठ गयी और मेरा मुँह देखने लगी। उसने पूछा, "मालिक से माँगकर देखा है।"

"नहीं, माँगने का मौका मिलता है? वहाँ तो जाते ही बेगार में पकड़ लिया जाता हूँ।"

"दो रोज से आये हो, कहीं इन्तजाम नहीं हुआ?"

"नहीं। मगर मेरे ऊपर तुम्हारा विश्वास है और अगर तुम्हारे पास कुछ हो तो दो, कमाकर तुम्हारा लौटा दूँगा।"

"ए बबुआ, घर की मालकिनी तो 'वे' हैं। दो पैसे चाहे चार पैसे सब उन्हीं के पास रहता है। मैं तो काम करना जानती हूँ, मेरे पास कहाँ से आयेगा? जब कभी तुम्हारे भाई आते हैं, तो दो-चार आने दे देते हैं। वही बटोरकर रख दिया है। अगर तुम चाहो, तो उसे ले जाओ। अगर उससे तुम्हारा भला हो जाय, तो मैं समझूँगी कि मेरा *चोरउका पैसा भी सवारथ हो गया।" भउजी बोली।

"भउजी! मैं तुमसे जो कुछ माँग रहा हूँ, सो बेहाया होकर। मगर क्या कहूँ, चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा दीख रहा है। कोई मदद करनेवाला नहीं है। देखो न, तुम्हारे पास दो-चार रुपये निकल गये, तो मेरा काम हो जायगा। रात की गाड़ी से चला जाऊँगा।" मैंने कहा।

टीपू भाई की जनाना देहात की चमाइन की बेटी ही तो थी! मगर उस वक्त उसकी आँखों में जो दया के आँसू उमड़ आये थे, उन्हें मैं आज तक नहीं

*सास-ननद से छिपाकर रखे गये पैसे।

भूल सका हूँ। मउजी ने मेरी उस वक्त की बुरी हालत को मुहब्बत की नजरों से देखा था। उसने मुझे एक मैले टुकड़े से खोलकर चार रुपये दस आने दिये थे। मैं उसी दिन रात को चौदह आने का टिकट खरीदकर एक पहर रात रहते पटना पहुँचा था। भोर होते ही मैं सीधा अस्पताल पहुँचा। अपने रोगियों को देखने और उनसे मिलने के लिए बहुत लोग, औरत-मर्द सीढ़ियों को पारकर अस्पताल के दो-तल्ले पर जा रहे थे। मैं बड़ी फुर्ती के साथ वहाँ पहुँचा, जहाँ पलंग पर बाबू रखे गये थे। मगर, वहाँ पहुँचते ही मेरी बुद्धि चकरा गयी। बाबू के पलंग पर कोई दूसरा रोगी पड़ा था। मैंने घूम-घूमकर चारों ओर देखा, बाबू का कहीं पता नहीं था। दो-तीन मेम साहब घूम-घूमकर रोगियों के बिछावन बदल रही थीं। मैं उनके सामने जाकर खड़ा हो गया।

"क्या देखता है ?" एक मेम साहब ने पूछा।

"मेम साहब मेरे बाबू....।"

"मैं नहीं जानती तुम्हारे बाबू को....।" जवाब मिला।

"मेरे बाबू उस पलंग पर....।"—मैंने हाथ से इशारा देकर कहा, "रखे गये थे। घाव चीरा गया था उनका। डाक्टर बाबू ने कहा था कि खून देना होगा। तीन-चार रोज पहले की बात है। मैं खून के लिए रुपये ले आने अपने गाँव चला गया था।"

"देखो, वहाँ जाकर पूछो।" दूसरी मेम ने मुझे एक ओर इशारा करके बतलाया।

मैं उसी जगह पहुँचा। यह एक बड़ी-सी कोठरी थी। इसमें चारों ओर दरवाजे थे। काठ की आलमारियों में दवाएँ रखी थीं। एक ओर पीतल के बर्त्तन में पानी रखा था। एक टेबुल पर रूई और पट्टी बाँधने के कपड़े रखे थे। बीच में एक टेबुल थी और दो कुर्सियाँ। एक कुर्सी पर, अंग्रेजों की तरह पेंट-कोट पहने, चश्मा लगाये एक आदमी बैठा हुआ था। दूसरी कुर्सी पर एक और मेम साहब बैठी हुई थी। पहले तो मैं उस कोठरी के भीतर जाते बहुत डरा, मगर पीछे हिम्मत हो गयी। मैंने भीतर पैर रखते ही उन दोनों की ओर देखकर कहा, 'सरकार, मेरे बाबू कहाँ हैं ? तीन-चार रोज पहले उनकी पीठ का घाव

चीरा गया था। उनको चटगाँव में बमगोला लगा था। डाक्टर साहब ने कहा था कि खून घट गया है....मैं खून लेने के लिए पैसे का उपाय करने गाँव चला गया था....।"

"क्या नाम था तुम्हारे बाबू का ?" मेम साहब ने पूछा।

"नाम झगड़ू था मेम साहब !"

"बेड नम्बर क्या था ?" पैंट-कोट पहने आदमी ने मेम साहब से पूछा।

"पंद्रह नम्बर........।" कहकर वह मेम साहब मेरा मुँह ताकने लगी।

"मैं रुपये ले आया हूँ, मेम साहब ! बाबू को खून दे दीजिए....। तीन-चार रुपये में हो जायेगा न ?"

"ये डाक्टर हैं, इनसे कहो।" मेम साहब बोली। उसने सामने की कुर्सी पर बैठे हुए आदमी की ओर इशारा किया।

"आप समझा दीजिए न।" डाक्टर ने मेम साहब से कहा।

"नहीं डाक्टर, यह काम आप कर लीजिए।" मेम साहब बोली।

"क्यों, क्या अब खून की जरूरत नहीं है ? बाबू अच्छे होकर चले गये क्या ? कल शाम तक तो मैं घर ही पर था, मुझसे भेंट नहीं हुई। कैसे बाबू चले गये, उनके पास तो रेलभाड़े का पैसा भी नहीं था।" मैं बोला।

"अब तुम भी घर चले जाओ।" मेम साहब बोली।

"क्यों सरकार, बाबू सचमुच अच्छे होकर चले गये ?" मैंने पूछा।

"घबड़ाने की बात नहीं। कोई भी यहाँ हमेशा के लिए रहने नहीं आया है। तुम अब घर चले जाओ। अब बाबू से नहीं भेंट होगी।" डाक्टर ने कहा।

"तो कहाँ गये बाबू ?"

"खून घट जाने और वक्त पर खून नहीं दिये जाने की वजह से तुम्हारे बाप का ऑपरेशन खराब हो गया। चौबीस घण्टे तक लाश रोककर रखी गयी। हम लोगों ने तुम्हारा बड़ा इंतजार किया। जब तुम नहीं आये, तो लाश को फेंकवा दिया गया।" डाक्टर ने समझाकर कह दिया।

"डाक्टर बाबू....।"

"घबड़ाओ नहीं। भगवान के आगे हमलोगों का कोई वश नहीं चलता।"

"मेम साहब''''।"

"अब तुम घर चले जाओ। रोने से काम नहीं चलेगा। हमलोगों को इसके लिए खुद तकलीफ है। हमलोग कभी नहीं चाहते कि हमारे यहाँ से कोई मरीज नुकसान उठाकर जाय। मगर गौड़''''गौड़ का पावर''''।" मेमसाहब कहने लगी।

अब मैं रोता और माथा पीटता हुआ अस्पताल से बाहर निकल आया। बाहर आकर पीपल के पेड़ के नीचे बहुत देर तक बैठा रहा। रह-रहकर रुलायी आती थी। बाबू का चेहरा याद आ रहा था बाबू की बातें याद आ रही थीं। बड़ी देर के बाद यहाँ से उठा, तो सीधा महेंद्रू जहाजघाट पहुँच गया। न भूख लगी थी, न प्यास। यहाँ से अस्पताल की ओर देखने तक का मन नहीं करता था। दादा ने खून देकर ठाकुर का खेत बचाया था, आज खून के बिना दादा का बेटा अस्पताल में मर गया। दादा ने ठाकुर के खेत के लिए अपनी जान दी थी, मगर ठाकुर ने दादा के बेटे के लिए दो-चार पैसे न दिये। गोहराँव पर जाते वक्त दादा ने दादी से कहा था कि मेरे रहते अगर ठाकुर के खेत में कोई छेव लगा दे, तो मेरी जिन्दगी अकारथ है।—ठाकुर की लाखों की हैसियत रहते; दो, चार, दस रुपये के लिए दादा के बेटे की जिंदगी खो गयी। पुरानी बातें ढाई पीढ़ी का तमाशा उलट-पुलटकर मेरी आँखों के सामने न-जाने कौन-कौन खेल दिखला रही थीं। मुझे ऐसा लगने लगा; जैसे दुनिया में रहते हुए भी मैं नहीं हूँ। या हूँ भी, तो इस तरह टूट गया हूँ या मुझे इस तरह तोड़कर रखा गया है कि मैं अपने बनाये नहीं बन सकता। यह काम मेरे बूते का नहीं।

आखिर जब जहाज खुलने का समय हो गया, तो टिकट लेकर मैं जहाज पर बैठ गया। आज ऐसा मालूम होता था, जैसे जहाज बड़ी तेजी से चल रहा है। गंगा की फैली हुई चौड़ाई को जहाज बहुत जल्दी-जल्दी पार कर रहा था। बाबू के मरने की खबर माँ से कैसे कह सुनाऊँगा, बाबू की लाश भी नहीं मिली, यह कैसे कहा जायगा, बाबू की जान खून के बिना चली गयी; यह सब किस मुँह से कहूँगा ? मुझे जहाज पर भी रुलायी आ गयी। मैं रोने लगा। मेरे

आस-पास बैठे हुए मुसाफिर मुझसे पूछने लगे, "क्यों रोते हो; तुम्हें क्या हो गया है?"

"तुम्हारा कोई बीमार है क्या, क्या किसी ने जेब काट ली है?"

"नहीं, कुछ नहीं।" कहता हुआ मैं उन लोगों के तरह-तरह के सवाल से बचने की कोशिश करता रहा। मगर मेरी रुलायी रोके नहीं रुकती थी।

● ● ●

१४

जब इतनी बातें तुमसे कह चुका, तो भला अब क्या छिपाऊँ! ठाकुर के घर बेगार खटने की बात तो हमारी खानदानी हथकड़ी थी। जब बाबू मर गये, तो बिरादरीवालों को खिलाने के लिए जमीदार के घर से थोड़ी-सी मकई मिली और तीन रुपये नगद। दसवें रोज मकई का भात और दही खिलाकर मैंने बिरादरीवालों से फुर्सत पा ली। महीने रोज तक माँ रोती-कलपती रही। खेखर काका की जनाना ने आकर कई बार समझाया कि अब रोने से कोई फायदा नहीं है। झगड़ू बबुआ को ऐसे ही उठना था, उठ गये। पीछे माँ का रोना भी बन्द हो गया। गोबर पाथने और बथान साफ करने के लिए उसे ठाकुर के यहाँ पहले की तरह रोज जाना पड़ता।

इन्हीं दिनों की बात है। मालिक के एक काम से मैं दिघवारा गया था। दिन के बारह बज रहे थे। मैं घर लौटा आ रहा था। रास्ते में, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की बगल में ही एक ताड़ीखाना था। एकाएक किसी ने मुझे पुकारा, "मंगरू, ए मंगरू?"

मैं सड़क पर ही खड़ा हो गया। न तो मैं यही समझ सका कि आवाज किधर से आयी है और न यही पता चला कि मुझे पुकारनेवाला कौन है। मैं अकचकाकर चारों ओर देखने लगा। कोई आमी का आदमी तो नहीं है ? मुझे फिर सुनायी पड़ा—

"अरे, इधर आओ मंगरू ! मुझे भूल गये ?"

मैंने फिरकर बायीं ओर देखा। इस बार इतना जरूर समझ गया कि आवाज ताड़ीखाने की ओर से आयी है। अब मैं खड़ा होने के बजाय जरा बायीं ओर मुड़ गया। बांस के चार खम्भे गाड़कर ताड़ के डमखो से ताड़ीखाना खड़ा किया गया था। उसके चारों ओर ताड़ के पत्ते के दोने फेंके हुए थे। ताड़ी पीनेवालों ने, उनमें ताड़ी पीकर, उन्हें फेंक दिया था। सामने ही एक ताड़ का पेड़ था। उसके नीचे दो-तीन खाली लबनियाँ पड़ी थीं, मगर उन पर मक्खियाँ भनभना रही थीं। अपनी जगह से खड़े-खड़े बायीं ओर मुड़कर मैंने देखा, एक तीस-बत्तीस साल का जवान ताड़ीखाने से बाहर निकला आ रहा है। मैंने पूछा, "मुझे पुकार रहे हो ?"

"और किसे, पहचानते नहीं ?" उसने मेरी ओर बढ़ते हुए पूछा।

"नहीं, मैं तो नहीं पहचान रहा हूँ।"

"क्या बात करते हो, इतनी जल्दी आँखें मोटी हो गयी।" कहता हुआ वह मेरे और करीब आ गया। अब मेरे और उसके बीच सिर्फ दो-तीन कदम की दूरी रह गयी थी। मैंने कहा, "सच कहता हूँ भाई, तुम्हें पहचान नहीं पा रहा हूँ। तुम्हीं बतलाओ, मुझे कैसे जानते हो ?"

"अच्छा, पहले चलो भीतर। पीछे बतला दूँगा। आओ, थोड़ा पी लो।"

"तुम रहनेवाले कहाँ के हो ?" हिचकते हुए मैंने पूछा।

"मैं तुम्हारे गाँव-जवार का ही रहनेवाला हूँ। आओ न, चलो। सब बातें होंगी....।" कहते हुए उसने मेरे दाहिने कंधे पर अपना बाँया हाथ रख दिया और मुझे अपनी ओर खींचता हुआ ताड़ीखाने में ले आया। भीतर ताड़ी के बड़े-बड़े बर्तनों को आगे रखकर एक बूढ़ा बैठा हुआ था। उसके चेहरे, उसकी आँखें और उसके देखने के ढंग से पता चला कि ताड़ीखाने का मालिक वही है।

मेरे वहाँ पहुँचते ही उसने मेरी ओर घूरकर देखा। उसका सर खुला हुआ था। उसके आधे से अधिक बाल पक चुके थे। उसके गले में एक पीतल की ताबीज लटक रही थी। कन्धे पर लाल रंग का पुराना अंगोछा था और कमर में पुरानी मगर कुछ साफ, कम अर्ज की धोती थी। ताड़ी बेचने के लिए उसके पास ही कई छोटी-छोटी लबनियाँ और ताड़ के बने-बनाये दोने पड़े थे। बड़े-बड़े घड़ों की, दोहरी दीवार पर, जिनमें ताड़ी के फेन गिरे थे। मक्खियाँ उछल-कूद मचा रही थीं। मुझे देख लेने के बाद, ताड़ीखाने के उस बूढ़े मालिक ने बड़े गर्व के साथ अपने ताड़ी के बर्तनों की ओर देखा। जैसे, इतनी अच्छी ताड़ी किसी और ताड़ीखाने में नहीं मिलेगी। भीतर ही एक ताड़ की चटाई बिछी थी। मुझे पुकारकर भीतर ले जानेवाले आदमी ने मुझसे कहा, बैठो इस पर। और बतलाओ, कितनी लें।"

जितनी लो; मगर तुमने तो यह बतलाया ही नहीं कि तुम कौन हो?" चटाई पर बैठकर मैं बोला।

"लाओ जी, बड़ी लबनी से एक लबनी। दो दोने भी दे देना।"

"किसमें से दूँ?" ताड़ी बेचनेवाले ने पूछा।

"जो अच्छी हो, उसी में से दो।" बोला वह आदमी—उसने मुझसे कहा, "पहले ताड़ी आगे रख लो। पीना शुरू करेंगे, तो बातें होंगी।"

"अच्छा।" मैंने कहा।

इतने ही में ताड़ी बेचनेवाला हमलोगों के आगे एक लबनी ताड़ी और दो दोने रखकर फिर अपनी जगह पर जा बैठा। उस आदमी ने एक दोना मेरे हाथ में देकर कहा, "लो, पहले एक छाक तुम ही लगाओ।"

"और तुम?" मैंने पूछा।

"पहले तुम लगा लो। पीछे तुम ही छानकर मेरे दोने में उँड़ेलना।"

"अच्छा, दो।"

मेरे पीने के बाद उसने भी एक दोना ताड़ी पी ली। अब ऐसा लगने लगा, जैसे हम दोनों बेफिकर होकर बैठे हैं। पहले वह मेरी ओर देखकर मुस्कुराया, फिर कहा, "ऐसा नहीं चाहिए मंगरू, हम दोनों तो साथ के नाचे-गाये हैं।"

"हम दोनों साथ के नाचे-गाये हैं ?" मुझे अचरज हुआ।

"और नहीं तो क्या ? फर्क इतना था कि मैं तुमसे कुछ *सरेख था और दोनों नाच के अलग-अलग समाज में रहते थे "

"क्या नाम है तुम्हारा ?" मैंने पूछा।

"बीलट।" जवाब मिला।

"अरे, तुम बीलट भाई ?........!" मैंने बीलट भाई को पहचान लिया। मैं अपने गाँव से करीब चार कोस दूर की बस्ती में नाचने गया। बारात राजपूत की थी। एक ही घर में दो-दो बेटियों की शादी। बारात दो जगह से आयी थी। न-जाने, किस पंडित ने एक ही दिन विवाह की लगन निकाल दी थी। बारात दो शामियाने में एक ही बगीचे में अलग-अलग ठहरी थी। दूसरी बारात में बीलट भाई भी नाचने आये थे। उस समय मैं देखने-सुनने और गाने में भी बीलट भाई से बीस ही था। मगर, उस रोज बीलट भाई ने मुझे ही पछाड़ दिया। गाना सुनने और नाच देखनेवालों का कहना था कि उस बारात में एक अलबत्त लौण्डा आया है। उम्र तो अधिक है, उतना ×खिच्चा नहीं है, मगर जब बायसकोप के गाने, गाने लगता है, तो मन को मोह लेता है। साथ ही यह भी सुना कि रात-भर के गाने में उसने सट्टा से अधिक बख्शीश ही झाड़ लिया। मुझे अपनी इस हार पर बड़ी लज्जा आयी थी। मैंने कहा, "अच्छा, तो तुम वही बीलट भाई हो, जिनसे सिनेमा के गाने नहीं जानने के कारण मुझे हार खानी पड़ी थी ?"

"हाँ, मैं वही बीलट हूँ।" वह बोला।

"अच्छा, और सुनाओ भाई, आजकल क्या कर रहे हो ?" मैंने पूछा।

"अब तो वह पेशा छोड़ ही दिया है।"

"सो तो मैं भी समझता हूँ। अब उस पेशे के लिए हमलोगों की उम्र भी कहाँ रही।"

"नौकरी कर रहा हूँ।"

"कहाँ ?"

*बड़ा। ×नाजुक।

"कारखाने में।"

"हाँ, वहाँ बहुत बड़ा कारखाना है!"

"कहाँ!"

"रतननगर।"

"रतननगर,रततनगर कहाँ है ?"

"यहाँ से बहुत दूर है। मगर, गाँव में रोज-रोज बेगार खटने की खिचखिच से जान बची है। वहाँ तो समझो खटकर खाना है। घण्टे-घण्टे की मजूरी हिसाब करके मिल जाती है। बहुत बड़े मारवाड़ी का मिल है।" बीलट ने कहा।

"अच्छा, तब तो ठीक है। मेरे दिन तो बड़े ठाले में गुजर रहे हैं। बाप चटगाँव में नौकरी करते थे, सो लड़ाई में बमगोला लग गया! बीमार होकर जख्म लिये घर पहुँचे। यहाँ अस्पताल में खैराती दवा मिलना मुश्किल था। पास में पैसे नहीं थे। हारकर पटना के बड़े अस्पताल में भरती कराया। सो घाव की चीर-फाड़ हुई, तो खून ही घट गया। खून खरीदने के लिए मौके पर पैसे न मिले, आखिर बाबू की जान वहीं अस्पताल में ही चली गयी। मैं तीन रोज बाद पहुँचा, तो लाश तक न मिली।" मैंने बतलाया। इस बीलट भाई ने बहुत अफसोस जाहिर किया। मुझसे पूछा, "तेरा ब्याह हो गया ?"

"हाँ।" मैंने कहा।

"और, घर में कौन-कौन है ?"

"माँ है, गोद में एक छोटी बहन है और जनाना।"

"तुम्हें बाल-बच्चे भी हैं ?"

"नहीं।"—मैंने कहा, "हमलोगों को ही खाना मिलना मुश्किल है। बाल-बच्चे हो गये, तो न जाने क्या होगा! नमक चटाकर मार देना तो नहीं पार लगेगा। मगर बेगार की रोटी से क्या होगा—साले मरेंगे।"

तब बीलट भाई ने मेरे दोने में फिर भरकर ताड़ी उँड़ेल दी और मैं एक ही साँस में ताड़ी पी गया। पीके मैंने भी बीलट भाई के दोने में ताड़ी उँड़ेली। ताड़ी पीकर बीलट भाई ने मुझसे पूछा, "मिल में काम करोगे ?"

"करूँगा क्यों नहीं, काम मिले भी तो !"

"मिलेगा।"

"सच ?"

"हां, आजकल तो बहाली भी हो रही है। लड़ाई का जमाना है न ! इधर एक लकड़ी का भी कारखाना खुला है।" बीलट भाई बोले।

याद रखने की बात है कि इन दिनों अनाज, कपड़े, चीनी और किरासन तेल सबका भाव तेजी पर जा रहा था। बाजार में अच्छा चावल मुश्किल से दस छटांक, तीन पाव का मिलता था। घटिया चावल सवा सेर, छः कनवां, सात कनवां तक मिलता था। वैसे चावल में कंकड़ अधिक होता। चावल का रंग गंदा और लाल होता था। पूरबी देश की ओर से जापान चढ़ा आ रहा था। लड़ाई बड़े जोरों की चल रही थी। फिर मुझ-जैसे आदमी के लिए जिसे न खेत था, न नौकरी थी—परिवार के साथ जीना मुश्किल था। गांव छोड़कर कहीं भाग जाने की तबियत होती थी। मगर भागकर कहां जाता ? कहीं से भी रोजी और रोटी का कोई आसरा नहीं था। ऐसी हालत में बीलट भाई ने मुझसे नौकरी के लिए पूछा था। यह मेरे लिए बड़ी खुशी की बात थी। मैंने कहा, "तो मेरे लिए भी कोई सटिका भिड़ाओ न।"

"सटिका क्या भिड़ाना है ! मेरे साथ चलो, तो दो पैसे की रोजी लग ही जायगी।"

"मगर तुम तो कह रहे हो कि रतननगर यहां से बड़ी दूर है।"

"दूर है तो इससे क्या ? रोजी और रोटी के लिए तो आदमी सात समुन्दर पार विलायत तक जाता है।"

"कितनी तनख्वाह मिलेगी।"

"अगर सरकारी में बहाल कर लिये गये, तो सत्ताइस रुपये मिलेंगे। बारह तनख्वाह और पन्द्रह महँगाई।"

"सत्ताइस रुपये।"

"हां, मुझे सत्ताइस रुपये ही मिलते हैं। चलना चाहो, तो चलो। सरकारी में न हुआ, तो ठेकेदारी में नौकरी हो जायगी। बेगार खटने से लाख दरजे अच्छा

रहेगा। मुझे तो उसी बेगार की वजह से गाँव छोड़कर भागना पड़ा।" बीलट भाई बोले।

बीलट भाई की बात मुझे जँच गयी। उस रोज मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं अब अँखफोड़ होने लगा हूँ। बीलट भाई ने मेरी आँखें खोलने की कोशिश की थी। ताड़ी पी लेने के बाद बीलट भाई ने ताड़ीवाले को पैसे दे दिये और वहाँ से हमलोग निकलकर सड़क पर आ गये। मैंने बीलट भाई से कहा, "अब मुझे अपने साथ लेते चलो। कहा भी है—हिले रोजी, बहाने × मउगत।"

"चलो, मैं परसों जा रहा हूँ। चौथे रोज तक मेरी छुट्टी है।"

"मगर बीलट भाई, मेरे पास न तो रेलभाड़ा के लिए पैसे हैं, और न खाने-पीने के लिए कुछ अनाज है! कैसे चलूँगा? इसके लिए कोई उपाय सोचो, तो चलूँ। वहाँ कमाकर सबसे पहले तुम्हारा कर्ज तोड़ दूँगा।" मैंने कहा।

"तुम चलो न। रेलभाड़ा इधर से मैं दे दूँगा। वहाँ एक छोटी-सी दूकान पर बहुत लोग उधार खाते हैं। वहाँ मैं भी खाता हूँ, तुम्हारा गुजारा भी हो जायेगा।"

"तो रही बात पक्की।"

"हाँ, चलो।"

"तुमने मेरा घर देखा है?"

"नहीं।"

"तो चलो, इधर से मेरा घर भी देख लो। रतननगर किधर पड़ता है?"

"यहाँ से पहले पटना जाना होगा। फिर वहाँ से बड़ी लाइन का टिकट लेकर पच्छिम की गाड़ी पर चढ़ेंगे।

बीलट भाई ने मेरे ऊपर बड़ी दया की। उनका घर धारीपुर में था। धारीपुर हराजी गाँव का एक हिस्सा है। वे मेरे साथ मेरी पलानी तक आये। मेरे यहाँ पानी पिया और मुझसे कहा, "चलो तुम भी मेरा घर देख लो। मैं परसों भोर की गाड़ी से जाऊँगा। तुम खूब सबेरे सूरज निकलने के पहले मेरे यहाँ चले आना। वहीं से हमलोग एक साथ स्टेशन चलेंगे।"

× मौत।

"अच्छी बात है।" मैंने कहा।

बीलट के साथ मैं धारीपुर आया। उनका घर देखा, मकई का भूँजा खाकर पानी पिया और अपने गाँव लौट आया। अब यहाँ आकर मैंने माँ से सारी बातें समझाकर कही। माँ का हाथ अभी तुरत का जला हुआ था। फोड़ा फूटकर सूखा भी न था। वह मुझे गाँव से बाहर भेजने में आनाकानी करने लगी। कमाने के लिए बेटे को दूर देश भेजते उसे डर लग रहा था। सनीचरी मुँह फुलाकर अलग बैठ रही। उस रोज रात को मेरी पलानी में मातम छाया रहा। मैंने माँ से कहा, "इतने लोग परदेश कमाने जाते हैं, सो क्या मर ही जाते हैं?"

"इतने लोगों से मुझे क्या मतलब है? मेरा कोख जला हुआ है। एक बेटे को बेटा और एक आँख को आँख नहीं कहते। परदेश कमाने तो सभी जाते हैं, तेरे बाप को बमगोला क्यों लग गया? देख रही हूँ कि लड़ाई में जा-जाकर लौटे आ रहे हैं लोग, तेरा बाप तो लड़ाई पर नहीं गया था। तू मेरा मरा हुआ मुँह ही देख, जो परदेश कमाने जा!" इस तरह कहकर माँ ने मुझे कसम दे दी।

"तू नहीं समझती, तो क्यों बकती जाती है? लड़ाई पूरब में हो रही है, मैं पच्छिम में जा रहा हूँ। बाबू तो वहीं कमाने चले गये थे, जहाँ, लड़ाई पहुँच गयी थी।" मैंने कहा। उस वक्त सचमुच मुझे तनिक गुस्सा आ गया था।

माँ को मेरी बातों पर विश्वास न हुआ, तो दौड़ी-दौड़ी झूलन बाबाजी के यहाँ पहुँच गयी। वहाँ जाकर दरियाफ्त किया कि रतननगर पूरब में पड़ता है या पच्छिम में। वहाँ लड़ाई हो रही है या नहीं। वहाँ लड़ाई के पहुँचने की उमीद भी है या वहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। दूसरे रोज झूलन बाबाजी से भेंट हुई, तो उन्होंने मुझसे सारी बातें कहीं। मैंने कहा, "पगली है!"

"नहीं, नहीं, उसे समझा दिया है। वह मान गयी है। तुम अम्बिका भवानी का नाम लेकर चले जाओ। अरे, अब घर में तुम ही तो अकेले रह गये। औरतों को अगर नाक न हो, तो सब कुछ खा लें। तुम इस झंझट में कहाँ पड़ोगे? जहाँ दो पैसे की रोजी लगे, वहाँ जाना चाहिए। बेटा और लोटा जितना ही घूमे, उतना ही अच्छा।" झूलन बाबाजी ने मुझे समझाया।

"सो तो है बाबाजी!" मैंने कहा।

"नहीं, तुम चले जाओ । कल उधर का *जतरा भी है । × दिग्गिसूल बिलकुल नहीं है । लौटकर आना तो पाँच आने मेरी पञ्चांग पर चढ़ा देना ।" बोले, झूलन बाबाजी !

आखिर मैं बीलट भाई के साथ रतननगर के लिए चल पड़ा। पटने के बाँकीपुर स्टेशन जाना था । महेंद्रू घाट से हमलोग इक्के पर चढ़कर स्टेशन की ओर चले । यहीं स्टेशन पर आकर पहली बार मैंने बड़ी लाइन की गाड़ी देखी । रतननगर की गाड़ी आने में अभी देर थी । इसलिए टिकट लेकर हम प्लेटफार्म पर बैठ गये । बीच में दो रेलगाड़ियाँ आयी थीं । उब्बे हरे-हरे थे और इनमें एक की जगह तीन पावदान बने थे । यह सब देख-देखकर मैं चौंक ही रहा था कि रतननगर की गाड़ी आ पहुँची । बीलट भाई घबड़ाकर उठ खड़े हुए । मुझसे कहा, "उठो, उठो, हमलोगों की गाड़ी आ गयी !"

रेलगाड़ी के आकर रुकते ही हमलोग भीतर जा बैठे। रास्ते में एक-दो जगह गाड़ी बदलनी भी पड़ी। दूसरे रोज भोर में, जब मैं गाड़ी के सीट पर बैठा ऊँघ रहा था, तो बीलट भाई ने मेरे कंधे को झकझोरकर उठा दिया । गाड़ी के नीचे से अजीब तरह की भयानक आवाज निकल रही थी। बीलट भाई ने मुझसे कहा, "यह देखो, पुल है । इसके नीचे यह नदी देखो ।"

"पुल और नदी ?"

"हाँ ।"

"इस पुल के बाद आगे दरियाव के किनारे से बहुत थोड़ी दूर पर ही रतननगर है ।"

"अच्छा""!"

मैंने रेलगाड़ी की खिड़की से झुककर देखा, पूरब से पच्छिम तक बहुत बड़ा पुल था । दोनों ओर से लोहे के लाल-लाल गाटर लगे हुए थे । नीचे बहुत ही चौड़ी नदी बह रही थी । मगर ऐसा लगता था, जैसे गर्मी के कारण नदी का आधा से अधिक पानी सूख गया है । किसी ओर बालू-ही-बालू था, तो किसी ओर बहुत पतली और चौड़ी धारा बह रही थी। रेलगाड़ी से ही पानी के नीचे

*यात्रा । ×दिशाशूल ।

का बालू दीख पड़ता था। अपने पहियों से भयावनी आवाज पैदा करती हुई रेलगाड़ी पुल पार करती जा रही थी। मुझे यह सब देख-देखकर बड़ा अचरज हो रहा था कि तभी रेलगाड़ी पुल को पार कर गयी। रेलगाड़ी के पुल से आगे निकलते ही बीलट भाई ने कहा, "इधर देखो, दाहिनी ओर।"

"हाँ।" मैंने कहा।

"यही रतननगर है।"

"यही रतननगर है?"

"हाँ! स्टेशन से दायीं ओर रतननगर है और बायीं ओर बनगाँव।"

"यहाँ ताड़ के इतने बड़े-बड़े पेड़ हैं? और सब में तो लगता है, जैसे आग लग गयी हो। इन सबों से धुआँ क्यों निकल रहा है बीलट भाई? बाप-रे-बाप, इतनी बड़ी आगलग्गी!" मैंने कहा।

"वे ताड़ के पेड़ नहीं हैं, रे! ये सब चिमनी हैं। कोई पावर हाउस की है, कोई चीनी-मिल की। कोई सीमेण्ट फैक्टरी की!"

"चिमनी क्या?"

"यहीं सब कुछ नहीं समझ सकते। अब तो चल ही रहे हो। काम करना पड़ेगा, तो खुद देख लोगे।"

तभी रेलगाड़ी प्लेटफार्म पर आकर रुक गयी। सामान उठाकर बीलट भाई के साथ मैं डब्बे से बाहर निकला। यहाँ मुझे माँ और सनीचरी की याद आयी। अब तो सचमुच मैं उन लोगों को छोड़कर परदेश चला आया था। मैंने बीलट भाई से पूछा, "बीलट भाई, यहाँ से हमलोगों का घर किधर पड़ता है?"

"उधर।" अपने दायें हाथ की उँगली से बीलट भाई ने उत्तर और पूरब के कोने की ओर इशारा किया।

स्टेशन पर दो प्लेटफार्म थे। ऊपर काठ और लोहे के गाटर का आदमियों के आने-जाने के लिए पुल बना था। दो सीढ़ियाँ दोनों प्लेटफार्म पर उतरी थीं। एक सीढ़ी स्टेशन के बायीं ओर जाने के लिए बनी थी और एक सीढ़ी स्टेशन के दायीं ओर। हमलोग प्लेटफार्म की सीढ़ी से चढ़कर, ऊपर पुल पर आ गये और अब उत्तर की ओर जाने लगे, जिधर रतननगर था। तभी बड़े जोरों का

दो-तीन बकरियाँ चर रही थीं और उसके गंदे पानी में एक भैंस बैठी पागुर कर रही थी। झोपड़ी के दरवाजे पर खड़े होकर बीलट भाई ने मुझे बतलाया कि यहीं उनका रहना होता है। मैंने उस झोपड़ी के सामने देखा, कूड़े-कर्कट पड़े थे। चूल्हे की राख और तरकारी के छिलके फेंके हुए थे। दो-एक जगह पका हुआ जूठा भोजन भी फेंका हुआ था। उन पर मक्खियाँ भनभना रही थीं और एक कुत्ता भी उन्हें पंजे से कुरेद रहा था। मैं उनके साथ भीतर झोपड़ी में घुसा। भीतर टाट बिछाकर, बीलट भाई की उम्र का ही, एक मजदूर बेखबर होकर सो रहा था। हमलोगों के भीतर घुसते ही उसने करवट बदली, मगर न तो वह जाग पाया और न अच्छी तरह उसने हमलोगों को देखा। ऐसा लगता था, जैसे थकावट से उसका अंग-अंग टूट रहा हो। करवट को बदलकर वह लंबी-लंबी साँसें लेने लगा।

"दीपन, दीपन, ऐ दीपन ?"

"उँ····ऽ····ऽ····ऽ····ऽ।" करके वह मजदूर रह गया।

"उठो, उठो।" बीलट भाई ने हाथ पकड़कर जगाया। दीपन धीरे-धीरे जग गया।

"कब आये, अभी आ रहे हो ?" दीपन ने पूछा।

"हाँ, अभी भोर की गाड़ी से।"

"क्या समाचार है, घर का ?"

सब अच्छा है, यहाँ का ?"

"चल रहा है। दो बजे रात को ड्यूटी से आया हूँ।"

"ड्यूटी बदल गयी है ?"

"हाँ, परसों से यही चल रही है।"

"अच्छा, तुम सोओ।"

"नहीं, अब नहीं सोऊँगा····।" उसने मेरी ओर देखकर बीलट भाई से पूछा, "यह कौन है, इसे मैं नहीं पहचान रहा हूँ।"

"गाँव तरफ के, मेरे+इयार हैं। वहाँ बेकार बैठे थे। साथ लेता आया हूँ, कहीं काम लग गया, तो रह जायेंगे।"

"अच्छा किया!"

"अभी बहाली तो हो ही रही है न?"

"नहीं मालूम। उधर तो हो रही थी, इधर का मुझे कोई पता नहीं है।"

"पता लगाना होगा।"

"हाँ, लगाया जाएगा।" दीपन बोला।

आज ही से दीपन मेरा दोस्त हो गया। जब उस झोपड़ी में रहते दो-चार रोज हो गये, तो आस-पास की झोपड़ियों में रहनेवाले मजदूरों से भी जान-पहचान होने लगी। लगता था, वह समाज ही पैसे-पैसे के लिए मुहताज है। कई मजदूर एक ही खाकी पेंट और गंजी पहने काम पर जाते, झोपड़ी में पहुँच-कर खाना पकाते और उसे ही पहनकर सो रहते थे। इनमें से कोई तेजाब के कारखाने में काम करनेवाला था, कोई कागज के कारखाने में, कोई चीनी-मिल में, कोई सीमेण्ट फैक्टरी, लकड़ी के कारखाने और कोई पावर हाउस में। काम करके झोपड़ियों की ओर लौटते हुए मजदूरों के चेहरे से हवाइयाँ उड़ती होतीं। लगता था, कहीं से बाजी हारकर आ रहे हैं। किसी के हाथों में कालिख लगी होती, तो किसी के कंधे पर। किसी के कुरते पर मैला तेल गिरा होता, तो किसी का पूरा मुंह, हाथ-पैर सीमेण्ट की धूल से भरा होता था। कुछ तो दो बजे रात को काम पर जाते और कुछ दो बजे रात को काम से लौटते थे। कुछ साढ़े-पाँच का भोंपा बजने पर सुबह ही कारखाने की ओर दौड़ते और बारह-एक बजे लौटते थे। झोपड़ी में लौटकर ऐसे मजदूर, मुश्किल से एक-डेढ़ घंटे रह पाते थे कि फिर बड़े जोर से कारखाने का भोंपा बजता और वे गंजी पहनते, कंधे पर अँगोछा रखते और झोपड़ी से बाहर निकलकर कारखाने की ओर लपकते थे।

झोपड़ी से बहुत करीब, कच्ची और तंग सड़क के किनारे एक मोदी रहता था। उसकी एक छोटी-सी दूकान थी। वह चावल, दाल, आटा, तेल और

+मित्र।

मसाले बेचता था। एक बोरे में आलू भी रखता। इन झोपड़ियों में रहनेवाले मजदूर उसी की दूकान से सौदा ले आते थे। बीलट भाई ने जैसा बतलाया था, उस मोदी की दूकान से ये मजदूर उधार ही भोजन के सामान ले आते। उस मोदी के पास एक मोटी और गंदी कापी थी, जिसके ऊपर टेढ़े-मेढ़े हरफों में लिखा था—'उधारी खाता'। उधार सौदा देते समय वह उस कापी पर उधार लेनेवाले का नाम, चीजों के नाम और दाम चढ़ा देता। उस मोदी को मैंने कभी भी साफ कपड़े पहनते नहीं देखा। उसके कपड़े बराबर गंदे रहते। उसकी गर्दन पर मैल जमी रहती थी। कभी-कभी जब वह तगादे में इन झोपड़ियों के दरवाजे पर आकर खड़ा होता, तो मजदूरों में भय छा जाता था। हल्ला होता—सावजी आये हैं, सावजी आये हैं। जिससे भेंट होती, उससे वह पैसे के लिए तगादा करता और जिससे भेंट नहीं होती थी, वह उसके बारे में और मजदूरों से यह पूछता कि वह कब आयेगा, उसकी ड्यूटी कब की है, उसकी तनख्वाह कब मिलेगी, वह घर तो नहीं जानेवाला है, उसकी नौकरी तो बरकरार है, उसकी नौकरी छूटने की तो कोई उम्मीद नहीं है ?

इन्हीं दिनों खा-पीकर मैं, जब बीलट भाई को ड्यूटी पर नहीं जाना होता, रोज रतननगर में टहलता। बीलट भाई मेरी नौकरी की खोज कर रहे थे। पता लगा कि लकड़ी का कारखाना नया-नया खुला है। कुछ रोज पहले, बहाली हो रही थी, मगर इधर रुक गयी है। और कारखानों में तो नये आदमी लिये ही नहीं जा रहे हैं। बीलट भाई की ड्यूटी जब दस बजे दिन से छः बजे शाम तक की होती, तब भी मैं झोपड़ी से करीब चार बजे टहलने निकल जाता। कोई भी ड्यूटी बदलने के वक्त दो-चार भोंपा बजता। पहला भोंपा समय से आधा घण्टे पहले और कुछ देर तक बजता था। दूसरा भोंपा, मुश्किल से पचास सेकंड बजकर बंद हो जाता था। दूसरा भोंपा बजने का माने मजदूर यह लगाते कि आधा घण्टे पहले कम्पनी इस समय ड्यूटी पर जानेवाले मजदूरों को खबरदार करती है। समूचे कारखाने का घेरा तीन-चार मील में था। रहते-रहते सब पता चलने लगा। घेरा एक ही था, मगर चीनी का कारखाना एक ओर अलग था। उसके अपने फाटक थे। उन फाटकों पर दरवानों की अलग

से ड्यूटी होती थी। कारखाने का भोंपा बजते ही कारखाने के फाटक पर मजदूरों की भीड़ लग जाती थी। एक फाटक इतना बड़ा बना था कि उससे मोटरगाड़ी, बैलगाड़ी, ट्राली आती-जाती थी। मौके-मौके पर जब कारखाने के बड़े-बड़े पुर्जे चीनी मिल में ले जाना होता, तो यह फाटक खुलता था। इस बड़े-से फाटक के अगल-बगल, दोनों ओर एक-एक ऐसे फाटक बने थे कि जिनसे एक साथ दो से ज्यादा आदमी एक बार नहीं आ-जा सकता था। कम्पनी के दरवान अक्सर वहीं खड़े होते थे। हाँ, वह फाटक तभी खुलता था, जब मजदूरों की ड्यूटी बदलती थी। उस बड़े फाटक के बगल में, काठ के दो-तीन बक्स, जिसमें ढक्कन नहीं होते थे, रखे रहते। कारखाने में घुसते समय मजदूर अपनी जेब से एक-एक कार्ड जो लगभग छः इञ्च लम्बा और साढ़े तीन इञ्च चौड़ा होता था, उस बक्स में गिरा देते। उस वक्त कम्पनी का एक आदमी, जो पढ़ा-लिखा जान पड़ता था, वहीं खड़ा रहता। पीछे मालूम हुआ कि वह आदमी 'टाइम कीपर' है। वह मजदूरों की हाजिरी और गैर-हाजिरी का हिसाब रखता है। उस बक्स में अपना कार्ड गिराते वक्त मजदूर उसकी ओर भय की आँखों से देखा करते। सामने दीवार में घड़ी टँगी थी। वह आदमी कभी मजदूरों की ओर और कभी घड़ी की ओर देखा करता, इसी वक्त मजदूर कारखाने से काम करके लौटते भी थे। उन काम करके लौटनेवाले मजदूरों में से, जिन पर दरवानों को, कुछ चुरा कर साथ में लेते आने का शक होता, वे उनकी नंगा-झोली लेते थे और पकड़ लिये जाने पर वह मजदूर बुरी तरह पीटा जाता था। दरवान उन्हें बूट की ठोकरों से मारते थे। कभी किसी की जेब से छेनी निकल आती, कभी छूरी, कभी काँटी और कभी बिना बेंट की छोटी हथौड़ी निकल आती थी। यह सब देख-देखकर मेरा मन डर जाता था। तब मैं यह सोचकर अपने को धीरज देता था—कि जब मैं चोरी नहीं करूँगा, तब मुझे मार नहीं पड़ेगी। जब दूसरा भोंपा बज जाता तो दस मिनट के बाद वह बड़ा फाटक बन्द कर दिया जाता था और कार्ड से भरे हुए काठ के बक्स उठा लिये जाते। बौलट भाई ने मुझे बतला दिया था कि उसी कार्ड पर मजदूरों की हाजिरी बनती है। बड़ा फाटक बन्द होने के बाद जब कोई मजदूर काम पर पहुँचने के लिए आता, तो उसे लौटा दिया जाता था।

ऐसे वक्त के लिए शायद एक गुंजाइश और थी। वैसे कुछ मिनट देर कर पहुँचने-वाले मजदूर के कार्ड पर देर से आने का चिह्न लगा दिया जाता और उतनी देर की उसकी मजदूरी काट ली जाती थी।

इसी तरह जब मैं शाम को फाटक के बाहर खड़ा होता और जब बीलट भाई की ड्यूटी दस बजे दिन से छः बजे शाम तक की होती, तो वे छः बजे निकल आते और मुझसे भेंट हो जाती थी। वहाँ से हमलोग एक साथ झोपड़ी में लौटते थे। एक रोज ऐसे ही मैं फाटक पर खड़ा था कि दूसरा भोंपा बजने के थोड़ी देर बाद बीलट भाई भीतर से निकले। अब तक मुझे यहाँ रहते पन्द्रह-बीस रोज हो गये थे। कहीं भी नौकरी की बात पक्की नहीं हो सकी थी। मन बड़ा उदास हो रहा था। गये नेपाल तो साथ में कपाल! रतननगर में इतने लोग तो काम ही कर रहे थे, मेरी ही किस्मत जो खोटी है। बीलट भाई नौकरी के आसरे पर अपने मत्थे उधार खिला रहे थे। यह भी बड़ा बोझ जान पड़ता! आज फाटक से बाहर निकलते-निकलते बीलट भाई मुस्कुराया।

"घबड़ाओ नहीं, रतननगर में तुम्हारा दाना-पानी लिखता है।" बाहर आते ही वे बोले।

"सो क्या ?" मैंने पूछा।

"तुम्हारे काम के लिए एक ठेकेदार के मुंशी से बातें हुई हैं।"

"अच्छा।"

"कल सुबह उसने सीमेण्ट फैक्टरी के 'गेट' पर बुलाया है। साथ में तुम्हें भी चलना होगा।"

"चलूँगा।"

"पहले यहाँ काम करो। बैठकर खाने से तो अच्छा रहेगा।" बीलट भाई बोले।

"जरूर। मगर इसमें कैसा काम है, बीलट भाई ?" मैंने पूछा।

फाटक के सामने मजदूरों के आने-जाने की भारी भीड़ थी। हमें अपनी बातें जोर-जोर से कहनी पड़ती थीं। बीलट भाई ने कहा, "सब मालूम हो जायेगा। चलो तो।"

इसके बाद हमलोग भीड़ से बाहर निकल आये। इस फाटक के सामने, सड़क के किनारे खोमचे में लकठो, लाई, भूँजा, चीनाबादाम, गुड़ की जलेबी, घुघुनी, कचड़ी और तिलकुट बिक रहे थे। हमलोगों की आँखें एक साथ उन खोमचों की ओर मुड़ीं और फिर सामने के रास्ते की ओर फिर गयीं। यहाँ से थोड़ी दूर आगे बढ़कर बीलट भाई ने मुझसे बड़ी सर्द आवाज में कहा, "काम तो भाई जरा गन्दा और मिहनत का है, मगर बेगार से चार पैसे की रोजी भली!" मैंने कहा, "सो तो ठीक है, ठाकुर के यहाँ कौन बैठा रहना होता था।"

इस तरह बातें करता हुआ मैं बीलट भाई के साथ झोपड़ी का रास्ता तय करने लगा। कारखानों के चालू रहने की वजह से तरह-तरह की आवाजें कान में समा रही थीं।



१५

साढ़े छः का भोंपा बज चुका था। कारखाने के फाटक पर मजदूरों की भीड़ लगी थी। ठीकेदार के मजदूर सीमेण्ट फैक्टरी के फाटक से कारखाने में घुसते थे।

"हमलोगों का तीन जगह काम होता है। जाकर देख लो, जहाँ काम करना चाहोगे, वहाँ के लिए रख लूँगा।" ठीकेदार के मुंशी ने कहा।

मैं बीलट भाई के साथ ठेकेदार के मुंशी से मिलने के लिए भोंपा बजने के पहले ही यहाँ आ गया था। कारखाने में काम करनेवाले मजदूरों के सिवा बाहर के आदमी भीतर नहीं जा सकते थे। बीलट भाई ने ठेकेदार के मुंशी से कहा,

"मैं जानता हूँ कि सरकार का काम कहाँ होता है, मगर आप जरा इसे 'गेट पास' करा दें। काम मैं इसे दिखला दूँगा।"

"आओ, चलो।" ठेकेदार के मुंशी ने कहा।

वीलट भाई के साथ मैं मुंशी के पीछे-पीछे बड़े फाटक तक आया। मुंशी ने पास खड़े दरवान से कहा, "यह मेरा आदमी है, जाने दोगे।"

आज मैं पहली बार कारखाने के भीतर घुसा। भीतर घुसते ही, थोड़ी दूर के बाद मैं तरह-तरह के कल-पुर्जे देखने लगा। मशीनों के चलने के कारण बड़ी भयानक गड़गड़ाहट पैदा हो रही थी। मैंने वीलट भाई से पूछा, यह कैसी आवाज है?"

"सीमेण्ट फैक्टरी में पत्थर तोड़ा जा रहा है।"

"कैसे?"

"मशीन से। पत्थर का ही तो सीमेण्ट बनता है।"

"अच्छा!"

इसके आगे जाकर मैंने देखा, भीतर ही रेलवे लाइन थी और उन पर माल-गाड़ियाँ खड़ी थीं। मजदूर मालगाड़ियों के भीतर से पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े उतार रहे थे। पचासों मालगाड़ी के डब्बे एक कतार से खड़े थे। पत्थरों के नीचे गिरने से 'धड़ाम-धड़ाम' और 'झनाक्-झनाक्' की आवाज हो रही थी। किसी मजदूर की कमर में एक भगोटी थी और किसी की कमर में फटा और पुराना पैंट। काम करने में उनके हाथ बड़ी तेजी से चल रहे थे। मगर, पत्थरों की ऊँचाई से तनिक दूर हटकर एक पढ़ा-लिखा आदमी खड़ा था, जो कह रहा था—ऐसे काम नहीं चलेगा। फुर्ती करो, फुर्ती करो!" तब मजदूर और जोरों से बेलचे चलाने लगते थे। उनके कंधे और माथे से पसीना बह रहा था।

"पहले कहाँ का काम देखोगे?" यहीं पर वीलट भाई ने पूछा।

"जहाँ चलो।"

"चलो, पहले वर्क-शॉप का काम देख लो।"

"चलो।"

बीलट भाई यहाँ से दायीं ओर मुड़े। मैं भी चला। थोड़ी दूर जाकर मैंने देखा, एक छोटी चिमनी से धुएँ के बदले आग की लंबी-लंबी लपटें निकल रही थीं। बीलट भाई ने उस ओर हाथ उठाकर कहा, "देखो, यही वर्क-शॉप है।"

"यहाँ क्या होता है ?" मैंने पूछा।

"चलो, अब तो चल ही रहे हो।" बीलट भाई बोले।

मैं उनके साथ वर्क-शॉप में घुसा। यहाँ के कल-पुर्जे देख-देखकर मैं दंग हो रहा था। रबर की नली से आग की लपटें निकल रही थीं। इसके बारे में बीलट भाई ने कहा कि यह वेल्डिंग-शॉप है, जिसे ठेकेदार चलाते हैं। इसमें कच्चे लोहे को मशीनें ढाली जाती हैं। मशीनों के टूटे-फूटे पुर्जे जोड़े जाते हैं। रबर की नली से निकलनेवाली आग की लपटें जब कल-पुर्जे से छू जातीं, तो उनसे हरी-पीली, लाल और उजली रोशनी निकलती। एक आदमी आँख पर हरे शीशे का, कचौड़ी के इतना बड़ा चश्मा लगाये 'वेल्डिंग' का काम कर रहा था। लोहे के लाल-लाल गर्म छींटे चारों ओर उड़ रहे थे। वह आदमी अपने हाथों में चमड़े का दस्ताना पहने हुए था। और भी पचासों किस्म की मशीनें खड़ी थीं, जिन पर काम हो रहा था। मशीनों के जरिये लोग लोहे छिल रहे थे। कदम-कदम पर बिजली लगी थी। चलते समय बार-बार बीलट भाई मुझसे कहते—"देखो, बचकर। उधर करेण्ट है।" कई जगह लोहे के बक्से में कई तार घुसे थे। उस बक्स पर खोपड़ी की तस्वीर बनी थी। जिसके नीचे लिखा था—"सावधान, खतरा, ११०० बोल्ट!" मशीनों से पचासों किस्म की आवाजें निकल रही थीं—घर्र घर्र घर्र; झक् झक् झक्! चीर्र-चीर्र-चीर्र!! धक् धक् धक्!!!

"चलो, वहाँ तुम अपना काम देख लो।"

"चलो।"

यहाँ ठेकेदार का काम हो रहा था। बीलट भाई ने बतलाया, "इस जगह को 'ढलाई-घर' कहा जाता है।" नयी उम्र के बीस-पचीस मजदूर काम कर रहे थे। लोहे का बहुत बड़ा चूल्हा बना था, जिसे कारखाने में पढ़े-लिखे बाबू लोग 'ब्वायलर' कहते हैं और हमलोग—बैलट। इसी ब्वायलर में एक ओर से

टूटे-फूटे लोहे डाले जा रहे थे। दूसरी ओर से एक नली की राह, वह लोहा बिलकुल आग के रंग का पानी बनकर गिरता। नली के मुंह पर दो मजदूर फड़े लगी एक बाल्टी को थामे खड़े रहते। लोहे का गर्म पानी जब बाल्टी को भर देता, तो दूसरा आदमी एक पुर्जा दबा देता था और लोहे का गलगलकर गिरना बन्द हो जाता। दूसरी ओर जमीन पर, ठंढी मिट्टी के कई सांचे बने तैयार थे, जिनमें बाल्टी में भरा लोहे का पानी उँडेल दिया जाता। पानी उँड़े-लने का काम एक मिस्त्री की देख-रेख में हो रहा था। इस काम के बीच लोहे का गर्म-गर्म पानी अनेकों बार उड़ता और उससे मजदूरों का बदन बार-बार जल जाता था। टाट के टुकड़े से जलती हुई जगह को पोंछकर वे फिर काम में लग जाते थे। ऐसे मौके पर उनके मुँह से निकलता—'ऊ हू हू हू''''ओह''''!' —और, अगर टाट से हाथ पोंछने में देर होती, तो ठेकेदार का मुंशी कहता-"नौ घण्टे तुम हाथ ही पोंछोगे या काम भी करोगे? क्या चाहते हो, आज की तुम्हारी हाजरी कट जाय?"

"नहीं मालिक, इस बार जरा बड़ा छींटा पड़ गया है!" वे कहते और फिर गर्म बाल्टी लेकर ब्यायलर की ओर दौड़ते थे।

"देखो, यहाँ उसी ठेकेदार का काम हो रहा है।" बीलट भाई ने कहा।

"समझा।" मैं बोला।

"और तुम्हें भी यही काम करना होगा, जो काम ये मजदूर कर रहे हैं।" बीलट भाई बोले। मैंने कहा, "ठीक तो है।"

"पसंद है?" बीलट भाई ने पूछा।

"पसंद तो है, मगर अभी दो जगह और काम है न। वहाँ चलो।" मैं बोला।

"आओ।"

वर्क-शॉप में ढलाई-घर का काम देखकर, मैं तो सचमुच डर गया था। मगर मन-ही-मन सोचा, आखिर इतने मजदूर तो काम कर ही रहे हैं न। उनके भी अपने-पराये होंगे। पेट के लिए क्या नहीं करना होता है। कमाया हुआ तो कोई वक्त पर देता ही नहीं, बैठने पर कौन देगा? मैंने बीलट भाई

ने पूछा, "अब किस जगह चलेंगे?"

"सोडा-रिकवरी।"

"सोडा-रिकवरी?"

"हाँ, वहाँ केमिकल्स बनते हैं। नमक साफ़ किया जाता है।"

"वहाँ भी ऐसा ही काम है, क्या?"

"नहीं, वहाँ दूसरा काम है।"

"चलो।"

यहाँ से थोड़ी दूर दक्खिन की ओर चलकर, हमलोग पूरब तरफ़ चले। कारखाने के भीतर की सड़कें सीमेंट की बनी थीं, जो बहुत मज़बूत और चमकीली दिखती थीं। इसी सड़क के बाएँ पूरब वाले घर मैंने देखा, एक बहुत बड़ा पोखरा बना है। पोखरे के ऊपर लोहे के नल जाल की तरह फैले हैं और नलों में बहुत-से छेद हैं, जिनसे फुर्र-फुर्र करके पानी निकल रहा है। वह पानी फिर पोखरे में गिर रहा था। पानी से हल्का-हल्का भाप भी उड़ता। मैंने कौशल भाई से पूछा, "यह क्या है?"

"इसमें पानी ठंढा किया जा रहा है। जब यह पानी ठंढा हो जाएगा और जब इसकी ज़रूरत होगी, तब इसे नल के ज़रिए खींच लिया जाएगा। देख नहीं रहे हो, इसमें कितने नल लगे हैं?"

"सो तो देख रहा हूँ।"

"और वह देखो, वह पावरहाउस है।"

"पावरहाउस?"

"हाँ, बिजली यहीं तैयार होती है। और यहीं से बिजली सभी कारखाने में भेजी जाती है।"

तभी मेरी नज़र दाहिनी ओर गयी। देखा, इधर बड़े-से मैदान में फूलिया बाँस का पहाड़ खड़ा है। उतने बाँस को गिनने में तो सौ साल से भी ज़्यादा लग जाएँ! बाँस के पहाड़ के दूसरी ओर, फटे-चिटे कपड़े, रुई वगैरह एक दूसरे पहाड़ की तरह रखी थी। लाखों मन से भी ज़्यादा रुई और फटे-चिटे पुराने कपड़े थे। मैंने कौशल भाई से पूछा, "यह सब किसलिए है?"

"इसी का तो कागज बनता है।"

"कागज, इसी का कागज बनता है।" बाँस, रूई और चिथड़े का ?" मुझे अचरज हुआ। मैं भक्कू बनकर वीलट भाई का मुँह देखने लगा। वे बोले, "अभी तुमने यह सब नहीं देखा है, इसलिए घबड़ा रहे हो। जब देख लोगे, तब परतीत हो जाएगा।"

"कुदरत का खेल है सब, आदमी भगवान हो रहा है"...।" तब मेरे मुँह से निकला था।

"अरे, यहाँ एक-से एक मशीन है !"

मैं वीलट भाई के साथ सोडा-रिकभरी भी पहुँचा। यहाँ का भी काम देखा। एक ओर, न-जानें कैसी पीले रंग की गीली मिट्टी जमा हो रही थी। उसे ठेकेदार के आदमी लोहे की छोटी-छोटी गाड़ियों में भरकर बहुत दूर पूरब की ओर ले जा रहे थे। उन लोहे की गाड़ियों में छोटे-छोटे चार पहिये लगे थे और उन्हें ठेलकर ले जाना पड़ता था। उस गीली मिट्टी से पैखाने की तरह दुर्गन्ध आ रही थी। ठेकेदार के आदमी, लोहे की छोटी-छोटी कराही से उस मिट्टी को उठाकर लोहे की गाड़ी में भर रहे थे।

"देखो, एक काम यह भी है।"

"बाप रे, यहाँ तो बड़ी बुरी *बास है।" मैंने कहा।

"अब जो है, वह तुम्हारे सामने है।"

"हूँ....।"

इस जगह काम करनेवाले मजदूरों के हाथ-पैर उस मिट्टी में पूरी तरह सने हुए थे। यहाँ भी एक ठेकेदार का आदमी था, जो मजदूरों से डाँट-डपटकर काम ले रहा था। मैंने वीलट भाई से पूछा, "और तीसरा काम !"

"चलो।"

"किधर ?"

"पावर-हाउस से उत्तर।"

"चलो, यहाँ तो नाक नहीं दी जा रही है।"

---

*गंध।

"आदत डाल लोगे, तो नाक सी जाएगी।"

"सो तो है।"

"आओ चलो। यह काम भी देख लो।"

कई रास्ते को पारकर उनके साथ मैं पावर-हाउस के उत्तर की ओर आया। यहाँ भी एक जगह ठेकेदार का ही काम हो रहा था। यहीं पर एक जगह ले आकर बौलट भाई ने मुझे खड़ा कर दिया। कहा, "देखो, यहाँ भी उसी ठेकेदार का काम होता है।"

"यह सब क्या किया जा रहा है?" मैंने पूछा।

"देखो, यह सब पावर-हाउस के बैलट का गला हुआ कोयला है। देखो, कुली उसे ट्राली पर लाद रहे हैं न?"

"हाँ।" मैंने कहा। ट्राली में जो कोयले लादे जा रहे थे, वे लहरकर जल रहे थे और लकड़ी के लाल-लाल अंगारे से उनमें बहुत ज्यादा गर्मी मालूम होती थी। यह ट्राली लोहे की लाइन पर चल रही थी। कुली लोग हाथ और पैर में टाट बाँधे हुए थे। ट्राली में गर्म और जलते हुए कोयले को भरकर, वे बहुत दूर उत्तर की ओर ठेले लिये जा रहे थे। न-जानें, उन ट्रालियों की बनावट कैसी थी, चलते वक्त वे 'डगमग-डगमग' करतीं और उनसे जलते हुए कोयलों के टुकड़े गिर जाते थे। लोहे के चार पहियों के ऊपर एक चौकोर कराह बना था। बहुत दूर, उत्तर में उस ट्राली को ले जाकर, कुली कराह को बायीं ओर से पकड़कर, दाहिनी ओर उलट देते थे और कोयला गिर जाता था।

"यह सब कोयला उधर कहाँ जा रहा है?" मैंने पूछा।

"वहाँ कोयले का टाल है। यही कोयला वहाँ ठण्डा करके बिकता है। कम्पनी के मजदूरों को यह कोयला चार आने मन मिलता है। वहाँ पर कोयला तौलने की मशीन है। दरवान है, जो पहरा देता है और कम्पनी का एक किरानी रहता है, जो बिक्री का हिसाब रखता है।"

"यह कोयला अब कम्पनी के काम में नहीं आ सकता?"

"नहीं, पावर-हाउस के लिए तो यह कोयला अब राख है। पावर-हाउस में तो बहुत बड़े-बड़े कोयले जलते हैं। इसको तो 'छाई' कहते हैं। इनमें भी दो

किस्म का कोयला होता है। एक बड़ा और एक छोटा। छोटा चार आने मन बिकता है और बड़ा बारह आने मन।"

"हूँ....।" मैंने कहा।

करीब दस मिनट तक चुपचाप वहाँ खड़ा-खड़ा मैं यह काम देखता रहा। पचासों कुली इस काम में जुटे हुए थे। ठेकेदार का आदमी खड़ा था। काम करनेवाले कुलियों में से किसी को इतनी फुर्सत नहीं थी कि वे दूसरी ओर देखें या आपस में कुछ बातें कर सकें। सूरज आसमान की पहाड़ी पर चढ़ता जा रहा था। गर्मी बढ़ती जा रही थी। कुली पसीने से नहा रहे थे। ट्रालियों के ढीले पहिये जब लोहे की पटरियों पर दौड़ते, तो ठीक ऐसी आवाज होने लगती थी–घर र र र र घर्र, घर र र र र घर्र....! और, जब आगे टाल पर कोयले को उलटकर ट्राली को इस ओर लौटाते, तो इस तरह की आवाज में ऐसी आवाज मिल जाती थी—ढन्-ढन् ढन् ढन्....!

"यह काम कैसा है ?" बीलट भाई ने पूछा।

"अच्छा है।"

"कहाँ का काम पसन्द है, यहाँ करोगे काम ?"

"करूँगा।"

"करने की बात नहीं है, जहाँ तुम्हारा मन भरे। घबड़ाओ मत, अम्बिका भवानी का नाम लेकर पहले एक जगह काम से अटक जाओ। फिर सरकारी के लिए कोशिश करूँगा। परदेश में पहले पैर रखने के लिए जगह बनायी जाती है। धीरज से रहोगे, तो फिर बैठने के लिए भी जगह मिल जायेगी। बोलो, क्या सोचते हो ?"

"ठीक कहते हो बीलट भाई! कोई-न-कोई काम पकड़ लेना चाहिए।" मैं बोला।

"*खँखारकर बोलो, तो चलकर मुंशी से बातें करूँ।"

"हाँ, चलो बातें करो न। मैं खँखारकर ही बोल रहा हूँ।"

"बस तो जय अम्बिकाजी कहो! चलो, मुंशी अभी फाटक पर ही होगा।"

---

*स्पष्ट होकर।

"चलो।"

"बात पक्की हो जाएगी, तो बारह बजे आ जाओगे। आधे रोज की हाजिरी बन जाएगी।" बीलट भाई ने सलाह दी।

"आ जाऊँगा।" मैंने कहा और बीलट भाई के साथ सीमेण्ट फैक्टरी के फाटक की ओर मुड़ा। फिर वही बाँस, रूई और चिथड़ों का ढेर ! मशीनों के चलने की गड़गड़हट !! मेरी नजर में नये-नये कल-कारखानों का तमाशा !!! अब दूर ही से सीमेण्ट फैक्टरी का फाटक मुझे ललचाने लगा।

फाटक पर आते ही ठेकेदार के मुंशी से भेंट हो गयी। बीलट भाई के साथ मैं आकर खड़ा हो गया। मुंशी के आमने-सामने करीब दस-पंद्रह मजदूर खड़े थे। हमलोगों को देखते ही उसने बीलट भाई से पूछा, 'काम दिखला दिया ?"

"जी, सरकार !"

"कहाँ काम करना है ?"

"पावर-हाउस।"

"ब्वायलर पर ?"

"जी।" बीलट भाई बोले।

"काम पसन्द है ? कहीं ऐसा न हो कि दो रोज करके भाग जाओ। देखो, ऐसे आदमी को मैं नहीं रखता।" मुंशी ने मेरी ओर देखकर कहा।

"नहीं, ऐसा नहीं करूँगा मालिक !" मैंने कहा।

"मजदूरी कितनी मिलेगी, मालूम है ?" मुंशी ने पूछा।

!"………।" मैं मुंशी का मुँह ताकने लगा।

"तुम्हें तो मालूम होगा, बीलट ?"

"जी…।"

"देखो, बारह आने रोज मिलेंगे। साढ़े बाईस रुपये महीना पड़ता है।" मुंशी ने मेरी ओर देखकर कहा। उसकी शान-भरी आँखें मेरे पैर से सिर तक घूम गयीं। उसने अपने बायें हाथ के खाते को खोलते हुए पूछा, "बोलो, मंजूर है तो कार्ड बना दूँ। काम पर लग जाओ।"

"मंजूर है।" मैंने कहा।

"लो, कार्ड बना देता हूँ·····।" कहकर मुंशी ने ठीक एक वैसा ही कार्ड निकाला, जैसे कार्ड की चर्चा मैं कर चुका हूँ।

"क्या नाम है ? उसने पूछा।

"मंगरू।" मैंने कहा।

"बाप का नाम ?"

"झगड़ू।" मैं बोला। इस पर मुंशी जरा हँस पड़ा। उसने मेरे साथ मेरे बाप का भी नाम लिख लिया और वह कार्ड मेरे हाथ में पकड़ाकर बोला, "अब तुम कल से काम पर आओ। यहीं सुबह साढ़े सात बजे का भोंपा बजते-बजते आ जाना। मैं यहीं रहूँगा। मुझसे मिल लोगे।"

"अच्छा, सरकार !" मैं बोला।

"देखो, इस कार्ड को खोना मत।"

"नहीं, इसे जोगाकर रखूँगा।" मैंने कहा और मुंशी के सामने ही उस कार्ड को कन्धे पर से अँगोछा उतारकर उसके एक कोने में बाँध लिया। फिर बीलट भाई के साथ वहीं खड़ा-खड़ा मुंशी का मुंह देखने लगा। तभी उसने कहा, "अब जाओ, कल आना।"

"सलाम मुंशीजी !" बीलट भाई बोले।

"सलाम सरकार !" मैंने कहा और हम दोनों वहाँ से लौटे।

झोपड़ी में लौटकर देखा, दीपन खिचड़ी पका चुका है। पीतल के थाल में खिचड़ी को उँड़ेलकर वह हँड़िया धो रहा था। चूल्हे के मुँह पर एक ओर आठ-दस मिरचा भूनकर रखा था। बीलट भाई ने पूछा, "आज खिचड़ी बना ली ?"

"चावल कम था भइया !" दीपन बोला।

"और चोखा ?"

"साव के यहाँ आलू नहीं मिला। पैसे भी नहीं थे। मिरचे पका लिये हैं। इसमें नमक-तेल मिला दूँगा। मजा आ जाएगा।"

"सो तो है।" बीलट भाई बोले।

"क्या हुआ, हुआ काम ?" दीपन ने मुझसे पूछा।

"हाँ, पावर-हाउस में ब्वायलर पर ठीक हो गया।" बीलट भाई ने जवाब दिया।

मैं चुपचाप टाट पर चलकर बैठ रहा। टाट पर बैठ लेने के बाद मैंने गमछे से अपना कार्ड खोला। देखा, उसकी पीठ पर कई बातें किताब के हरफों में लिखी हैं। कार्ड के पीछे ठीक ऐसा ही लिखा था—

सूचना

१. इस कार्ड या टोकन को तुम सम्हाल कर रखो। कार्ड के खो जाने पर अपने ठेकेदार से कहो।

२. महीना पूरा होने के सात रोज बाद जब तुम्हारी मजदूरी न मिले, तो इसकी रिपोर्ट लेबर आफिसर के पास करनी चाहिए।

३. ढीले कपड़े पहनकर काम करने की सख्त मुमानियत है।

बाहुकूम

लेबर आफिसर

सेठ रतनमल इण्डस्ट्रीज, रतननगर।

सो फिर क्या बतलाऊँ दोस्त? इसके दूसरे ही दिन से मैं कारखाने का मजदूर हो गया। गाँव मुझसे छूट गया, शहर मुझसे मिल गया। दो पीढ़ी पीछे की बातों का इतना लम्बा बयान कर देना मैंने इसलिए जरूरी समझा, ताकि तुम यह समझ सको कि लड़कपन से ही मंगरुआ कैसे लोगों के बीच रहा, किन मुसीबतों के बीच से वह गुजरता रहा और उन मुसीबतों का उस पर कैसा असर हुआ; क्योंकि गम और खुशी का जो असर इन्सान पर होता है, उसकी हकीकत से बचकर रहना बड़ी मुश्किल बात है। नामुमकिन भी हो, तो कोई ताज्जुब नहीं। गाँव पर सोखर काका ने एक दिन मुझसे कहा था, "मंगरुआ अब तू कहीं नौकरी पकड़ ले। यहाँ बेगार से पेट नहीं भरेगा।"

"देखो, अब तुम कमाने लायक हो गये। घर से बाहर निकलकर रोटी कमाओ।" टीपू भाई ने समझाया था।

"मैं तो चाहता हूँ कि घरके लोगों के साथ ही गाँव छोड़कर भाग जाऊँ।" मेरे मुँह से निकला।

आज भी जब कभी वहाँ की कोई घटना याद आ जाती है, तो रोएँ खड़े हो उठते हैं। जब खेतों में, मकई में *वाल निकल आते हैं तब खेत की रखवाली होने लगती है। मुझे भी एक बार कोरार में पहरा देने का काम मिला था। बीच मकई के खेत में चार लम्बे-लम्बे बाँस गाड़कर मचान बना था। अधैबरा मेरी पलानी के दरवाजे पर आकर कह गया, "मंगरुआ,आज से कोरार पर के दसकठवा खेत में तुम पहरा देना। मौनसीजी ने कहा है।"

"अच्छा।" मैंने कहा।

सो, महीने रोज तक रात-भर मचान पर बैठा-बैठा खाली टीन पीटना पड़ा था। नींद हराम हो गयी थी। जहाँ कहीं थोड़ी-सी खटखटाहट मालूम होती कि उतरकर खेत में टहलना पड़ता। रात-भर कनस्टर पीट-पीट कर मैं चिल्लाताः—

घा हे, लंगड़ो, घा....!
एक बाल टूटी, पचीस बाल लेब
चोरवा के बाप के फाँसी देब
गहना-गुड़िया लिलाम कई लेब
चिलम चढ़ाई-गोड़ दरिये देब
घा हे, लंगड़ो ! घा....!!

इतनी कड़ी मिहनत करके भी मैं मकई का एक-बाल नहीं तोड़ सकता था। जब उन हरे-हरे वालों को देखकर मुझसे नहीं रहा जाता, तो मैं मचान से उतर पड़ता था और उनके छिलके को +नोह से जरा-जरा ×नखोरकर भीतर के उजले-उजले और पीले-पीले गोटाये हुए दाने को देखकर मन भर लेता था। जब कभी मौनसीजी मुझे दिन में भी भेज देते। कभी-कभी मुझसे पूछ भी देते, "हाँ रे, बाल नखोरा हुआ क्यों है?"

---

*भुट्टे। +नाखून। ×छिलकर।

"सरकार, सियार और कुकुर को तो टीन बजाकर हड़का देता हूँ, बाकी साली × रुक्खी नहीं मानती है।" मैं कहता।

लेकिन, एक रोज मुझसे न रहा गया। भोर में, पहरा देकर अपने घर लौटते वक्त मैंने एक बाल तोड़ ही लिया और पेट के नीचे भगोटी में पेंड़ू के पास खोंस लिया। ऊपर से एक फटा-चिटा कुरता था। जैसे ही बाल लेकर मैं खेत से बाहर हुआ कि देखा, अछैबरा आ रहा है। उसने मेरे पास आते ही पूछा, "क्या है रे, रात में साहिल भी आया था ?"

"नहीं।"

"कुकुर ?"

"ना।" मैं बोला।

"तुम्हारा पेंड़ू क्यों इतना ऊँचा हो गया है ?"

"कुछ नहीं, ऐसे, ही।" कहकर मैं पीछे की ओर खिसकने लगा।

"इधर आ तो, देखूँ।" उसने कहा और मेरी ओर लपका।

"कुछ तो नहीं है।" मैं एक कदम पीछे और खिसक गया।

"आ आ साले, पहरा देते हो या खेत उजाड़ते हो ? नमकहराम साले·····!" कहते हुए अछैबरा ने मुझे पकड़ लिया। मेरे कुरते के नीचे से झटका देकर उसने बाल खींच लिया। यह बात जब मौनसीजी के कानों तक पहुँची, तो मुझे बुलाकर पीटा गया और सोलह आने जुर्माना भी हुआ।

ठेकेदार के मुंशी ने मुझे जो कार्ड दिया था, उसके पीठ पर की छपी बातें पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई। महीना लगने के सात रोज बाद साढ़े बाईस रुपये तो मिल ही जायँगे। दूसरे रोज से मैं मजदूरी करने लगा। टाट के टुकड़े हाथ-पैर में बाँधकर ट्राली ठेलना मुझे अच्छा लगने लगा। रोज वैसे ही सीमेण्ट फैक्टरी के फाटक पर ठेकेदार के आदमियों की भीड़ लगती और हमलोग कारखाने में घुसते थे। ठेकेदार का मुंशी हमलोगों को ठीक वैसे ही कारखाने की ओर खदेड़ता, जैसे भूखे भेड़ों को गड़ेरिया घर से निकालकर खेतों में छोड़ रहा हो। भोर में सात बजे जो ट्राली पकड़ता, सो बारह का भोंपा बजने पर ही छोड़ता। बीच

× गिलहरी।

में डेढ़ घंटे की छुट्टी मिलती। फिर एक और डेढ़ के भोंपे बजते। इसके बाद डेढ़ बजे ट्राली पकड़ता, तो ठीक छः का भोंपा बजने के बाद छुट्टी मिलती थी। पूरे नौ घंटे ठेकेदार का आदमी सिर पर सवार रहता। जब कभी काम देखने के लिए ठेकेदार आ जाता, तो और खलबली मच जाती थी। तब उसका आदमी और कड़ाई से काम लेने लगता।

यहाँ सावजी की दूकान में तीनों आदमी के नाम पर उधारी-खाता चलने लगा। खाने का सामान कभी मैं अपने नाम पर लाता। कभी वीलट भाई अपने नाम पर आप ले आते और ऐसे ही दीपन भी ले आता था। ऐसा इंतजाम वीलट भाई ने ही किया था। तय यह हुआ था कि तीनों आदमी का खर्च एक जगह जोड़ लिया जायगा। जो कम पैसे का सामान ले आया होगा, वह अगले महीने में लाकर हिसाब पूरा कर देगा। कार्ड पर जो यह बात लिखी थी कि महीना पूरा होने के सात रोज बाद जब तनख्वाह नहीं मिले, तो लेबर आफिसर के पास रिपोर्ट करनी चाहिए। सो, जब मैं काम करने लगा, तो बिलकुल बेकार साबित हुई।

ट्राली पर तुरत के ब्वायलर से निकले हुए कोयले को लादकर, जब मैं टाल की ओर ठेलता हुआ बढ़ता, तो लगता, जैसे देह में आग लग गयी। पैरों में, टाट बाँधे रहने पर भी ऐसा लगता, जैसे चिनगारी पर चल रहा होऊँ। बिल्कुल हाँफ जाता था। पावर-हाउस से 'गड़गड़' और 'साँय-साँय' की आवाज निकलती होती थी। यहाँ पर काम करते वक्त मुझे एक कुली से दोस्ती हो गयी। उसका नाम तो था 'रकटू' मगर मुंशी उसे रकटुआ कहकर पुकारता था। वैसे ही मंगरू, के बदले में 'मंगरुआ' कहा जाने लगा। कार्ड पर का कानून बराबर रद्द होता था। महीना लगने के पन्द्रह रोज, बीस रोज बाद हिसाब साफ होता था। इसमें एक दिक्कत और थी। मेरे साथ जितने कुली काम करनेवाले थे, किसी की हालत ऐसी नहीं थी कि वे महीना पूरा होने पर तनख्वाह लेने का सब्र कर पाते। हमलोगों की इस कमजोरी से ठेकेदार बहुत फायदा उठाता। वह हर हफ्ते या दस रोज पर कुछ पैसे दिलवा देता। इस मिलनेवाली रकम को हमलोग 'खर्चा' कहते थे। हफ्ते या दस रोज पर 'खर्चा'

बँटता था। खर्चा बँटते वक्त कारखाने के फाटक के बाहर बड़ी भीड़ इकट्ठी होती। हमलोग मुंशी को घेरकर खड़े हो जाते। वह बारी-बारी से नाम रखकर हमलोगों को पुकारता और दो रुपये, तीन रुपये दे दिया करता था। इसके बदले वह अपने खाते पर हमारे अँगूठे का निशान ले लेता था।

"बाबू, तीन रुपये से काम नहीं चलेगा।" हमलोग कहते।

"तो कितना चाहिए। सारी झोली उठाकर दे दूँ ?" मुंशी डपटता।

"सरकार, आज तो भूखे काम पर आया था। मोदी उधार सत्तू भी नहीं देता।

"तो मैं क्या करूँ ? जानो तुम, जाने तुम्हारा मोदी ! मुंशी कहता।

"मर जायँगे मालिक, कुछ और दे दीजिए।" हम मजदूर कहते।

"तुम बहुत ज्यादा बोलता है। लेना है तो ले, मेरा दिमाग मत चाट।"

"मालिक, पाँच रुपए भी दीजिए, तो मोदी मान जायगा।"

"ज्यादा बक-बक मत कर। नहीं काम चलता, तो काम छोड़ दे। तेरा उधार चुकाने का क्या मैंने ठेका ले रखा है ?"

मुंशी को इस तरह बोल देने पर हमलोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगते थे। सबके चेहरे से मजबूरी टपकने लगती थी। ऐसे ही महीना पूरा होते-होते हमलोग दस-बारह रुपये पा जाते थे। बाकी आठ, नौ, दस रुपये के लिए फिर झंझट होती। एक बार ऐसी ही झंझट चल रही थी। दोपहर में हमलोग पावर-हाउस के पास रोज की तरह काम में जुटे हुए थे। इसी वक्त ठेकेदार के मुंशी को कोई अपना आदमी बुलाकर कहीं ले गया। मेरे दिमाग में एक बात सूझी। मैंने अपने दोस्तों से पूछा, "अगर ऐसे ही पाँच रोज और पैसे न मिले, तो क्या खाओगे ?"

"........................।" कोई खास जवाब न मिला।

"रहो, मैं सलाह करता हूँ। ब्वायलर से बाहर निकला हुआ कोयला सभी मिलकर जल्दी टाल पर पहुँचाओ। फिर थोड़ी देर में जब और कोयला बिटुर जायगा, तब ट्राली चलाना। किसी तरह थोड़ा वक्त निकालो, मैंने एक उपाय सोच लिया है।" मैंने कहा।

मेरी बात सुनकर मेरे कुली दोस्तों के कान खड़े हो गये। उन्हें मेरी बातों पर यकीन न हुआ, तो वे बोले, "मुन्शीजी के सामने बोलो, तो मरद बखानें। ऐसे काम नहीं चलेगा।"

"बोलूँगा।" मैंने कहा

"दिल्लगी करते हो।" वे बोले।

"नहीं, सच कहता हूँ। मगर दौड़कर कोयला फेंकों, ठेकेदार का काम मत नुकसान हो।" मैंने सलाह दी।

"अच्छा।" मैंने सुना, और फिर ठन् ठन् ठन् ठन् ठन् ठन्!

कोयले की ट्रालियाँ दौड़ने लगीं। कुली हाँफ-हाँफकर ट्राली ठेलने लगे और घण्टे-भर में ब्वायलर से नीचे गिरा हुआ कोयला साफ हो गया। ऐसा मैंने इस लिए कराया कि अगर बीच में मुंशी चला भी आये, तो अट-पट न कर सके। सीधा-सा जवाब दे दिया जाता, 'जो कोयला था सो तो फेंक दिया, अब कोयला गिरेगा तो फिर फेंकेंगे।" बगल में कोयले की राख का एक टीला था। सब लोग ट्राली छोड़-छोड़कर उसी पर जमा हुए। रकटू मेरी बायीं ओर आकर बैठ गया। तब मेर दोस्तों ने मुझसे पूछा, "हाँ, जरा जल्द बतलाओ। तुम्हें कौन-सा उपाय सूझ गया है?"

"हमलोगों की हाजिरी का जो कार्ड है न, उसके पीछे लिखा है कि अगर महीना लगने के सात रोज बाद तक तनख्वाह न मिले, तो इसकी रिपोर्ट लेबर आफिसर के पास करनी चाहिए।" मैंने कहा।

"लेबर अफसर क्या करेगा?" दोस्तों ने पूछा।

"वह दिलवा देगा।" मैं बोला।

"जो भी हो भइया, मगर ऐसा उपाय लगाओ कि मुंशीजी और ठेकेदार साहब के खिलाफ कहीं बोलने का मौका न आ जाय।" दोस्तों ने एक साथ कहा। सिर्फ रकटू ने ऐसा न कहा। लेकिन, सच बतलाता हूँ, इतना सुनने के बाद ही उस रोज मेरे दिल के सूखे खेत में इन्कलाब का बीज पड़ गया।

• • •

लेबर आफिसर के पास रिपोर्ट करना बड़ी हिम्मत का काम साबित होने लगा। मेरे साथ काम करनेवाले कुलियों में से सिर्फ रकटू के सिवा और कोई तैयार न हुआ। सुनने में आया कि इस तरह की रिपोर्ट किसी कुली ने आज तक न की। अभी ठेकेदार का मुंशी आया भी न था कि फिर जले हुए कोयले गिरने लगे। मैंने कुलियों से कहा, "तब सटो चुपचाप! चलो, ट्राली खींचो।"

लोहे की पतली-पतली पटरियों पर फिर ट्रालियाँ दौड़ने लगीं। कोयले की गर्मी से हम सभी फिर जलने लगे। मैंने रकटू से कहा, "तुम अपनी ट्राली मेरी ट्राली के आगे-आगे ले चलो। टाल की ओर बढ़कर बातें भी कर लूंगा।"

"अच्छा।" रकटू बोला।

चार-चार कदम की दूरी पर हम दोनों अपनी-अपनी ट्राली ठेलने लगे। रकटू ने मुझसे दोस्ती कर ली थी, मगर अपने साथ काम करनेवाले कुलियों के लिए मेरे दिल में कोई काला नहीं था। उनके इनकार कर जाने की वजह मैं समझ गया। लगी हुई रोजी छूटने का डर था। वैसे डर तो मुझे भी था, मेरी हालत उन लोगों से कुछ अच्छी नहीं थी, मगर न जानें, क्यों अपने हक़ की लड़ाई लड़ने की मुझमें जिद पैठ गयी। हाथ में टाट के छोटे-छोटे टुकड़े लपेटे मैं रकटू से बातें करने लगा था। ट्राली पावर-हाउस से कोयले के टाल की ओर और टाल से पावर-हाउस की ओर धकेली जा रही थी। आस-पास एक ही आवाज—ढन् ढन् ढन् ढन् ढन् ढन्....!

"तो बोलो, रिपोर्ट करने के लिए तैयार हो?"

"हाँ, तैयार हूँ।"

"पीछे डरोगे तो नहीं?"

"नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

"आज रिपोर्ट करूँ?"

"करो।" रकटू बोला।

"और मान लो, कहीं ठेकेदार निकाल दे, तो ?" मैंने पूछा।

"देखा जायेगा।"

"मैं एक उपाय बतलाऊँ ?"

"बताओ।" रकटू बोला।

"स्टेशन पर गठरी ढोयेंगे। दिन-भर में चार-पाँच गाड़ियाँ आती हैं। सो आजकल लड़ाई का जमाना है। मुसाफिरों की कमी नहीं होगी। क्या दिन-भर में दस बारह आने पैसे भी न होंगे ?" मैंने कहा।

"नहीं होगा तो उससे क्या, रिपोर्ट करनी चाहिए। आवे आम, चाहे जाय लबेदा !"

"वाह रकटू, सचमुच तुम मेरे दोस्त हो सकते हो। चलो, आज ही रिपोर्ट करता हूँ।"

इतने दिनों से यहाँ रहते-रहते इतनी जानकारी हो गयी थी कि लेबर आफिस कहाँ है और रिपोर्ट का माने यह है कि अपनी शिकायत लिखकर देनी चाहिए। रिपोर्ट करने की बात पक्की हो गयी। तभी ठेकेदार का मुंशी चला आया। वह अपनी आदत की तरह फिर हमलोगों से ललकार-ललकारकर काम लेने लगा। काम में हमलोग किसी तरह मिहनत नहीं चुराते थे, मगर वह जो नहीं मानता था। आज जैसे ही बारह का भोंपा बजा कि मुंशी से अपना-अपना कार्ड लेकर मजदूर कारखाने से बाहर निकलने लगे। जिधर आँखें उठाकर देखता, उधर ही से मजदूर कारखाने के फाटक की ओर दौड़ते हुए नजर आ रहे थे। मेरे साथ रकटू ने भी अपना कार्ड ले लिया। इस कार्ड पर छोटे-छोटे तीस या इकतीस खाने बने होते। सभी खाने के ऊपर सिलसिले से तारीख दी हुई होती थी। उसी के अनुसार हमलोगों को हाजिरी बनती थी। सुबह कारखाने में घुसते वक्त मुंशी हमलोगों से कार्ड ले लेता और फिर बारह बजे लौटते वक्त दे देता था। इस बीच कार्ड पर हाजिरी बन जाती थी। मगर, इसमें एक दिक्कत और भी थी। डेढ़ बजे कारखाने में घुसते वक्त भी वह कार्ड मुंशी को देना पड़ता था और फिर छः बजे वह कार्ड मुंशी लौटा देता। भूलवश, अगर कोई कुली वह कार्ड मुंशी को नहीं दे पाता, तो उसकी आधे दिन की मजदूरी कट जाती थी।

हाँ, तो मुन्शी से अपने-अपने कार्ड लेकर थोड़ी देर तक हमलोग भी सीमेण्ट फैक्टरी के फाटक की ओर दौड़े। मगर आगे चलते-चलते मैं रुका, तो रुकटू भी खड़ा हो गया।

"मैं एक बात सोच रहा हूँ।" मैंने कहा।

"क्या ?"

"चलो, पेपर फैक्टरी।"

"वहाँ क्या ?" रुकटू ने पूछा।

"वहीं रिपोर्ट का कागज लिखायेंगे।" मैं बोला।

"कौन लिखेगा, तुम ?"

"मैं लिख तो सकता हूँ, मगर पहले तो मुझे लिखने का कायदा नहीं मालूम है और दूसरे यह कि मेरी लिखावट अच्छी नहीं होती। चलो न, वहाँ किसी बाबू से लिखवाऊँगा, अंग्रेजी में। अंग्रेजी में लिखने पर सुनवायी जल्दी होगी।" मैंने कहा।

"चलो।"

यहाँ से हमलोग पेपर फैक्टरी की ओर मुड़े। दो मिनट में जरा एक बात और सुन लो। कारखाना चौबीस घण्टे चालू रहता था। चौबीस-घण्टे में मजदूरों की ड्यूटी तीन बार बदलती थी। इन तीन समय के कामों के तीन नाम थे—'ए-शीफ्ट', 'बी-शीफ्ट', और 'सी-शीफ्ट'। जो मजदूर दस बजे से छः बजे शाम तक काम पर रहते, उनकी ड्यूटी को 'बी-शीफ्ट' कहा जाता था। वैसे ही छः बजे शाम से दो बजे रात तक के काम को 'सी-शीफ्ट' और दो बजे रात से लेकर दस बजे दिन तक के काम को'ए-शीफ्ट' में गिनते थे। और, जो लोग सुबह भोंपा बजने पर काम में आते, दोपहर को जिन्हें दो घंटे की छुट्टी मिलती और फिर दो बजे से आकर जो शाम के पाँच बजे तक काम करते थे, उनकी ड्यूटी को 'जनरल ड्यूटी' कहा जाता था। हर फैक्टरी में हर किस्म की ड्यूटी होती। कारखाना कभी भी नहीं बंद होता था। आसमान से बातें करनेवाली चिमनियों के ऊपर शाम होते ही लाल रोशनी जलने लगती थी। कहते थे कि वह लाल रोशनी इसलिए जलायी जाती है कि रात में जाते वक्त

कोई हवाई जहाज उनसे टकरा मत जाए। चिमनी से निकलते हुए धुओं के बीच यह रोशनी एकदम जलती होती—लाल-लाल ! अगर तुम यहाँ की अच्छी पेपर फैक्टरी देखने जाओगे, तो सबसे पहले तुम्हें पेपर फैक्टरी का पहला हिस्सा 'बंबू-क्रशर' दिखलाया जायेगा। बाँस यहीं पेरा जाता है। कागज बनाने के लिए एक खास किस्म का बाँस होता है। हमलोग उसको 'फुलियां बाँस' कहते हैं। यह साधारण लाठी से कुछ मोटा और आठ-नौ फुट से ज्यादा लंबा नहीं होता। ऐसे ही पाँच-पाँच बाँसों का एक-एक पुल्ला बँधा होता है। कारखानों में जब बाँस से लदी मालगाड़ी आती है, तो उन्हें उतारकर एक जगह इकट्ठा कर लेते हैं। बाँस की ढेर से लेकर'बंबू-क्रशर' तक डेढ़ फुट चौड़ी लोहे की लाइन बनी होती है और इन पर चलने के लिए लोहे की ट्राली भी होती है। मजदूर इन्हीं ट्रालियों पर बाँसों के पुल्ले भर-भरकर 'बंबू-क्रशर' तक ले आते हैं।

हाँ, तो बोलट भाई उसी पेपर फैक्टरी के 'बंबू क्रशर' में काम करते थे। मैं रकटू के साथ 'बंबू क्रशर' पहुँचा। देखा, बोलट भाई ट्राली पर बाँस लादे, उसे ठेलते हुए बंबू क्रशर में घुस रहे हैं। छुट्टी के वक्त मुझे वहाँ देखकर पूछा, "अभी यहाँ कैसे मंगरू ?"

"एक काम है।" मैं बोला।

"खाना खा लिया ?"

"नहीं।"

"तो खाओगे कब ?"

"एक काम है, किसी से करा दो। पीछे दौड़कर खा आऊँगा।"

"क्या काम है, कहो।"

"किसी बाबू से दोस्ती है ?" मैंने पूछा।

"बाबू लोगों से मेरी दोस्ती कैसे होगी ? क्या चाहते हो ?"

"देखो, यह भी मेरा दोस्त है⋯!"—रकटू की ओर इशारा करके मैं कहने लगा, "यह बेचारा भी मेरा साथ दे रहा है। देखो, महीना लगे पंद्रह रोज हो गये। ठेकेदार ने हमलोगों का हिसाब न साफ किया। और एक बात जानते हो, हमलोगों के कार्ड के पीछे क्या लिखा है ?"

"क्या लिखा है ?" बीलट भाई ने पूछा।

"देखो लिखा है—अगर महीना पूरा होने के सात रोज बाद तक ठेकेदार तनख्वाह न दे, तो इसकी रिपोर्ट लेबर आफिसर के पास करनी चाहिए। हमलोग रिपोर्ट करना चाहते हैं, किसी से रिपोर्ट लिखा दो।" मैंने कहा।

"अरे, तुम्हें क्या हो गया है, मंगरू ?"

"जो हो गया है, सो ठीक हो गया है। इसके बिना काम नहीं चलेगा।" मैं बोला।

"अरे, बड़ी मुश्किल से तो उसने तुम्हें रख लिया और अब रिपोर्ट करोगे, तो निकाल न देगा ?"

"देखा जायेगा, तुम लिखा तो दो।" रकटू ने कहा।

"देखो भाई, सोच लो। नौकरी मिलना मजाक नहीं है।"

"हमलोग सोचकर आये हैं। तुम मत डरो।" मैं बोला।

"अच्छा आओ। चलो अंदर। मिस्त्रीजी से कहूँगा। मगर मेरा दोष न देना।" बीलट भाई बोले और ट्राली को ठेलते हुए बंबू क्रशर में घुस गये। पीछे-पीछे रकटू भी मेरे साथ अंदर आ गया। बंबू क्रशर चालू था। बाँस के पेराने से 'ठक्-ठक्-कड़ाक्' की आवाज़ हो रही थी। पहले बीलट भाई ने ट्राली से बाँस उतारे, फिर बीस फीट ऊँची मशीन के ऊपर काम करते हुए एक आदमी को देखकर बड़े जोरों से कहा, "हो ओ हो ऊ...।" मशीन से ऐसी आवाज हो रही थी कि बिना चिल्लाये काम नहीं चलनेवाला था।

"क्या है ?" ऊपर बैठे हुए आदमी ने हाथ उठाकर इशारा किया।

"नीचे आओ।" हाथ से इशारा कर बीलट भाई बोले।

उनका इशारा पाते ही ऊपर से वह आदमी उतर आया। मैंने देखा, उसके हाथ में लोहे के दो-तीन औज़ार थे और उसकी उँगलियों में मशीन का तेल लगा था। उस आदमी की उम्र करीब अड़तीस-चालीस वर्ष की थी। देखने में वह दुबला-पतला था। आँखों की चमक कम हो गयी थी। मगर उसकी उँगलियाँ बहुत ही मजबूत जान पड़ती थीं। वह एक हाफ कमीज और पेंट पहने था। उसने हमलोगों को इस तरह देखा, जैसे वह कुली नहीं। उसका

ओहदा हमलोगों से कुछ ऊँचा हो, जैसे। आते ही उसने बीलट भाई से पूछा, "किसलिए बुलाया ? कहो।"

"एक काम है मिस्त्री, अभी फुर्सत होगी ?"

"कहो न।"

"वही तो पूछ रहा हूँ। एक रिपोर्ट लिखनी है।"

"लाओ कागज, लिख दूँगा।"

"कागज कहाँ है, वहाँ से ले लूँ ?" बीलट भाई ने पूछा।

"ले लो, साहब चले गये न ?"

"हाँ।"

"ले लो, ले लो।"

वहीं पर बगल में एक काठ की छोटी-सी कोठरी बनी थी। उसमें कुर्सी थी, टेबुल थी, टेबुल पर कागज, पेंसिल, स्याही और टेलीफोन रखा था। और पीठ की ओर दीवार में, शीशे में मढ़ी हुई बाँस की तस्वीरें टँगी थीं। पता चला कि इसी कमरे में 'शीफ्ट इञ्चार्ज' रहता है, जो मजदूरों के काम की देख-रेख और समय-समय पर उन्हें 'सस्पेंड' भी किया करता था। बम्बू-क्रशर में घुसने के लिए लोहे के चदरे के दो मजबूत दरवाजे थे। बीलट भाई ने मुझसे कहा, "तुम इनसे रिपोर्ट लिखा लो। मैं दरवाजे पर खड़ा-खड़ा देखता हूँ। कहीं साहब आ गये, तो हम दोनों *ससपिन कर दिये जायँगे।"

"हाँ, तुम बाहर खड़े रहो बीलट! मैं भीतर ही रिपोर्ट लिख देता हूँ। कलम, दावात सब तो हैं ही।" मिस्त्री बोला।

बीलट भाई बम्बू क्रशर के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये। मैं और रकटू मिस्त्री के साथ उस काठ की कोठरी में घुसा। बीलट भाई के और कुली दोस्त बाँस ढोने का काम कर रहे थे। मशीनों से वही आवाज निकल रही थी— 'ठक्-ठक् कड़ाक् कर्र कड़ाक्'! कोठरी में घुसते ही मिस्त्री ने साहब की टेबुल से कागज उठाया, कलम उठायी और हमलोग की रिपोर्ट तैयार होने लगी। पहले

*Suspend.

मैंने सारी बातें उसे समझा दी थीं। रिपोर्ट के नीचे मैंने अपनी दस्तखत की और रकटू ने अँगूठे में स्याही लगाकर मेरी दस्तखत के पास ही निशान लगाया।

"तुम्हारा घर कहाँ है?" मिस्त्री ने मुझसे पूछा।

"छपरा जिला।"

"छपरा जिला?"

"हाँ।"

"किस थाने में?"

"दिघवारा।"

"मेरा भी घर छपरा ही है, मगर शहर में।"

"कहाँ?"

"साहेबगंज।"

"अच्छा, तब हमलोग जवारी भाई हुए।"

"हाँ, बीलट से कैसी दोस्ती है?"

"हमलोग पास ही के रहनेवाले हैं। तुम्हारा नाम क्या है?"

"झपसी।" मिस्त्री ने कहा।

"अच्छा, फिर भेंट करूँगा। तुम तो मिस्त्री हो, साहब लोगों से जान-पहचान होगी। कहीं सरकारी काम में लक्कड़ लगा दो, तो तुम्हारा बड़ा नाम लूँगा।" मैं बोला।

"सुना है, फिर बहाली होनेवाली है। मिलोगे, तो बातें करूँगा।"

"कहाँ डेरा है तुम्हारा?"

"कुली क्वार्टर में रहता हूँ। अट्ठारह नम्बर। सो तो बीलट जानता है।"

"अच्छा।"

झपसी मिस्त्री से इस तरह जान-पहचान भी हो गयी और मैं रिपोर्ट लेकर बाहर निकला। बाहर निकलते वक्त दरवाजे पर खड़े बीलट से कहा, "हो गया काम। अब तुम जाओ।"

यहाँ से हमलोग बड़ी तेजी के साथ लेबर आफिस पहुँचे। मगर इतनी हिम्मत कहाँ थी कि लेबर आफिस में घुसकर सीधे लेबर आफिसर के हाथ में

रिपोर्ट दूँ। बाहर एक टेबुल पर चपरासी बैठा था। उससे कहा, "एक रिपोर्ट देनी है, कैसे दूँ।"

"भीतर जाना मना है। मुझे दे दो। मैं साहब की टेबुल पर रख आऊँगा।"

"और इसका जवाब? मैंने पूछा।

"जवाब अभी थोड़े मिल जाएगा? साहब के पास एक यही कागज तो नहीं है। आज कागज दे जाओ, पीछे पता लग जाना।"

"लो, इसे ले लो। मगर देखो, इस कायदे से साहब के आगे रखना कि काम बन जाय।" मैं बोला। मेरी बात पर चपरासी मुस्कुरा पड़ा था। अब समझता हूँ कि वह मेरा गँवारपन था। आखिर उस रोज मैं ही अपनी रिपोर्ट पेश कर हम दोनों फाटक से बाहर निकले और नजदीक की सत्तू की दूकान की ओर लपके। वक्त का कुछ अन्दाज नहीं था। दो का भोंपा तुरत बजेगा या अभी देर है, हम नहीं सोच सकते थे।

रतननगर के चारों ओर सीमेंट की ऊँची चहारदीवारी बनी थी। चहारदीवारी के ऊपर पतले-पतले और नुकीले शीशे के टुकड़े लगे थे। सीमेण्ट फैक्टरी से उत्तर की ओर मजदूरों के रहने के लिए कुछ क्वार्टर कम्पनी ने बनवा दिये थे। कुलियों के रहने के लिए करीब एक सौ कमरे बने थे। एक कमरे का भाड़ा एक रुपया लगता और एक कमरा तीन या चार कुलियों के नाम पर मिलता था। क्वार्टर आमने-सामने की कतार में बने थे। बीच की जगह में एक या दो पानी के नल थे। पानी भरने के लिए अक्सर मजदूरों में झगड़ा हुआ करता। नल पर बराबर भीड़ लगी रहती थी। इन्हीं क्वार्टरों के बगल से होकर एक कच्ची सड़क पूरब की ओर जाती थी। पूरब और उत्तर के देहातों से, ईख को लदी बैलगाड़ियाँ इसी सड़क से आतीं और सुगर-फैक्टरी के फाटक में घुसती थीं। सड़क छाई की बनी थी और सड़क के आखिर में, एक बोर्ड टँगा था। जिस पर लिखा था—

सेठ रतनमल इण्डस्ट्रीज
प्राइवेट रोड
यह आम रास्ता नहीं है।

लेकिन, वैसे किसी आदमी के आने-जाने की मनाही नहीं थी। और, इसी सड़क की बगल से कम्पनी का बहुत ही गन्दा नाला बहता था। इस नाले की चौड़ाई करीब आठ फीट और गहराई दस-ग्यारह फीट थी। कुलियों के क्वार्टर और उस गन्दे नाले में सिर्फ बहुत कम चौड़ी सड़क की दूरी थी। कारखाने की सारी गन्दगी इसी नाले से होकर बहती थी। इसी नाले के किनारे कुलियों के लिए एक बमपुलिस बना दी गयी थी, जिसमें आठ-नौ पैखाने थे। पैखाने में टीन के दरवाजे लगे थे, जो बहुत ढीले और पुराने पड़ गये थे। उसके ऊपर मोरचे जम गये थे। शायद हफ्ते में इनकी सफाई दो-एक बार हो जाती होगी। यह सब मैंने तब देखा, जब छपसी मिस्त्री से मिलने इधर आया था। नाले के उत्तर में मेहतरों के क्वार्टर थे। गिनती में कुल पन्द्रह या बीस।* इनकी भी वही हालत थी। इसके पूरब में बहुत बड़े मैदान के उस पार, पच्छिम की ओर कारखाने के बड़े-बड़े अफसरों के बँगले थे। उन बँगलों के सहन में रंग-बिरंग के फूल लगे थे। बीच की दूबें मशीन से काटी जान पड़ती थीं। बालछड़ी की हरी-हरी और घनी झाड़ी को माली लोहे की बड़ी-बड़ी कैंची से छाँट रहे थे। मोटर-गाड़ी रखने के लिए बँगले से सटा ही एक अलग मकान था। उन बँगलों के आस-पास से जब कभी शाम या रात में गुजरता, तो लगता, जैसे स्वर्ग की बगल से होकर जा रहा हूँ। कहीं से साहब और साहेबाइन की खिलखिलाहट सुनायी पड़ती; कहीं से टेलीफोन की घनघनाहट और कहीं से रेडियो बजते सुनायी पड़ते थे। सामने, जो बहुत ही लम्बा-चौड़ा मैदान था, उसी में साहब लोगों के नौकर, साहब के छोटे-छोटे बच्चों को चार पहियोंवाली गाड़ी पर बैठकर टहलाते थे। किसी बँगले के फाटक पर लिखकर टँगा था, 'बिना पूछे अन्दर मत जाओ।' और कहीं-कहीं बड़े-बड़े हरफों में लिखकर टँगा था—

कुत्ते से बचकर। -फूल मत तोड़ो,
कुत्ता काट खायेगा।

इधर और नये-नये कारखाने खुलने लगे थे। सुनने में आता था कि जापान सिंगापुर तक चला आया है। दिन-भर में पचासों हवाई-जहाज पूरब की ओर जाते। कभी-कभी जब पाँच-पाँच ऐसे ही आठ-नौ हवाई-जहाज एक साथ जाते,

तो देखकर हमलोग अन्दाज लगाते थे कि लड़ाई जोरों की हो रही है और जहाज में बमगोले भरकर भेजे जा रहे हैं। सड़कों पर बिजली के खम्भे में जहाँ-जहाँ बिजली के बल्ब लगे थे, उन सबों में सरकार ने 'लैम्प-कैम्प' लगवा दिया था। सरकार की ओर से यह हिदायत भी कर दी गयी थी कि कोई भी आदमी घर के बाहर बिना 'लैम्प-कैम्प' के बत्ती नहीं जला सकता। इससे एक फायदा यह होता था कि बत्ती की रोशनी ऊपर आसमान की ओर नहीं जा सकती थी। बत्ती की सारी चमक नीचे जमीन की ओर मुड़ जाती थी। उन दिनों लोग कहा करते थे कि बहुत उमीद है कि जापान इधर भी चला आये। बत्तियों को देखकर वह समझ जायेगा कि नीचे कोई बड़ा कल-कारखाना है और इसे बर्बाद करने के लिए हवाई-जहाज से बमगोले गिरा देगा।

बिना छावनी की मालगाड़ियों पर मशीनें आ रही थीं। कम्पनी रोज नये आदमी बहाल करने की खबर देती और चुप लगा जाती थी। मैं समय मिलने पर हापसी मिस्त्री से मिलता और इस बात का पता लगाता कि नयी बहाली होनेवाली है या नहीं। अपनी रिपोर्ट का पता लगाने भी मैं रकटू के साथ लेबर आफिस कभी-कभी पहुँच जाता। मगर, कुछ पता नहीं चलता था। लेबर अफसर का चपरासी मटाह कुत्ते की तरह भूँककर हमलोगों को भगा देता। ठेकेदार की मन-मानी पहले की तरह चल रही थी। मैं, अपनी माँ-बहन और सनीचरी के लिए कुछ भी न भेज सका था। बड़ी इच्छा होती थी कि उसी साढ़े बाईस रुपये में कुछ काट-कपटकर भेजूँ। मगर, एक मुश्त ने साढ़े बाईस रुपये मिलते थे और न मैं दो पैसे बचा पाता था। मोदी का उधारी खर्च बराबर सिर चढ़ा रहता। बोलट भाई महीने में सत्ताईस रुपये के अलावे आठ-दस रुपये ओभरटाइम से बना लेते थे। सो, वे हर महीने एक मनीआर्डर-फारम जरूर ले आते थे। इस बीच मैंने एक पोस्टकार्ड घर भेज दिया था। जिसमें लिखा कि 'मुझे नौकरी लग गयी है। अभी कुछ कम पैसे पाता हूँ। आगे तरक्की होने की उम्मीद भी है। घबड़ाने की जरूरत नहीं है। आगे रुपये भी भेजूँगा।"

इन्हीं दिनों पावर-हाउस में डबल ब्वायलर बनाया गया। कारखाने और बन जाने के कारण एक पावर-हाउस से काम नहीं चल रहा था। अब तो

अधिक कोयला जलने और गिरने लगा। हमलोग जितने कुली थे, उनसे निश्चित समय के अन्दर ब्वायलर के सारे कोयले नहीं फेंके जा सकते थे। पहले तो ठीकेदार ने बड़ी कड़ाई से काम लिया, मगर पीछे जब काम नहीं निकला, तो एक रोज राख के टाल पर खड़ा होकर ठीकेदार के मुंशी ने हमलोगों से कहा, "देखो, अब काम बढ़ रहा है। तुमलोगों को ओभरटाइम करना होगा।"

कुलियों को 'ओभर-टाइम' का माने समझने की जरूरत नहीं थी। यह सभी जानते कि जिनलोगों को कंपनी बहाल करती है उन्हें 'सरकारी मजदूर' कहा जाता है। इनके साथ सुविधा यह रहती है कि इनकी तनख्वाह अधिक होती है। साल-भर में चौदह रोज की छुट्टी लें, तो उसकी मजदूरी नहीं कटेगी। दूसरी सुविधा यह थी कि बात-बात में ये नौकरी से नहीं हटाये जा सकते थे। चोरी करने या अफसरों से झगड़ा करने पर ही उन्हें निकाला जाता था। हमलोगों को यह भी मालूम था कि काम की कमी रहने से ये मजदूर काम से हटाये नहीं जा सकते। उन्हें काम देने की जिम्मेवारी कंपनी के ऊपर होती है। लेकिन, ठेकेदारी में काम करनेवाले मजदूरों के साथ इनमें से कोई भी एक सुविधा नहीं थी। इन्हें उन कुलियों से चार-पाँच रुपये वेतन भी कम मिलता। वेतन भी समय पर नहीं दिया जाता था। न छुट्टी मिलती थी और न सालों भर कमा पाते थे। जब कभी काम नहीं रहता, तो भोंपा बजने के साथ कारखाने के फाटक पर पहुँचे हुए मजदूर लौटा दिये जाते।

"आज काम नहीं है। जाओ, आज गीतगोविन्द गाओ।" उनसे कहा जाता।

"जाओ, आज दिन-भर झाल बजाओ।" मुंशी मुस्कुराकर कहता।

एक बात और बतला दूं। एवजी पर काम करनेवाले कुलियों को 'कैजुअल कुली' कहा जाता था। जब किसी कारखाने में कुलियों की कमी हो जाती, तो ऐसे कुली काम पर ले लिये जाते थे। इन कुलियों को काम पर बुलाने का अधिकार कारखाने के इंचार्ज को होता और इन्हें भेजने का अधिकार 'टाइम कीपर' को होता था। मान लो, एक मशीन पर एक ड्राइवर, एक आयल मैन, जो मशीन के पुर्जों में तेल देता है, और चार कुली काम कर रहे हैं। समझ

लो, किसी 'शीफ्ट' में उन चार कुलियों में से दो गैरहाजिर हो गये। तो फिर दो से तो काम नहीं चल सकता। और आदमी और कामों के लिए हैं। फिर यहाँ का काम कैसे होगा? ऐसे ही काम पर 'कैजुअल कुली' बुलाये जाते हैं। एक-आध घंटे तक कंपनी के कुली का इन्तजार किया जाता है। जब वह नहीं आता, तब वहाँ का इन्चार्ज टाइम-कीपर को फोन द्वारा सूचना देता है कि मेरे कारखाने में इतने कुली भेज दो। कुलियों के सिवा मिस्त्री या और कोई अफसर 'कैजुअल' नहीं होते। लेकिन, कैजुअल कुलियों का भी शीफ्ट बँटा होता है। हर शीफ्ट में था एक टाइम-कीपर होते हैं। रतननगर में टाइम-आफिस कारखाने के बड़े फाटक की बगल ही में थी। आफिस के बाहर सीमेण्ट की सड़क थी और सड़क की ओर ही टाइम-आफिस की खिड़कियाँ बनी थीं। उन पर हरे-हरे परदे लगे थे। कैजुअल कुली बेचारे इन्हीं खिड़कियों पर अपने-अपने कार्ड लेकर खड़े रहते थे। किस रोज, वे किस फैक्टरी में काम करने के लिए भेज दिये जायँगे, कोई ठीक नहीं रहता था! खैर—

"करेंगे सरकार!" हमलोगों ने कहा।

"रोज तीन घंटे काम करना होगा।" ठेकेदार का मुंशी बोला।

"करेंगे।"

"देखो, छः बजे से लेकर नौ बजे रात के काम के लिए चार आने और मिलेंगे। तुमलोगों के वेतन में साढ़े सात रुपये और बढ़ जायँगे। साढ़े बाईस और साढ़े सात कितने हुए, कुछ समझा? पूरे तीस रुपये तो सरकारी कुलियों को भी नहीं मिलते। उन्हें कितना मिलता है, मालूम है?" कहकर मुंशी ने पूछा।

"मालिक, सत्ताइस रुपये।" हमलोगों ने कहा।

"कहो, तब ये तीस रुपये कहाँ का थोड़ा है।" मुंशी बोला।

हमलोग ओभर-टाइम में खटने के लिए तैयार हो गये। मैंने भी सोचा, खटकर खाना क्या पाप है। बैठे-विठाये कौन देता है? कहा भी है, 'बूंद-बूंद से घट भरे!' साढ़े सात पैसे तो कोई मौके पर देता ही नहीं है, साढ़े सात रुपये

तो बहुत हैं । ठेकेदार के मुंशी ने कहा,–"बस, तो आज ही से शुरू कर दो। ठेकेदार साहब का हुक्म है।"

उसी रोज से ओभर-टाइम का काम भी होने लगा। इस बीच मैं और रकटू यह सोचते कि अगर हमलोगों की रिपोर्ट पर लेबर आफिसर पूरा खयाल करे और ठेकेदार पर बिगड़े, तो आगे का समूचा रास्ता ही खुल जाय। सबको वक्त पर और एक मुश्त वेतन मिलेगा। महीने-भर खाने के लिए हमलोग एक बार सामान खरीदकर रख देंगे। तब खर्च का हिसाब भी बैठेगा। कुछ बचेगा, सो घर भेजेंगे। और सभी हमलोगों के साथ काम करनेवाले सभी कुली समझेंगे कि मंगरुआ जो कहता है सो करता है और रास्ते का काम करता है। मगर, रिपोर्ट का कुछ पता नहीं चल रहा था। ओभर-टाइम खटते समय मुंशी हमलोगों को बहुत रपेटता था। देहचोर, कामचोर कहता और गालियाँ भी देता था। उसकी गालियों का जवाब हम हँसकर या माँफी माँगकर दिया करते थे। काम करते समय पैरों को लोहे की गर्म पटरियाँ जलातीं और हाथों को गर्म ट्राली जलाती थी। हमलोग हाथ और पैर में टाट के टुकड़े बाँधे रहते थे। कभी-कभी जलते हुए कोयले से हाथ सट जाता, तो टाट में आग लग जाती थी और उसे खोलकर फेंकते-फेंकते हाथ पर दो-एक फफोले निकल ही आते थे। लेकिन, ऐसा रोज नहीं होता था।

एक रोज नौ बजे तक ओभर-टाइम खटने के बाद भी ब्वायलर के नीचे का कोयला साफ नहीं हुआ। अभी एक घण्टे की और दरकार थी।

"अभी कोई मत जाओ।" मुंशी बोला।

"क्यों मालिक, अब तो नौ बज गये।" कुलियों ने कहा।

"अभी एक-डेढ़ घण्टे और रहो। छः पैसे और ज्यादा मिलेंगे।"

"रहेंगे सरकार!"

"ढन् ढन् ढन् ढन् ढन् ढन्""! ट्रालियाँ फिर दौड़ने लगीं।

हाँ, ट्रालियाँ फिर चलने लगीं। ब्वायलर के नीचे का कोयला साफ किया जाने लगा। वैसे मैं रकटू के साथ ही अपनी ट्राली ले आता और ले जाता था। दस-पाँच कदम की ही दूरी पर मेरी और उसकी ट्राली रहती थी। रात के

साढ़े नौ बज रहे थे। पावर-हाउस के ऊपर से बिजली का इतना बड़ा बल्ब इस ओर जल रहा था कि बहुत दूर तक किसी दूसरी रोशनी की जरूरत नहीं महसूस होती थी। मगर, टाल की ओर, जहाँ पहुँचकर हमलोग कोयला उँड़ेलते थे, यह रोशनी ठीक तरह नहीं पहुँच पाती थी। उधर गोधूलि की तरह का अँधेरा जान पड़ता था। आज नौ बजे के बाद काम लेने में मुंशी और डाँट-डपट करने लगा। ट्राली पर कोयला भरकर उसे दौड़ते हुए हमलोग टाल की ओर ले जाते। इसी दौड़-धूप में रकटू मुझसे बिछड़ गया। अब तो कोयले के टाल से लेकर पावर-हाउस तक के रास्ते में ट्राली ले जाते या ले आते मिल जाता था। इतनी हिम्मत नहीं थी कि ट्राली एक जगह रोककर हमलोग फिर साथ हो जाते।

एक बार मैं ऐसे ही ट्राली में कोयला भरकर ठेलता हुआ टाल की ओर जा रहा था। अपनी ट्राली से बहुत आगे, मैंने देखा, कोई कुली ट्राली को दौड़ाता हुआ आ रहा है। उसकी ट्राली के पहियों से जोरों की घनघनाहट सुनायी दे रही थी। उसकी ट्राली के कोयले से आग की छोटी-छोटी लाल-लाल लपटें निकल रही थीं। मैंने दूर ही से देखा, उसके हाथ में बँधे हुए टाट के टुकड़े में आग लग गयी। वह अपने हाथ झाड़ता हुआ अपने को सम्हालना चाहा। मैंने यह भी अन्दाज लगाया कि अपने साथ-साथ वह ट्राली भी छोड़ना नहीं चाहता है। तभी मेरी आँखों ने एक बहुत खराब घटना देखी, जिसे मैं आज भी नहीं भूल पाता हूँ। एक हाथ से दौड़ती हुई ट्राली को रोक लेने की कोशिश करता हुआ वह खुद रेल की पटरी की बगल में गिर पड़ा और बड़े झोंके के साथ रोकी गयी ट्राली, जिसमें जलते हुए पत्थर के कोयले थे, उसकी देह पर उलट गयी। इसके बाद जब मैं अपनी ट्राली को दौड़ाता हुआ उसके पास पहुँचा था, तो मेरे कानों में उसकी आखिरी आवाज सुनायी पड़ी थी, "अरे बाप रे, मरा! ट्राली देह पर गिर पड़ी····!!"

फिर ट्राली ने अपने वजन से हमेशा के लिए दबा दिया। आग ने अपनी गर्मी से शरीर के एक-एक बूँद खून को सुखा दिया। पीछे बड़ी मुश्किल से ट्राली

उठायी गयी। कुली पहचाना गया। वह मेरा पहला इन्कलाबी दोस्त था—रकटू!

दूसरे रोज रकटू इस दुनिया से सदा के लिए चला गया। मैं अकेला उसकी ओर से भी रिपोर्ट के फैसले का इन्तजार करने और हक की लड़ाई लड़ने के लिए रह गया। उसके इस तरह जलकर मर जाने पर ठेकेदार ने बहुत अफसोस जाहिर किया। इस घटना के तीसरे या चौथे रोज जब मैं काम पर गया, तो ठेकेदार के मुन्शी ने मेरे हाथ से अपना दिया कार्ड वापस लेते हुए कहा, "अब तुम दूसरा दरवाजा देखो।"

"क्यों सरकार, मुझसे कौन भूल हुई है?" मैंने पूछा।

"तनख्वाह के लिए तुमने लेबर आफिस में रिपोर्ट की थी?"

"जी मालिक!" मैं बोला।

"क्यों रिपोर्ट की?"

"सरकार, कार्ड के पीछे लिखा है।"

"लिखा तो है। मगर एक तुम्हीं तो नहीं थे। सभी कुलियों ने क्यों नहीं रिपोर्ट की?"

"सरकार, मैंने कहा था, मगर सब तैयार नहीं हुए।" मैंने बड़ी सीधी तरह जवाब दिया।

"तो जाओ, जिसके पास रिपोर्ट की थी, उसी से काम माँगो। तुम अपने को बहुत चालाक और पढ़े-लिखे समझते हो।"

"सरकार, मैंने तो कानूनी काम किया था।"

"वही तो कहा, तुम बहुत कानून जानते हो।"

"मेरी तनख्वाह?"

"कार्ड रख लिया है। हिसाब किया जाएगा, कभी आकर ले जाना।"

"कब?"

"तुम्हारे बाप का नौकर तो नहीं हूँ। अकेला तुम्हारा हिसाब कौन करेगा····?"

"अच्छा·······।"

कारखाने का दूसरा भोंपा बजते-बजते मैं झोपड़ी में लौट आया। दीपन दो बजे रात को काम पर चला गया था। झोपड़ी में बीलट भाई अकेले चूल्हा सुलगा रहे थे। मेरा मन कुछ उदास जरूर हो गया था। भीतर आकर मैं टाट पर बैठ गया। बीलट भाई ने देखकर पूछा, "क्यों आये, क्या आज काम नहीं मिला ? वहाँ तो काम की कमी का सवाल ही नहीं उठता।"

"हाँ, काम की कमी तो नहीं है।"

"तो ?"

"निकाल दिया साले ने। तनख्वाह के लिए उस रोज रिपोर्ट की थी न।" मेरे मुँह से निकला।

"मैंने तो पहले ही कहा था। नौकरी में अपनी बात नहीं मालिक की बात रखी जाती है, बाबू !"

"कोई हर्ज नहीं, देखा जाएगा।"

"प्लाई-वुड में और नयी मशीनें बैठी हैं। कल बहाली होगी, चलना।"

"सच, कब ?"

"आज मैं ड्यूटी पर से पता लगाता आऊँगा। पहले कैजुअल में भी भरती करे सो हो जाना।"

दूसरे रोज आठ बजे सबेरे लेबर आफिस के सामने कारखाने के फाटक पर कुलियों की बहाली होने लगी। बीलट भाई के साथ मैं भी पहुँच गया था। बीलट भाई सीधे लेबर आफिसर के पैरों पर अपना गमछा रखकर बोले, "सरकार, यह बहाल नहीं होगा, तो यहीं भूखों मर जाएगा।"

● ● ●

रतननगर की जितनी जमीन में सात-आठ अफसरों के बँगले थे, उतनी जमीन में करीब डेढ़ सौ कुली और पचास-साठ मेहतरों के लिए क्वार्टर बने थे। पूरे रतननगर की गंदगी कुली-क्वार्टर के बगलवाले नाले से होकर बहती थी। उस नाले की दुर्गन्ध कुलियों के एक-एक क्वार्टर में पहुँचती। मगर उसी दुर्गन्ध के बीच रहने के लिए वे कुली आदत डाल चुके थे। कुछ मजदूर आस-पास के देहातों से आते थे। बाहर के परदेशी मजदूर, कारखाने के बाहर, स्टेशन पर या बनगाँव में भाड़े का कमरा लेकर रह रहे थे। बनगाँववाले साधारण कोठ-रियों को भी महँगे भाड़े पर लगाते थे।

जब मैं कैजुअल कुली में बहाल हो गया, तो मुझे 'शीपट' ड्यूटी मिल गयी। अब मैं अपनी हर ड्यूटी में टाइम आफिस की खिड़की पर जाकर खड़ा हो जाता। कभी मैं काम पर भेजा जाता और कभी वापस चला आता था। बेई-मानी यहाँ भी होती थी। दो-चार कुली टाइमकीपर के अपने आदमी होते थे। उनमें कोई कहार होता, कोई कुरमी और कोई कोइरी। कोई टाइम-कीपर के क्वार्टर में जाकर चौका-बर्त्तन करनेवाला होता। कोई बाजार से तरकारी खरीद कर ला देता, कोई गेहूँ पिसवा लाता था। कोई लकड़ियाँ फाड़ता और टाल पर से कोयले ढोकर ले आता था। इसके लिए टाइम-कीपर उन कुलियों को कोई रकम नहीं देता था। लेकिन, वे कुली टाइम-कीपर का बहुत ही अहसान मानते और उनकी तारीफ के गीत गाते थे। इसकी वजह यह थी कि टाइम-कीपर उन्हें रोज काम पर भेजा करता। मान लो, किसी फैक्टरी से चार कैजुअल कुली की माँग आयी। वैसी हालत में टाइम-कीपर अपने उन्हीं खुशामदी कुलियों को भेज देता था। उसके दिल में इन्साफ नाम की कोई चीज नहीं थी। देहातों से आनेवाले मेरे कई कैजुअल कुली दोस्त, टाइम-कीपरों के डेरे पर घी पहुँचाया करते थे। मगर, मुझे उन पर गुस्सा नहीं आता था। मैं समझता था कि यह भी

उनकी मजबूरी है। भूख की मार इन्सान को हैवान बना देती है, इन्सान टूट जाता है।

पांच महीने तक मैं कैजुअल कुली में काम करता रहा। छठे महीने में मैं सरकारी कुली हो गया। प्लाई-वुड फैक्टरी में मेरी बहाली हुई थी। यह लकड़ी का कारखाना था। इसमें लकड़ी के तरह-तरह के सामान तैयार होते थे। हवाई-जहाज में लगाने के लिए भी कुछ चीजें तैयार की जाती थीं। कुर्सियों पर के शीट बनते। उसे लोग 'चेयर-शीट' कहते थे। मेरे साथ कई कुली 'यार्ड' में काम करते थे। मालगाड़ी पर लकड़ियाँ लादकर आती थीं और कारखाने के जिस ओर वे मालगाड़ियाँ खड़ी रहतीं, उसे लोग 'यार्ड' कहते थे। बरसात के दिनों में, जब पानी झम्-झमकर बड़े जोरों से बरसता होता, उस वक्त मुझे भी और मेरे साथियों को भींग-भींगकर काम करना पड़ता था। उसी हालत में, हमलोग मालगाड़ी के डिब्बे से लकड़ी की वजनदार सिल्लियाँ उतारते और ट्राली पर लादकर उसे चेम्बर तक ले आते थे। चेम्बर एक बहुत चौड़े कुएँ की तरह था। लेकिन, वह गोल नहीं था, वह था चौकोर। वह सीमेण्ट का बना था। उसकी दीवारों के चारों ओर बिजली के तार जाल की तरह फैले हुए थे। ट्राली पर ले आयी हुयी सिल्लियाँ 'क्रेन' के जरिये आहिस्ते-आहिस्ते चेम्बर में उतारी जाती थीं। जब सिल्लियों से चेम्बर भर जाता, तो उसका मुंह ढँक दिया जाता था। इसके बाद शायद उसमें स्टीम छोड़ी जाती। इस स्टीम के जरिए लकड़ी को जरूरत के अनुसार मुलायम बना लिया जाता था। फिर इस चेम्बर से लकड़ियाँ निकालकर * पीलिंग मशीन पर भेजी जातीं। पीलिंग मशीन पर इन सिल्लियों से जरूरत के मुताबिक नाप का हिसाब करके, लकड़ी छिलकर निकलने लगती। कागज की तरह लकड़ियाँ बड़ी आसानी से छिलती थीं। अगर वे कहीं फट जातीं, तो उन्हें 'टेपिंग मशीन' से साट दिया जाता था। कारखाने के इंचार्ज हमलोगों के काम की बदली भी किया करते थे। कभी मालगाड़ी से सिल्ली उतारनी पड़ती, कभी छिली हुई लकड़ियों को मैदान में सूखने के लिए देना पड़ता। दस कुलियों के ऊपर एक मेठ होता था। वह हमलोगों से काम कराता

* *Peeling machine.*

था। मेठ के ऊपर सुपरवाइजर होता था। सुपरवाइजर के ऊपर 'शीफ्ट इंचार्ज' होता। और शीफ्ट इंचार्ज के ऊपर इंचार्ज होता था। इन्चार्ज साहब कुलियों से बातें नहीं करते थे। हमलोगों का सम्बन्ध सिर्फ मेठ और सुपरवाइजर से रहता था। मेठ और सुपरवाइजर कुलियों को बहुत सताते। हमलोग मेठ की नाक के बाल की तारीफ किया करते थे। मेठ को कुलियों से तीन रुपये ज्यादा वेतन मिलता था। अपने शीफ्ट के सुपरवाइजर और इन्चार्ज की बेगार भी खटनी पड़ती थी। ड्यूटी के वक्त कारखाने से बाहर निकलने की सख्त मनाही थी। शीफ्ट इन्चार्ज को जब अपने डेरे पर से खाना मँगवाना होता, तो किसी कुली को 'गेट-पास' देकर अपने बँगले पर भेज देते थे। गेट-पास पर बाहर जाने का कारण भी लिखने का कायदा है। सो, वे कोई-न-कोई कारखाने के काम का कारण लिख मारते थे। कई कुली तो ऐसे थे, जो कार्ड डालकर कारखाने से बाहर हो जाते और साहब के बँगले पर चौका-बर्त्तन करते थे। मगर, वही कुली जब अपने काम के लिए पंद्रह मिनट की भी छुट्टी माँगता, तो उसे डपट दिया जाता था। सुपरवाइजर मुझसे कभी-कभी टाल पर से अपने कोयले मँगवाया करता था। जो उसकी बात नहीं मानता, उसे वह काम के समय बहुत तंग करता था। उसके ऊपर काम का इतना बोझ लाद देता कि बेचारा कर नहीं पाता था। फिर उसके खिलाफ वह रिपोर्ट कर देता। बेचारा कुली 'ससपेंड' कर दिया जाता था।

एक भूल मैंने यहाँ भी कर दी। अपनी हर गरीबी और मजबूरियों के बाद भी न जानें, क्यों मैं इस तरीके को खत्म करना चाहता था। मुझे बार-बार अपने पहले इन्कलाबी दोस्त रकटू की याद हो आती थी।

एक रोज की बात है। मैं सुबह ही शीफ्ट इन्चार्ज की गाय के लिए बन-गाँव भूसा खरीदने चला गया था। तीन कोस से दो मन भूसा सिर पर रखकर ले आना पड़ा था। फिर दस बजे काम पर आ जाना पड़ा। यहाँ काम कर ही रहा था कि एकाएक सुपरवाइजर मेरे पास आकर खड़ा हो गया। उसने मुझे पुकारा, 'मंगरुआ ?'

"जी; हुजूर ?" मैं बोला।

"साहब से गेट-पास दिलवा देता हूँ। एक काम करता आ।"

"क्या काम है ?" मैंने पूछा।

"है एक काम।

'कहिए ना"

"तू पहले ट्राली छोड़ न। मैं काम बतलाता हूँ।"

"कहिए।" मैंने ट्राली छोड़कर कहा।

"आज मैं चार रुपयेवाले क्वार्टर में जा रहा हूँ। मेरे डेरे पर चला जा। वहाँ मेरे भाई होंगे! उनसे कहना, मैं फैक्टरी से आया हूँ! जो भी सामान इस डेरे से उस डेरे में ले जाना हो, ले जाओगे। दो-तीन चारपाई होंगी, एक खाट और तीन-चार बक्से।" सुपरवाइजर बोला।

"………।" उसके इतना कहने पर मैं दो मिनट तक सोचता रहा। काम करते वक्त यही सुपरवाइजर हमलोगों को डाँटा करता था। दौड़-दौड़कर सिल्ली ढोने पर भी वह हमलोगों को डपटकर कहता, "चलो, चलो। ऐसी देह-चोरी करने से काम नहीं होगा! कंपनी से तनख्वाह लेते हो या बेगार खटते हो? कंपनी के पैसे कोई हराम के तो नहीं हैं।" लेकिन, अभी वही सुपरवाइजर तो कंपनी के कुलियों से अपना काम करा रहा है। तब क्या बतलाऊँ? मेरे मुँह से निकला, "माफ कीजिए, मुझसे यह नहीं होगा।"

"क्यों?"

"क्यों क्या, ऐसे ही।"

"ऐसे ही क्यों?"

"आप नहीं समझते?"

"मैं समझूँगा, तो तुम्हें भी अच्छी तरह समझा दूँगा।" सुपरवाइजर बोला।

"समझ लूँगा। मगर, मैं इतना बहुत पहले से समझता हूँ कि मेरे काम की तनख्वाह कंपनी देती है, आप नहीं देते। आप तो इस जगह पर हैं, जो हम-लोगों से बेगार ले रहे हैं। नहीं तो क्या, आप यह गैरईमानदारी नहीं करते?"

"हूँ…ऐसी बात? मँगरुआ, तू मुझे नहीं पहचानता?"

"पहचानता हूँ। हम दोनों कम्पनी के नौकर हैं। मगर आप पढ़े-लिखे हैं, इसलिए सुपरवाइजर हैं। मैं मूर्ख हूँ, इसलिए कुली हूँ।"

मेरे आस-पास और भी कुली खड़े थे। मेरी बात सुन-सुनकर सब बगलें झाँकने लगे थे। मैंने देखा ,अपनी तौहीनी देख, सुपरवाइजर की आँखें गुस्सा से लाल हो आयीं। उसके बायें हाथ में कुछ कागजात थे और दाहिना हाथ खाली था। अच्छी तरह देखा कि गुस्से से उसका दाहिना हाथ थर-थर काँपने लगा था। अपनी बातें कहकर मैं बड़ी बेपरवाही के साथ उछलकर मालगाड़ी के डब्बे पर चढ़ गया और पास खड़े एक कुली से कहा, "पकड़ो, इस सिल्ली को उधर से पकड़ो। ट्राली खाली पड़ी है।"

"तो तू नहीं जायेगा, मंगरुआ ?"

"ना।" मैंने कहा। इस बार मैंने सुपरवाइजर की ओर देखा तक नहीं।

"अच्छा, फिर मुझे देख लूँगा।" बोलता हुआ वह पीलिंग मशीन की ओर लौट गया। मैंने आँखें उठाकर देखा, वह गुस्से से भरा चला जा रहा था। उसके कदम बड़ी तेजी के साथ उठते और पूरे वजन के साथ ट्राली की पटरियों के इधर-उधर गिरते थे।

प्लाई-वुड फैक्टरी में, मेरे शीफ्ट में जितने कुली काम करते थे, उनमें से सभी इस बात को जानते थे कि ठेकेदारी में से मेरी नौकरी क्यों छूट गयी। यों तो सभी मेरी हिम्मत की तारीफ करते थे, मगर उनमें से खुद किसी में इतना साहस नहीं था कि मेरे कदम से अपने कदम मिला पाते। साहबों के डर से सबों की हिम्मत पस्त थी। वैसे ही जब आज मुझसे गुस्सा होकर सुपरवाइजर चला गया, तो मेरे साथ के सभी कुली मेरा मुँह देखने लगे और सबों ने एक साथ कहा, "अब तुम्हारा दाना-पानी उठा जान पड़ता है।"

"सो क्या ?" मैंने पूछा।

"यह भी पूछना है ? नौकरी बच जाए, तो खैर समझोगे।"

"वाह चलो, देख लूँगा। पकड़ो, सिल्ली पकड़ो।" मैं बोला।

मेरे इतना कहने पर सबों ने होंठ बिचका दिये। मगर उनकी आँखों का फीका-फीका नीला रङ्ग शायद मेरी तारीफ कर रहा था। फिर मालगाड़ी के

डिब्बे खाली किये जाने लगे, ट्रालियाँ फिर भरी जाने और दौड़ने लगीं। पीलिंग मशीन की गड़गड़ाहट ने हमलोगों की इस आपसी फुसफुसाहट को अपने में छिपा लिया। शाम को, छः बजे जब मैं कारखाने से बाहर होने लगा, तो पता चला कि हमलोगों का ही एक साथी सुपरवाइजर के डेरे पर चला गया था। कारखाने के फाटक से बाहर निकलने पर मैंने उसे बड़ा धिक्कारा, मगर वह अपनी गलती मंजूर करने के बदले मुझसे गुस्सा हो गया। उसने मुझे यह धमकी भी दी कि वह इन बातों को सुपरवाइजर से कह देगा। लेकिन, इसके बदले मैंने उसे कोई भली-बुरी बात नहीं सुनायी। उसकी हिम्मत तो साहबशाही के नीचे दब गयी थी।

पावरहाउस के ठेकेदार का काम चल रहा था। सीमेण्ट फैक्टरी के फाटक से साढ़े छः का भोंपा बजते ही उसके आदमी कारखाने में घुसाये जाते। किसी के गमछे में भूंजा बंधा होता, तो किसी के गमछे में लकठो। कोई फुलाया हुआ *बूंट फांकता हुआ कारखाने के भीतर दौड़ता, तो कोई गुड़ का छोटा-सा ढेला। जब मेरी ड्यूटी दिन को नहीं होती, तो मैं सीमेण्ट फैक्टरी के फाटक पर जाकर उन कुलियों की बुरी हालत और गरीबी का तमाशा देखता था। दोपहर में, कारखाने का भोंपा बजने पर, ठेकेदार के कुली कारखाने से बाहर आते। फाटक के बाहर खाने की सस्ती चीजें खोमचे में बिकती होती थीं। कोई घुघनी खरीदता, कोई कचड़ी, कोई तेल की जलेबी, कोई सत्तू, कोई गुड़ की मिठाई और उबाला हुआ सकरकंद गमछे में रख लेता था। ऐसी ही कुछ चीजें खरीदकर वे खा लेते और जब नल के नीचे मुंह लटकाकर पानी पीने लगते, तो बार-बार अपना मुंह हटा लिया करते थे। वे अपना मुंह बार-बार क्यों हटा लेते हैं, यह पूछने की कोई जरूरत नहीं थी। मैं तो खुद वहाँ काम कर चुका था, वहाँ की तकलीफें झेल चुका था और जानता था कि लगातार पांच घंटे गर्म कोयले की ट्राली ठेलने के बाद, जब वे सस्ती चीजें खाकर, अन्न की कमी को जब पानी से पूरा करना चाहते हैं, तो कलेजे पर बड़े जोरों का धक्का लगता है। लगता है, पेट में जाता हुआ, पानी फिर मुंह में लौटा आ रहा है। उस

*चना।

वक्त बड़ी तकलीफ होती है। कभी-कभी तो ऐसा लगता, जैसे दम घुट जायेगा। इसके बाद दो घंटे का समय बिताने के लिए मैं वहीं मल के सामने, थोड़ी दूर पर, अपना गमछा बिछाकर सो रहते थे। खोमचेवाले हड्डा और बिढ़नी के डर के मारे खोमचे के एक कोने में, मिट्टी के छोटे-से बर्त्तन में ऐसी लकड़ी जलाये रहते कि उनसे बहुत धुआं निकलता रहता था। मगर जब कंपनी की लारियां, जिनका काम कंपनी के सामान ढोना और सीजन के दिनों में, देहातों से गन्ना लादकर ले आना था, दौड़ती आतीं, तो सड़क की धूलें पूरे खोमचे पर छा जाती थीं।

चार रोज के बाद मैं 'ए-शीफ्ट' में ड्यूटी करने आया। दो बजे रात से दस बजे दिन तक की ड्यूटी में खाने-पीने के बाद मैं टाट पर तो चला जाता, मगर अच्छी तरह नींद नहीं आती थी। दिल में हमेशा डेढ़ के भोंपा बजने का इन्तजार करता होता। और, डेढ़ का भोंपा बजते ही कारखाने की ओर दौड़ना पड़ता था। आज दो बजे फैक्टरी में पहुँचा, तो देखा, सिल्ली से भरे मालगाड़ी के बहुत डिब्बे जाम पड़े थे। आते-आते ही उस काम से भिड़ जाना पड़ा। उस रोज का सुपरवाइजर पीछे पड़ा हुआ था।

"जल्दी-जल्दी उतारो। चेम्बर खाली पड़ा है। मशीन रुकी हुई है।" सुपरवाइजर एक सांस से कहने लगा।

"उतार ही तो रहा हूँ।" मैं कहता।

"कहने से काम नहीं चलेगा, फुर्ती-फुर्ती हाथ चलाओ।"

"अब कितनी फुर्ती होगी?" मैंने कहा।

"तुम्हें बात ही बनाने तो आता है, तू काम थोड़े करता है?"

"यह काम नहीं है, तो और क्या है?"

"सुपरवाइजर जान-बूझकर मुझसे उलझने की कोशिश कर रहा था। वैसे मेरे साथ पचासों कुली वहीं काम कर रहे थे। मगर, वह बार-बार मेरे पास आकर मुझे झटके दे रहा था। थोड़ी देर के बाद उसने कहा, 'उतरो, तुम मालगाड़ी पर से उतरो। तुम ट्राली ठेलो। पाँच आदमी के साथ देह चुराना बड़ा आसान होता है।"

"जाता हूँ, सरकार!"

मैं टेपिंग मशीन पर पहुँचा। यहाँ मुझे काम करते पंद्रह-बीस मिनट ही हुए होंगे कि वह सुपरवाइजर दौड़ा हुआ आया। उसने मेरी ओर गुस्सा से देखकर कहा, तू यहाँ आकर पत्थर क्यों हो गया? पोलिंग मशीन पर सिल्ली उठाने-चढ़ाने के लिए एक कुली घट रहा है, वहाँ क्यों नहीं चला गया। काम करना नहीं चाहता, तो बोल?"

"काम ही करना तो चाहता हूँ, सरकार!"

"तो फिर, दौड़ वहाँ, जल्द जा।" वह बोला।

मैं पोलिंग मशीन की ओर भागा। थोड़ी देर में वह वहाँ भी पहुँचा। उसने ड्राइवर से पूछा, "क्यों भाई, काम हो रहा है न? अब और आदमी चाहिए।"

"नहीं, अब ठीक है।" ड्राइवर बोला, जो पोलिंग मशीन चला रहा था।

सुपरवाइजर ने मुझे देखते हुए कहा, "अब तू यहाँ मत रह। तू + बैन साव में दौड़ जा। वहाँ क्रशिंग मशीन के नीचे बहुत कुनाई इकट्ठी हो गयी है। टोकरी से उठा-उठाकर वह जगह साफ कर। तू एकदम मरा हुआ कुली है। अपने मन से काम करना जानता ही नहीं। सुना है या नहीं, कम्पनी में जितने हरामखोर कुली हैं, चुन-चुनकर उनकी छँटनी की जानेवाली है?"

"जो हरामखोर होंगे, वही तो?"

"और तू अपने को क्या समझता है....?" सुपरवाइजर ने पूछा। सचमुच उसका यह सवाल मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने कहा, "खटकर खानेवाले कभी हराम का नहीं खाते। जरा जबान सम्हालकर बोलिए, हुजूर!"

"तू मुझे बोलना सिखलाता है?"

"आप बहुत बेकार बातें बोलते हैं? मैं काम नहीं कर रहा हूँ, तो क्या बैठा हूँ?"

"तू 'बेन साव' में क्यों नहीं जाता?"

+प्लाई-वुड फैक्टरी का वह विभाग, जहाँ मशीनों के जरिए लकड़ी की चीरफाड़ होती है।

"जाऊँगा, आपने कहा तो जाऊँगा क्यों नहीं। मगर एक मंगरुआ दस मंगरुआ तो नहीं हो जाएगा।" मैंने कहा।

"लगता है, अब तेरे लिए मुझे रिपोर्ट करनी होगी।"

"वह तो आपके हाथ की बात है।"

"अच्छा""।" कहकर सुपरवाइजर चेम्बर की ओर लौट गया। मैं वहाँ से दौड़ा-दौड़ा 'बेन-साव' पहुँचा।

दूसरे रोज दस बजे दिन को जब मैं सुपरवाइजर के पास अपना कार्ड माँगने गया, तो उसने कहा, "तुम्हारा कार्ड मेरे पास नहीं है।"

"कहाँ है ?" मैंने पूछा।

"साहब के पास!"

"साहब से कैसे माँगूँ ?"

"मुँह से माँगो। मुँह से बहस कैसे करते हो ?"

'शीफ्ट-इञ्चार्ज' एक पञ्जाबी साहब थे। मैं उनके पास आकर खड़ा हो गया। दस का भोंपा बज चुका था। साहब भी जाने की तैयारी कर रहे थे। मुझे सामने खड़ा देखकर पूछा, "क्या है ?"

"सुपरवाइजर साहब ने कहा है, अपना कार्ड साहब से माँग लो।"

"हूँ""तेरा ही नाम मंगरू है ?"

"जी।"

"तुमने काम करते वक्त सुपरवाइजर से झगड़ा किया है ?"

"जी नहीं हुजूर, वे तो""।"

"चुप रहो। मैं बहस सुनना नहीं चाहता। यह लो, अपना कार्ड। दस रोज काम पर मत आना। दस रोज के लिए ससपेण्ड हुए।"

"सरकार, वे तो खुद मुझे हरामखोर""।"

"बस चुप रहो! सुपरवाइजर झूठ बोलेगा""। लो कार्ड, जाओ।"

"सरकार, मैं तो गरीब आदमी हूँ। दस रोज कहाँ से खाऊँ ?" मैंने कहा।

"इसका जवाब मेरे पास नहीं है।"

"हुजूर""।"

"फिर बकबक करता है, जाता है या नहीं....?"

मैं अपना कार्ड लेकर वापस चला आया। मेरे कार्ड पर साहब ने लाल स्याही से कुछ लिख दिया था। बीलट भाई की ड्यूटी छः बजे शाम से थी। दीपन को आज 'रेस्ट' पड़ा था। झोपड़ी में लौटने पर दोनों मिले। यहाँ आने पर जब मैंने अपने ससपेण्ड होने की बात बतलायी, तो दोनों ने अफसोस तो जाहिर किया, मगर साथ-साथ मेरी आदत पर रंज भी हुए।

"अब समझो, तुम्हारी नौकरी भी खतरे में है।

"सुपरवाइजर से लड़कर कहाँ-कहाँ बचोगे?"

"जल में रहकर मगर से वैर?"

"जिसकी मातहत में काम करते हो, उसी की बात का जवाब देते हो।"

"वह तो खैर मनाओ, कि ससपेण्ड होकर ही रह गये।"

"देखो, अब आगे सम्हलकर रहना बाबू!"

"जब आदमी का दाना-पानी उठता है, तो अकल पर यों ही पर्दा पड़ जाता है।"

"मौके पर कोई दस पैसे नहीं देता, दस दिन की मजदूरी कौन देगा।"

"अब तुमलोग जो कहो, मगर जो होना था सो हो गया....।" उनकी बातें सुनकर मैंने कहा।

उस रोज दिन-भर, मैं बड़ा उदास रहा था। छः बजे शाम को जब बीलट भाई काम पर चले गये, तो मैंने दीपन से पूछा, "डेरे पर ही रहोगे या कहीं चलोगे घूमने?"

"कहाँ जाऊँ, चलो बनगाँव से टहल आयें।" दीपन बोला।

"पास में कुछ नगदनरायन है?" मैंने पूछा।

"क्या काम है?"

"है तो बोलो।"

"है तो।"

"आज मुझे डेढ़ रुपये दो। पीछे ले लोगे।"

मेरे इस तरह कहने पर दीपन ने मुझे डेढ़ रुपये दे दिये। इसके बाद पैंट और कुरता पहनकर, न-जाने वह कहाँ टहलने चला गया। इसके चले जाने के बाद मैंने झोपड़ी की टट्टी भिड़का दी और रेलवे-पुल पारकर स्टेशन के दक्खिन ओर चला आया। यहाँ से बनगाँव जाने के लिए कई रास्ते थे। आज के पहले भी बीलट भाई के साथ मैं बनगाँव टहल चुका था। लोगों ने बतलाया था कि पहले बनगाँव बिलकुल देहात था। कारखाने की वजह से कुछ-कुछ कस्बे की तरह हो गया है। बनगाँव में तब भी सैकड़े पंचानवे घर मिट्टी के थे। बड़ी लाइन के स्टेशन के आस-पास चूना तैयार करने के कई भट्ठे थे। उनसे बराबर उजला-उजला धुआँ निकला करता था। स्टेशन के इस पार से बनगाँव जाने के लिए तीन-चार रास्ते थे। एक सड़क सीधी पूरब की ओर जाती थी, जो पक्की तो थी मगर बेमरम्मत। रेलवे लाइन की बगल में, जो लम्बा मैदान था उसमें हिंदुस्तानी फौज की छोटी-छोटी बैरक थी। जब कभी मैं बनगाँव से किरासन तेल लेकर लौटता, तो इसी रास्ते से आता, तब उन लोगों की परेड भी देखता था। एक और सड़क थी, जो स्टेशन से शुरू होकर, थोड़ी दूर पूरब तक जाकर ही दक्खिन की ओर मुड़ जाती। दक्खिन मुड़ते ही थोड़ी दूर के आगे जाकर एक भट्ठी मिलती थी। तब यहाँ पचास और सत्तर नम्बर की देशी शराब बिकती थी। शाम को पीनेवालों की भीड़ देखते ही बनती थी और इसी सड़क के दोनों ओर कुछ ऐसे मकान थे जिनमें रण्डियाँ रहती थीं। शाम के वक्त अच्छे-अच्छे कपड़े और जेवर पहनकर ये अपने दरवाजों पर बैठी ग्राहकों से बातें करती होतीं। उनकी आँखों में कहीं भी शर्म का नामोनिशान नहीं रहता था। शराबी उनके दरवाजे पर खड़े होकर बड़ी बेहयाई के साथ बातें करते। जब कोई मर्द उनके घर से निकलकर बाहर जाने लगता, तो सिर्फ उसी ओर सिर गड़ाये देखता, जिधर उसे जाना होता था। रंडियों के दरवाजों के आस-पास लुंगी पहने और शराब की बोतल लिये कुछ गुंडे टहला करते थे। लोगों का कहना है कि वे लोग रंडियों के आदमी हैं। मैंने यह भी सुना था कि इन लोगों के यहाँ गाने-बजाने का कोई इन्तजाम नहीं है।

आज स्टेशन के इस पार आकर मैं उसी रास्ते में घुसा, जहाँ थोड़ी दूर आगे चलकर भट्ठी थी। सूरज डूब चुका था। कुछ-कुछ अँधेरा भी हो गया

था। आसमान में कहीं-कहीं तारे भी दीख रहे थे। मैं आगे बढ़ा। जहाँ से यह सड़क शुरू होती थी, वहाँ पान-बीड़ी सिगरेट की दूकानें थीं। दो-एक ऐसी भी दूकानें थीं, जिनमें गंजी, गमछे, बिस्कुट, लेमनचूस वगैरह बिकते थे। मैंने उन दूकानों की ओर सरसरी निगाह से देखा। यहाँ से आगे बढ़ते ही आस-पास के मकान के दरवाजों पर रंडियाँ बैठी हुई नजर आयीं। मैं धीरे-धीरे भट्ठी में पहुँच गया। यहाँ बड़ी भीड़ थी। जिस खिड़की से शराब के लिए लोग बोतलें बढ़ा और ले रहे थे, उस पर बिल्कुल रेल-पेल मची हुई थी। शोर मच रहा था—"पहले मुझे दो।" सामने एक ईंट का ओसारा था, जिसके भीतर खोमचे में घुघनी, फुलौड़ी, तेल में तली छोटी-छोटी आटे की लिट्टियाँ और पकी हुई मछली बिक रही थी। उन खोमचों से अजीब किस्म की गंध आ रही थी। खोमचे के काठ में किरासन तेल से जलनेवाली बत्ती लगी थी, जिनसे बहुत ही काला-काला धुआँ निकल रहा था। खोमचे के आस-पास पीनेवाले बैठे थे। पीनेवालों के आगे एक-एक बोतल थी और मिट्टी के चुकर। पूरब की ओर, जिस छोटे से मकान की खिड़की के भीतर से शराब बिक रही थी, दो-चार शराबी पीकर गिरे हुए थे और आपस में गाली-गलौज कर रहे थे। सब एक दूसरे को अपनी-अपनी बातें समझा रहे थे। हाथ में एक रुपये का नोट और एक अठन्नी दबाकर मैं भी खिड़की की भीड़ में शामिल हो गया। इस भीड़ में बदन पर इतने धक्के लगे कि जिसका कोई हिसाब नहीं, कौन धक्के दे रहा है और क्यों धक्के दे रहा है, यह सवाल करते ही मार खा जाने की उम्मीद बनी थी। इसलिए एक रुपये छः आने में एक बोतल लेकर मैं किसी तरह बाहर निकल आया। दो आने की मछली खरीदी। मछलीवाले ने एक छोटी-सी ढकनी में मछली दी और पूछा, "चुकरी भी लोगे, पियोगे कैसे ?"

"हाँ, हाँ, चुकरी भी दो।"

अपने आगे मछली और शराब रखकर मैं चुपचाप बैठ गया। मेरा मन तो आज उदास था ही; मैं इस बात को भूल जाना चाहता था कि वाजिब बात बोलने के लिए भी मैं ससपेंड किया गया हूँ। वाजिब बातें बोलने की आदत इसलिए डालता जा रहा था कि गाँव पर यह देखने का बहुत मौका मिला,

खुशामदी बनने से कुछ फायदा नहीं होता। गर्दन बड़ों के पैरों के नीचे ही आती है। ठाकुर के तलवे सहलाते-सहलाते दिमाग में भूसा भर चुका था। अब तो यही तबियत होती थी कि किसी तरह वह भूसा बाहर निकल जाये। थोड़ी-सी मछली खाकर जब मैंने एक चुकरी शराब पी ली, तो मुझे रकटू की याद हो आयी। हिम्मत ही से सही, अगर रकटू होता, तो इस हालत में मेरा साथ जरूर देता, मेरे साहस की तारीफ करता।

याद नहीं है, शराब पीकर मैं कब गिरता-पड़ता झोपड़ी में पहुँचा। दस रोज तो किसी तरह गुजारना ही था। उसके बाद का भी नहीं मालूम था कि अब क्या होगा। ग्यारहवें दिन मैं काम पर पहुँचा। मेरे कार्ड पर फिर हाजिरी बनी और मैं काम करने लगा। वह सुपरवाइजर मेरे पीछे पड़ा हुआ था। कुछ खुद तंग करता, कुछ मेठ से तंग करवाता था। मेरी नाक में दम हो रहा था। किसी तरह एक महीना और बीता। घर पर माँ के नाम मैंने पंद्रह रुपये भेज दिये थे।

एक रोज सचमुच कारखाने में सुना कि कुछ कुलियों की बदली होनेवाली है।+ एसिड प्लांट से कुलियों की माँग आयी थी। एसिड प्लांट के काम की कड़ाई के बारे में झपसी मिस्त्री से सुन चुका था। उनकी बदली एक महीना पहले वहीं हो चुकी थी। बीलट भाई भी बंबू क्रशर से 'लेदर-बोर्ड' में बदल गये थे। लेदर-बोर्ड पेपर फैक्टरी का ही एक हिस्सा होता है। वहाँ पर कागज बनाने के लिए फटे-चिटे चिथड़े, पुराने रद्दी कागज, पानी और मशीन के जरिये गलाये जाते हैं। कुलियों को पानी में भींग-भींगकर काम करना होता है।

इसके चार ही रोज बाद मैंने सुना कि मेरी भी बदली हो गयी। मेरे साथ सात-आठ और कुलियों की बदली हुई थी। आज की ड्यूटी खत्म होने के बाद कल मेरा 'रेस्ट' पड़नेवाला था। छुट्टी के वक्त मेरा कार्ड मुझे लौटाते हुए उसी सुपरवाइजर ने कहा, "कल तो तुम्हारा 'रेस्ट' है। परसों 'बी-शीफ्ट' में यहाँ मत आना।"

"कहाँ जाऊँगा ?"

+ तेजाब बनाने का कारखाना।

"एसिड प्लाण्ट।"

"तिजाब फैक्टरी ?"

"हाँ, कालापानी।"

"अच्छा !"

"तुम्हारे पाँच-सात दोस्त भी तो जा रहे हैं।" सुपरवाइजर बोला।

"जी।"

"जाओ, वहीं आनन्द करो।"

"जी।" मेरे मुंह से फिर निकला।

वैसे मैं दो-एक बार एसिड प्लाण्ट देख चुका था। मगर वहाँ के काम के बारे में मेरी कोई जानकारी नहीं थी। बीलट भाई ने बतलाया कि वहाँ का काम बहुत बड़ा और कड़ा है। लेकिन, मैंने मन को सब्र दिलाया, धीरज बँधाया। आखिर एसिड प्लाण्ट चल रहा है या नहीं, उसमें हड्डी, मांस और कुल खूनवाले कुली ही तो काम करते होंगे ? एसिड प्लाण्ट लोहे के मजदूर के इंतजार में बन्द तो नहीं बैठा है ? काम तो करूँगा ही।

● ● ●

१८

रोज की तरह आज भी साढ़े नौ का भोंपा बज चुका था। कारखाने के 'मेन-गेट' पर आज कुछ दूसरी किस्म की भीड़ थी। मैं कारखाने के भीतर घुसना चाहता था, मगर भीड़ देखकर जरा रुक गया। कारखाने के सामने की बीच सड़क पर एक तीस-पैंतीस साल का आदमी कांग्रेसी झण्डा हाथ में लिये

खड़ा था। वह खादी की धोती, खादी का कुरता और गाँधी टोपी पहने था। उसके बायें हाथ की कलाई में घड़ी बँधी थी। उसके आस-पास वैसे ही कपड़े पहने तीन-चार आदमी खड़े थे। उसमें से एक के पास *भोंपू था। जो आदमी हाथ में झण्डा लिये हुए था, वह मजदूरों की ओर देख-देखकर बोल रहा था। कभी वह मुँह में भोंपू लगाकर और कभी ऐसे ही बोलता था—

"·····रतननगर के मजदूरो! अब वह जमाना जा रहा है, जब हमलोग पूँजीपतियों के जूते के नीचे की धूल बने हुए हैं। अब आपके लिए भी वह समय आ गया है, जब आप अपनी ताकत और एकता के बल पर देश के जमींदार और पूँजीपतियों को यह बतला दें कि आपकी कड़ी मिहनत और पसीने की कमाई से ही वे लोग आराम की जिन्दगी बिता रहे हैं। मैं आपलोगों को यह बतलाने·····।"

पूँजीवाद, नाश हो!

मजदूर-राज, कायम हो!!

कमानेवाला, खायेगा!!!

बीच में उस आदमी के आस-पास खड़े उसके दोस्त नारे भी लगा रहे थे फिर वह आदमी अपनी बातें दुहराने लगता था—

"········मैं आपलोगों को यह बतलाने आया हूँ कि देश की दौलत और देश की सामग्री में आपका कितना बड़ा हाथ और कितना हिस्सा है। मैं तो समझता हूँ कि देश के पैसे-पैसे पर आपका अपना हक है; क्योंकि ये पैसे आपके पैदा किये हुए हैं·····।" मैं अहमदाबाद से अपना घर-द्वार छोड़कर आपलोगों के बीच सिर्फ आपकी सेवा करने के लिए आया हूँ। अब आपका यह काम है कि मुझे अपनी सेवा करने का अवसर दें। और, मैं आपकी सेवा तभी कर सकूँगा, जब आप अपने में एकता कायम कर मेरे बतलाये हुए रास्ते पर चलें। हमारी यही इच्छा है कि यहाँ मजदूर-संघ कायम किया जाय। मजदूर-संघ कायम करने से यह फायदा होगा कि हमलोग एक जगह एक समय पर मिलकर अपनी तकलीफों के बारे में विचार कर सकेंगे और अपनी उचित माँगों को पूँजीपति मिल-मालिक

*लाउड स्पीकर।

के सामने रख सकेंगे। और, यह सब तभी हो सकेगा, जब इस तिरंगे झंडे के नीचे खड़े होकर आप मजदूर-एकता कायम करने की कसम खायेंगे……।"

महात्मा गाँधी की जय!
तिरंगे झंडे की, जय!!
मजदूर-एकता की, जय!!!

"………आपकी सुविधा के लिए रतननगर की चहारदीवारी के उस पार, दक्खिन ओर हमने एक किराये का मकान ले लिया है। वहाँ मजदूर-संघ का दफ्तर रहेगा। मेरे साथ, आपके जो तीन-चार सेवक आये हैं, वे भी वहीं रहेंगे। आपलोगों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग अब तक अपने को कुएँ का मेंढ़क समझते आये हैं, मगर अब ऐसा मत समझिये। आपलोगों की भलाई के लिए अगर मुझे फाँसी भी पड़ना पड़ा, तो मैं खुशी-खुशी फाँसी का फंदा अपने गले में डाल लूँगा। आज मैं रतननगर क्लब के मैदान में आपलोगों के लिए ही एक सभा कर रहा हूँ। यह आपलोगों की सभा है। अतः, आप मजदूर भाइयों से प्रार्थना है कि आपलोग ठीक साढ़े पाँच बजे रतननगर क्लब के मैदान में आइये। ठीक छः बजते-बजते सभा की कारंवाई शुरू हो जायगी। मैं तो समझता हूँ—

मजदूर-एकता, कायम हो!
मजदूर-संघ, जिन्दाबाद!!
महात्मा गाँधी की, जय!!!

"……मैं तो समझता हूँ कि पूँजीपतियों के अत्याचार के बोझ से आपकी गर्दन टूट रही होगी। लेकिन क्या, आपने कभी सोचा है कि आप इस अत्याचार से कैसे छुटकारा पा सकते हैं? एक ही दवा है, इस मर्ज की। और वह दवा है, आप में आपसी एकता। जब तक आपलोग आपस में एकता नहीं कायम करेंगे, पूँजीपति राज का अंत नहीं होगा। आपको मालूम होना चाहिए कि पचासों वर्ष से हमलोग जिस आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, वह आजादी हमलोगों को हासिल होने जा रही है। कांग्रेस ने अंगरेजों से इसलिए लड़ाई ली कि उसमें एकता थी, और उसे महात्मा गाँधी की तरह नेता मिला है। यह जो झंडा आप मेरे हाथ में देख रहे हैं, यह कांग्रेस का झंडा है—बापू का प्रेम और अहिंसा का

हथियार। बापू चाहते हैं कि देश में आदमी के जीने-खाने और नौकरी का ऐसा प्रबंध हो जाये कि कोई भी धनी आदमी गरीब आदमी को खा न सके। तो याद रखिये, हमें महात्मा गांधी के आदर्शों पर ही चलकर अपनी एकता को मजबूत बनाना है……।"

रतनगर के मजदूरो, एक हो!

नारे लग रहे थे और वह आदमी गला फाड़-फाड़कर मजदूरों को अपनी बातें समझा रहा था। मगर, मजदूर उसकी ओर सिर्फ अचरज भरी आँखों से देख रहे थे। किसी की समझ में कोई बात अच्छी तरह नहीं बैठ पा रही थी। लगता था, जैसे वह आदमी एक तमाशा है। मुझे तो ड्यूटी पर जाना था। इसलिए मुझे घबड़ाहट थी। दिल तो चाहता था कि सारी बातें सुनूँ, समझूँ और इस बीच शामिल भी होऊँ। मगर यह सोचकर सब्र कर लिया कि सभा तो साढ़े-पाँच बजे होगी। छः बजे कारखाने के बाहर निकलते ही रतननगर क्लब के मैदान में पहुँच जाऊँगा। फिर भी अपनी दिलजमई के लिए मैं उस आदमी के सामने जाकर, बिल्कुल करीब में खड़ा हो गया।

"कहाँ सभा होगी? मैंने पूछा।"

"रतनगनर क्लब के मैदान में।"

"कब?"

"साढ़े पाँच बजे। जितनी जल्द लोग जुट जाएँगे, उतनी ही जल्द सभा का काम शुरू हो जाएगा।"

"अच्छा, मैं आऊँगा।" मैं बोला।

"जरूर आना। अपने साथ काम करनेवाले दोस्तों को भ. ले आओगे।" उधर से कहा गया।

"ले आऊँगा।" मैं बोला।

तभी बड़े जोरों से दस का भोंपा बजा। मैं दौड़ा-दौड़ा कारखाने के फाटक में घुस गया। बगल में रखे हुए काठ के बक्स में अपना कार्ड गिराकर मैं एसिड प्लांट की ओर भागा।

के सामने रख सकेंगे। और, यह सब तभी हो सकेगा, जब इस तिरंगे झंडे के नीचे खड़े होकर आप मजदूर-एकता कायम करने की कसम खायेंगे......।"

महात्मा गांधी की जय !

तिरंगे झंडे की, जय !!

मजदूर-एकता की, जय !!!

"........आपकी सुविधा के लिए रतननगर की चहारदीवारी के उस पार, दक्खिन ओर हमने एक किराये का मकान ले लिया है। वहाँ मजदूर-संघ का दफ्तर रहेगा। मेरे साथ, आपके जो तीन-चार सेवक आये हैं, वे भी वहीं रहेंगे। आपलोगों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपलोग अब तक अपने को कुएँ का मेढ़क समझते आये हैं, मगर अब ऐसा मत समझिये। आपलोगों की भलाई के लिए अगर मुझे फाँसी भी पड़ना पड़ा, तो मैं खुशी-खुशी फाँसी का फंदा अपने गले में डाल लूँगा। आज मैं रतननगर क्लब के मैदान में आपलोगों के लिए ही एक सभा कर रहा हूँ। यह आपलोगों की सभा है। अतः, आप मजदूर भाइयों से प्रार्थना है कि आपलोग ठीक साढ़े पाँच बजे रतननगर क्लब के मैदान में आइये। ठीक छः बजते-बजते सभा की कार्रवाई शुरू हो जायगी। मैं तो समझता हूँ—

मजदूर-एकता, कायम हो !

मजदूर-संघ, जिन्दाबाद !!

महात्मा गांधी की, जय !!!

"......मैं तो समझता हूँ कि पूँजीपतियों के अत्याचार के बोझ से आपकी गर्दन टूट रही होगी। लेकिन क्या, आपने कभी सोचा है कि आप इस अत्याचार से कैसे छुटकारा पा सकते हैं? एक ही दवा है, इस मर्ज की। और वह दवा है, आप में आपसी एकता। जब तक आपलोग आपस में एकता नहीं कायम करेंगे, पूँजीपति राज का अंत नहीं होगा। आपको मालूम होना चाहिए कि पचासों वर्ष से हमलोग जिस आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, वह आजादी हमलोगों को हासिल होने जा रही है। कांग्रेस ने अंगरेजों से इसलिए लड़ाई ली कि उसमें एकता थी, और उसे महात्मा गांधी की तरह नेता मिला है। यह जो झंडा आप मेरे हाथ में देख रहे हैं, वह कांग्रेस का झंडा है—बापू का प्रेम और अहिंसा का

हथियार। वापू चाहते हैं कि देश में आदमी के जीने-खाने और नौकरी का ऐसा प्रबंध हो जाये कि कोई भी धनी आदमी गरीब आदमी को खा न सके। तो याद रखिये, हमें महात्मा गांधी के आदर्शों पर ही चलकर अपनी एकता को मजबूत बनाना है""।"

रतनगर के मजदूरो, एक हो !

नारे लग रहे थे और वह आदमी गला फाड़-फाड़कर मजदूरों को अपनी बातें समझा रहा था। मगर, मजदूर उसकी ओर सिर्फ अचरज भरी-आँखों से देख रहे थे। किसी की समझ में कोई बात अच्छी तरह नहीं बैठ पा रही थी। लगता था, जैसे वह आदमी एक तमाशा हैं। मुझे तो ड्यूटी पर जाना था। इसलिए मुझे घबड़ाहट थी। दिल तो चाहता था कि सारी बातें सुनूँ, समझूँ और इस बीच शामिल भी होऊँ। मगर यह सोचकर सब्र कर लिया कि सभा तो साढ़े-पाँच बजे होगी। छः बजे कारखाने के बाहर निकलते ही रतननगर क्लब के मैदान में पहुँच जाऊँगा। फिर भी अपनी दिलजमई के लिए मैं उस आदमी के सामने जाकर, बिल्कुल करीब में खड़ा हो गया।

"कहाँ सभा होगी ? मैंने पूछा।"

"रतनगनर क्लब के मैदान में।"

"कब ?"

"साढ़े पाँच बजे। जितनी जल्द लोग जुट जाएँगे, उतनी ही जल्द सभा का काम शुरू हो जाएगा।"

"अच्छा, मैं आऊँगा।" मैं बोला।

"जरूर आना। अपने साथ काम करनेवाले दोस्तों को भी ले आओगे ?" उधर से कहा गया।

"ले आऊँगा।" मैं बोला।

तभी बड़े जोरों से दस का भोंपा बजा। मैं दौड़ा-दौड़ा कारखाने के फाटक में घुस गया। बगल में रखे हुए काठ के वक्स में अपना कार्ड गिराकर मैं एसिड प्लांट की ओर भागा।

यहाँ काम करते हुए मुझे महीने रोज से ऊपर हो गया था। झपसी मिस्त्री मेरे ही शीफ्ट में काम करते थे। स्वभाव के बड़े अच्छे थे। बड़े मिलनसार, मुझसे जी-भरकर बातें करते। अब तक मेरी जिन्दगी में जो कुछ गुजरा था, गाँव में रहते हुए मैंने अपनी आँखों से जो कुछ देखा था, झपसी मिस्त्री को बतला चुका था। मेरे दुःख-दर्द को सुनकर वे बहुत ही अफसोस जाहिर करते और मेरा मुँह देखने लगते थे। ऐसा लगता था, जैसे मेरी बातें सुनने में उन्हें खुद भी कुछ मिलता है। नाश्ता करने के लिए कारखाने में जब कभी कुछ ले आते, तो मुझे भी देते थे।

एसिड प्लाण्ट का काम सचमुच कड़ा और खतरेवाला था। आठ घण्टे तक गन्धक और तूतिये की जहरीली हवा की साँस लेनी पड़ती थी। इस कारखाने में काम करनेवाले किसी भी मजदूर के चेहरे पर रौनक नहीं थी। सबका खून चूसा हुआ जान पड़ता था। चौबीस घण्टे तेजाब की गंध और भट्ठी के जलनेवाले गन्धक का धुआँ एसिड प्लांट के भीतर और आस-पास फैलता रहता था। गंधक का धुआँ पीला-पीला होता। गंध अजीब किस्म की होती थी। बतलाना कठिन है। नाक में समाती, तो माथा फटने लगता था। ब्वायलर और तेजाब की टंकी के पास जो मजदूर काम करते होते, उनके हाथ-पैर बराबर जलते रहते थे। तेजाब के छींटे कपड़ों में छेद कर देते थे। इसके लिए कम्पनी हमलोगों को तीन तरह की चीजें देती थी। स्वास्थ्य खराब न होने पाए, इसलिए महीने में एक सेर गुड़ मिलता था। बदन पर तेजाब के छींटे पड़ते थे, इसके लिए महीने में एक सेर सरसों का तेल मिलता था और कपड़े साफ करने के लिए महीने में एक पाव सोडा दिया जाता था। पीछे जब भेजिटेबुल घी प्लांट खुला, तब मजदूरों को दो बट्टी साबुन भी दिया जाने लगा, क्योंकि भेजिटेबुल घी प्लांट में साबुन भी बनता था। सीमेण्ट फैक्टरी के मजदूरों को शायद महीने में सिर्फ एक पाव सोडा ही मिलता था। एसिड प्लांट में काम करनेवाले मिस्त्रियों को साल में दो बार एक पैण्ट और एक कुरते का कपड़ा दिया जाता। ये दो चीजें कुलियों को नहीं दी जाती थीं। झपसी मिस्त्री अब खाकी पैण्ट और कुरता पहनकर काम पर आते थे।

ब्वायलर में गन्धक डालने के लिए एक-एक फीट लम्बी लोहे की मजबूत ट्रालियाँ होती थीं। उनके नीचे तीन-तीन इञ्च के चार पहिये लगे होते थे। उन्हीं ट्रालियों में गन्धक भरकर मुझे ब्वायलर के भीतर धकेलना पड़ता। एसिड प्लांट में गन्धक और तूतिये का पहाड़ बराबर खड़ा रहता था। काम करते-करते कुलियों के हाथ-पैर अजीब तरह से फट गये थे। उनसे कभी-कभी खून निकल आता था। ब्वायलर में गन्धक धकेलते समय बड़ा ही कड़ुआ और पीला-पीला धुआँ भीतर से बाहर की ओर आता और नाक-मुंह में समाने लगता था। ऐसे वक्त में जब कभी झपसी मिस्त्री वहाँ कोई पुर्जा मरम्मत करते होते और धुआँ लगने पर जब मैं घबड़ाकर, अपना मुंह पीछे की ओर फेरने लगता, तो वे हंस देते।

"हँसते क्यों हो, झपसी भैया ?" मैं पूछता।

"मुंह क्यों घुमाते हो ?" वे पूछते।

"धुआँ नाक में समाता है।"

"तुम बड़े बुद्धू हो !"

"सो क्या ?" मैं पूछता।

"इसके लिए तो कम्पनी गुड़ और तेल देती ही है। गुड़ खाकर देह बनाओ और काम पर आओ, तो नाक में सरसों का तेल डालकर आया करो।"

"अच्छा, तो अब समझा !" मैं बोलता था।

आज मेरे काम पर पहुँच जाने के कुछ पहले झपसी भाई आ गये थे। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि 'ए-शीफ्ट' का मिस्त्री उन्हें चार्ज दे रहा था। जाते-जाते ही मैंने अपना अँगोछा एक पाये पर रख दिया और खइनी निकालकर मलने लगा। इसके पहले सुपरवाइजर की टेबुल की ओर देख लिया। वह नहीं था। वह होता; तो खइनी मलने का मौका ही नहीं देता। इधर तुरत ही दौड़ा आता। खइनी मलता हुआ मैं कभी ब्वायलर और कभी गन्धक की पहाड़ी की ओर देख लेता था। तभी मेरे कानों में आवाज सुनायी पड़ी, "अरे, जरा इधर भी मंगरू।"

"अच्छा ...।" मैंने उधर देखकर कहा। झपसी भाई ने खइनी के लिए इशारा किया था।

"आज पीछे क्यों रह गये ?" झपसी भाई ने पूछा।

"देखा नहीं, गेट पर कैसी भीड़ थी ?"

"भीड़ ?"

"हाँ, वहीं आदमी जो बोल रहा था। शाम को तो रतननगर क्लब के मैदान में बड़ी भारी सभा होगी। बातचीत से गाँधीजी के दल का आदमी मालूम होता है। अब समझ लो झपसी भाई कि हमलोगों का सब दुख-दरिद्दर भाग गया।"

"सो कैसे, रे ?"

"अरे, अब तो मजदूर-संघ बनेगा। हमलोग अपने हक के लिए लड़ेंगे। मिल-मालिक भी समझेगा कि रतननगर के मजदूर भी कुछ हैं।"

"देख लेना, कुछ नहीं होगा।" झपसी भाई बोले।

"तुम कैसे जान गये कि कुछ नहीं होगा ? अजीब आदमी हो तुम, जोतिस-सासतर जानते हो क्या ? गाँधी बाबा के दल को भी दिल्लगी समझना सरासर बेवकूफी है। सुना है, गाँधी बाबा अंग्रेजों को यहाँ से भगानेवाले हैं।" मेरे मुँह से निकला।

"सो तो तब से सुन रहा हूँ, जब से होश हुआ।"

"अरे, समय तो लग ही जाता है भाई! मगर जाने दो, हमलोगों को अंग्रेजों से क्या लेना-देना है? हमलोगों को तो बस मिल-मालिक से लड़ना है, सो हमारी मदद के लिए आज देख ही लिया, गाँधी बाबा का दल आ पहुँचा। अब देखना, तनख्वाह भी बढ़ेगी, छुट्टी भी मिलेगी और साहब लोगों का सब रोब-दाब भी जाता रहेगा। मगर सभा में ही नहीं जुटोगे, तो फिर कुछ नहीं होगा।" मैंने कहा।

"मैं नहीं चाहता कि मेरा दाना-पानी रतननगर से उठ जाये।"

"मतलब ?"

"जो सभा में जायेगा, वह अफसरों की आँख पर चढ़ जायेगा।"

"तब अफ़सर क्या करेंगे ?"

"कोई-न-कोई नुस्ख लगाकर निकाल देंगे।"

"लेकिन, इसीलिए तो मजदूर-संघ बनाया जायेगा। फिर तो सब काम इंसाफ से होगा।"

"देखो, वह सब तो सामने ही आयेगा।"

"सभा में नहीं चलोगे ?"

"तुम चलोगे ?"

"मैं तो चलूँगा।"

"चलना, देखा जायेगा। अफसर लोग रहेंगे, तो धीरे-से हट जाऊँगा।"

"अच्छा, मगर चलोगे जरूर।"

"चलूँगा।"

मैंने इस बीच खइनी मल ली। झपसी भाई की बात मेरे दिल में गड़ तो रही थी, मगर मैं भीतर-ही-भीतर इस बात के लिए तनिक भी राजी न हुआ कि सभा में नहीं जाना चाहिए। जो हमलोगों के लिए फाँसी पड़ने तक को तैयार होकर आया था, उसके बुलाने पर नहीं जाना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता था। दस बजे से छः बजे तक की ड्यूटी के बीच मैंने कई बार झपसी भाई से पूछा, "चलोगे न ?"

"छः बजने भी तो दो।"

"हाँ, वही तो।"

"चलूँगा, चलूँगा।"

मेरा मन गुदगुदा रहा था। पेशाब करने के बहाने, पैखाना जाने के बहाने और तेजाब की आखरी टंकी पर काम करनेवाले मिस्त्री को हथौड़ी दे आने के बहाने मैं बार-बार घड़ी के काँटे देख आ रहा था। ऐसा लगता था, जैसे आज साढ़े पाँच बजेगा ही नहीं। कभी सोचता कि अगर झपसी मिस्त्री की तरह रतननगर के सभी मजदूर डरकर सभा में न जायें, तब तो मजदूर-संघ कायम हुआ, कुछ बाकी है। अगर किसी तरह संघ कायम हो जाये, तो साहब और सुपरवाइजर लोगों की बादशाही भी खत्म हो जायेगी। सबको आठ घंटे काम

करना होगा। ड्यूटी के भीतर जैसे मजदूरों को दस मिनट के लिए छुट्टी नहीं मिलती, वैसे साहब और सुपरवाइजर भी ड्यूटी के वक्त डेरे पर नहीं जा सकेंगे। फिर उनकी गाली और धौंस भी नहीं बर्दाश्त करनी होगी।

सवा दस बजे से लेकर साढ़े पाँच बजे तक मैं ब्वायलर की भट्ठी में गंधक झोंकता रहा। गंधक का पीला और कड़ुआ धुआँ पीता रहा। लेकिन, जब बड़े जोरों से साढ़े पाँच का भोंपा बज गया, तो वहाँ से मन बिल्कुल उचटने लगा। आँखों के सामने गंधक की ऊँचाई और तेजाब की टंकी थी, और मन के सामने रतननगर क्लब का वही मैदान था, जहाँ आज सभा होनेवाली थी। मैंने गर्दन ऊँची करके झपसी भाई को पुकारा और कहा, "अब तो साढ़े पाँच का भोंपा भी बज गया।"

"कार्ड मिला ?"

"नहीं, अभी नहीं।"

"तब कैसे चलोगे ?"

लेकिन, छः का भोंपा बजते-बजते कार्ड भी मिल गया। सभा में झपसी भाई चलना नहीं चाहते थे, मगर कारखाने के गेट से बाहर आते ही मैंने उनका हाथ पकड़कर कहा, "चलो, चलो। अब सीधे वहाँ चलो।"

वहाँ जाने की तबियत न रहने पर भी वे मेरे साथ रतननगर के मैदान में आ गये। बहुत थोड़े मजदूर जुटे हुए थे। वहाँ आकर मैंने देखा, बीच मैदान में दो चारपाइयाँ बिछी थीं। चारपाई पर उजले रंग की चादर बिछी थी, जिस पर गाँधी टोपी पहने अहमदाबाद से आये हुए नेता भी बैठे थे। उनके पीछे, चारपाई से सटाकर एक बहुत बड़ा तिरंगा झंडा गड़ा हुआ था। झपसी भाई के साथ चलकर मैं भी एक ओर बैठ रहा। थोड़ी देर में सभा की कार्रवाई शुरू हो गयी। नेताजी ज्योंही उठकर बोलने के लिए तैयार हुए कि चारपाई पर बैठे उनके साथियों ने तालियाँ बजायीं और सामने बैठे हुए मजदूरों को भी ताली बजाने का इशारा किया—

तड़, तड़, तड़, तड़, तड़, तड़,

मजदूर बहुत कम जुटे हुए थे। इसलिए ताली की गड़गड़ाहट अधिक देर तक नहीं होती रही। झपसी भाई ने बड़े खयाल से अपने चारों ओर देख लिया। कनखियों से मैंने भी देखा था, एक भी अफसर नहीं आया था। सभा के नेता ने पहले मजदूरों को बड़े ध्यान से देखा। फिर उनके बायें हाथ में जो रूमाल था, उससे अपना ललाट पोंछा। इसके बाद रूमाल को बायें हाथ से दायें हाथ में लेकर मजदूरों से कहा, बोलिये एक बार, महात्मा गांधी की जय!"

"महात्मा गांधी की जय!"

"......रतननगर के प्यारे मजदूर साथियो! संघ का प्रचार और संघ के कामों की जानकारी न रहने पर भी, थोड़ी-बहुत संख्या में, अपने प्यारे-प्यारे कदमों को तकलीफ देकर आप जो इस सभा में आये हैं, यह मेरे लिए अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। पौधा निकलने और उसमें फल लगने के पहले खेत में एक बीज ही बोया जाता है। फिर उसे हवा और पानी का भोजन दे-देकर पालना होता है। थोड़ी-ही संख्या में सही, मगर आये तो। इससे पता चलता है कि आपको अपनी तकलीफें दूर करने की जरूरत है। आप मजदूर-संघ कायम करना चाहते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि देश की आमदनी का सैंकड़े अस्सी भाग इन पूंजीपतियों, मिल-मालिकों की तिजोरी में बन्द हो जाता है। गांवों में जमींदार राज कर रहे हैं और शहरों में—ये उद्योगपति। गांवों में जमींदार आपको चूस रहे हैं और शहरों में ये उद्योगपति। मैं जब अहमदाबाद में था, तो मेरे ये मित्र, जो आपके सामने यहाँ बैठे हैं, यहाँ आकर आपकी सारी तकलीफों का पता लगा गये। सुनकर मेरी आँखों में आँसू भर आये। और, तभी मैंने प्रतिज्ञा की कि रतननगर के मजदूरों की तकलीफ को मैं अपनी समझूंगा और रतननगर के मजदूरों को जब चैन मिलने लगेगा, तभी मैं भी चैन लूँगा....।

तड़् तड़् तड़् तड़् तड़् तड़्

"......तो मैं आपलोगों से यह पूछता हूँ कि आपलोगों की जो तनख्वाहें नहीं बढ़ रही हैं, आपको कारखाने के नफे में हिस्सा जो नहीं मिल रहा है, आपकी छुट्टियाँ जो नहीं बढ़ायी जा रही हैं और आप पर जो आपके अफसरों

भाई शायद डर रहे थे वे कभी हाथ ऊपर उठाते और कभी धीरे-से नीचे कर देते थे। यह मुझे बहुत बुरा लगा।

"ऐसे क्यों करते हो झपसी भाई ?" मैंने धीरे से पूछा।

"न जानें क्यों, मन में बड़ा संकोच होता है।" वे बोले।

"तो एक काम करो। या तो हाथ उठा रहने दो या गिरा दो।"

"तुम क्या चाहते हो ?"

"मैं तो चाहता हूँ, हाथ उठाना चाहिए।"

"तो ले, अब यह हाथ कभी नहीं गिरेगा।" कहकर झपसी भाई ने बड़ी हिम्मत करके अपना हाथ उठा दिया।

इसके थोड़ी देर के बाद नारे लगाकर सभा खत्म कर दी गयी। वहाँ से झपसी भाई अपने क्वार्टर चले गये और मैं अपनी झोपड़ी की ओर लौटा। रात-भर मैं मजदूर-सेवक की बातों पर सोचता रहा और उसकी सारी बातें मुझे उचित जान पड़ने लगीं।

दूसरे रोज मुझे तनख्वाह मिली। तनख्वाह के रुपये लेकर मैं सीधे मजदूर-संघ के दफ्तर में पहुँचा। एक रुपये का नोट देकर अपने नाम की रसीद कटवायी और रसीद को फटे कुरते की जेब में सम्हालकर रख लिया। वहीं मुझे यह मालूम हुआ कि मजदूर-सेवकजी का नाम दयानाथ पेंढारकर है। पेंढारकर का मैं माने नहीं समझ सका, मगर दयानाथजी तो पूरे याद रहे। उधर से लौटते वक्त दयानाथजी के काम करनेवालों से बड़ी बातें हुईं।

"रतननगर के तुम पहले मजदूर हो, जो आज यहाँ आकर मेम्बर बन गये।" वे बोले।

"जी, और कोई नहीं आया ?" मैंने पूछा।

"नहीं, अभी तक कहाँ कोई आया है ? तुम अपने साथियों को ले आओ।"

"कोशिश करूँगा।" मैंने कहा।

"जरूर करो। आगे चलकर रतननगर के मजदूरों के तुम्हीं नेता होगे।" वे बोले।"

"यह आप क्या कह रहे हैं; नेता तो बड़े लोग होते हैं, पढ़े-लिखे लोग।"

"सो तो है, मगर तुम जितना ही त्याग करोगे, मजदूर तुम्हें प्यार करने लगेंगे। फिर तो तुम्हारे लिए खाना और कपड़े का कोई सवाल नहीं रह जाएगा। वे तुम्हें सब देंगे।"

"कैसे ?" मैंने पूछा।

"सब अपने-आप समझ जाओगे। पहले मजदूरों को समझा-बुझाकर संघ का मेम्बर बनाओ।"

"अच्छा।"

"देखो, हमलोग यहीं रहते हैं। गाहे-बेगाहे यहाँ आ जाया करना। सभा वगैरह बुलानी होगी, तो तुम्हें अपने साथ ले चलेंगे।"

"अच्छा, आऊँगा।" मैंने वादा किया।

मैं वहाँ से झोपड़ीवाले डेरे में लौट आया। रात को काम पर गया तो अपने मेम्बर बन जानेवाली बात मैंने झपसी भाई से कह दी। सुनकर तो पहले उनके कान खड़े हो गये, पीछे कहा, "अच्छा किया, मेम्बर बन गये तो अच्छा ही किया।"

"क्यों, ऐसा क्यों कहते हो झपसी भाई ?" मैंने पूछा। अभी वे तेजाब की टंकी की ओर देखने लगे थे।

"अरे मंगरुआ, तू कहाँ भूला हुआ है ? हमलोगों के लिए कोई कुछ नहीं करेगा, सब कोई अपना काम बनाने आया है। अंगरेज हमलोगों को भूखों मार रहे हैं, मगर गाँधी बाबा क्या घर-घर गेहूँ बाँटते फिरेंगे ? जब तक कुर्सी नहीं मिलती, तबतक लोग यों ही बात करते हैं।"

"जा जा, तुम्हें तो हरदम मजाक ही सूझता है।" मैं बोला।

"अच्छा, मैं मजाक नहीं करता। कल मैं भी मेम्बर बन जाऊँगा।"

"सच, बन जाओगे ?"

"हाँ।"

दूसरे रोज झपसी भाई भी मेम्बर बन गये। रतननगर क्लब के मैदान में हर एतवार को सभा बुलायी जाती थी। जब मैं ड्यूटी पर नहीं होता, तो मैं भी कारखाने के फाटक पर दयानाथजी के साथ काम करनेवालों की पाँत में

खड़ा होकर नारे लगाता, मिल-मालिक के खिलाफ जो कुछ बोलना, उन लोगों से सीख लिया था, बोलता और मजदूर भाइयों को सभा में आने के लिए कहता था। कुछ ही दिनों में रतननगर के हर कारखाने के मजदूर मेरे नाम और चेहरे से परिचित हो गये। शूगर फैक्टरी, सोडा रिकवरी, पेपर फैक्टरी, सीमेण्ट फैक्टरी, सीमेण्ट आसवेस्टस, प्लाई-वुड फैक्टरी, पावर-हाउस, वर्कशॉप, मशीन शॉप, कहाँ के मजदूर 'मंगरू' को नहीं जानते थे। कुछ अरसे में मजदूर-संघ का रजिस्ट्रेशन हो गया। कम्पनी से लड़कर दयानाथजी ने मजदूरों की तनख्वाह में एक रुपया और बढ़वा दिया। छुट्टी में भी एक रोज बढ़ गया। अब पहले से मजदूर-संघ का दफ्तर भी अच्छे मकान में चला गया। बाहर बहुत बड़ा साइन-बोर्ड टाँग दिया गया—

मजदूर-संघ
रतननगर

दयानाथजी के जितने चेले थे, उनमें सबसे ज्यादा मुझे प्यार करते थे, मोहनलाल बड़ोदकर। मैं उन्हें 'बड़ोदकर बाबू' ही कहा करता था। एक दिन जब मैं मजदूर-संघ के दफ्तर में चन्दा के दस रुपये जमा कराने गया था, तो उन्होंने बहुत ही ठंढी आवाज में मुझसे कहा, "मंगरू, तुम बड़े काम के आदमी हो। तुम्हारा दिमाग बहुत तेज है। किसी भी बात को बहुत जल्द समझते हो, दूसरे को तुम समझा लेते हो। लेकिन, जब मैं तुम्हारी एक कमजोरी की ओर देखता हूँ, तो मुझे बड़ी तकलीफ होती है……।"

"सो क्या बड़ोदकर बाबू, क्या मैंने कोई अपराध किया है ?"

"नहीं, अपराध नहीं किया है। मगर, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी कमजोरी दूर हो जाये और तुम इस संघ के काम आ सको।"

"कहिये सरकार, मुझमें तो बड़ी कमजोरियाँ हैं। पहले तो मैं बिरादर का चमार हूँ, दूसरे कुली हूँ, तीसरे मूरख हूँ, और चौथे आपसे भी बातें करने की हिम्मत कर लेता हूँ।" मैं बोला। बड़ोदकर बाबू अपनी आँखों से मेरी आँखों में

उतरकर बोले, "मंगरू मैं चाहता हूँ कि तुम शुद्ध-शुद्ध लिखना, शुद्ध-शुद्ध पढ़ना और शुद्ध-शुद्ध बोलना जान लो। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारी हर सहायता करने को तैयार हूँ। बोलो, यह कमजोरी दूर करना चाहते हो।"

मेरे मुंह से निकला, "यही कमजोरी तो मेरे दिमाग का जख्म है!"

● ● ●

१९

मजदूर-संघ में आने-जाने और काम करने की वजह से मेरी बुरी हालत कुछ सुधर तो नहीं गयी थी, मगर इतना यकीन हो गया था कि मेरी नौकरी बात-की-बात में नहीं छूट जायगी। इसलिए मैं दो रोज के लिए गाँव चला गया और घर के लोगों को रतननगर ले आया। माँ थी, मेरी जनाना और मेरी छोटी बहन। बुधिया की उम्र पांच-छः वर्ष थी। जब ये तीनों रतननगर आ गयीं, तो रहने के लिए एक अलग झोपड़ी का किराया चार रुपये तय हुआ। सत्ताइस रुपये में चार रुपये इसी तरह निकल गये, बाकी बचे तेईस रुपये। घर से, जो अलमुनियम के बर्तन थे, उन्हें ही साथ ले आया था। चावल, दाल, नमक-मसाले रखने के लिए मिट्टी के बर्तन मोल ले लिये। गाँव पर से जब चलने लगा, तो गोपाल साव बनियाँ ने अपनी छाती पर मुक्के मार लिये। कहा, "चमार-दुसाध से कौन मुंह लगाये! छोटे सरकार कांग्रेसी होकर जेहल अगोर रहे हैं। अब मेरे रुपये सात जनम में भी न मिलेंगे।"

"घबड़ाओ मत साव, मैं रतननगर से तुम्हारे रुपये भेज दूँगा।" मैं बोला।

"ऐसे वादे बहुत सुनता रहा हूँ। तेरा बाप भी तो चटगाँव से रुपये भेजता ही रह गया।" गोपाल साव बोला।

"यह तो बदे की बात है साव! मुझ पर यकीन करो, वहाँ जाकर जरूर भेज दूँगा।" मैंने कहा।

"अरे, अब तो भगवान ही इन्साफ करेंगे। अगले जनम में तुम्हारी छाती पर पीपल का पेड़ बनकर वसूल करूँगा।"

"ऐसा न कहो। हाँ, एक बार में तो नहीं, मगर सात-आठ बार में थोड़े-थोड़े भेज दूँगा।"

"अरे छोड़ो, बिल में घुसे हुए चूहे की बिल्ली राह देखे, तब तो उसका पेट भरा!"

"राम कहो, मुझ पर यकीन तो करो।"

"अरे जा-जा; तेरा क्या विश्वास! तुमलोगों ने जिसका खाया, उसका कभी दिया भी?"

जैसे भी हो, मैं तो रतननगर आ ही गया। गोपाल साव के मेरे यहाँ सत्तर रुपये निकलते थे। यहाँ आकर मैंने फैसला कर लिया कि उसके यहाँ हर महीने पाँच रुपये भेजा करूँगा। कम्पनी की ओर से जो राशन मिलता था उसके लिए कार्ड भी बनवा लिया था। तेईस में से पाँच रुपये और निकल गये। बाकी बचे अट्ठारह रुपये। वैसे तो अट्ठारह रुपये में वैसी महँगी के जमाने में चार आदमी का खर्च चलना ही मुश्किल था और उस पर भी एक मुश्त राशन खरीद लेना और भी एक टेढ़ा सवाल था। सो, मोदी के उधार-खाते से मेरा नाम नहीं हो कट सका। हर महीने चार आने पैसे देकर मजदूर-संघ की रसीद लेना भी जरूरी था। मेरी झोपड़ी की बगल की झोंपड़ी में एक मेट रहता था। वह यहीं कहीं पास के देहात का रहनेवाला था। हो सकता है, उसके घर पर अपना खेत भी रहा हो। वह चावल और दाल अपने घर से ले आता था। उसकी बीवी भी यहीं रहती थी। साथ में दो छोटे-छोटे बच्चे थे। जाति का वह कहार था। जब कभी जात-पाँत की बातें चल पड़तीं, तो वह अपने को कहार नहीं मानता था। उसका कहना था कि कहार जाति की पैदाइश जरासंध के खानदान से है। और

जेरासंध राजपूत था, इसलिए वह भी राजपूत है। अकलू राम कहने से कन-मनाता था, अकलू सिंह कहने पर मस्त होकर बातें करता। मेठ होने के कारण मुझसे कम बातें कहता था। मगर, इतना मुझे याद है कि महीने रोज के बाद ही मेरी जनाना से उसकी जनाना ने दोस्ती कर ली थी।

उधारी-खाता पर सौदा देनेवाला मोदी मेरे साथ कुछ कड़ाई करने लगा। मैं चाहता था कि मेरे मन का हो जाये और वह चाहता था कि मैं उसके मन के काबिल हो जाऊँ। तनख्वाह मिलने पर वह चाहता था कि मैं उसका पाई-पाई अदा कर दूँ। एक रोज तो इसी बात को लेकर उससे झंझट हो गयी। दूकान पर झोपड़ी के और भी मजदूर इकट्ठे हो गये थे। तनख्वाह जिस रोज मिली, उसके दूसरे रोज मैं उसके यहाँ दो छटाँक सरसों का तेल लेने के लिए पहुँचा। मेरे हाथ में तेल की शीशी थी।

"तनख्वाह मिल गयी, मंगरू ?" मोदी ने पूछा।

"हाँ।"

"कब, कल ?"

'हाँ।"

"तो हिसाब साफ करो न। बोलो, खाता निकालूँ ?"

"अभी रहने दो। कल सुबह आऊँगा।"

"कोई बात नहीं। मेरा मतलब यह कि इस महीने का हिसाब अगले महीने के लिए नहीं लटकाना चाहिए।"

"सो कैसे होगा ?"

"तुमने क्या समझा ?" मोदी ने पूछा।

"एक ही बार सब पैसे अदा करूँगा ? मेरे नाम पर कितना है ?" मैंने पूछा।

इस पर मोदी ने झटपट उधार-बहीवाला खाता निकाला और झटपट जोड़-कर बोला, "बस, इकतीस रुपये, पन्द्रह आने।"

"बाप रे बाप, इतना एक बार कहाँ से दे पाऊँगा, साव !" मैं बोला।

"अब जहाँ से दो। मुझे भी तो *गोले पर देना होता है। तुमलोग तो मुझे सूद भी नहीं देते, मूर ही महीने-दो-महीने लटकाये रहते हो। मुझसे

---

* अनाज की आढ़त।

तो गोलेवाला सूद भी ले लेता है। देखो, कहीं से भी पिछला हिसाब साफ कर दो।"

"तुमसे झूठ वादा क्यों करूँ, मेरे लिए इतने रुपये एक बार देना मुश्किल है।"

"तब ?" उसने मेरी ओर घूरकर पूछा।

"तब क्या कहूँ, किसी तरह काम चलाओ।"

"नहीं, जब इतने की औकाद नहीं थी, तो क्यों घर की सारी फौज ले आये ?"

"घर पर कोई जमींदारी तो नहीं थी साव, ले आता नहीं तो क्या करता ?"

"तो फिर यह सब साव के भरोसे ही ले आये क्या ?"

"नहीं, धीरे-धीरे कोई इन्तजाम होगा। देखो, कम्पनी के सामने हमलोग माँग रखनेवाले हैं। तनख्वाह बढ़ जायेगी।"

"वह सब मैं नहीं जानता। मूस मोटाकर बिल्ली थोड़े ही हो जायेगा ?"

"अच्छा, अच्छा। तेल दे दो, दो छटाँक।" मैंने तनिक मुस्कुराकर कहा। शायद इसीलिए कि मेरे मुस्कुराकर बोलने से उसका गुस्सा कम हो जाता। मैंने अपनी तेल की शीशी उसकी ओर बढ़ायी।

"यह क्या ?" उसने झिझककर पूछा।

"तेल दो। दो छटाँक, सरसों का।"

"नहीं, ले जाओ। अब एक पैसे का सामान उधार नहीं दूँगा।"

"क्यों, तुम्हारा कभी का पचा लिया है क्या ?"

"पचाओ चाहे मत पचाओ। अब मैं लटपट-सटपट नहीं सुन सकता। अपने-आप कह रहे हो कि तनख्वाह कल ही मिल गयी। आकर आज हिसाब क्यों नहीं साफ कर गये ....." मोदी बोला। इसके बाद वह मेरी ओर से मुँह फेरकर पास खड़े और ग्राहकों की ओर मुखातिब हो गया। था तो मैं गरीब, मजबूर भी था। मगर, एकाएक मुझे गुस्सा हो आया। पाँच मिनट तक तो मैं चुपचाप खड़ा रहा।

"सुनो साव।" पीछे मैंने कहा।

"क्या है, क्यों तंग कर रहे हो ? एक बार तो कह दिया कि नहीं दूंगा। छिः छिः, एक तो उधार लेना, दूसरे माथा खाना।"

"तेल तो दे दो। आगे कोई सौदा मत देना।" मैं बोला।

"और तेल क्या तुम्हारे डर से दे दूँ, तुम्हारे बाप का खेत जोतता हूँ क्या ?"

"जरा तरीके से बातें करो साव ! अपनी जुबान मत खराब करो।"

"जा जा, बड़ा आया है मेरी जुबान सुधारने। कमीने कहीं के !"

"साव, जरा होश में आकर बातें करो।" मुझे गुस्सा आने लगा।

"होश में आकर बातें मैं करूँ या तुम करेगा ?………।" साव अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया और मुश्किल से आधा कदम मेरी ओर बढ़ आया। वह दमे का रोगी था। हाँफता हुआ बोला, "पहले तू दूकान से नीचे जाता है या नहीं ?"

"दूकान से नीचे क्यों जाऊँ, कोई चोर थोड़े ही हूँ ?"

"तू चोर नहीं, चोर का जना है।" वह बोला।

"चुप रहो साव ! ऐसे बोलोगे, तो राख लगाकर जीभ खींच लूँगा।"

"साले, जाता है या नहीं तू मेरी दूकान से………।" कहते हुए साव ने चीनी का एक खाली टीन उठा लिया और अपने हाथों में उसे लेकर इस तरह घुमाया, जैसे टीन को मेरे माथे पर पटक देगा। मैंने एक कदम आगे बढ़कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। कहा, "अब कहो, मारोगे मुझे टीन से ? मारो। मगर मुंह से गाली निकालोगे, तो जीभ तराश लूंगा।"

"अरे बाप रे, मैं मरा………दौड़ो…मंगरुआ मेरी जान ले रहा है……… बजाओ-बचाओ…।" मोदी ने शोर किया।

"चुप रहो, क्यों झूठ बोल रहे हो…?"

"अरे बाप रे, दौड़ो, दूकान लूट रहा है…!"

मेरे लाख मना करने पर भी मोदी चिल्लाता रहा। परदे के भीतर से निकलकर उसकी बहू-बेटियाँ बाहर आ गयीं। झोपड़ी तक हल्ला हुआ, सो मजदूर उधर से दौड़े हुए आये।

चिराग-बत्ती जलने का समय निकला जा रहा था। पश्चिम का आसमान पूरब की ओर अपना अंधियारा फैलाता हुआ रात के ठहरने का इन्तजाम कर रहा था। दूकान के नीचे मजदूरों की भीड़ लग गयी। मेरी माँ भी चली आयी, साथ में छोटी बहन थी। सनीचरी शायद लाज के मारे नहीं आ सकी। मैंने भीड़ के पीछे देखा, दीपन हाथ में शराब की एक बोतल लिये खड़ा है। उसके पाँव जमीन पर ठीक से जम नहीं रहे थे। वह खड़ा रहते हुए भी लड़खड़ा रहा था। संयोग से आज मोदी का बेटा घर पर नहीं था। नहीं तो अगर वह रहता, तो मार-पीट जरूर हो जाती। मेठ की तस्वीर नजर नहीं आयी। वह शायद 'सी-शीफ्ट' में काम करने चला गया था। मेरा खयाल है, वह होता तो जरूर मेरे खिलाफ बोलता। बाकी जो मजदूर शोर सुनकर आये थे, उन लोगों ने बीच-बचाव कराने की कोशिश की। मगर, दीपन अपनी जगह पर बोतल लिये खड़ा-खड़ा बक रहा था—"मारो साले बनिए को""उधार खिला खिलाकर""इसने हमलोगों का खून पी लिया""। तनख्वाह""""""""""मिलने पर""जेब में रखने के लिए"""""साले को दो बोतल के दाम के सिवा कुछ बच ही नहीं पाता""।"

"चुप रहो दीपन, तुमने बहुत ज्यादा पी लिया है"""""झोपड़ी में चले जाओ""।" मजदूर समझाने लगते थे।

"अबे साले, तू मुझे समझाने आया है और तू नहीं पीता क्या""मैं तो"" इसी बोतल से साले मोदी का सर फोड़ दूँगा""उधार देकर एक तो साला बाजार-भाव से महँगा देता है"""""दूसरे जान-बूझकर वजन में भी कम देता है""""""पैसे की मजबूरी है इसलिए नहीं बोलते""नहीं तो साले को मैं कच्चा ही निगल जाऊँ""""""।"

बड़ी दिक्कत से यह झगड़ा खत्म हुआ। पीछे खुद मैं ही बहुत समझा-बुझाकर दीपन को झोपड़ी में ले आया। वह तो बोतल चलाकर मोदी को मारने के लिए तैयार था। सुबह जब उसे यह मालूम हुआ कि मोदी को उसने कल क्या-क्या कहा था, तो सर पकड़कर एक बार जमीन पर बैठ गया। मुझसे कहा, "साव का गला तुम घोंट रहे थे और सजा मिली मुझे।"

"मैं साव का गला कहाँ घोंट रहा था ?"

"गला नहीं घोंट रहे थे तो और क्या कर रहे थे, कल शाम में किसलिए शोर मचा था ?"

"गला नहीं घोंट रहा था, दोस्त !"

"कुछ तो जरूर किया था।" वह बोला।

"हाँ, मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये थे।"

"और मैंने पी ली थी, सो जाकर उसे गाली बक आया। ठीक बात है न ?"

"हाँ, वहाँ से मैं ही तो तुम्हें सम्भालकर ले आया था।"

"सो तो मुझे मालूम हुआ है। मगर अब बताओ, मेरे पास चावल नहीं है, क्या खाकर ड्यूटी जाऊँगा ?"

"क्यों, जाओ साव के यहाँ से ले आओ।"

"अब वह मुझे उधार देगा, तुम्हे विश्वास है ? तुम मजदूर-संघ में क्या जाने लगे, दंगे और मार-पीट को दिल्लगी समझ लिया।"

"देगा, देगा, तुम्हें उधार देगा। उधार अब मुझे नहीं देगा। तुमको तो जानता है कि तुम नशे में बोल रहे थे।" मैंने कहा।

"जाता हूँ माँगने। अगर नहीं देगा, तो तुम्हारा सर खाकर ड्यूटी पर जाऊँगा।" वह बोला।

इतनी बातें मुझसे कर लेने के बाद दीपन बड़ी असावधानी के साथ अपनी झोपड़ी की ओर चला गया। उसके फटे हुए कुरते की आस्तीन नीचे लटक रही थी। बौलट भाई उस झोपड़ी को छोड़कर किसी कुली के साथ रहने के लिए कुली क्वार्टर में चले गये थे। दीपन की झोपड़ी का नया साझीदार किसी कचड़ीवाले की दूकान में खाया करता था। दीपन सिर्फ अपना खाना पकाता था। दीपन के चले जाने के बाद मैं उसके बारे में बहुत कुछ सोचता रहा। भले-बुरे, नफा-नुकसान, इज्जत और अपमान के बारे में वह भी तो सोचता है, मगर अपने बुरे दिन के जाल में इस तरह फँसा हुआ है कि बोलना नहीं चाहता। वनगाँव जाने के रास्तेवाली भट्टी में जब मैं शराब पीने गया था, तो मैंने सोचा कि इन मजदूरों के कटरे में सिर्फ एक मैं ही ऐसा नीच हूँ जो पीता

हूँ और आज भी पीने जा रहा हूँ। मगर, धीरे-धीरे पता चला कि यहाँ सभी पीते हैं और मुझसे बुरी तरह पी लेते हैं। पीने से किसी को भी एतराज नहीं था। सब पीते थे। कुछ तो भट्टी में ही लड़खड़ा जाते और कुछ कटरे में लौटते-लौटते ऊल-जलूल बकना शुरू करते थे।

साव के मेरे यहाँ इकतीस रुपये पंद्रह आने निकलते थे। सो दूसरे रोज जब उसका बेटा पास के देहातों से चावल खरीदकर लौटा, तो मुझसे लड़कर दस रुपये ले गया। पास में सात रुपये बच गये। बचना चाहिए था आठ रुपये, मगर एक रुपये का नगद सामान ले आना पड़ गया। थोड़ी दूर पर ही रेलवे पुल के पास सिक्खों का गुरुद्वारा था। पहले यहाँ कोई गुरुद्वारा नहीं था। सुनने में आया कि यह गुरुद्वारा कारखाने के सिक्ख कर्मचारियों ने स्थापित किया है। उसी गुरुद्वारे के पास दो-तीन खिचड़ी-फरोस की दूकानें थीं। तीनों दूकानें मारवाड़ी की थीं और यहाँ की जमीन रतननगर के हल्के में थी। रतननगर के भीतर अधिकतर मारवाड़ियों को ही दूकान खोलने के लिए इजाजत दी जाती थी।

आज मैं खिचड़ी खाकर ड्यूटी पर चला गया। शाम को छः बजे काम पर से लौटा, तो देखा झोपड़ी में माँ नहीं है—बुधिया नहीं है। समय से मैं कुछ देर करके लौटा था। मुझे देखकर सनीचरी ने पूछा, "अभी छुट्टी हुई है ?"

"नहीं, छुट्टी तो थोड़ी देर पहले ही हो गयी। मजदूर-संघ चला गया था।" मैं बोला। मजदूर-संघ का माने वह कुछ भी नहीं समझ सकी, इसलिए चुप रह गयी। उसने मुझसे कहा, "बैठो। दिन की थोड़ी-सी खिचड़ी बची है, खाओगे ?"

"क्यों, खिचड़ी बची कैसे ? बुधिया ने नहीं खायी ?"

"वह रहती, तब तो खाती। उसी का हिस्सा तो बच गया है। पानी पी लो।"

"वह कहाँ गयी और माँ ?" मैंने पूछा।

"दोनों साथ ही गयी हैं।"

"कहाँ, गीलट के यहाँ ? उसका डेरा कहाँ देखा है ? वह तो बनगाँव रहता है। हाँ, इतना मालूम है कि वह भी अपनी जनाना को ले आया है।"

गीलट मेरे मामा के गाँव का था। बीलट भाई से जब मैंने उसे मिलाया था, तो उसका नाम जानकर वे ठठाकर हँस पड़े थे। कहा था, "चलो अच्छा है। मैं बीलट हूँ और तुम गीलट।" गीलट मेरे मामा का पड़ोसी था। जब मेरी बदली एसिड प्लाण्ट में हुई, तब उससे जान-पहचान हो गयी। मेरी और उसकी उम्र मिलती-जुलती थी। माँ के रतननगर ले आने पर मैं उसे पकड़कर अपनी झोपड़ी में ले आया। माँ ने स्वागत में उसे गुड़ का शर्बत पिलायी थी। गाँव के रिश्ते में वह माँ का भतीजा लगता था। लेकिन, मेरी सारी बात काटकर सनीचरी ने कहा, "बनगाँव नहीं गयी है। गयी है *खँचिया लेकर कोयला चुनने।"

"कोयला चुनने ?"

"हाँ।" सनीचरी बोली।

"कहाँ, किस जगह ?"

"यह नहीं मालूम।"

तब मैं टाट पर चुपचाप बैठ गया और सोचने लगा, जितने लोग कारखाने में काम करते हैं, उतने ही लोगों को कम्पनी कोयला देती है। बाकी लोग तो लकड़ी से खाना बनाते हैं। बनगाँव में कोयले की कोई दूकान नहीं। कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनकी जान-पहचान के कारखाने के कर्मचारी हैं। कम्पनी से कोयला मिलने के लिए कर्मचारियों के पास कार्ड हैं। होटलवाले कम्पनी के कर्मचारियों से दोस्ती रखते हैं। जान-पहचान कर लेते हैं। बाकी लोगों को कोयला मिलना कठिन हो जाता है।

मैंने देखा था कि कुछ बच्चे रेलवे-लाइन पर गिरे हुए कोयले, जो इंजन से गिरते हैं, चुनते रहते हैं। कुछ को होटलों और क्वार्टरों के पीछे फेंके हुए कूड़े-कर्कटों के बीच से कोयला चुनते हुए देखा था। मुझे यह भी मालूम था कि ऐसे कोयले बटोरकर वे छोटे-छोटे हलवाइयों की दूकानों पर बेच देते हैं। कुछ चाय

---

*टोकरी।

के दूकानदारों को बेंच देते हैं और एक टोकरी कोयले का मोल मुश्किल से चार पैसे मिलता है। मेरे दिमाग में यह बात घर कर गयी कि मेरी माँ और बुधिया जरूर ही इसी खयाल से कोयला चुनने गयी हैं। तब मैंने खिचड़ी नहीं खायी। सनीचरी से पूछा, दोनों कब गयीं ?"

"तुम्हारे काम पर चले जाने के थोड़ी देर बाद।"

"फिर बीच में नहीं आयीं ?"

"नहीं।" सनीचरी बोली।

मैंने एक बार मन में यह तय किया कि चलकर माँ और बुधिया को खोज लाऊँ। मगर कहाँ जाता, किस जगह जाता! बनगाँव और रतननगर की चौहद्दी तो कोई आध मील की थी नहीं। मन मारकर रह गया। —"बुधिया से कहोगी, खिचड़ी नहीं खायेगी तो जियेगी कैसे ?" कहकर मैंने सनीचरी की ओर देखा। सनीचरी बोली, "खिचड़ी तो खाती ही है।"

"पकौड़ी के लिए भी तङ्ग करती थी ?" मैंने पूछा।

"नहीं।" सनीचरी बोली।

मेरी बहन बुधिया खिचड़ी तो खाती थी, मगर चाव से नहीं खाती थी। खिचड़ी पकाने में हमलोगों को सुविधा होती। कुछ चावल की बचत हो जाती थी। मैंने सनीचरी से कहा, "मेरी स्लेट किधर रखी है, जरा दे दे। मैं पढ़ने चला जाऊँ।"

"चावल के हँड़िये के पीछे रखी है। ठहरो, देती हूँ।"

ड्यूटी से निकलकर, जब भी ऐसा समय मिलता, मैं मजदूर-संघ में पढ़ने के लिए चला जाया करता था। बड़ोदकर बाबू मुझे बहुत प्यार और अपनापन के साथ पढ़ाते थे। अब मैं हिंदी अच्छी तरह लिख सकता था। हिंदी के अखबार बहुत आसानी से पढ़ लेता और उनके शब्दों को समझ लेता था। इधर बड़ोदकर बाबू मुझे अंग्रेजी पढ़ाने लगे थे। बाजार से मैं फर्स्ट-बुक खरीद लाया था। अंग्रेजी के छब्बीसों अक्षर याद हो गये थे। चारों तरह से लिखना भी जान गया था। अब बड़ोदकर बाबू मुझे शब्दों का ज्ञान करा रहे थे। सनीचरी से स्लेट लेकर मैं मजदूर-संघ चला गया। हाँ, इन दिनों की मुझे एक बात भली

याद है। मजदूर-संघ की ओर से मुझे मजदूरों को मेम्बर बनाने के लिए एक छपी हुई रसीद-बही दी जाती थी। मैं मौके-मौके पर मजदूरों को समझा-बुझाकर मेम्बर बनाता और उन्हें रसीद देकर मेम्बरी फीस वसूल करता था। जिस दिन मैं मेम्बरी फीस के अधिक पैसे बटोरकर बड़ोदकर बाबू के हाथ में देता, उस दिन वे मुझे बड़ी देर तक और बहुत मिहनत से पढ़ाते थे। दयानाथजी हमलोगों से बहुत गंभीरता का व्यवहार करते। बराबर पटना, काशी, प्रयाग, कलकत्ता, लखनऊ और बंबई आते-जाते रहते। पूछने पर पता चलता कि मजदूरों की भलाई के लिए सब जगह दौरा कर रहे हैं। सैलून का हजाम आकर दफ्तर में ही बाल काट जाता। मशीन से दाढ़ी बनाते और दाढ़ी बना लेने के बाद न-जानें उसमें क्या मल देते थे। तब उनकी दाढ़ी बहुत खुशबूदार हो जाती थी। कभी आस-पास से होकर अपने कमरे में जाने लगते, तो मन करता कि घंटों उनकी दाढ़ी की खुशबू पीता रहूँ। जब रतननगर में रहते, तो हर तीसरे रोज कपड़े बदलते थे। मजदूर-संघ के दफ्तर से बाहर निकलते, तो हाथ में एक चमड़े का बैग लटका लेते थे। रतननगर के जो दो बड़े अफसर थे, उसमें एक को वर्क्स मैनेजर कहा जाता था और दूसरों को लोग जनरल सेक्रेटरी कहते थे। वर्क्स मैनेजर से जनरल सेक्रेटरी का पावर शायद कुछ ज्यादा था। दयानाथजी इन दोनों अफसरों के दफ्तर में बेधड़क घुसकर उनसे बातें करते थे।

आज जब मैं मजदूर-संघ के दफ्तर में पहुँचा, तो बड़ोदकर बाबू बहुत खुश दीख पड़े। मुझे पढ़ाते वक्त उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक कहा, "आज का अखबार देखा है या नहीं, अंग्रेजों ने हमें आजादी देना स्वीकार कर लिया।"

"आजादी देना स्वीकार कर लिया ?"

"हाँ, सच।"

"तो आजादी मिल गयी या पाँच-सात रोज के अंदर मिलनेवाली है ?" मैंने ऐसा सवाल अपनी अज्ञानता के कारण ही किया।

"नहीं, आजादी कोई खेल थोड़े ही है। मगर मिलेगी, जल्द, बहुत जल्द।"

"सो कैसे ?"

"चुनाव होगा।"

"अच्छा, कौन राजा बनेगा ? गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरू या जिन्ना-साहब ?"

"राजा कोई नहीं बनेगा ?"

"तो फिर राज्य कैसे चलेगा ?"

"जनतंत्र राज्य में राजा नहीं होते।" बड़ोदकर बाबू बोले।

"जनतंत्र क्या है ?"

"जनतंत्र राज्य पर सारा अधिकार जनता का रहता है। हुकूमत के पदों पर जनता जिसे चुनकर भेज दे, वही उस पद पर रहकर हुकूमत करेगा। और हर पाँचवें वर्ष जनता को यह अधिकार होगा, कि अपनी पसंद का पदाधिकारी उस पद पर बिठावे।" वे बोले।

"तो क्या हर पाँचवें साल पदाधिकारी बदलना जरूरी है?" मैंने पूछा।

"नहीं, जरूरी नहीं है। मगर, हर पाँचवें साल चुनाव होता है और जनता जनतंत्र सरकार के जिस पदाधिकारी के काम से संतुष्ट न हो, उसे उस समय हटा देती है। उसके पद के लिए नया उमीदवार खड़ा होता है और जनता उसे वोट देकर विजयी बनाती है।"

"अब समझा.....।" बिना पूरी तरह समझे ही मैंने कह दिया। मगर, मन में यह जानकर चुलबुलाहट जरूर पैदा हो गयी कि अब तो आजादी मिल रही है। मुझे १९४२ का जमाना याद आने लगा कि अंग्रेजों ने कितनी निर्दयता-पूर्वक हिंदुस्तानियों का शिकार किया था। गोरी पुलिस ने किस तरह हिंदुस्तान के विद्यार्थियों की छाती से गोली की ताकत आजमायी थी। मैंने बड़ोदकर बाबू से कहा, "क्यों बाबू, अब तो उन लोगों से १९४२ के आंदोलन का बदला लिया जायेगा, जिन लोगों ने आंदोलन दबाने में अंग्रेज सरकार की मदद की थी ?"

"अवश्य।"

"हाँ, यह बड़ा जरूरी होगा। इसी के चलते तो कितने हिंदुस्तानी अफसरों की तरक्की हो गयी।"

"सबको सजा मिलेगी।" बड़ोदकर बाबू बोले।

"और जमींदार लोग ?"

"सबकी जमींदारी खत्म कर दी जायेगी।"

"तब तो बड़ा अच्छा होगा।" मैं बोला।

"चुनाव में मदद करोगे न ? मजदूरों से पाँच-पाँच रुपये चंदा लेना होगा।"

"माँगूगा। भला, आजादी के लिए तो वे पेट काटकर देंगे।"

"मजदूर तो हाथ में हैं न?"

"अरे, वाह, सब गाँधी बाबा का नाम जानते हैं।" मैंने कहा।

"फिर चावल, दाल, कपड़े सब सस्ता हो जायेगा।"

"और हमलोगों की तनख्वाह भी बढ़ेगी ?"

"इसमें भी शक है ?"

"एक बात कहूँ बाबू····?" मैंने कुछ संकोच से कहा।

"क्या ?"

"जरा अखबार दीजियेगा ? मैं पढ़कर फिर कल लेता आऊँगा।"

"हाँ, ले जाओ और अभी से इसका प्रचार मजदूरों में करो।"

"हाँ, सुनकर सभी मूँछ पर ताव देने लगेंगे।"

उस रात मैं अधिक नहीं पढ़ सका और बड़ोदकर बाबू से हिंदी का अखबार लेकर झोपड़ी की ओर लौटा। झोपड़ियों में किरासन तेल की ढिबरियाँ जल रही थीं। आते ही सुना कि तीन-चार मजदूर पीकर लौटे हैं। उनमें कोई भी होश में नहीं है और किसी ने एक का सर बोतल से फोड़ दिया है। लेकिन, ऐसी घटनाएँ यहाँ बराबर हुआ करती थीं, इसलिए मैं चुपचाप अपनी झोपड़ी में घुस गया। बीच में जो कूड़े-कर्कट से भरी खाली जगह थी, उसमें बेहोश मजदूर गिरे पड़े थे और उनकी बड़बड़ाहट सुनायी पड़ जाती थी।

झोपड़ी के भीतर आ जाने पर मुझे इतना होश न रहा कि माँ से कोयला चुनने के बारे में कुछ पूछ-ताछ करूँ। चुपचाप *गेनरा पर जाकर बैठ रहा। बुधिया सो गयी थी। माँ ने कहा; "खा ले न।"

"नहीं, अभी नहीं खाऊँगा।"

"क्यों, भूख नहीं लगी है?"

*फटे और पुराने कपड़ों का सिला हुआ बिछावन।

"लगी है, थोड़ी देर बाद खाऊँगा। ढिबरी जरा सामने रख दे।"

"खा ले न। पीछे पढ़ता रहना।"

"नहीं, पहले ढिबरी ला।"

माँ ने मेरे आगे ढिबरी लाकर रख दी। मैं अखबार के पन्ने उलटने लगा। आजादी मिलने की खबर पहले ही पेज पर बड़े मोटे-मोटे हरफों में छपी थी। फिर नीचे उसका पूरा विवरण छपा था। मैं नजर गड़ा-गड़ाकर ध्यान से पढ़ने लगा। जिन्नासाहब शायद कांग्रेस से अलग होकर मुस्लिम-लीग के नेता हो गये थे। मुसलमानों के लिए उन्होंने पाकिस्तान की माँग की थी, सो अंग्रेजों ने उनकी माँग मंजूर कर ली थी। वायसराय के समझौते के सिलसिले में यह भी तय हो गया था कि दोनों दल के नेता चुनाव लड़ेंगे। कुछ मुसलमान राष्ट्रीय हो गये थे। जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि हिंदुस्तान अब दो टुकड़े में बँट जायगा। एक परिवार में फूट पैदा हो गयी और पड़ोसी ने फायदा उठा लिया। अखबार में यह समाचार भी पढ़ा कि यह आजादी जो मिल रही है वह पूरी आजादी नहीं होगी। अभी दो वर्ष तक अंग्रेज गवर्नर इस बात की तहकीकात करेंगे कि अभी हिंदुस्तान के नेता देश की हुकूमत सम्हाल सकते हैं या नहीं। इस इम्तहान में दोनों देश के नेताओं को जब कामयाबी मिल जाएगी, तभी सच्ची आजादी मिलेगी—मैंने सोचा, घी का लड्डू टेढ़ा भी भला! गाँधी बाबा, जवाहरलाल नेहरू और छपरा जिले के राजेंद्र बाबू कम होशियार नहीं हैं। राज सँभल जायेगा।

इस खुशी के कुछ रोज पहले की बात है। अखबार में भी समाचार छपते थे। पता चला था कि काहिमा और इम्फल की पहाड़ियों को पारकर सुभाष बाबू हिंदुस्तान में चले आ रहे थे। जब पल्टन का रसद-पानी घट गया तो आजाद हिन्द फौज गिरफ्तार कर ली गयी। तब बड़े-बड़े नेताओं ने दिल्ली के लाल-किले में आजाद हिन्द फौज की ओर से मुकदमा लड़ा था। कुछ रोज पहले अखबार में समाचार छपा था कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने फिर से बैरिस्टर बनकर बहस की थी। तब आजाद हिन्द फौज को रिहा कर दिया गया। उस फौज के बड़े-बड़े अफसर कई बार रतननगर आ चुके थे। उन्हें मालाएँ पहनायी गयी

"लगी है, थोड़ी देर बाद खाऊँगा। ढिबरी जरा सामने रख दे।"

"खा ले न। पीछे पढ़ता रहना।"

"नहीं, पहले ढिबरी ला।"

माँ ने मेरे आगे ढिबरी लाकर रख दी। मैं अखबार के पन्ने उलटने लगा। आजादी मिलने की खबर पहले ही पेज पर बड़े मोटे-मोटे हरफों में छपी थी। फिर नीचे उसका पूरा विवरण छपा था। मैं नजर गड़ा-गड़ाकर ध्यान से पढ़ने लगा। जिन्नासाहब शायद कांग्रेस से अलग होकर मुस्लिम-लीग के नेता हो गये थे। मुसलमानों के लिए उन्होंने पाकिस्तान की माँग की थी, सो अंग्रेजों ने उनकी माँग मंजूर कर ली थी। वायसराय के समझौते के सिलसिले में यह भी तय हो गया था कि दोनों दल के नेता चुनाव लड़ेंगे। कुछ मुसलमान राष्ट्रीय हो गये थे। जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि हिंदुस्तान अब दो टुकड़े में बँट जायगा। एक परिवार में फूट पैदा हो गयी और पड़ोसी ने फायदा उठा लिया। अखबार में यह समाचार भी पढ़ा कि यह आजादी जो मिल रही है वह पूरी आजादी नहीं होगी। अभी दो वर्ष तक अंग्रेज गवर्नर इस बात की तहकीकात करेंगे कि अभी हिंदुस्तान के नेता देश की हुकूमत सम्हाल सकते हैं या नहीं। इस इम्तहान में दोनों देश के नेताओं को जब कामयाबी मिल जाएगी, तभी सच्ची आजादी मिलेगी—मैंने सोचा, घी का लड्डू टेढ़ा भी भला! गाँधी बाबा, जवाहरलाल नेहरू और छपरा जिले के राजेंद्र बाबू कम होशियार नहीं हैं। राज सँभल जायेगा।

इस खुशी के कुछ रोज पहले की बात है। अखबार में भी समाचार छपते थे। पता चला था कि कोहिमा और इम्फल की पहाड़ियों को पारकर सुभाष बाबू हिंदुस्तान में चले आ रहे थे। जब पल्टन का रसद-पानी घट गया तो आजाद हिन्द फौज गिरफ्तार कर ली गयी। तब बड़े-बड़े नेताओं ने दिल्ली के लाल-किले में आजाद हिन्द फौज की ओर से मुकदमा लड़ा था। कुछ रोज पहले अखबार में समाचार छपा था कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने फिर से बैरिस्टर बनकर बहस की थी। तब आजाद हिन्द फौज को रिहा कर दिया गया। उस फौज के बड़े-बड़े अफसर कई बार रतननगर आ चुके थे। उन्हें मालाएँ पहनायी गयी

थीं, और उन लोगों ने लम्बे-लम्बे तकरीर दिये थे। सभा में बड़े जोशीले नारे लगाये जाते थे—

लाल किले से आयी आवाज,
आजाद हिन्द फौज जिन्दाबाद !
नेताजी के दाहिने हाथ,
ढीलन, सहगल, शाहनवाज।

एक बार जब कैप्टन शाहनवाज रतननगर में आये थे, तो उनके सम्मान में बहुत बड़ी सभा हुई थी। अपने भाषण में उन्होंने बतलाया था कि बर्लिन में एक बार हिटलर ने नेताजी से हाथ मिलाया था और कहा था कि हिन्दुस्तान की राजधानी से अंग्रेजों को निकाल भगाने के लिए मैं आपकी सभी सहायता करूँगा। वहाँ से नेताजी पनडुब्बी जहाज में बैठकर जापान की राजधानी टोकियो चले आये थे। वहाँ टोकियो के राजा की मदद से उन्होंने एक बहुत बड़ी फौज इकट्ठी की और उस फौज का नाम रखा—आजाद हिन्द फौज अथवा आई० एन० ए०। जयहिन्द की प्रथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने ही चलायी।

फिर जब कैप्टन ढीलन आये, तो उन्होंने कहा कि नेताजी के बारे में यह बतलाना मुश्किल है कि वे लड़ाई में मारे गये। वे बहुत बहादुर और चालाक सेनापति थे। लड़ाई के मैदान में, जब चारों ओर से तोपों की गड़गड़ाहट होती रहती, बम के भयानक धमाके होते रहते, नेताजी उस वक्त भी पीछे नहीं रहते थे। हमलोगों के लाख समझाने पर भी वे अपने को बचाने की कोशिश नहीं करते थे। उनका कहना था कि ब्रिटिश सरकार ने अभी कोई ऐसा हथियार नहीं तैयार किया, जो इन्हें मार सके। लड़ते-लड़ते जब हमारी फौज कुछ थक जाती, तो नेताजी फौज के बीच खड़े होकर कहते, "सिपाहियो, इस आजादी की जंग में मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकता। मैं तुम्हारे साथ भूखों मर सकता हूँ, प्यासा रह सकता हूँ और तुम्हारे सामने मरते दम तक अपने खून की एक-एक बूँद का हिसाब दे सकता हूँ और कुछ नहीं। उधर देखो, कान लगाकर सुनो। तोपों की गड़गड़ाहट के पीछे से आवाज आ रही है। हिंदुस्तान हमलोगों को बुला रहा है। इम्फल और कोहिमा की पहाड़ियों के उस पार से हिंदुस्तान

का लाल-किला हमसे खून माँग रहा है। बम के हर धमाके से आवाज निकल रही है—खून दो, आजादी लो! खून! खून!! खून!!!

कांग्रेस की सिफारिश पर ही चुनाव के बाद रतननगर कारखाने में आजाद हिंद फौज के सिपाहियों को नौकरी मिली। मगर, पीछे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि देश की आजादी के लिए जान से खेलनेवाले रतननगर के कारखाने में दरबानी करते थे। मैं आज भी एक ऐसी घटना याद किया करता हूँ कि कांग्रेसी होने के कारण एक साधारण टाइम-कीपर को कम्पनी ने राशनिंग अफसर बना दिया था। राशनिंग अफसर होने के बाद उस टाइम-कीपर ने ठेकेदारी भी ले रखी थी और ठेकेदारों की तरह ही मजदूरों का खून चूसता था।

आजादी के संबंध में एक-एक खबर खोजकर पढ़ लेने के बाद मैंने खाना खाया और तब माँ से पूछा, "तुम और बुधिया कोयला चुनने क्यों चली गयी थी?

"क्या हर्ज है। बहुत औरतें ऐसा करती हैं। चुन-चुनकर ही आज पाँच आने का कोयला बेचा है।

"हूँ....।" मेरे मुँह से निकला। इससे अधिक मैं कुछ बोल न सका। गेनरे पर पड़ा-पड़ा मैं बड़ी देर तक मिलनेवाली आजादी के बाद एक नये हिंदुस्तान का नक्शा बनाता-बनाता न जाने कब सो गया। शराब से बेहोश मजदूरों की बड़बड़ाहट बिल्कुल शांत पड़ गयी थी।

● ● ●

हिंदुस्तान की आजादी के लिए चुनाव लड़ने की तैयारियाँ होने लगीं। रतननगर और वनगांव के स्कूली लड़के सूरज निकलने से बहुत पहले ही उठते और झंडे लेकर प्रभात-फेरी करते थे। सन् १९४२ ई० के आंदोलन में गोली के घाट उतरनेवाले स्कूली लड़कों की पीढ़ी, तब होते सुबह गली-गली आजादी के गीत गाती फिरती थी। उनके कुरते की जेब पर बिल्ला लगा होता, जिस पर लिखा रहता 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक'। उनके चेहरे पर एक नयी आशा और उमंग की रोशनी झलकती थी। कंधे पर या हाथ में तिरंगा झंडा लिये वे जुलूस लेकर नगर की गली-गली में घूमते और राष्ट्रीय गीत गाते थे।

इस समय दयानाथजी पेंढारकर ने रतननगर के मैदान में मजदूर-संघ की ओर से पचीसों बार सभाएँ कीं। चुनाव-कोष में चन्दा देने के लिए उन्होंने बड़े जोशपूर्ण भाषण किये और मजदूरों से एक-एक दिन की मजदूरी ली गयी। पता लगा कि रतननगर के मालिक ने कई हजार रुपये चंदा दिये थे। उन दिनों मेरी समझ में यह बात नहीं आयी कि पूंजीवाद की ताकत को नाश करनेवाली संस्था कांग्रेस को इस पूंजीपति ने क्यों इतने रुपये दिये? आस-पास के गाँवों से देहाती वोटरों को ले आने के लिए रतनमलजी ने अपनी ओर से बारह ट्रक मय ड्राइवर और पेट्रोल के दिये थे। जब वोट पड़ने लगा, तब रतननगर के थाने में एक तमाशा खड़ा हो गया। लाल बक्स कांग्रेस का था और हरा बक्स मुस्लिम-लीग का। रतननगर थाने के चारों ओर एक तरह से मेला लग गया था। छोटे-छोटे पेड़ों पर बैठकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक लाउड-स्पीकर के जरिये नारे लगा लगा रहे थे—

लाल बक्स में, वोट दो!
हरा बक्स, गद्दारों का!!
हिन्दुस्तान, जिन्दाबाद!!!

वोटरों को साथ ले आते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक थाने के पास पहुँचते-पहुँचते गाने लगते—

वोट का है जमाना, सँभल जाइएगा।
कोई पेड़ा खिलाये, तो खा लीजिएगा,
कोठरिया में जाकर, बदल जाइएगा।

भीड़ में खड़ी जनता यह सब सुन-सुनकर खुशी की हँसी हँस देती। ऐसा मालूम होता था, जैसे आजादी के लिए लोगों ने जो मन्नतें मानी थीं, वह पूरी कर रहे हैं। वोट देनेवाला, फटे-चिटे कपड़े पहने देहाती आदमी स्वयंसेवक के साथ लपकता हुआ पोलिंग-बूथ की ओर जाता था। लगता, जैसे पोलिंग-बूथ में जाते-जाते ही उसके सुख का सपना सच हो जायेगा। ट्रक से उतरते हुए देहातियों की भीड़ कुछ अजीब-सी लगती थी। किसी के कन्धे पर अपने शरीर की नाप से भी बड़ी लाठी होती, किसी के कन्धे पर फटा-पुराना गमछा, किसी के माथे पर मैले कपड़े की पगड़ी, जिसके एक छोर के कोने में, खइनी के लिए चुनवटी बँधी दीखती थी। ट्रक से उतरकर ये चारों ओर बड़े अचरज के साथ देखने लगते और तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक उनके हाथ खींच-खींचकर कहते, "चलो, चलो। पहले वोट दे लो। उधर क्या देखते हो? चलो, तुमलोगों के भोजन का प्रबन्ध हुआ है। वोट देकर चलो, खिलवा दूँगा।"

"ठहरो बाबू.....।"

"देर मत करो। समय खत्म हो रहा है।"

"मैं भूल गया। मुझे फिर से बतला दो।"

"क्या भूल गये?" स्वयंसेवक पूछते।

"गाँधी बाबा का बक्स किस रङ्ग का है, वोट उसी में देना होगा न?"

"हाँ, याद रखो। कांग्रेस का बक्स लाल है।"

"बस, बस। याद कर लिया। गाँधी बाबा को छोड़कर हम दूसरे को नहीं जानते।"

"बस, तो चलो। ठीक है।"

और इस तरह कांग्रेस के स्वयंसेवक जो स्कूली लड़के होते, वोट देनेवालों को झटपट पोलिंग-बूथ तक छोड़ आते थे। मैंने बड़ोदकर बाबू के कहने पर पैसे की हर तङ्गी रहते हुए भी कारखाने से पाँच रोज की छुट्टी ले ली थी। देहात से आये हुए वोटरों को खिलाने के लिए इन्तजाम किया गया था। इस मँहगी के जमाने में भी सैकड़ों बोरे चावल आया था। मैं भोजन पकाने के लिए लकड़ी फाड़ता था। रसोई बनती जाती और लोग खाते जाते। जब काम चलने के लायक लकड़ी फाड़ लेता, तब दौड़कर थाने के पास वोट पड़ने का तमाशा देखने चला जाता था। इसी समय एक कांग्रेसी और एक लीगी में झगड़ा हो गया। अगर दारोगा ने बीच-बचाव न किया होता, तो मामला गम्भीर हो जाता। मार-पीट की नौबत आ गयी थी। झूठ क्यों बोलूँ, मैं भी दौड़कर एक लठिया खोजने चला गया था। बात यह थी कि एक मौलवीसाहब अपनी बीवी के साथ मुस्लिम-लीग के बक्से में वोट देने आये थे। वोट देकर तो वे चले गये, मगर फिर दुबारा उनकी बीवी दूसरे मौलवीसाहब की बेगम बनकर वोट गिराने चली आयीं। उन्होंने अपना नाम भी दूसरा बतलाया। हालाँकि बेचारी बुरका बदलकर आयी थी, मगर कांग्रेसी सज्जन ने पहचान लिया और इस पर उन्होंने आपत्ति की। स्थिति गरम होने लगी, तो मौलवीसाहब ने अपनी छड़ी उठायी और कांग्रेसी ने उनकी तुर्की टोपी उछालकर उन पर घूँसा ताना।

मुझ पर आजादी का नशा कुछ कम नहीं चढ़ा हुआ था। पैसे की बड़ी तंगी थी। तनख्वाह मिलने में भी देर। घर में * कटाकटी चल रही थी। लेकिन मैं माँ की परवाह करता, न बुधिया की और न सनीचरी की। चुनाव के भीड़-भाड़ में इतनी फुर्सत भी नहीं थी कि किसी संगी-साथी से कुछ हथफेर माँग लाता। मेरे पीछे में कोयला चुनने के लिए माँ अपनी बेटी और पतोहू को भी ले जाने लगी। मैं बड़ी रात को फुर्सत पाता, तो वहीं कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में एक ओर पड़ रहता! पाँचवें रोज वोट पड़ने का काम खत्म हुआ और मैं करीब छः बजे झोपड़ी के दरवाजे पर पहुँचा। यहाँ आते-आते ही मैंने जो कुछ देखा, उससे मेरा दिल दहल गया। झोपड़ी के दरवाजे पर बैठी सनीचरी जोर-जोर से रो

* भुखमरी।

रही थी और मेरी माँ जमीन पर गिरी रो और छाती पीट रही थी। उन दोनों की रुलायी से ऐसी आवाज आ रही थी, जैसे कोई अपना आदमी मर गया हो।

"अरे, इस तरह क्यों रो रही हो, क्या बात है?" मैंने पूछा।

"........।" दोनों में से किसी ने कुछ न कहा। वे रोती रहीं।

"अरे, तुम कहाँ थे मंगरू?" बगल से दौड़ा हुआ दीपन आया। अँधेरा हो चुका था। उसके हाथ में किरासन-तेल की ढिवरी थी।

"मैं तो थाने पर था। वोट पड़ रहा था न।"

"और यहाँ क्या हो गया, सो भी कुछ मालूम है?"

"नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।"

"आओ, आओ, इधर देखो। अब क्या गाँधी बाबा बुधिया को जिंदा कर देंगे?"

"क्या बात....?" मैंने डरते हुए पूछा।

"राम राम, तुम भी कैसे आदमी हो....?" कहता हुआ दीपन मुझे वहाँ से जरा पीछे की ओर ले गया, जहाँ मैं खड़ा था। मेरे आने पर झोपड़ियों में रहनेवाले मजदूर जिनकी इस वक्त ड्यूटी नहीं थी, झोपड़ियों से निकल-निकलकर इधर ही आने लगे। वहाँ से करीब दस कदम आगे पूरब की ओर मुझे ले जाकर, दीपन ने ढिवरी की रोशनी में बुधिया की लाश दिखलायी। कोयला चुनने की दो टोकरियों में बुधिया जोड़-बटोरकर रखी गयी थी। सिर अलग था, धड़ अलग। जाँघें अलग थीं, पैर अलग। अपनी प्यारी बहन बुधिया को इस शकल में देखकर मुझ पर क्या गुजरा होगा, शायद यह बतलाने की जरूरत नहीं महसूस होती। प्यार, जो बहन के लिए होना चाहिए, वह धनी भाई के दिल में भी रहता है और गरीब भाई के दिल में भी। क्या बुधिया के लिए मेरे दिल में कोई मुहब्बत नहीं थी? थी, बड़ी-से-बड़ी मुहब्बत थी। दो मिनट तक दिमाग ने काम नहीं किया कि मेरी मजबूरियाँ मेरे साथ कैसा मजाक किया करती हैं।

"यह क्या दिखला रहे हो, दीपन?" मेरे मुँह से निकला।

"जो देख रहे हो, सो ठीक देख रहे हो।"

"मगर यह सब कैसे....?"

"बुधिया कोयला चुनते वक्त इंजन के नीचे आ गयी····।"

"घर में क़फ़न के लिए कोई एक गज भी नया कपड़ा नहीं था। माँ और सनीचरी रोना नहीं बंद कर सकीं। सेठ की जनाना पास आकर तो खड़ी हो गयी, मगर छूत से या भय से—कह नहीं सकता, उसने मेरी माँ और सनीचरी को समझाने की कोशिश न की। मेरा कलेजा फट रह था, मगर किसी तरह हिम्मत बटोरकर मैंने बुधिया की लाश के टुकड़े को सम्हालकर एक ही टोकरी में कर लिया। ढिबरी की रोशनी में मैंने अच्छी तरह देख लिया कि खून बिलकुल सूख गया है। टोकरी के ऊपर मैंने अपना पुराना गमछा ढँक दिया और दीपन से पूछा, "चलोगे, इसे गाड़ देने?"

"दीपन बोला, "चलूँगा।"

"चलो।" मैंने कहा और साथ में एक कुदाल ले ली।

बुधिया की लाश से भरी टोकरी जब मैंने माथे पर उठायी, तो माँ और सनीचरी और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगीं। माँ तो अपनी कमज़ोर छाती पर इस तरह मुक्के मारने लगी, जैसे सड़क या मकान की छत पत दुरमिस चलायी जा रही हो। उस वक्त उन दोनों की रुलायी में कितना दर्द था, कहा नहीं जा सकता था। जानवर माताएँ भी नहीं चाहतीं कि उनकी संतान को उनसे कोई अलग कर दे। फिर यह तो सदा-सदा की जुदाई थी। ऐसी जुदाई, जिसके बाद भेंट होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। रात अपने रंग गहरा कर रही थी, अँधियारा अपनी चादर फैला रहा था।

माथे पर मरी और कटी हुई बुधिया को टोकरी में लिये जब मैं दीपन के साथ नदी-किनारे पहुँचा, तो बिलकुल अँधेरा हो चुका था। चारों ओर सूनापन! हवा में साँय-साँय की आवाज!! हमलोग अब बालू पर चल रहे थे। सामने ही नदी की धारा चुपचाप बढ़ रही थी। हम ज्यों-ज्यों बढ़ते जा रहे थे, आस-पास की भयंकरता बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे हमलोग पानी के पास पहुँच गये। मेरा पहला इन्क़लाबी दोस्त रकटू यहीं जलाया गया था; पानी में एकाएक न-जानें कैसे और क्यों, बड़े जोरों से 'छपाक्' की आवाज हुई। जैसे मेरा दोस्त

रकटू पानी से निकलकर यह पूछना चाहता हो, "बतलाओ, तुम अपने और मुझ-जैसे मजदूर दोस्तों के लिए क्या कर रहे हो।"

"तुम तो अब नहीं रहे रकटू, मगर अब हिंदुस्तान ने आजादी की लड़ाई जीत ली है। अब यहां अमीर-गरीब का कोई भेद-भाव नहीं रह जायेगा। अब मजदूरों को सुख मिलेगा, शांति मिलेगी। तनख्वाहें बढ़ेंगी। उनके बच्चों के पढ़ने का इंतजाम होगा, दवा के लिए अस्पताल खुलेंगे, इसीलिए तो देख नहीं रहे हो, कितने संतोष के साथ कोयले चुनकर पेट भरनेवाली अपनी प्यारी बहन बुधिया को इस बालू के नीचे सुलाने आया हूं। देखो, यह भी तुम्हारी बहन ही हुई, इसका खयाल रखना। इंजन के खतरनाक पहियों से इसे हमेशा बचाना, उसकी भयानक सीटी की आवाज इसके कानों में न पड़ने देना। खाने के लिए चिल्लाये, तो अँगोछे से इसका मुँह बाँध देना, मगर कोयला चुनने के लिए मत जाने देना। इसे कहना, यह उन दिनों का इंतजार करेगी, जब मजदूर 'मजदूर' होते हुए भी देश के स्वामी समझे जायेंगे और किसी भी मजदूर का बच्चा बुधिया की मौत न मरेगा····।" मैंने सोचा, रकटू का भूत आयेगा तो यही कह दूँगा।

मगर पानी के भीतर से न रकटू निकला न रकटू का भूत। मैंने दीपन से पूछा, "यह कैसी आवाज हुई?" उसने बहुत धीमे स्वर में कहा, "कोई बड़ी मछली कूद-फाँद रही होगी।"

"हूँ····।" मेरे मुँह से निकला।

"कहाँ गाड़ोगे?" दीपन ने पूछा।

"कहा गाड़ूं?"

"यहीं गाड़ो न, यहाँ का बालू नरम जान पड़ता है।

"अच्छा।" कहकर मैंने अपने माथे से टोकरी उतारी। फिर उसे बालू पर ही एक ओर रखकर हम दोनों ने जाँघ-भर गहरा बालू खोदा। बुधिया को छिपाने के लायक काफी गड्ढा हो गया। दीपन ने कहा, "बस इतना ठीक है।"

"हूँ····।" मैंने कहा।

"चलो, अब नदी का पानी छिड़क दो।"

"हाँ।"

"टोकरी को उठाकर मैं वहाँ ले गया, जहाँ बालू और कंकरीली मिट्टी से नदी का पानी टकरा रहा था। पाँच चुल्लू पानी से मैंने लाश को नहला दिया। फिर उसे उठाकर खोदे हुए गड्ढे के करीब ले आया। मैंने न-जानें, जान-बूझकर भी दीपन से क्यों पूछा, "अब गाड़ दूँ?"

इसके बाद टोकरी और गमछा सहित मैंने बुधिया को उसे गड्ढे में डाल दिया और ऊपर से इतना बालू भर दिया कि बुधिया फिर निकलकर रेलवे-लाइन पर कोयला चुनने नहीं गयी।

"हाँ, अब तो सब ठीक ही हो गया।" दीपन बोला।

"हाँ, तो अंग्रेज गवर्नरों की मातहत में जब कांग्रेस के नेता सरकारी पदों पर चले गये, तब बनगाँव की कांग्रेस कमेटी के दफ्तर का रंग ही बदल गया। टेबुल पर खादी के कपड़े बिछे, परदे खादी के टँगे और खादी तथा आजादी का प्रचार होने लगा। कपड़े का कंट्रोल तो अब भी था, मगर कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी की दस्तखत पर कुछ लोग जरूरत से भी अधिक कपड़े लेने लगे। खादी की धोती और कुरता पहने अगर कोई आदमी कंट्रोलवाली दूकान के सामने खड़ा हो जाता, तो दूकानदार गद्दी छोड़कर उसके पास चला जाता और अदब के साथ पूछता, "कहिए, आपकी क्या सेवा करूँ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"तो आप यहाँ खड़े क्यों हैं?"

"यूँ ही।"

"नहीं, आपको कष्ट हो रहा है। चलकर अन्दर दूकान में बैठिए न।"

"नहीं, मुझे कोई तकलीफ नहीं है।"

"देखिये, कोई सेवा लेनी हो, तो आज्ञा दीजियेगा। दूकान आप ही की है।"

इसी साल मिल के बने हुए कपड़ों की इतनी चोरबाजारी हुई कि बाजार से कपड़े गायब हो गये। खुद सनीचरी के लिए मैंने एक साड़ी जो तीन रुपये चार आने की थी, आठ रुपये दो आने में खरीदी। कुछ ही रोज में मैंने देखा कि जिस कांग्रेस कमेटी के दफ्तर के पास अपनी एक साइकिल नहीं थी, उस दफ्तर

में अपनी जीपगाड़ी आ गयी। थाना कांग्रेस कमेटी के मंत्री जीपगाड़ी पर चढ़कर टहलने लगे। तभी बीलट भाई चार रोज की छुट्टी लेकर गाँव पर गये। उन्होंने आकर बतलाया कि दिघवारा थाने से बच्चाबाबू एम० एल० ए० हो गये। इधर अखबार पढ़ने, मजदूर-संघ में रहने और बड़ोदकर बाबू से बराबर राजनीतिक बातें पूछते रहने के कारण मुझे इतनी समझ हो गयी थी कि एम० एल० ए०; एम० एल० सी०, और एम० पी० किसे कहते हैं। बीलट भाई तो मूर्ख थे, मगर न-जानें उन्होंने मुझसे क्यों ऐसी बात कही। वे बोले, "चुनाव में लोगों ने ईमानदारी की लुटिया डुबो दी।"

"सो क्या?" मैंने पूछा।

"यहाँ का तो मुझे मालूम नहीं। कौन घर के कैसे हैं। मगर बच्चाबाबू को तो जवार भर जानता है।"

"हाँ, जानता हूँ कि सन् ४२ के आंदोलन में वे भी गिरफ्तार हुए थे। जेल गये थे।" मैंने कहा। बात भी सही थी।

"जेल चले जाने से क्या होता है?"

"तुम क्या कहना चाहते हो?" मैंने पूछा।

"जवार-भर के लोग जानते हैं कि दर्जनों पुश्त से वे लोग किसानों को सता-सताकर, उनकी चूतड़ों पर बेंतें लगाकर लगान वसूल करते आये हैं, रैयतों से वे बेगार लेते आये हैं। उनकी अपनी जमींदारी में कौन ऐसा गिरहस्त किसान बचा, जिसके यहाँ बेदखली की नोटिस तामिल नहीं हुई? मुझे तो बड़ा अचरज होता है कि उसी खांदान के लड़के बच्चाबाबू दो-एक बार जेल जाकर चुनाव में अगर एम० एल० ए० ही हो गये, तो वे जमींदारी राज कैसे खतम करेंगे? मुझे तो दाल में कुछ काला मालूम होता है।" बीलट भाई बोले। उनकी आवाज में गंभीरता थी।

"तुम पागल तो नहीं हो गये हो, बीलट भाई?" मैंने पूछा।

"सो क्या, मुझमें कौन ऐसा लच्छन है?"

"यह तुम क्या कह रहे हो?"

"ठीक तो कह रहा हूँ।"

"छिः छिः, ऐसी बात मुँह पर न लाओ!"

"अरे.......!" बीलट भाई ने अचरज जाहिर किया।

"राम, राम, ये लोग महापुरुष हैं। जो आदमी गाँधी बाबा के दल में चला जाता है, उसकी सारी बुराइयाँ दूर हो जाती हैं।"

"मगर सब कोई गाँधी बाबा की तरह नहीं हो सकता। मैं तो समझता हूँ कि अगर गाँधी बाबा को यह बात मालूम हो जाये कि बच्चाबाबू का घराना ऐसा है, तो वे उन्हें फौरन निकाल बाहर कर दें।" बीलट भाई बोले।

"हूँ.......।" कहकर मैं कुछ सोचने लगा।

"और एक बात मालूम है या नहीं?"

"क्या?"

"सुनने में आया कि बच्चाबाबू के थाने में जाते ही दारोगा कुर्सी छोड़कर खड़ा हो जाता है। एक आदमी ने बतलाया कि वे जब थाने में कपड़े के कंट्रोल की दूकानें खुलवाने के लिए सिफारिश करने छपरा गये थे, तो कलक्टर और एस० डी० ओ० ने उनसे हाथ मिलाया था। सन् ४२ में इन्हीं लोगों ने न गोली चलवायी थी?"

"सो ऐसे लोगों को सजा मिलेगी।" मैं बोला।

"सचमुच?"

"हाँ; तुम तो यहाँ नहीं थे न। बीच में एक रोज बड़े मिनिस्टर आये थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि अंग्रेजी हुकूमत के समय के जिन सरकारी अफसरों ने सन् १९४२ के क्रांतिकारियों को तबाह करने में अंग्रेज सरकार का हाथ बँटाया, उन सबों को कड़ी-से-कड़ी सजा दी जायेगी, ताकि उनको पता चल जाये कि देशद्रोह करने का फल बुरा होता है।" मैंने बतलाया।

"तब तो बड़ी अच्छी बात है।

हिन्दुस्तान अब दो भागों में बँट चुका था। एक नया देश बन गया। इस देश का नाम न आज तक किसी ने इतिहास में पढ़ा था और न अपने कानों से सुना था कि इस नाम का देश कहीं है। सो जिन्नासाहब ने मुसलमानों के लिए एक नया मुल्क पैदा कर ही लिया। हिंदुस्तान के कितने जिलों में बिना सिल-

सिले के बन गया—पाकिस्तान। अखबारों में समाचार छपा था कि पाकिस्तान की राजधानी कराची बनायी गयी है। सुना कि दो वर्ष के बाद जिन्नासाहब वहाँ के सबसे बड़े अफसर होंगे।

इधर कारखाने में मिल-मालिक के साथ हमलोग एक हक की लड़ाई लड़ रहे थे। दयानाथजी एकाएक न-जाने क्यों, अहमदाबाद चले गये और जाते वक्त वड़ोदकर बाबू को मजदूर-संघ का सब कुछ बनाते गये। खुद मुझे नहीं मालूम कि पढ़ने में मैं इतना तेज क्यों हो सका? चुनाव के बाद कारखाने की ओर से एक क्लब और खुल गया। जिसका नाम पड़ा, मजदूर-क्लब। इस क्लब में खेलने के तो सामान थे ही, पढ़ने के लिए एक पुस्तकालय भी खुला। अखबार भी मँगाये जाने लगे। उन दिनों पटने से 'आर्यावर्त्त', 'इंडियन नेशन', 'सर्च-लाइट' 'प्रदीप' और दैनिक 'विश्वमित्र' आता था। बनारस से 'आज', 'संसार' और 'साप्ताहिक संसार' आता। इलाहाबाद से 'लीडर' और 'भारत' और क्या बतलाऊँ? बहुत से अखबार आते थे। इस क्लब के मेम्बर सिर्फ मजदूर ही बन सकते थे। और वही मजदूर, जो रतननगर कारखाने में काम करते हों। मेम्बर होने पर क्लब को आठ आने प्रति मास देना पड़ता था। पुस्तकालय जो खुला, सो उसमें हिन्दी के बहुत-से उपन्यास-नाटक, कविता, इतिहास और जासूसी की कहानियों से भरी पुस्तकें पढ़ने को मिलतीं। मैं उसका मेम्बर हो गया। ऐसी बात नहीं थी कि अब मैं खुशहाल हो गया था, बल्कि मेरे दिमाग में यह, जहर कहो या अमृत, भर गया था कि जब तक मैं पढ़-लिख न सकूँगा, तब तक अपनी तकलीफों को दूर करके अपने सभी मजदूर भाइयों की भलाई के लिए कोई भी ठोस कदम नहीं उठा पाऊँगा। इसलिए क्लब की तरफ जाना मेरे लिए जरूरी हो गया। कभी पढ़ने के लिए क्लब के पुस्तकालय में जाता, कभी नाटक कभी उपदेश की कहानियाँ और कभी [illegible] की जीवनियाँ ले आता था। उपन्यासकार प्रेमचंदजी का नाम मैंने यहीं से ही जाना। उनकी [illegible] पढ़ने में बड़ा आनन्द आता था। ऐसा लगता कि उपन्यासों में जिन [illegible] का वर्णन रहता है वे सब दुःखी और किसान के मन की बातें होती हैं [illegible] मैं प्रेमचंदजी के उपन्यासों को पढ़ने लगता, तो हमेशा [illegible]

में छिपी हुई बातों को जान गये थे। काम से न सही, मन से ही सही, उनकी पुस्तकों से रोज-रोज की कुढ़न में कुछ शान्ति मिल जाती थी। क्लब में जाकर, जब मैं लाइब्रेरियन से प्रेमचंद की ही पुस्तकें माँगता, तो वह मेरी ओर घूरकर देखने लगता था।

हाँ, क्लब में राजनीतिक पुस्तकों की बड़ी कमी थी। मगर मुझ-जैसे मूर्ख के पढ़ने के लिए उतनी ही पुस्तकें काफी थीं। जब रात के दो बजे से मेरी ड्यूटी होती, तब आठ बजे ही झोपड़ी से निकल पड़ता। बिजली-बत्ती के खंभे के नीचे बैठकर डेढ़ बजे रात तक किताब पढ़ता और डेढ़ का भोंपा बजते ही कारखाने में घुस जाता था। इधर अंग्रेजी की जानकारी भी बढ़ गयी थी। बड़ोदकर बाबू ने व्याकरण खूब रटवाया। मैंने शब्दों के माने खूब रटे। मगर, एक बात और बतला दूँ। इतना ज्ञान पा लेने के बाद भी अपने लिए मेरे दिल में जो छोटापन था, उससे मैं बच नहीं सका था। पढ़े-लिखे बाबूलोगों के साथ मैं नहीं बैठ सकता था। उनसे बराबरी की बातें करने की हिम्मत नहीं होती थी। मन में हरदम यह शोर हुआ करता, "भँगरुआ, तू जाति का चमार और कुली है।"

लेकिन, मेरे इतना पढ़ लेने से क्षपसी भाई बहुत खुश थे। वे साथ के मजदूरों से मेरी तारीफ करते। एक बात जब उन्होंने अपने इञ्जीनियर से मेरे लिए यह सिफारिश की कि हुजूर यह तो जाति का चमार-भर है। अंग्रेजी का अखबार पढ़ता है। सरकार, अगर इसको 'हेल्पर' बना लिया जाए, तो बेचारा आदमी बन जाएगा। तो इञ्जीनियर ने कहा था, "आदमी जरा बदमाश मालूम होता है। मुझे मालूम है, मजदूर-यूनियन में बराबर आता-जाता है। चुपचाप इसे ब्वायलर में गन्धक झोंकने दो।"

कारखानों में 'हेल्पर' का माने होता है, कारखाने का वह कर्मचारी जो मिस्त्री (फीटर) के काम में सहायता करे। वह मिस्त्री को अपना उस्ताद मानकर सब कुछ करता है। काम सिखलाने की लालच से वह मिस्त्री की बहुत खुशामद करता भी है। आगे चलकर यही आदमी मिस्त्री (फीटर) हो जाता है। उसकी तनख्वाह बढ़ जाती है। हेल्पर होने पर आदमी की इज्जत ऐसे भी

बढ़ जाती है कि उसकी गिनती कुलियों में नहीं, कारीगरों में होती है। आखिर झपसी भाई की सिफारिश बेकार साबित हो गयी।

मजदूरों की तकलीफों का सरकार कुछ खयाल नहीं कर रही थी। मिल-मालिक की ओर से हमलोगों पर अत्याचार किये जा रहे थे। चोरी के जुर्म या अपने अफसर से बहस करने के अपराध में जब कोई मजदूर बर्खास्त कर दिया जाता, तो बर्खास्त होने की तारीख से लगातार उसे सप्ताह-दो-सप्ताह फुर्सत नहीं दी जाती थी, इसका माने यह नहीं कि उससे काम लिया जाता था। उसे बर्खास्त होने का एक कार्ड मिलता था। जिसे लेकर उसे राशन आफिस, लेबर आफिस और कई दफ्तरों में इसलिए जाना पड़ता था कि कम्पनी यह देख ले कि उस मजदूर के नाम पर कम्पनी ने कुछ उधार तो नहीं दिया है, ताकि उसके आखिरी हिसाब से उतनी रकम या जो सामान वह ले चुका हो, उसका दाम काट लिया जाए। इन सब दफ्तरों के अफसर जब यह लिख देते कि उसके नाम पर कम्पनी का कुछ भी बाकी नहीं है, तब उसे तनख्वाह दे दी जाती थी। मगर इस तरह की रिपोर्ट लेने में मजदूर उतने पैसे खा चुका होता था, जितने पैसे उसे कम्पनी देनेवाली होती थी। अगर किसी मजदूर को कम्पनी की ओर से क्वार्टर मिला है और उसकी नौकरी छूट गयी, तो उसे नोटिस दी जाती थी कि वह चौबीस घण्टे के अन्दर क्वार्टर छोड़ दे। जो मजदूर ऐसा नहीं कर पाता, उसके सामानों को दरवान के जरिए बाहर फेंकवा दिया जाता और क्वार्टर में कम्पनी का ताला लग जाता था। चोरी के जुर्म में जो मजदूर रात की ड्यूटी में पकड़ा जाता, उसे सुपरिण्टेण्डेण्ट के दफ्तर में बन्द कर दिया जाता और बदन तोड़-तोड़कर दरवान उन्हें पीटते थे। कारखाने से निकलते वक्त छुट्टी के समय कुछ मजदूर जूट को तेल में भिगो लेते या कहीं से कपड़े बटोरकर छुट्टी में रख लेते, जिनसे मशीन के पुर्जे पोंछे जाते थे, और साथ में डेरे पर चूल्हा सुलगाने के लिए ले जाना चाहते। अगर उतनी भीड़ में भी दरवान देख लेता, तो उनके हाथ से उसे छीन लेता और भीतर ही सामने की ओर फेंक देता था। जब दरवानों की ड्यूटी बदलने लगती, तो जाते वक्त वे खुद उन जूटों को उठाकर ले जाते। ऐसा मैंने कई बार देखा था।

ग्रिश एक प्रकार का बहुत ही गाढ़ा तेल होता है, जो कारखानों में रहता है। इससे मशीन के पुर्जे आसानी से चलते हैं। उनमें मोरचा नहीं लगता। जहाँ मशीन के दो पुर्जे आपस में रगड़ खाते हैं, वहाँ पर भी यह तेल दिया जाता है। इस तेल में एक और खूबी होती है। मिट्टी के दीये में डालकर इससे बड़ी आसानी के साथ तेल का काम लिया जाता है। यह बहुत तेज और जल्द जलता है। एक दिन एक दरवान ने मुझसे पूछा, "तुम कहाँ काम करते हो ?

"एसिड प्लांट में।"

"तुम्हारे यहाँ ग्रिश रहता है ?"

"हाँ, रहता है।"

"एक काम करो तो दोनों आदमी का काम चले।" उसने कहा।

"क्या ?" मैंने पूछा।

"कल से मेरी ड्यूटी मेन-गेट पर रहेगी। अगर तुम मेरी ड्यूटी में कारखाने से निकलो, तो जूट के भीतर खूब ग्रिश लपेटकर ले आना। मैं तो तुमसे छीन कर फेंक दूँगा। मगर पीछे उठाकर ले आऊँगा। दरवानी क्वार्टर में रहता हूँ—तीन नम्बर। पीछे आकर थोड़ा तुम भी ले लेना।"

"लेकिन यह तो चोरी है।"

"चोरी·····?" वह रुका।

"हाँ, चोरी है! मुझसे यह नहीं होगा। मैं खुद अपने लिए भी नहीं ले आता।"

"चूल्हा कैसे सुलगाते हो, यार ?"

"लत्ते से।"

"वाह·····।"

"हाँ·····।" कहकर मैं चल पड़ा।

इन्हीं दिनों सोशलिस्ट पार्टी की तेजी होने लगी। पटने से एक साप्ताहिक आता था। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में—'जनता'। उसमें कांग्रेस सरकार की कमजोरियों का पर्दाफाश किया जा रहा था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गाँधी की राजनीतिक पॉलिसी की खिल्लियाँ उड़ायी जा रही थीं।

कांग्रेस अधिकारियों की हुकूमत के तरीके पर छींटे डाले जा रहे थे और पक्की खबर के तौर पर लोगों में यह विश्वास पैदा किया जा रहा था कि सोशलिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता वही हैं, जो पहले आजादी मिलने के दिनों तक नेहरूजी के साथ स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ते रहे थे। मजदूरों के ऊपर यह प्रभाव पड़े बिना बाकी न रहा कि कांग्रेस की नीति में यदि कोई गहरा दाग न होता, तो इतना योग्य नेता उससे अलग न हो गया होता। धीरे-धीरे सोशलिस्ट पार्टी का भी दफ्तर खुल गया और कई मजदूर सोशलिस्ट हो गये। तभी मजदूर की ओर से मिल-मालिक के यहाँ 'बोनस' की माँग भेजी गयी। कम्पनी की सालाना आमद में जो हिस्सा मजदूरों को दिया जाता है, उसे बोनस कहते हैं। इसमें कुछ महीने की तनख्वाह मजदूरों को दी जाती है। लेकिन कम्पनी ने बोनस देने से इन्कार कर दिया। उत्तर मिला कि कम्पनी को इस साल बहुत घाटा हुआ है। मजदूर-संघ की सभा में यह फैसला किया गया था कि अगर कम्पनी हमारी माँगों को स्वीकार नहीं करती, तो हमलोग हड़ताल करेंगे। कारखाने बन्द कर देंगे। मजदूरों की दूसरी सभा बुलाकर वड़ोदकर वाबू ने कंपनी का फैसला मजदूरों को इस तरह सुना दिया—

"मजदूर भाइयो! मैंने आपकी उचित माँगें कम्पनी के सामने रखीं। बहुत समझाने की कोशिश की। मगर मिल-मालिक के कानों पर जूँ तक न रेंगा। तय यह हुआ कि यह मामला पंचायत में चली जाये। सरकार ने ऐसे मामलों का निपटारा करने के लिए जजों को बहाल कर रखा है। मैंने आपलोगों की ओर से कम्पनी की यह सलाह मान ली। पंचायत पर मेरा विश्वास है और आपलोगों को भी विश्वास होना चाहिए। ऐसी हालत में, जबकि हमारा देश संकट के काल से गुजर रहा है, हमें नयी आजादी को सम्भालना है, मेरी समझ में हड़ताल करना उचित नहीं। शान्ति के तरीके से जो झगड़ा निबट जाय, वही अच्छा है। हम सरकार की ओर से बहाल किये गये पंच से भी आपकी माँगों के लिए लड़ेंगे और हमें पूरा यकीन है कि आपको बोनस मिलकर रहेगा। इसलिए आपलोगों स मेरी प्रार्थना है कि रोज की तरह आज भी आप काम पर जायें और शान्तिपूर्वक पंच के फैसले का इन्तजार करें।"

बड़ोदकर बाबू के मुँह से इतनी बातें सुनकर सभा में आये दस हजार मजदूर बिल्कुल सर्द हो गये। सभी आपस में काना-फूसी करने लगे, वे सभा के मैदान को छोड़-छोड़कर न-जानें, क्या-क्या भुनभुनाने लगे। सभा के बीच से कोई नारा नहीं सुनायी पड़ा। महरुमियत फैलने लगी।

● ● ●

२१

उस रोज हड़ताल की बात उठ जाने बाद मजदूर सोशलिस्ट पार्टी की ओर अपने-आप खिचने लगे। मगर, न-जाने क्या कारण था कि बड़ोदकर बाबू के चेहरे पर उदासी का एक चिह्न भी न दीख पड़ा। मैं उनका मुँहलगू हो गया था। मुझे इस बात की बड़ी फिक्र हो गयी। जिन मजदूरों को मैंने बड़ोदकर बाबू की देख-रेख में चलनेवाले मजदूर-संघ का मेम्बर बनाया था, उनसे बात-बात पर बहस होने लगी। वे बड़ोदकर बाबू की झण्डाबरदारी को कबूल करने के लिए अब तैयार नहीं हो रहे थे। इसी वक्त सोशलिस्ट पार्टी की ओर से एक बहुत बड़ी सभा हुई, जिसमें कांग्रेस की नीतियों की सोशलिस्ट नेताओं ने ऐसी खरी-खोटी आलोचना की कि मजदूरों की सहानुभूति पा लेना उनके लिए कुछ मुश्किल नहीं पड़ने लगा। सभा में एक साथ हाथ उठाकर मजदूरों ने सोशलिस्ट पार्टी के बतलाये हुए रास्ते पर अपना संघर्ष चलाने का निश्चय कर लिया। रतन-नगर की हालत में विचित्र सरगर्मी पैदा हो गयी। मैदान में, कारखाने में, झोपड़ों में, शराबखाने में और कारखाने की ओर से मिले हुए गंदे और तंग क्वार्टरों में मजदूर इस विषय पर बातें करते होते कि मजदूर-संघ हमारी भलाई करनेवाला है या सोशलिस्ट मजदूर यूनियन। सोशलिस्ट पार्टी की ओर से जो दफ्तर खोला गया था, उसका नाम उनलोगों ने 'सोशलिस्ट मजदूर यूनियन' रखा था। लेकिन, मुझे यह जानकर भी खुशी हुई थी कि सरकार ने अभी 'सोशलिस्ट

'मजदूर यूनियन' को रजिस्ट्रेशन नहीं दिया है। इसका अर्थ यह था कि सरकार ने उस यूनियन को कानूनी मान्यता नहीं दी है। अभी वे लोग गैरकानूनी ढंग के मजदूर-नेता समझे जाते हैं।

झपसी भाई अपनी जनाना और बाल-बच्चों को क्वार्टर में ले आये थे। मैंने एक दिन मजाक किया, "झपसी भाई, भउजी के हाथ का बना कभी मुझे चखाओ न। अरे भाई, छोटे भाई का भउजी में आधा हिस्सा होता है।

"अरे भाई, तुम भउजी को ले न जाओ। बाल-बच्चे भी बिना मिनहत के मिल जायेंगे।" झपसी भाई बोले।

"हें हें हें हें····।" मैं हँस पड़ा।

"दाँत क्या *चिआरता है, चल आज खा ले। भतीजे-भतीजी को भी देख लेना।"

"रही बात पक्की!" मैं बोला।

"पक्की नहीं तो कच्ची? चल। जो साग-सत्तू बना होगा, उसी में शामिल हो जाना।"

"और हमलोग हैं किस लायक झपसी भाई?" मेरे मुँह से निकला।

"सामने ही टंकी में तेजाब खोल रहा था। गंधक और तूतिया की दुर्गन्ध नाक में समा रही थी। मैं ब्वायलर में ट्राली पर गंधक भर-भरकर झोंक रहा था। उसका पीला-पीला और तीखा धुआँ मेरे मुँह और नाक की राह घुसकर मेरे फेफड़े की ताकत बढ़ा रहा था। तभी एक ओर से इन्जीनियर आया और दूसरी ओर से सुपरवाइजर। झपसी भाई दूसरी ओर भागे और मैं ट्राली में जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर गंधक के टुकड़े भरने लगा। सुपरवाइजर मेरी पीठ के पीछे आकर खड़ा हो गया।

"मँगरू, तुम बहुत बातें करते हो। काम करने में तुम्हारा जी नहीं लगता क्या?" उसने पूछा।

"सरकार, कर तो रहा हूँ····।"

*निपोरना।

"हाँ, हाँ, काम करो। कंपनी से काम के बदले पैसे लेते हो, बात करने के बदले नहीं।"

"जी, सरकार.......।"

मैं अभी बोलना ही चाह रहा था, मगर सुपरवाइजर एक अजीब हीन भाव से मुझे देखता हुआ आगे बढ़ गया। सिर्फ उसके नये अँग्रेजी जूते की चरमराहट मेरे कानों में दो घड़ी तक सुनायी पड़ती रही थी। पावर-हाउस के स्टीम-वैकुम की आवाज 'सों-सों, सी-सी' करती हुई आदमी और मशीन का मुकाबिला करा रही थी। लोहे की गरम-गरम ट्रालियाँ मेरी तलहथियों में खून को पी जानेवाली गर्मी पहुँचा रही थी। ब्वायलर के दूसरी ओर गंधक का पानी पतले पाइप की टोंटी से बूँद-बूँद कर गिर रहा था।

रोज की तरह शाम को फिर कारखाने में साढ़े पाँच और छः का भोंपा बजा। कारखाने से बाहर निकलते ही मैं अपनी भाई के साथ क्वार्टर की ओर चल पड़ा। रास्ते में कई सोशलिस्ट मजदूर मिले, जो पहले मेरे कहने पर मजदूर-संघ के मेम्बर बन गये थे। कुछ तो मुझे देखकर आँखें फेर लेते, कुछ मुस्कुरा पड़ते, कुछ अपनी धँसी-धँसी आँखें झुकाकर आगे बढ़ जाते थे। उन लोगों के लिए मेरे दिल में किसी तरह की घृणा का भाव नहीं था, मगर इतना दुःख जरूर होता कि वे लोग कांग्रेस की ताकत को बगैर समझे एक दूसरी पार्टी में यों ही शामिल हो गये। अकेले गाँधीजी का ही मुल्क पर इतना बड़ा प्रभाव है कि एक सोशलिस्ट पार्टी क्या, दसों सोशलिस्ट पार्टी भी कंपनी को नहीं झुका सकती। फिर कभी कच्ची राजनीति का पानी दिमाग पर असर कर जाता। पार्टी का कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए। जो मजदूर की भलाई करके दिखलाये, मजदूर उसे ही अपना झंडाबरदार मानेंगे। किसी के मनाये कोई क्या मानेगा....?

"नमस्ते, साथी!" एक मजदूर ने मेरे आगे आकर कहा। उसके पेट पर ग्रिज और तेल के गहरे दाग लगे हुए थे। देखने में वह बिलकुल काला था। उसकी कमीज कंधे पर फटी हुई थी। उसकी धँसी हुई, भूरी-भूरी और छोटी-छोटी आँखों में एक अजीब फैसला किया हुआ रंग झलक रहा था। नमस्ते करने के बाद उसने नीचे से ऊपर तक मुझे घूरकर देखा। मैं उसे पहचान गया। वह

पेपर फैक्टरी के बंबू-क्रशर में आयल-मैन था। आयल-मैन का काम मशीन के पुर्जों में, जहाँ-जहाँ ड्राइवर या मिस्त्री बतलाये, तेल देना होता है। मेरे कहने पर वह मजदूर-संघ का मेम्बर बना। मैंने उसके नमस्ते का जवाब दिया।

"और सुनाओ, क्या खबर है? साथी कहना किसने सिखलाया?" मैंने पूछा।

"पार्टी ने।"

"पार्टी ने? क्या तुम भी सोशलिस्ट हो गये?" मैंने पूछा।

"हाँ, तिरंगे झंडे में अब क्या रखा है? गाँधी बाबा हमलोगों के लिए क्या कर रहे हैं? अपने साथ के दोस्तों को रासट पति, गवर्नर और मुनिस्टर बना दिया। उससे हम मजदूरों का क्या?"

"तो फिर तुम्हारी पार्टी ने क्या फैसला किया, हड़ताल करोगे?"

"जरूर। हड़ताल होकर रहेगी। सोशलिस्ट पार्टी का रिश्ता मुल्क के बड़े-बड़े सेठों से नहीं, सीधे मजदूरों से है।" वह बोला।

"और, अगर हड़ताल नाकामयाब साबित हुई, तो?"

"हड़ताल नाकामयाब कैसे होगी? हम नाकामयाब होंगे, तो कारखाना नाकामयाब हो जाएगा, कारखानों में ताले लग जायेंगे, पावर-हाउस ठंढा हो जाएगा और रतननगर के मजदूरों की हार, सारे मुल्क के मजदूरों की हार होगी, क्योंकि आज सोशलिस्ट पार्टी की यूनियन ही मुल्क के हर कल-कारखाने के मजदूरों की रोजी और रोटी की लड़ाई लड़ रही है।" उसने कहा।

"किसी की शिकायत करना आसान है, मगर किसी की अच्छाई पहचानना आसान नहीं।" मैं बोला।

"हाँ किसी को बहलावा देना आसान है, मगर किसी के लिए कुछ करना आसान नहीं।"

"अच्छा, देखो क्या होता है। बोनस दिलवाने के लिए वड़ोदकर बाबू कुछ उठा न रखेंगे।" मैंने कहा।

"अच्छा चलूँ, जरा बनगाँव जा रहा हूँ....।" वह बोला।

"अच्छा, फिर मिलूँगा।"

झपसी भाई के साथ मैं उनके क्वार्टर में आया। उनके बच्चे तो मेरा मुँह ताकने लगे और भउजी लजाकर एक ओर बैठ रहीं। उसने बित्ते-भर का घूँघट भी काढ़ लिया था। मैंने झपसी भाई के बच्चों को देखा। गिनती में वे चार थे। तीन लड़की और एक लड़का। लड़का तीनों लड़कियों से बड़ा था। उम्र उसकी करीब तेरह-चौदह साल की थी। बाल छोटे-छोटे थे। गाल पिचके थे। दुबला-पतला था और फटे-चिटे कपड़े पहने रहने की वजह बदसूरत जान पड़ता था। उन तीन लड़कियों में जो सबसे बड़ी थी, वह एक फटी हुई पुरानी और मैली साड़ी पहने थी। उससे छोटी के बदन में सिर्फ एक साधारण छींट की कुर्ती थी और जो सबसे छोटी थी, वह नंगी थी। उसे सर्दी हो गयी थी और उसकी नाक से पोटा निकल रहा था। इस क्वार्टर के पूरे ब्लाक में दो-तीन मजदूर ऐसे थे, जो अपने बाल-बच्चों को साथ लेकर रहते थे। कमरे से बाहर निकलकर बर्तन माँजने के लिए सामने थोड़ी-सी जगह थी। वहाँ झपसी भाई ने फूस की टट्टी बनाकर आड़ कर दिया था। अपनी जनाना को लजाते देखकर वे बोले, "लजाओ नहीं, यह मेरा छोटा भाई है। और जानती हो, यह कहाँ का है ?"

"………।" भउजी फिर चुप रहीं।

"अपने ही जिले का है। गामी का।"

"………" भउजी फिर चुप रहीं।

"अरे लजाओ नहीं, यह तो तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को देखने आया है।" झपसी भाई बोले।

"बैठने के लिए कहो…।" कहती हुई भउजी ने घूँघट हटा लिया।

मैंने झपसी बहू भउजी को देखा, जी-भरकर देखा। मजदूर की बीवी थी भउजी। गले में सिर्फ एक चाँदी की हँसुली थी और नाक में सिर्फ एक बहुत पतली लकड़ी, ½ इंच से भी छोटी। हँसुली पर मैल जमी थी। झपसी भाई ने उससे कहा, "मैं मँगरू को लेकर मोड़ पर नाश्ता करने जा रहा हूँ। अब जब कभी आयेगा, तो इसके सामने होओगी न ?"

"हूँ…।" भउजी बोलीं।

एक दूकान पर आकर हमलोगों ने बिस्कुट खायी और चाय पी। झपसी भाई ने मुझे बीड़ी पिलायी। इसके बाद वे अपने क्वार्टर की ओर चले और मैं रतननगर मजदूर-संघ की ओर चला।

अब शाम हो चुकी थी। सड़कों पर बत्तियाँ जलने लगी थीं। मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था और रतननगर के मजदूरों की असली हालत के बारे में सोचने की कोशिश कर रहा था। मजदूरों को पूरी उम्मीद थी कि इस साल बोनस जरूर मिलेगा। मैंने भी सोचा था कि बोनस के रुपये से एक बढ़िया कम्बल जरूर खरीद लूँगा। मगर, अब जाड़े का अन्त हो रहा था। न हड़ताल हुई, न बोनस मिला। कम्पनी ने घाटा दिखला दिया था। और, फिर चारों ओर से सुनायी पड़ रहा था कि अब सीमेण्ट फैक्टरी का डबल सेक्शन होनेवाला है और वनस्पति घी का कारखाना खुलेगा। उस रोज सोशलिस्ट नेता ने मजदूरों की सभा में कहा था, 'साथियो, जरा दो मिनट गंभीर होकर अपने मिल-मालिक के बारे में सोचो। जब तुमलोगों ने बोनस की माँग की, तो कम्पनी ने आपको घाटा दिखलाया। मगर आप यह भी सुनते होंगे कि सीमेण्ट फैक्टरी की डबल मशीनें बैठनेवाली हैं। नकली घी बनाने का कारखाना खोला जानेवाला है। कम्पनी को तो हर साल घाटा हो रहा है और कम्पनी इतनी सीधी है कि हर साल घाटा बर्दाश्त कर नये-नये कारखाने खोलती जा रही है। तुम्हारी माँग को टालने के लिए तुमलोगों का मामला सरकार द्वारा नियुक्त किये गये पंच के हवाले कर दिया गया है। यह सरकार किसकी है, महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू की। और, महात्मा गाँधी और पंडित नेहरू कौन हैं, जो हिंदुस्तान की इस नयी राजनीति में अब तक मुल्क के इने-गिने पूँजीपतियों के हाथ के कठपुतले बने रहे.....।" और तब बड़े जोरों से तालियों की गड़गड़ाहट हुई थी। उस रोज बड़ोदकर बाबू के भाषण के बाद जो मजदूरों में मासूमियत छा गयी थी, वह मासूमियत आज भागती-फिरती हुई नजर आ रही थी। मजदूरों ने उस रोज नारे बुलंद किये थे—

सोशलिस्ट पार्टी, जिन्दाबाद!
मजदूरों की पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी!!

मेरे आगे-आगे दो मजदूर आपस में धीरे-धीरे बातें करते हुए चले जा रहे थे। उनकी भुनभुनाहट से मुझे पता चला कि वे पार्टी की बातें कर रहे हैं। मैं बहुत अन्दाज से उनके पीछे इतनी दूरी पर होकर चलने लगा कि उनकी गुफ्तगू सुन सकूँ। उन दोनों में से एक ने कहा, "आज तो दूधनाथ बतला रहे थे कि अपनी पार्टी का रजिस्ट्रेशन भी हो गया।"

"सच ?" दूसरे ने खुश होकर पूछा।

"हाँ, अब देखना मजदूर-संघ कितने दिन टिकता है !"

"और पंचायत में मामला चला गया है, सो ?"

"उससे क्या, मामला को पंचायत में मजदूर-संघ ने भेजा है। हमारी पार्टी तो सोशलिस्ट पार्टी है। सोशलिस्ट पार्टी के साथ तो कम्पनी ने कोई समझौता नहीं किया है। हमारी पार्टी पंचायत को नहीं मानेगी, हड़ताल होकर रहेगी।"

"तब तो मजदूर-संघ का नाम भी डूब जाएगा।"

"समझो, डूब गया। कोई भले मत माने, बड़ोदकर बाबू तो कम्पनी में मिल गये हैं। सुना है, एक मुश्त मोटी रकम मिली है।"

बड़ोदकर बाबू को एक मुश्त मोटी रकम मिलने की बात सुनकर मेरा कलेजा मुँह को आने लगा। मैं अब ऐसा हो गया कि आगे अपने मजदूर-संघ की शिकायत सुन नहीं सकता था। या तो उन लोगों से झगड़ पड़ता या वहीं जमीन पर बैठ रहता। इसलिए मैं अब बहुत पीछे हो गया और दूसरी राह पकड़कर रतननगर मजदूर-संघ के दफ्तर में पहुँचा। भीतर जाकर मैंने देखा, बड़ोदकर बाबू कुर्सी पर ऊन का लम्बा कोट पहने बैठे हैं। सामने डेस्क पर चाय रखी है और एक तश्तरी में दो लम्बे-लम्बे रसगुल्ले रखे हुए थे। उनके बायें हाथ की दो उँगलियों के बीच अधजली सिगरेट दबी थी और वे धीरे-धीरे उसे पी रहे थे।

"नमस्कार बाबू !" जाकर मैंने कहा।

"खुश रहो मँगरू ! सुनाओ, क्या खबर है ?"

"सब ठीक है।"

"बैठो।" वे बोले।

मैंने एक स्टूल खींच ली और उसी पर बैठ रहा। तश्तरी में जो रसगुल्ले रखे हुए थे, उन्हें देखकर अब मैं यह फैसला करने लगा कि सचमुच वे रसगुल्ला हैं या नहीं; क्योंकि वे बहुत सूखे और चिकने जान पड़ते थे। तश्तरी में एक छूरी भी रखी हुई थी। मैंने पूछा, वह क्या है बाबू ?"

"कौन ?"

"वही, जो तश्तरी में रखा है।"

"तुम नहीं पहचानते ?"

"नहीं।"

"तुम बड़े उल्लू हो·······।"—बड़ोदकर बाबू मुस्कुराकर बोले, "इसे भी नहीं पहचानते, अरे यह सर्दी की दवा है।"

"अच्छा, अस्पताल से मिली है न? देखिए, अस्पतालवालों को जरा, आदमी पहचानकर दवा देते हैं। एक बार मैं अपनी सर्दी की दवा लेने गया था, तो मुझे लाल-लाल पानी दे दिया।" मैं बोला।

बात भी सही थी। इस पर बड़ोदकर बाबू फिर हँस पड़े। बोले, "तू मेरा शिष्य है! गुरु मानता है, इसलिए इसका नाम और गुण बतला देता हूँ।"

"बतलाइये।" मैंने कहा।

"यह मुर्गी का अंडा है। जाड़े के दिनों में इसका सेवन करना चाहिए। सर्दी असर नहीं करती और रात को पेशाब बहुत कम लगता है। खाओगे, खाओ तो तुम्हें भी आधा काटकर दूँ। मैं तो सिगरेट पीकर खाऊँगा और तब चाय।" वे बोले।

"ना, मैं नहीं खाऊँगा····। मगर, आप अहिंसावादी न हैं, बाबू! सुना है, गांधीवादी विचारधारा को माननेवाले जीव-हत्या महापाप समझते हैं। आप अंडे कैसे खायेंगे····?" कहकर मैंने पूछा।

"अरे, सब चलता है यार! इस दफ्तर में कौन गांधीवाद का इम्तहान लेने आ रहा है। दफ्तर से बाहर, जब प्लेटफार्म या किसी सभा के पंडाल पर ऐसी भूल करूँ और तुम टोको, तो कुछ इनाम भी दूँ····हें हें हें····। कहकर बड़ोदकर बाबू हँस पड़े।

"एक बात मालूम है ?" मैंने पूछा।

"क्या ?"

"सोशलिस्ट पार्टी को सरकार ने रजिस्ट्रेशन दे दिया।"

"यह बात मुझे तुमसे पहले मालूम है।" कहकर बड़ोदकर बाबू ने मेरी आँखों में जासूस की तरह देखा।

"अगर गुस्सा न हों, तो एक बात और बतलाऊँ !"

"क्या, बतलाओ।"

"आप गुस्सा होंगे। मगर मैंने सुना है, मजदूरों में यह बात फैल रही है।"

"कहो, काम की बातें छिपायी नहीं जातीं।" वे बोले।

"दो सोशलिस्ट मजदूर बातें कर रहे थे कि बड़ोदकर बाबू कम्पनी से मिल गये हैं। मिल-मालिक की ओर से उन्हें एक मुश्त मोटी रकम मिली है।"

"कहने दो। यह सब राजनीति के दाव-पेंच हैं। रूस के मजदूरों में ट्राट्स्की को बेईमान साबित करने के लिए स्टालिन ने अफवाह फैला दी थी कि वह मेन्शेविक हो गया है और जार के समर्थकों से लाखों रूबल पा रहा है।"

"अच्छा !" मैंने अचरज से कहा।

"हालांकि ट्राट्स्की ही सच्चा कम्युनिस्ट या बोल्शेविक था। आखिर हुकूमत के पद पा लेने पर स्तालिन ने उसे मेक्सिको में गोली मरवा दी। लेकिन, मास्को पब्लिकेशन्स की पुस्तकें पढ़कर देखो, उनमें कहीं भी स्तालिन के इस पाप का वर्णन नहीं मिलेगा। सच पूछो, तो ट्राट्स्की कट्टर बोल्शेविक था। श्रम और पैसे के बिना तबाह मजदूर यह सब कहाँ जानते हैं ?" बोले बड़ोदकर बाबू।

अब तक मैंने मास्को का नाम-भर सुना था। यह नहीं जानता था कि वहाँ किताबें भी छपती हैं। वे हिंदुस्तान में भी बिकती हैं। दूसरी बात यह कि अगर कम्युनिस्ट पार्टी उस वक्त हिंदुस्तान में थी भी, तो तब इस पार्टी का मुल्क में कोई बोलबाला नहीं था। अगर किसी मजदूर की जोश-भरी बातें हमलोग दबाना चाहते, तो हँसकर कहते, "बस-बस हम जान गये कि तुम कम्युनिस्ट हो।" और, वह मजदूर शरमा जाता, जैसे वह बेवकूफ बनाया गया हो। आपस में किसी मजदूर को 'कम्युनिस्ट' कहकर हमलोग उसका मजाक उड़ाते थे। लोगों

में आमतौर से यह चर्चा हो जाया करती थी कि कम्युनिस्ट बड़े बदतमीज और गुंडे होते हैं। उन दिनों मेरे मजदूर साथियों के दिल में कम्युनिज्म के लिए न कोई सहानुभूति थी और न उसके विषय में अधिक जानने की कोई तमन्ना। बोल्शेविक और मेन्शेविक किसे कहते हैं, मैं कुछ नहीं जानता था। मगर, बड़ोदकर बाबू के कहने के ढंग से मैंने इतना अन्दाज जरूर लगा लिया कि मेन्शेविक रूस के पूंजीपति होंगे और बोल्शेविक रूस का मजदूर-वर्ग, पिछड़ा वर्ग।

"नहीं, मैंने तो कोई भी रूसी किताब नहीं पढ़ी।" मैं बोला।

"पढ़नी चाहिए। जब इस मैदान में हो, तो जानकारी रखो। समय-समय पर मजदूरों को समझाना होगा, सभाओं में बोलते वक्त मिसाल देने होंगे। कहोगे तो तुम अपनी पार्टी के फायदे की ही बात, मगर बुरी और गलत बातें भी जरा अच्छे तर्ज के साथ कही जाती हैं, तो साधारण लोग हाथ में आ जाते हैं। फिर साधारण लोगों का मैदान बहुत बड़ा है—यही मजदूर और किसान।"

इतनी बातें कहकर बड़ोदकर बाबू ने मेरी ओर इस तरह देखा, जैसे उन्होंने कोई बहुत ही गुप्त बात मुझे बतला दी। उनके ललाट पर लम्बी-लम्बी तीन रेखाएँ खिंच गयीं। वे बोले, "देखो, यह बात किसी से बतलाना नहीं। राज-नीति में तो यही सब चलता है।"

"जी....।" मैं बोला। बड़ोदकर बाबू छुरी से काटकर अंडे खाने लगे।

डेस्क पर एक ओर चिट्ठी-पत्री रखी थी और दूसरी ओर पुस्तकें। दूसरे कमरे में बड़ोदकर बाबू के दो सहायक कुछ लिखा-पढ़ी कर रहे थे। अंडे खाकर बड़ोदकर बाबू चाय पीने लगे और मुझसे पूछा, "और बतलाओ, मजदूरों का भीतरी हाल क्या है?"

"मजदूर सोशलिस्ट होते जा रहे हैं। नये महीने का चन्दा मुझे कोई नहीं दे रहा है।"

क्यों?"

"कहते हैं, हमारी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी है।"

"मगरू तुम पूछते नहीं, सोशलिस्ट पार्टी ने अभी तुम्हारे लिए क्या किया है?"

"वे कहते हैं, करेंगी। यह सरकार तो पूँजीपतियों की सरकार है। कांग्रेस में जितने लोग बड़े-बड़े पद पर हैं, वे सभी धनी घर के हैं। सरकार उनकी है। और, पूँजीपतियों की सरकार ने जो पंच बहाल किया है, वह मजदूरों के पक्ष में कोई भी फैसला नहीं देगा। वे दलील देते हैं कि जो मजदूरों का नुमाइंदा होता है, वह मजदूरों की सलाह पर चलता है, सरकार की सलाह पर नहीं।" मैंने कहा। सचमुच कारखाने के भीतर, जो मजदूर सोशलिस्ट हो गये थे, उनसे इस तरह की बहस हो जाया करती थी। दिल्ली, पटना और भी दो-तीन जगह से सोशलिस्ट पार्टी के अखबार आने लगे थे। मजदूरों में उनकी खूब खपत होने लगी थी। मजदूर बड़े चाव से, पैसे का अभाव रहने पर भी पार्टी के अखबार को खरीदते। जो खुद नहीं पढ़ सकते, दूसरों से पढ़वाकर सुनते थे। दो-चार मजदूर सोशलिस्ट अखबारों को बेचने के अगुआ बन गये थे। उन अखबारों की बड़ी बिक्री होती। कारखाने के मेन-गेट पर, पार्टी-आफिस के सामने और वहाँ, जहाँ मजदूर जाकर तनख्वाह लेते थे। इधर दो-चार रोज में ही, रतननगर के मैदान में, सोशलिस्ट पार्टी की एक बहुत बड़ी सभा होनेवाली थी, जिसमें सुना जाता था कि सोशलिस्ट मजदूर यूनियन के नेता हड़ताल की तारीख का फैसला सुनायेंगे।

देखा जायगा। यहाँ आकर हमलोगों ने जिस खयाल से मजदूर-संघ कायम किया था, वह खयाल पूरा हो चुका।" वे बोले।

"सो क्या?" मैंने पूछा।

"फिर कभी बतलाऊँगा।" बड़ोदकर बाबू ने कहा।

"तो क्या अब मजदूर-संघ यहाँ नहीं रहेगा?"

"मैं यह भी नहीं बतला सकता। मेरे ऊपर भी तो और लोग हैं। वे लोग जैसा कहेंगे, वैसा होगा।" बड़ोदकर बाबू बोले।

बड़ोदकर बाबू की बातें निराशा से भरी थीं। मैं बड़े संदेह में पड़ गया, आखिर मजदूर-संघ का क्या होगा। मैंने एक लम्बी साँस छोड़कर उनसे कहा, "अब जो होना होगा, सो तो होगा ही। मुझे कोई किताब पढ़ने के लिए दीजिए।"

"कैसी किताब लोगे ? ले जाओ, पढ़कर लौटा देना।"

"आप अपनी पसन्द से दे दीजिए, जिसे पढ़कर मैं कुछ सीख सकूँ। जो मेरी समझ में आ जाए।" मैं बोला।

"अच्छी बात है'''।" कहकर बाबू ने एक पुस्तक मेरी ओर बढ़ा दी।

पुस्तक लेकर उन्हें प्रणाम करने के बाद मैं मजदूर-संघ के दफ्तर से बाहर निकला और अपनी झोपड़ी की ओर चला। थोड़ी दूर जाकर बिजली की रोशनी में यों ही मैंने एक बार पुस्तक खोली। पुस्तक का नाम था—'आधुनिक राजनीति का विकास'। लेखक का नाम अब याद नहीं रहा। लेकिन, पुस्तक खोलते ही उसके भीतर से एक कागज गिर पड़ा। उठाकर देखा, तो एक चिट्ठी थी। मैं नहीं कह सकता, किस तारीख को वह चिट्ठी भेजी गयी थी। मगर इतना याद है कि उस चिट्ठी को दयानाथ पँढारकर ने बड़ोदकर बाबू के नाम नागपुर से भेजा था। मैं उसे पढ़ने लगा। झूठ क्यों बोलूँ ? उसकी एक-एक लाइन याद नहीं। मगर जहाँ तक याद है, वह यह कि चिट्ठी में यही बातें और इसी तरह थीं—

नागपुर

प्रिय बड़ोदकर,

सप्रेम नमस्कार!

तुम्हारा पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। राजनीति का रास्ता जितना ही साफ है, उतना ही बीहड़ भी है। तुम खुद पढ़े-लिखे और समझदार हो। मैं अपने को इस योग्य नहीं समझता कि तुम्हें राजनीति की शिक्षा दे सकूँ; क्योंकि अपने विषय में भी मैं बराबर यही सोचता रहा हूँ कि मुझमें लाख ऐब हैं, मुझमें हजारों कमियाँ हैं। फिर भी राजनीति के अखाड़े में जो पन्द्रह वर्ष तक मैंने जो पैंतरे लगाये हैं, उससे थोड़ा-बहुत हम दोनों ने सीखा है।

यह जानकर हार्दिक दुःख हुआ कि रतननगर के मजदूर तुम्हारे हाथ से निकले जा रहे हैं। तुम अपने भाषण देने की कला को और भी प्रभावशाली बनाओ। दो-चार पढ़े-लिखे मजदूरों को कुछ ले-देकर इस बात के लिए राजी

करो कि वे मजदूरों के बीच में तुम्हारी सच्चरित्रता और ईमानदारी का बखान करते रहें। उनका यह काम हो कि वे कारखाने में काम करते समय भी तुम्हारी चर्चा करते हुए यह बतलावें कि बड़ोदकरजी एक गरीब किसान के बेटे हैं। जमींदार और देश के पूँजीपतियों से उन्हें दिली दुश्मनी है। किसी एक मजदूर से इस बात का प्रचार कराओ कि बड़ोदकर बाबू हर रोज भारतमाता की तस्वीर के आगे हाथ जोड़कर कहते हैं कि हे भारतमाता! जिस तरह सरदार भगत सिंह अंग्रेजों के खिलाफ रहने के कारण फाँसी पर लटकाये गये, उसी तरह मुझे भी देश की पूँजीवाद व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने के जुर्म में फाँसी चढ़ने का मौका दो। इससे यह लाभ होगा कि नवयुवक मजदूरों के तुम सबसे प्रिय नेता हो जाओगे। नये खूनवाले क्रान्ति का नाम सुनकर मस्त हो जाते हैं। सोशलिस्ट कांग्रेस के खिलाफ बोल रहे हैं। कभी-कभी सभा में तुम भी हल्की आलोचना कर दो। फिर तो 'निष्पक्ष नेता' कहलाने की बाजी मार लोगे। मगर, बापू के आदर्श को मानने की बात घुमा-फिराकर जरूर दुहरा दोगे। अभी जनता की नजरों से कांग्रेस उतनी नहीं गिरी है, जितना तुम सोचते हो। लेकिन, इतनी बात याद रखो कि अगले चुनाव में असेम्बली के पद के लिए बहुत से कांग्रेस-विरोधी दल खड़े होंगे। अपने भाषण और काम के जरिए ऐसा तिकड़म लगाओ कि मजदूर यह फैसला न कर सकें कि उनकी भलाई कौन पार्टी कर सकती है। तुम्हें यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि हिन्दुस्तान के मजदूर-किसानों को इतनी अक्ल है कि वे अपने लिए योग्य नेता और योग्य पार्टी का चुनाव कर लेंगे। उनके लिए कुछ करना तो पीछे की बात है, तुम्हारा पहला काम यह होना चाहिए कि अपनी बातचीत से उन्हें प्रभावित कर लेना। सभा बुलाओ, तो देर करके जाओ। सहायकों को पहले भेज दो। उन्हें बतला दो, तुम्हारे स्टेज पर पहुँच जाने पर भी वे तुम्हारी सादगी, तुम्हारे त्याग और तुम्हारे सिद्धांत की प्रशंसा करते रहें। जब तुम बोलने के लिए उठो, तो सबसे पहले कहो, "साथियो, अभी आपके सामने मेरे मित्रों ने जो मेरी प्रशंसा की है, मैं सत्य कहता हूँ, मैं सचमुच उस प्रशंसा के काबिल नहीं। मुझे तो तभी बड़ी खुशी होती है, जब मेरा कोई मित्र मेरी शिकायत, मेरी कमजोरियों को मेरे आगे रखता है।"

देखना, इस बात पर तालियों की गड़गड़ाहट होगी। उससे तुम्हें यह लाभ होगा कि मजदूरों में यह बात फैल जायेगी कि ये बहुत ही आदर्शवादी हैं। अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते, ऐसे लोग बड़े त्यागी होते हैं। और, उनके दिल में तुम्हारे लिए बड़ा प्रेम पैदा होगा। मजदूरों के सामने कभी भी मूल्यवान कपड़े पहनकर मत जाओ। खादी की धोती और कुरता काफी है। पैर में बाटा कंपनी की चप्पल पहनो। तुम चश्मा नहीं लगाते, गलती करते हो। चश्मा ले लो, इससे चेहरा भड़कदार मालूम देता है। जब भी भाषण करो, उसकी एक कापी अखबारों में छपने के लिए भेज दो। कभी-कभी दफ्तर में संवाददाताओं को बुलाकर आमलेट और चाय का प्रबन्ध कर दो। बस, काम तमाम! मैदान सोशलिस्टों के हाथ में रहने दो, माइक्रोफोन तुम पकड़े रहो। अफवाह फैलाओ, सोशलिस्ट अखबार तो अपनी पार्टी की तारीफ छापते ही हैं। दूसरे अखबार छापें, तब तो। मजा आ जायेगा। इसीलिए तो हमलोग कांग्रेस का कोई स्वतंत्र अखबार नहीं निकाल रहे हैं।

यहाँ मेरे एम० एल०ए० हो जाने से तुम सोचते होगे कि पेंडारकर ने बाजी मार ली। उमर में तुम मुझसे छोटे हो और कांग्रेस में आये भी मुझसे पीछे। अगले चुनाव का इन्तजार करो। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि रतननगर के मैनेजिंग एजेण्ट रतनमल के लड़के ही हैं और तुम टेलीफोन पर भी उनसे हजार-पाँच सौ माँग लेते हो। मगर देखो, दोनों तरफ का कील-काँटा दुरुस्त रखो। अगर मजदूर हाथ से निकल गये, तो मैनेजिंग एजेण्ट टेलीफोन पर बातें भी न करेगा। रुपये जो कमा रहे हो, अपने खर्च के बाद जो बचे, सो सम्हाल कर रखो; क्योंकि संभव है कि अगले चुनाव में वोट ऐसे न मिलें, खरीदने हों; क्योंकि विधान के अनुसार चुनाव लड़ने का हक हर पार्टी को हो जायगा। इधर हिंदू महासभावाले बहुत जोर मार रहे हैं।

शेष कुशल है। जिन बातों की मैंने तुम्हें हिदायत दी है, उन पर गौर करोगे। और भी कोई दिक्कत हो, तो लिखना। चूँकि अभी कांग्रेस अंग्रेज गवर्नरों की देख-रेख में हुकूमत कर रही है, इसलिए हम मजबूर हैं। नहीं तो, किसी-न-किसी रूप में सरकारी तौर पर भी तुम्हें वहाँ जमाने में मदद की जाती।

खैर, नन्हें ने इतिहास में एम० ए० कर लिया है। उसे राजनीति में घुसने की सलाह दे रहा हूँ। तुमने तो उसे देखा भी है, बड़ा चंचल है। भाईसाहब कहते हैं कि मेरा बेटा कहीं नौकरी कर ले, तो अच्छा है। मगर मैंने जबसे नफे-नुकसान का हिसाब बतलाया है, तबसे चुप हैं। अभी नया आदमी है। हर पार्टी के रुख को देखना पड़ रहा है। पत्र जल्द दोगे।

तुम्हारा शुभचिंतक
दयानाथ पेंढारकर

• • •

२२

इन्हीं गरीबी और तबाही के दिनों में मेरी एक जिम्मेवारी और बढ़ गयी। मैं एक लड़के का बाप बन बैठा। बच्चा होने के बाद मेरी सनीचरी को कुछ अच्छा खाना मिलना चाहिए था, मगर उसे तो मेरी माँ चार रोज तक हरदी का हलुआ तक न खिला सकी। वह बहुत कमजोर हो गयी, उसका शरीर टूट गया। पंद्रह रोज के बाद दूध भी सूख गया। कंपनी की ओर से मजदूरों की भलाई के नाम पर जो रतननगर अस्पताल खुला था, उसमें दिखलाने के लिए सनीचरी को ले गया। उसने तो कुछ नहीं बतलाया, मगर माँ ने मुझसे कहा, "उसे ले जाकर अस्पताल में दिखला दे। बहुत कमजोर हो गयी है, सर में चक्कर आता है। खड़ी होती है, तो खड़ा नहीं हुआ जाता।"

"अच्छा, दिखला दूँगा।" मैं बोला।

"नहीं, इसमें देर मत कर।"

"क्यों, यह ज्यादा खतरनाक बीमारी है क्या ?"

"हाँ।" माँ ने कहा।

"मैं सनीचरी को लेकर आठ बजे अस्पताल पहुँचा। डाक्टर आये, तो बड़े-बड़े बाबू लोगों के लिए पुर्जा लिखने लगे। मैंने सनीचरी को देखने के लिए कहा, "तुम अपने मरीज को लेकर ठहरो, पीछे ठीक से देखूँगा।"

"अच्छा मालिक !" मेरे मुँह से निकला।

डाक्टर साहब ने मुझे ग्यारह बजे याद किया। अब वे शायद अपने बंगले लौटना चाहते थे। उन्होंने मुझसे कहा, "इस तरह ज्यादा बीमार डालकर अस्पताल नहीं ले आना चाहिए....।"

"जी सरकार, मैं कहाँ जानता था कि यह इस तरह लाचार हो जायेगी।"

"जल्दी करो। इसे उस कमरे में जाने दो....।" कहकर डाक्टर ने सनीचरी की ओर देखा। वह बगलवाले कमरे में चली गयी। वहाँ शायद परदे में औरतों को देखा जाता था। सनीचरी को देखकर डाक्टर पाँच मिनट में अपनी जगह पर चले आये। मुझसे कहा, "मरीज को बाहर बैठने के लिए कहो।"

"अच्छा, सरकार....।"

मैं उस कमरे से सनीचरी को हाथ पकड़कर बाहर ले आया और अस्पताल के बरामदे में बिठा दिया। फिर जब डाक्टर के पास गया, तो वे मुझसे सनीचरी का हाल पूछने लगे। मैंने अपनी जानकारी के मुताबिक सारी बातें बतला दीं। तब अस्पताल से मिलनेवाले पुर्जे की ओर आँखें घुमाकर डाक्टर ने पूछा, "बाजार से दवा ला सकते हो ?"

"बाजार से...." मैंने पूछा।

"हाँ, बाजार से। बनगाँव में दवा की दूकानें हैं !"

"सो तो हैं हुजूर, मगर मैं तो यहीं एसिड पलांट में काम करता हूँ। मजदूरों को तो दवा मुफ्त मिलती है न?" मैं बोला।

"हाँ, एक दवा यहाँ से भी मिलेगी—मिक्श्चर।"

"बाकी ?"

"बाजार से लाकर खिलानी होगी।"

"जी।" मैं सर्द होकर बोला।

"बोलो, लिख दूँ ?" डाक्टर ने पूछा।

"सरकार, मैं तो गरीब आदमी हूँ। कितने की दवा खरीदनी होगी ?"

"दाम मैं नहीं जानता। कहो, तो लिख दूँ।"

"लिख दिया जाये, सरकार⋯।" मैंने कहा।

"एक सूई है और दो दवा। खरीदकर ले आना, तो पूछ जाओगे, कैसे पिलानी होगी।"

"जी !" मेरे मुँह से निकला।

डाक्टर से पुर्जा लेकर मैंने अस्पताल से पीने की एक दवा ले ली। मैंने देखा, एक बहुत बड़ी बोतल में पानी की तरह वह दवा भरी थी। उसी दवा को कम्पाउण्डर ने मेरी शीशी में भरकर दे दी। फिर सनीचरी को लेकर मैं झोपड़ी में चला आया। शाम को पुर्जा लेकर दवाओं का दाम पूछने मैं धनगाँव पहुँचा। एक सूई और दो दवाओं का दाम दूकानदार ने चालीस रुपये बतलाये।

"चालीस रुपये ?" मैंने पूछा।

"हाँ, लेनी है दवा ?"

"अभी नहीं। दाम लेकर आऊँगा, तब।" कहकर मैंने दूकानदार के हाथ से दवा का पुर्जा वापस ले लिया और दूकान से बाहर आया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि दवा के लिए ये चालीस रुपये कहाँ से आयेंगे और इसके लिए कौन-सा रास्ता निकाला जा सकता है। आखिर बहुत कोशिश करने पर भी कोई तरीका दिमाग में नहीं समा सका। सनीचरी का दूध सूख गया था, सो सेठ की जनाना ने माँ को यह सलाह दी थी कि अपने पोते को गाय का दूध पिलाओ। दूध-दही तो मेरे जैसे लोगों के लिए सपना था। घी खाने की बात तो हमलोग सोच भी नहीं सकते थे। स्टेशन के उस पार, एक खटाल में दूध का भाव पूछने गया। ग्वाले ने बतलाया, "रुपये का डेढ़ सेर मिलेगा। मेरे यहाँ फेंट-फाट नहीं चलता। नगद पैसा, नगद काम ⋯ दुहवा लो।"

"उधार दे सकते हो ?" मैंने पूछा।

"कहाँ रहते हो, भैया ?"

"रतननगर के अहाते के पास। पोखरे पर, जहाँ मजदूरों की झोपड़ियाँ हैं।"

"कौन काम करते हो ?"

"खलासी....।" मैंने कहा। कुली कहते शर्म लगी। खलासी का ओहदा कुली से एक सीढ़ी ऊपर होता है।

"घर यहीं है या भाड़े की झोपड़ी में रहते हो ?" ग्वाले ने सवाल किया। मैंने जवाब दिया, "घर तो मेरा यहाँ नहीं है, भाड़े पर रहता हूँ।"

"कौन बिरादर हो ?"

"मोची।" मैंने कहा।

"........।" ग्वाले ने अब चुप्पी लगा ली और सामने खड़ी गाय की जाँघ से मस नोचने लगा।

"मुझे कुछ बतलाया नहीं, उधार दोगे ?" मैंने पूछा।

"नहीं भैया, उधार नहीं होगा। मैंने पहले ही कह दिया, नगद पैसा, नगद काम।" ग्वाले ने बिना मेरी ओर देखे ही कहा।

"क्या विश्वास नहीं है ?"

"दुनिया में सब विश्वास पैसे का होता है, आजकल आदमी का विश्वास कोई नहीं करता। उधार देकर कई बार छक चुका हूँ।"

"गाय दूह रहे हो चौधरी.......।" तभी मेरे कानों में यही शब्द सुनायी पड़े।

"हाँ, अब दूहने ही जा रहा हूँ। बर्तन लेकर आ जाओ।" ग्वाला बोला।

मैंने जब तक पीछे फिरकर देखना चाहा, तब तक वह आदमी मेरे आगे आकर खड़ा हो गया। मैंने उसे देखा, उसे पहचान तो नहीं सका। मगर उसके बायें हाथ में जो रिक्शे की बत्ती थी, इससे मैंने अंदाज लगाया कि वह रिक्शा-वाला है—रिक्शा खींचता है। उस आदमी ने भी मुझे एक बार देखने की कोशिश की, मगर मेरी ओर उसकी आँखें और गर्दन इस तरह फिरीं ; जैसे वह बहुत ही जल्दबाज़ी में हो। मैंने ग्वाले से कहा, "अच्छा भाई, नगद ही ले जाया करूँगा।"

"अच्छी बात है, ले जाना।"

"अच्छा, चला चौधरी ! लड़के को बर्तन लेकर भेज देता हूँ।"

"हाँ, जाओ। अब भेज ही दो। विलंब नहीं है।"

मैं उस आदमी के साथ खटाल से बाहर निकला। वैसे उम्र उसकी चालीस वर्ष से अधिक की नहीं रही होगी, मगर वह पचास से ऊपर का जान पड़ता था। भीतर से शरीर में भले ही ताकत हो, मगर बाहर से, लगता था, जैसे उसका शरीर गिर रहा है। उसके बायें हाथ में रिक्शे की बिना जलायी हुई बत्ती हिल रही थी। इसकी कैफियत देना मेरे लिए मुश्किल ही है कि खटाल से बाहर निकलते ही मैंने उससे क्यों बातचीत की, मगर जब दिल ही न माने, तब कोई क्या कर सकता है ? वहाँ से बाहर निकलते ही मैंने पूछा, "तुम कारखाने में काम करते हो ?"

"नहीं।" उधर से जवाब मिला।

"फिर, कहाँ काम करते हो ?"

"मैं रिक्शा चलाता हूँ।"

"अच्छा, देखो बुरा न मानना एक बात पूछूँ ?"

"पूछो।"

"रोज कितना कमा लेते हो ? मैंने पूछा।

"कमा तो सकता था, पेट भरने का एक रास्ता भी था। मगर, रिक्शा अपना जो नहीं है।"

"रिक्शा अपना नहीं है ?"

"ना, रिक्शा तो दूसरे का है। उनका यही कारोबार होता है। यहाँ उनके पंद्रह रिक्शे हैं।"

खटाल से बाहर, एक बरगद का बहुत बड़ा पेड़ था। हमलोग उसी पेड़ के नीचे खड़े होकर बातें करने लगे थे। सामने सड़क पर, जो बिजली-बत्ती जल रही थी, उसकी रोशनी को बरगद के पेड़ की जटाएँ यहाँ अच्छी तरह नहीं फैलने दे रही थीं। अभी पूरा अँधेरा भी नहीं फैल सका था। मैंने रिक्शेवाले से पूछा, "आखिर तुम्हारा-उनका क्या हिसाब है, वे तुमसे क्या लेते हैं ?"

"दो रुपये आठ आने वे मुझसे रोज ले लेते हैं।"

"इससे कम नहीं ?"

"नहीं।"

"और, अगर तुम्हें सवारी नहीं मिले तो ?"

"इसकी जिम्मेवारी उनके ऊपर नहीं है।"

"एक बात बताऊँ, अगर तुम मेरी मदद करो तो मैं भी रिक्शा हाँकू।"

"मेरी मदद की क्या जरूरत है ? जैसे मिहनत करोगे, वैसी मजदूरी पाओगे।"

"नहीं, तुम अपने रिक्शे के मालिक से मेरी जान-पहचान करा दो। रिक्शा दिलवा दोगे, तभी तो चलाऊँगा।"

"कहाँ रहते हो, तुम ?"

"रतननगर के अहाते के पास। पोखरे पर। मैं तो कारखाने में काम भी करता हूँ।"

तो तुमसे दोनों काम कैसे होगा, मर नहीं जाओगे ?" उसने कहा।

"नहीं, मरूँगा नहीं·····" मैंने कहा।

"·······।" मेरी इस तरह की सीधी बात से उसने अजीब मुस्कान मुस्कुरा दी। जैसे वह मुस्कान बनायी गयी हो, उस मुस्कान के बनाने में उसे काफी मिहनत करनी पड़ी हो। उसने मेरे चेहरे को घूरकर देखा। बोला, "अजीब मस्त आदमी हो दोस्त !" और उसने अपना दाहिना हाथ मेरे कंधे पर बड़े जोर से पटका। मैं इस धक्के से हिल गया और सम्हलकर खड़ा होने लगा।

"मैं तुम्हे जोर दे रहा हूँ और तुम गिर रहे हो ?" उसने पूछा।

"मैंने तुम्हारी बात नहीं समझी।" मैं बोला।

"·······।" वह फिर मुस्कुराया।

"बोलो भाई, मेरी मदद करोगे ? बड़े अंदेशे के दिन गुजार रहा हूँ।

"चलो, मैं अभी वहीं जा रहा हूँ···वहाँ पान की दूकान के सामने रिक्शे को छोड़ आया हूँ। उसका पंक्चर बन चुका होगा। मगर, जरा ठहरना होगा। मैं अपने डेरे में जाकर बच्चे को खटाल में जाने के लिए कहूँगा।"

"ठहरूँगा, तुम चलो न ।"

"चलोगे, मेरे डेरे तक ?"

"चलो ।" मैं बोला ।

मैं उस रिक्शेवाले के साथ उसके डेरे तक आया । उसका डेरा एक बड़ी तंग गली में था । एक कच्ची कोठरी थी, जिसमें काठ का बहुत ही पुराना बेमरम्मत दरवाजा लगा हुआ था । गली के कोने पर, कूड़े की ढेर के पास कुत्ते लड़ रहे थे । इधर बिजली की रोशनी नहीं गयी थी । रिक्शेवाले की कोठरी की बगल में दो-तीन और वैसी ही कोठरियाँ थीं । एक कोठरी के सामने, गंदी जमीन पर, कोई आदमी पीठ के बल लेटा अंट-संट बक रहा था । उसके बारे में उसने मुझे बतलाया कि वह बनगाँव म्युनिसिपैलिटी का मेहतर है । पिछले साल हैजे में इसकी बीवी और बच्चे मर गये । शाम में रोज पीकर आता है और यों ही रात-भर पड़ा रहता है । घंटों कुत्ते इसका मुँह चाटते हैं, इसे खबर ही नहीं रहती । फिर सुबह होश आते ही काम पर भागता है ।

कोठरी के भीतर से किसी औरत के जोर-जोर से खाँसने की आवाज आ रही थी । कोठरी के बाहर रिक्शेवाले के बच्चे आपस में झगड़ रहे थे । उनमें जो सबसे छोटा जान पड़ता था, गला फाड़-फाड़कर रो रहा था । उसने बड़े बच्चे को दूध ले आने के लिए कह दिया और मुझसे बोला, "चलो अब, तुम्हें भी बातचीत करा दूँ ।"

"चलो ।" मैंने कहा ।

वहाँ से वह मुझे वहीं ले गया, जहाँ उसने रिक्शे को पंक्चर बनाने के लिए दिया था । उसने मुझे रिक्शे पर बिठा लिया और आगे की बत्ती जलाकर बोला, "चलो, अगर मालिक तैयार हो गये, तो मैं सिगरेट भी दूँगा ।"

"तुम्हारा बहुत नाम लूँगा भाई !"

रास्ते में मेरी और उसकी घरेलू बातें भी हुईं । वह बड़े मजे से रिक्शा खींच रहा था । मैंने उससे पूछा, "तुम कहीं नौकरी भी करते हो ?"

"नहीं ।" उसने कहा ।

"तुम रहनेवाले कहाँ के हो ?"

"यहाँ से सात-आठ कोस दूर। देहात में रहता था।"

"यहाँ कितने दिनों से हो, घर भी तो जाते होगे ?"

"यहाँ चार-पाँच बरसों से हूँ। घर तो कभी नहीं जाता।"

"क्यों ?"

पों···पों···पों···पों···पों···!

सप्···सप्···सप्···सप्···सप्···!!

क्रीन्···क्रीन्···क्रीन्···क्रीन्···!!!

सवारियाँ दोनों ओर से आ-जा रही थीं। उसने मेरे 'क्यों' का जवाब इस तरह दिया, "गाँव पर रखा ही क्या है ? न अपना घर है, न अपना खेत। एक बार बेगार खटने से इन्कार किया, तो जमींदार ने झोपड़ी के बाँस और छप्पड़ उतरवा लिये। तभी तो भागकर यहाँ चला आया। मगर क्या बतलाऊँ दोस्त, कभी-कभी गाँव की याद जरूर आ जाती है।"

बनगाँव बहुत बड़ी बस्ती थी, खैर अब तो कस्बा हो गया था। कई हिस्सों के, शहरों में मुहल्ले की तरह, इसके कितने नाम थे। मुरलीपुर, नरहरवाँ, पालीचक और पत्थरगंज। रिक्शावाला मुझे पत्थरगंज ले आया। रिक्शे के मालिक का यहीं मकान था। भेंट मालिक से नहीं, मालिक के बेटे से हुई। उसने मालिक के बेटे को सवा दो रुपये दिये और कहा, "चार आने पंक्चर बनाने का लगा है।"

"चार आने ?"

"जी, सरकार !"

"देखो, गाड़ी ठीक से चलाया करो। ऐसे पंक्चर होता रहेगा, तो उसका खर्च तुम्हें ही देना होगा।"

"सरकार, मैं तो बड़ी होशियारी से चलाता हूँ।"

"और इतनी देर से क्यों आये, दूसरा गाड़ीवान इन्तजार करके अभी गया है।"

"जरा घर के लिए दूध लेने में देर हो गयी।"

"हूँ···।" कहकर वह आदमी कुछ भुनभुनाया।

पहले उस रिक्शेवाले ने उसके चेहरे को बड़े गौर से देखा, फिर मेरी ओर इशारा करके हाथ जोड़ता हुआ बोला, "मालिक, यह मेरा दोस्त है। बड़ी मुसीबत में है। इस पर कुछ दया कीजिए।"

"क्या दया करूँ, क्या चाहते हो ?"

"सरकार, यह भी रिक्शा चलाना चाहता है।"

"कहीं रिक्शा चलाया है ?"

"जी'''' ।"

"हाँ, सरकार! पहले चलाता था।" मेरी बात काटकर उसने जवाब दिया।

"अब क्या करता है ?"

"कारखाने में नौकरी करता है, खलासी है।"

"मगर मैं तो इसे जानता नहीं हूँ। गाड़ी का जिम्मा कौन लेगा ?"

"जी, सरकार गाड़ी का जिम्मा मैं लेता हूँ।"

मैं मन-ही-मन रिक्शेवाले के जीवट की तारीफ करने लगा। दस मिनट पहले की जान-पहचान में ही यह मुझ पर इतना विश्वास क्यों करने लगा। रिक्शे के मालिक ने मेरा पूरा-पूरा, घर का और कारखाने का पता लिख लिया और कहा, "जाओ, जबसे मन चाहे, आकर गाड़ी ले जाना। जब हरि तुम्हारी जिम्मेवारी ले रहा है, तब कोई बात नहीं।"

इसी वक्त और रिक्शेवाले वहाँ पहुँच गये। किसी को रिक्शा जमा करना था, किसी को ले आना था। मेरी उस गरीबी और तबाही के दिनों का वह मेरा नया दोस्त मुझे अपने साथ लेकर वहाँ से लौटा। अपने डेरे के पास आकर उसने मुझसे कहा, "अब जा सकते हो। रिक्शा मिल जायेगा, एक रोज में सिखला दूँगा।"

"अच्छा, तुम्हारा बड़ा नाम लूँगा हरि भाई!"

उसकी कच्ची कोठरी के भीतर से, जिसमें शायद बड़ी धुँधली रोशनी हो रही थी, खाँसने की आवाज सुनायी पड़ी। मैंने हरि से पूछा, "कोई बीमार है क्या ?"

हाँ, बीमार ही है।" वह बोला।

"कौन ?" मैंने पूछा।

"मेरी घरवाली।"

"क्या हुआ है ?"

"खाँसी है, दमा है और·····।"

"और ?"

"और कभी-कभी मुँह से खून भी गिरता है। बुखार भी हो आता है।"

"दवा खाती है ?"

"हाँ, खाती तो है।"

हरि की बात सुनकर और उसकी जनाना की बीमारी के बारे में जानकर मेरी इच्छा हुई कि उससे कहूँ, "किसी अच्छे डाक्टर से दिखलाओ।" मगर, इतनी ही देर के संबंध में अब यह जानना बाकी नहीं रह गया था कि उसकी तबाही ने उसकी कमर झुका दी है। उसके आगे एक अजीब बेक़सी की दीवार खड़ी है, जो न पिघल सकती है, जो न गिर सकती है, जिसे तोड़ने की ताक़त हरि भाई में अब शायद नहीं है। हाँ, सिर्फ उसके आगे टूटने और पिघलने की उम्मीद पर खुद को टूटा हुआ जानकर भी खून और पसीना के गिलावे मिला रहा है—बहा रहा है।

"अच्छा, मैं कल ही आऊँगा।" मैं बोला।

"जरूर आओगे।"

मैं हरि के यहाँ से अपनी झोपड़ी में चला आया। अब रात हो गयी थी। लौटकर आया, तो देखा, दीपन अपनी झोपड़ी के सामने पीकर चित गिरा हुआ है। उसे शायद उल्टी भी हुई थी। मैं उसके मुँह के पास ढिबरी ले गया। उसकी गर्दन के नीचे खिचड़ी गिरी हुई थी। माँ से एक लोटा पानी माँगकर, मैंने उसका मुँह धो दिया और उठाकर भीतर उसे पलानी में लेटा दिया। उसके साथ रहनेवाला आदमी छः बजे काम पर चला गया था। अपनी झोपड़ी में भीतर जाते ही सनीचरी ने मुझसे पूछा, "दूध का क्या हुआ ?

"होगा, दूध आयेगा। घबड़ाओ मत।" मैं बोला।

"अभी रोता-रोता तो सो गया है। छाती मुँह में देती हूँ, तो पकड़कर खींचता है और चिल्लाने लगता है।"

"चिल्लाता ही होगा। पानी पिलाती हो न ?"

"पिलाती तो हूँ, मगर पीता कहाँ है? बड़ा झुंझुआता है।" सनीचरी बोली। मैंने कुछ जवाब न दिया। जान-बूझकर चुप रह गया।

"खा न ले रे मँगरुआ, भूख नहीं लगती तुम्हें ?" बाहर से आकर माँ बोली।

"दे न।" मैं बोला।

"टमाटर का भुर्ता और रोटी है।" उसने कहा।

"निकाल।"

जैसे ही मेरी माँ मेरे आगे रोटी और भुर्ता लेकर आयी कि बाहर से सुनायी पड़ा, "मँगरू यहीं रहते हैं न ?"

"हाँ, इसी में। सामने।" किसी ने जवाब दिया। आवाज कुछ-कुछ पहचानी हुई मालूम पड़ी।

"रखो। मैं अभी आता हूँ।" मैंने माँ से कहा और झोपड़ी से बाहर निकल आया। बाहर आते वक्त मैंने हाथ में ढिबरी ले ली थी। देखा, मुझे खोजनेवाला आदमी वही था, जिसकी सोशलिस्ट मजदूर यूनियन में बड़ी धाक थी। सभा में बड़े ठाठ के साथ बोलता था और ऐसी-ऐसी दलीलें देता कि लगता, कांग्रेस सरकार में सचमुच कोई जान नहीं है। मुझे यह भी मालूम था कि सोशलिस्ट मजदूर यूनियन का वह सेक्रेटरी है और यूनियन के प्रेसीडेंट का दाहिना हाथ है। सामने जाकर मैंने उन्हें सलाम किया। बोला, "कहिए, क्या आज्ञा है ?"

"तुम्हारा ही नाम मँगरू है ?"

"जी, मँगरुआ मैं ही हूँ।"

मुझसे जवाब पाकर उस आदमी ने मेरे बायें हाथ को अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया और बड़ी मुहब्बत के साथ उसे दबाता हुआ बोला, "क्यों, इस तरह पार्टी से रुष्ट क्यों हो? तुम्हारे-जैसे औघड़ों के बल पर ही तो यह मसान

जगेगा। कांग्रेस की यूनियन ने अब तक जो तुम्हारे लिए किया है, सो तो देख ही चुके। वे लोग तो राजा हैं। राजा और प्रजा की दोस्ती कैसी ?"

"सो तो है!"

"जी, महसूस तो करता हूँ।"

"तो, बस आ जाओ पार्टी में। पार्टी को तुम्हारे-जैसे काबिल और तजुर्बेकार साथी की जरूरत है। सोशलिस्ट पार्टी ही एक ऐसी पार्टी है, जिसकी आलोचनाओं से कांग्रेस के खम्भे थर-थर काँपते हैं। मैं तुमसे इसी बात के लिए अर्ज करने आया हूँ। बोनस के लिए हमलोगों ने माँग की थी, मगर मैनेजिंग एजेण्ट ने कोई खयाल न किया। आज से चार रोज बाद हमलोग हड़ताल करने जा रहे हैं। दफ्तर में आकर लिस्ट देखो। सैकड़े पञ्चानवे मजदूर तो सोशलिस्ट हो गये हैं। तुम चाहो, तो सैकड़े पाँच भी न बचें।"

"अच्छा, आप खड़े हैं। तकलीफ होती होगी। मैं जरा टाट ले आऊँ....।" कहकर मैं झोपड़ी में घुसा और अन्दर से टाट निकाल लाया। वे मेरे हाथ से टाट लेकर बोले, "तुम ढिबरी दिखलाओ, मैं बिछा लेता हूँ।"

टाट बिछाकर हम दोनों वहीं बैठ रहे। ढिबरी बगल में रख दी। मेरा मन सङ्कोच में डूबने लगा था। यह बतलाने में बड़ा दुःख हो रहा था कि मैं चड़ोदकर बाबू की सारी पोल जान गया हूँ। मजदूर-संघ से मेरा सम्बन्ध न रहे, अब यही चाहता हूँ। और, यह कहना भी बड़ा मुश्किल जान पड़ रहा था कि मजदूरों के मैदान में पैर जमाने के लिए राजनीति का शायद यह पहला कदम है कि उन्हें बड़ा-से-बड़ा सुख और बड़ी शान्ति दिलवाने की लालच दी जाये। दयानाथ मेंढारकर जब रतननगर में आये थे, तो मजदूरों को सुख-शान्ति दिलवाने की कसमें खाते थे। आप जैसे इन दिनों सभा में बोलते हैं, वैसे ही वे भी फूत्कार मार-मारकर बोलते थे। हाँ, आपके और उनके शब्दों और दलीलों में थोड़े का फर्क जरूर है। मगर मैंने किसी तरह उनकी बात नहीं काटी। मैंने कहा, "चड़ोदकरबाबू, शायद हड़ताल पर विश्वास नहीं करते। कहते हैं, हमारे देश को अभी नयी-नयी आजादी मिली है। मुल्क सङ्कट के बीच से गुजर रहा

है। ऐसी हालत में कल-कारखाने को बन्द करा देना ठीक नहीं होगा। हमें पञ्च के फैसले का इन्तजार करना चाहिए।"

"तुम क्या चाहते हो, हड़ताल नहीं हो ? मेरी समझ में तो हड़ताल के सिवा और रास्ता नहीं है। देश की हालत सोशलिस्ट पार्टी ही सुधार सकती है। और, सोशलिस्ट पार्टी का विधान है—मजदूर-सङ्गठन और हड़ताल।"

"सो तो ठीक है।" मैं बोला।

"हमारी पार्टी तो हड़ताल कराकर रहेगी।"

"बड़ा अच्छा होगा।"

"ऐसे काम नहीं चलेगा। तुम पार्टी में आ जाओ। जो मजदूर पार्टी के दफ्तर में आते हैं, तुम्हारी बुद्धि और सूझ की दुहाई देते हैं। मुझसे तो यहाँ तक कहा गया है कि रतननगर के तुम ऐसे पहले हिम्मतवर हो, जिसने कारखाने में अपने हक की लड़ाई की आवाज उठायी। मुझे यह भी मालूम है कि तुम अंग्रेजी और हिन्दी की अच्छी योग्यता रखते हो। मैं सभापति से कहकर तुम्हें सलाह-कारिणी समिति का सदस्य बना लूँगा। तुम्हारी बातें अमल में लायी जायेंगी।"

"नहीं, मैं इस योग्य कहाँ हूँ, आप इसका खयाल मत कीजिए।" मैंने कहा। वैसे मैं सचमुच इस योग्य कहाँ था।

"नहीं जी, तुम्हारे-जैसे लोग पार्टी में आ जायें, तो पूरा मुल्क ही सोशलिस्ट हो जाय।"

"आदमी से कुछ नहीं होता, काम से सब कुछ होता है।" मैं बोला।

"आदमी ही तो काम करता है साथी! बोलो तो, शामिल होते हो पार्टी में ?"

"ऐसे क्यों कह दूँ, जरा सोच लूँगा।"

"सोच भी लोगे, मगर कल दफ्तर में आओ। सभापतिजी भी तुमसे मिलना चाहते हैं।"

"सच ?"

"हाँ, आओगे। मैं इन्तजार करूँगा। उनसे भी बातें हो लेंगी।"

"आज दो बजे रात से तो मेरी ड्यूटी है। दस बजे छुट्टी होगी।"

"ठीक है, दस बजे के बाद ही आना। सभापतिजी को कहीं जाना भी होगा, तो मैं उन्हें रोक लूँगा।"

"अच्छा, मैं आऊँगा....।" मेरे मुँह से निकला।

'शाबास साथी', कहकर वे मेरी टाट को छोड़कर उठ खड़े हुए। मैं उन्हें झोपड़ियों के अहाते से बाहर तक छोड़ आया। न-जाने, वे वहाँ से पार्टी के दफ्तर में चले गये या कहाँ। मैं अपनी झोपड़ी में लौट आया और टाट को जहाँ-का-तहाँ बिछाकर ढिबरी की रोशनी में रोटी और टमाटर का भुर्ता खाने लगा।

मेरा बेटा उस रोज शायद रात-भर रोता रहा होगा। मुझे नींद नहीं आयी। ड्रेड़ का भोंपा बजते ही कन्धे पर गमछा रखकर मैं कारखाने की ओर भागा। गेट पर कार्ड गिराकर भीतर एसिड प्लाण्ट में आया, तो झपसी भाई से भेंट हुई। मैंने सोशलिस्ट मजदूर यूनियन के सेक्रेटेरी से हुई सारी बातें उन्हें बतलायी। वे बोले, "मैं तुम्हारे साथ हूँ। इस काम में तुम मुझसे अधिक समझदार हो।"

"इस यूनियन की हालत मजदूर-सङ्घ की तरह हुई, तो ?"

"कौन जानता है, मगर मेरा खयाल है कि नयी ताकत की मदद करनी चाहिए।"

हमलोग अभी बात ही कर रहे थे कि शीफट इञ्जीनियर आ गये। झपसी भाई उन्हें देखकर बोले, "नमस्ते साहब।" जवाब में साहब ने जरा-सा सिर हिला दिया। मैंने हाथ जोड़कर कहा, "सलाम हुजूर!"

"हूँ....।" कहकर वे आगे बढ़ गये।

"क्या खयाल है तुम्हारा, हड़ताल होगी ?" झपसी भाई ने मुझसे पूछा।

"बातचीत से तो यही पता चला है कि हड़ताल होगी।"

हमलोगों की बातचीत अभी खत्म भी नहीं हो पायी थी। मैं अपने और दोस्तों के साथ काम में लगने ही वाला था कि शीफट इञ्जीनियर लौटकर आये। आते ही उन्होंने झपसी भाई से कहा, "देखो मिस्त्री, तीन नम्बर टङ्की से एसिड लीक कर रहा है। छेद बन्द करो।"

"अच्छा साहब ···· ···· ···· ।" कहकर झपसी भाई तीन नम्बर टङ्की की ओर दौड़े।

मैं जहाँ ब्वायलर पर काम करता था, वहाँ से तेजाब को खौलानेवाली टङ्कियाँ साफ दिखायी पड़ती थीं। टङ्कियों के ऊपर बहुत ही तेज रोशनी जल रही थी। मैंने देखा, यहाँ से जाकर झपसी भाई टङ्की के किनारे पर चढ़ गये। नीचे उनका हेल्पर मरम्मत करने के सामान लिये खड़ा था। रोज-रोज वही काम करने के कारण यह समझते देर न लगी कि वे अपने हेल्पर से कोई काम लेना चाहते थे। मुझे उनकी आवाज सुनायी पड़ी। उन्होंने हेल्पर से कहा, "नीचे की पाइप से एसिड खींचो। टङ्की बहुत गर्म है।"

मैं ट्राली में गंधक भर-भरकर ब्वायलर में धकेलने लगा। टंकी की ओर से मैंने इसी कारण आँखें फेर लीं। मेरे मुँह और नाक में गंधक का जहरीला धुआँ फिर समाने लगा। मैं सोच रहा था कि अब सचमुच मजदूर सोशलिस्ट पार्टी को चाहने लगे हैं। पार्टी का साथ देना बुरा नहीं होगा। बादलों का दल बनकर उगते हुए सूर्य की रोशनी नहीं रोकनी चाहिए। नयी कोंपलें न फूटें, तो नये फल नहीं मिल सकते। तभी कारखाने में बड़े जोर का शोर हुआ, "ऐक्सीडेण्ट! ऐक्सीडेण्ट!!

"क्या हुआ?" गंधक भरने की ट्राली छोड़कर मैंने एक कुली से पूछा।

"एसिड की टंकी में मिस्त्री गिर गये ····।" वह बोला।

"मिस्त्री कौन मिस्त्री?" मैंने पूछा और ब्वायलर के पास से हटकर टंकी की ओर से मुड़ना चाहा। उस कुली ने जवाब दिया, "अरे, झपसी मिस्त्री। और कौन? टंकी के ऊपर से पैर फिसल गया।"

एसिड की गर्म टंकी में गिरने पर आदमी की क्या हालत होगी? मैं तो सन्न हो गया।



रतननगर अस्पताल के बरामदे पर भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। मैं भी था, मगर झपसी भाई की लाश के पास। सुबह हो गयी थी। सूरज के निकलते-निकलते यह खबर न-जानें, झपसी बहू भउजी तक कैसे पहुँच गयी। वह रोती और चिल्लाती हुई अस्पताल में आयी। साथ में उसके बच्चे भी थे। भउजी के कपड़े का ठिकाना नहीं था। आते-आते ही वह झपसी भाई की लाश पर गिरने लगी। मैंने उसे रोककर कहा, "यह सब क्या कर रही हो भउजी! झपसी भाई बहुत ईमानदार थे। जिसका नमक खाते थे, उसी के काम के लिए जान भी दी है।"

कमरे के फाटक पर बड़ी भीड़ थी। भउजी दीवार से सर को टकराने लगीं। मैं जब तक उसे सम्हालता, उसके माथे से खून की पतली धारा बह चली। मेरा अन्दाज है कि जिस तरह भउजी उस वक्त रो रही थी, उसके रोने की आवाज अस्पताल के कोने-कोने में क्या, अस्पताल के बाहर भी जा रही होगी। भउजी की रुलायी अस्पताल में कोहराम मचाये हुई थी। झपसी भाई का हेल्पर और उसके साथ तीन-चार कुली * रंथी के लिए बाँस काटने चले गये थे। उनकी लाश उनके क्वार्टर पर ले जाना हमलोगों ने जरूरी नहीं समझा। खौलते हुए तेजाब में गिरने की वजह से उनके शरीर की बुरी गत हो गयी थी। आँखें पककर फूट गयी थीं। कान और हाथ-पैर की उँगलियों का पता नहीं चलता था। पेट के ऊपर का चमड़ा इतना पक गया था कि अगर साधारण झटके के साथ भी उन्हें उठाया जाता, तो पेट फट जाता और अँतड़ियाँ बाहर निकल आतीं तभी सामने की भीड़ को चीरते हुए अस्पताल के दरवान ने लोगों से कहा, "हटिये-हटिये, बड़े साहब आ रहे हैं।"

मेरी समझ में नहीं आया कि बड़े साहब कौन हैं। कमरे के फाटक पर भीड़ को तितर-बितर होने लगी। तभी मैंने देखा, एक छः फुट का गोरा-

---

* अर्थी।

सा आदमी, सूट-बूट पहने, चश्मा लगाये मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मैंने उन्हें देखा भी था। और पहचानता भी था, वे थे पूरे कारखाने के वर्क्स मैनेजर। इनका बहुत बड़ा ओहदा था। कल-कारखाने किस तरह चलाये जाने चाहिए, इसका इम्तहान विलायत से पास करके आये थे। उनका शरीर इतना दुरुस्त और चेहरा इतना रोबीला था कि उनके पास खड़े रहने की हिम्मत नहीं होती थी। बोलते बहुत कम थे। कारखाने में आते, तो सलामी की बारिश होने लगती। अफसर लोग सलाम करते, तो सिर हिला देते थे। हमलोगों की सलामी न सुनते थे, न हाथ जोड़ते देखते। शायद इसीलिए वे सलामी का जवाब भी नहीं देते थे। उन्हें सामने देखकर मैं लाश की बगल से उठ खड़ा हुआ और बोला, "सलाम साहब!"

"सलाम!" आज पहली बार सलामी का जवाब मिला। उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो, यह तुम्हारे साथ काम करता था?"

"सरकार, हमलोग एक ही जवार के रहनेवाले हैं। हम दोनों एक ही शीफ्ट में काम करते थे। मैं वहीं एसिड प्लांट में कुली हूँ।"

*"......रजवा हो रजवा....कइसे चुपे-चुपे भगल हो रजवा....।" भउजी रो रही थी।

"यह औरत कौन है?" वर्क्स मैनेजर ने पूछा।

"यह उसकी जनाना है' सरकार!"

"हूँ........। यहाँ क्वार्टर में रहता था न?" बड़े साहब ने पूछा।

"जी।" मैं बोला।

"यहाँ इसका कोई और है? साहब ने सवाल किया।

"नहीं मालिक, एक मैं ही हूँ। बेचारी की मदद करनेवाला और कोई नहीं है।"

"इतनी रोती क्यों है। रोने के लिए मना करो। इसे चुप होने के लिए कहो।" साहब बोले।

"सरकार, मरद का बिछोह बड़ा दुःखदायी होता है। मना करने के लिए तो मैंने कई बार मना किया, मानती ही नहीं।"

---

*राजा, तुम कैसे चुपके-चुपके भाग गये!

"मैं मना करता हूँ....।" कहते हुए वर्क्स मैनेजर झपसी बहू भउजी के सामने जाकर 'बोली' बदलते हुए बोले, "रोती क्यों है पगली, तुम्हारा मर्द ही था, तुम्हें तो दुःख होगा ही, मगर वह मेरा मिस्त्री था। उसकी कारीगरी की ताकत मेरी हर मशीन पर छायी रहती थी। मुझे मिस्त्री के इस तरह मरने का सख्त अफसोस है....।

"...........।" झपसी बहू भउजी रोती रही।

"मुझे इस बात की खुशी है कि इसके खिलाफ अब तक मेरे पास कोई शिकायत नहीं पहुँची थी। तुम्हारा आदमी बहुत ईमानदार था। मैं कम्पनी की ओर से इसकी वफादारी का दाद देता हूँ....।" कहते हुए वर्क्स मैनेजर ने अपने पतलून की जेब से सौ-सौ रुपये के तीन नंबरी नोट निकाले और भउजी की ओर बढ़ाते हुए बोले, "यह लो बख्शीश, तीन सौ रुपये हैं। और भी मिलेंगे....।"

"........।" भउजी रोती रही। उसने नोटों की ओर देखा तक नहीं। वर्क्स मैनेजर ने उन नोटों को भउजी के हाथ के नीचे गिरा दिये और मुझसे कहा," देखो, ये रुपये दे देना। और सुनो....।"

" जी ?" मैं बोला।

लाश को जल्दी हटवाओ। यहाँ अस्पताल में भीड़ लगाने से क्या फायदा ?"

"जी, बाँस आ रहा है। तुरत ले जाऊँगा।"

शायद इसके बाद वे डाक्टर के कमरे में चले गये। फिर मैंने उन्हें नहीं देखा, न देखने की कोशिश की। भउजी के साथ उसके चारों बच्चे भी रोने लगे थे। झपसी भाई का बेटा घोंघा 'बाबू हो बाबू' करके रो रहा था। तभी रंथी के लिए बाँस लेकर मेरे दोस्त आ गये। झपसी बहू भउजी के पास सौ-सौ रुपये के तीन नंबरी नोट यों ही पड़े थे। वह उन्हें छू भी नहीं रही थी। मैं जब उन नोटों को उसके हाथ में देने लगा, तो उसने बड़े क्रोध से हाथ पटका। न-जानें, वह क्रोध किस तरह का था। मैं नहीं कह सकता। हाँ, अब भउजी ने सिर को दीवार से टकराना छोड़ दिया था। बाँस आ जाने पर अस्पताल के बाहर रंथी बनायी जाने लगी। झपसी भाई के हेल्पर के पास रुपये थे। वह दौड़कर कफन के लिए आठ गज कपड़ा ले आया। मैंने भउजी से कहा, "ये नोट रख लो,

भउजी ! एक मूठ तीन सौ रुपये कुछ कम नहीं होते। झपसी भाई जिंदगी-भर कमाकर मर भी जाते, तो इकट्ठे इतने रुपये नहीं जमाकर दे जाते····!"

इसकी कैफियत देना तनिक मुश्किल है कि मुंह से ऐसी बात क्यों निकली। मगर मैंने जो कुछ कहा था, वही तुमसे बतला रहा हूँ। इस पर भी जब भउजी ने रुपये नहीं रखे, तो मैंने उन नोटों को उसके अँचरा के खूँट में बांध दिया। तभी मुझसे बतलाया गया कि रंथी बनकर तैयार है। भउजी गला फाड़कर रोती रहीं। मैं और मेरे कुछ मजदूर दोस्त, झपसी भाई की लाश को बहुत सावधानी के साथ उठाकर अस्पताल के अहाते से बाहर ले आये। लाश को रंथी पर रखकर अच्छी तरह बांध लेने पर मैंने एक मजदूर दोस्त से, जो एसिड प्लांट में ही काम करता था, कहा, "तुम अपने साथ मिस्त्री की जनाना और बच्चों को क्वार्टर में ले जाओ। वहीं रहना भी। हमलोग मंजिल से लौटेंगे, तो जाना।"

झपसी भाई भी वहीं जलाये गये जहाँ रकटू जलाया गया था, जहाँ बुधिया गाड़ी गयी थी। दसवें रोज कम्पनी का क्वार्टर खाली कर देने की नोटिस दी गयी। कम्पनी के यहाँ जितने रोज का वेतन निकलता था, वह झपसी बहू भउजी के अँगूठे का निशान लेकर दे दिया गया। धीलट भाई से तीन रुपये उधार लेकर मैंने माँ को दे दिये और दूध का खटाल दिखला आया। कहा, "यहीं से दूध ले जाया करना। फिर और रुपये का इन्तजाम करूँगा।" सोशलिस्ट मजदूर यूनियन की ओर से हड़ताल की जानेवाली थी। वहाँ से बार-बार मेरे लिए बुलावे आ रहे थे। मैंने झपसी बहू भउजी से कहा, "हड़ताल होनेवाली है। नोटिस से मत डरो। क्वार्टर मत छोड़ना।"

"मुझसे यह कैसे होगा? दरवान कहने आया था कि नहीं निकलोगी, तो जबरदस्ती खाली करा दिया जायेगा।" भउजी बोली।

"तुम चुपचाप रहो देखा, जायेगा।" मैंने कहा।

"अच्छा····!" भउजी बोली।

घोंघा को मैंने अपनी झोपड़ी दिखला दी थी। उसने कह दिया था कि अगर कम्पनी के दरवान आकर जबरदस्ती क्वार्टर खाली कराने लगें, तो आकर

खबर देना। इधर तीसरे रोज सोशलिस्ट पार्टी के दफ्तर में आना पड़ा और यहाँ आकर मैं सोशलिस्ट हो गया, सोशलिस्ट मजदूर यूनियन का मेम्बर बन गया। सभापतिजी ने मेरी पीठ ठोंकते हुए कहा, "पार्टी को तुम्हारे-जैसे मजदूर कार्यकर्ता की जरूरत थी।""।" जवाब में मैंने जरा-सा मुस्कुरा दिया।

शाम को मैं झपसी भाई के क्वार्टर पर पहुँचा, तो पता चला कि कम्पनी की ओर से कोई भी कड़ी कारवाई नहीं की गयी है। फिर कोई दरवान क्वार्टर खाली कराने या धमकी देने नहीं आया। इसके चौथे रोज रात को दो बजे से रतननगर मैदान में, मजदूरों की एक आम सभा बुलाकर हड़ताल की घोषणा होनेवाली थी। तीसरे रोज मैं दो बजे रात में काम पर गया और चौथे रोज दस बजे से दिन में फैक्टरी से बाहर चला आया। झोपड़ी में आकर खाना खाया और फिर झपसी बहू भउजी के यहाँ चला गया। उससे रुपये माँगकर खाने के सामान खरीदकर ला दिया, तब वहाँ से सीधा मजदूर यूनियन के दफ्तर में पहुँचा। मजदूरों में यह बात शायद हवा की तरह फैल गयी थी कि मंगरुआ सोशलिस्ट हो गया। भेंट होने पर वे अहसान जाहिर करते और बधाइयाँ दे रहे थे।

खाना खाकर झोपड़ी से बाहर निकलते वक्त मैंने माँ और सनीचरी से कह दिया था कि आज मेरे आने का कोई ठीक समय नहीं है। देर-सवेर होने के कारण वे घबड़ायेंगी नहीं। पूरी तारीख तो याद नहीं, मगर सन् १९४७ ई० का अप्रैल महीना था, जब हम मजदूर सोशलिस्ट पार्टी के लाल झंडे के नीचे खड़े होकर इन्कलाब की आवाज बुलंद करने जा रहे थे, जब हम अपने सोशलिस्ट झंडाबरदार की सलाह पर हड़ताल की घोषणा ही नहीं, हड़ताल भी करनेवाले थे। रतननगर की हवा में एक अजीब गर्मी और उत्सुकताहट फैल रही थी। मेरे सोशलिस्ट होते ही, कुछ मजदूर जो अभी इस सोशलिस्ट मजदूर यूनियन के मेम्बर नहीं थे, आ-आकर मेम्बर बनने लगे। पाँच बजे शाम तक यूनियन के दफ्तर के सामने लगभग दो हजार मजदूर इकट्ठे हो गये। हमारा हड़ताली जुलूस यहाँ से निकला। हमारी पार्टी का निशान था—लाल झंडा। झण्डे के बीच में हँसिया और हथौड़े का चिह्न बना था, जो मजदूरों की जिन्दगी, रोजी

और रोटी का मिसाल पेश करनेवाला माना जाता था। मैं हाथ में बड़ा-सा लाल झण्डा लिये जुलूस के आगे था। मेरे पीछे-पीछे दो-ढाई हजार मजदूर चल रहे थे। हमारे नारे की आवाज की बुलंदगी आसमान को छू रही थी—

मजदूर-क्रांति, जिंदाबाद !
दुनिया के मजदूरों एक हो !!
दो बजे रात से, कारखाने बंद करो !!!

दो-ढाई हजार मजदूरों की बुलंद आवाज से एक अजीब इंकलाब का समाँ बँधने लगा था। फटे-चिटे कपड़े पहने मजदूर, गला फाड़-फाड़कर नारे लगा रहे थे। दफ्तर के सामने से चला, तो साढ़े पाँच, पौने छः बजे तक रतननगर कारखाने के मेन-गेट पर आ पहुँचा। मेन-गेट खुला था और मजदूर कारखाने से निकल रहे थे। छः बजे शाम से दो बजे रात की ड्यूटी करनेवाले कारखाने में घुस रहे थे। आज यहाँ पहली बार हमलोगों ने अपने नये नारे बुलंद किये:—

कांग्रेस सरकार किसकी है, सेठों और जमींदारों की !
मजदूर-एकता कायम कर, कांग्रेस को धक्के दो !!
है मेरा झंडाबरदार, सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी !!!

ड्यूटी से छुट्टी पाकर, जो मजदूर कारखाने से बाहर निकले, वे सभी जुलूस में शामिल हो गये। आज के जुलूस का अगुआ मैं जो था। मजदूर मेरी ओर बड़े प्रेम से देखते और पंक्ति में बनकर आगे बढ़नेवाले जुलूस में शामिल हो जाते। अब हमारे नारे की आवाज चौगुनी गूँजने लगी। रतननगर के जिन रास्तों से हमारा जुलूस नारे लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था, उनके दोनों ओर कारखाने के बड़े-बड़े अफसरों के बँगले थे। वे अपने बँगले के बरामदे पर आरामकुर्सियों में बैठे हमारे जुलूस की ओर अनमनी आँखों से देख रहे थे। उनकी औरतें खिड़कियों से देख रही थीं और बंगले पर पहरा देनेवाले दरवान बड़े सजग होकर लाठी लिये फाटकों पर खड़े हो गये थे। मुझे यह भी याद है कि गन्दे क्वार्टरों में रहनेवाले मजदूरों के कुछ बच्चे भी जुलूस की लाइन के अगल-बगल होकर चल रहे थे। हमारे नारे गूँजने लगे—

जमींदारों का दोस्त, कांग्रेस सरकार!
सोशलिस्ट पार्टी, मजदूरों की पार्टी!!
दो बजे रात से, हड़ताल करो!!!

आखिर हम रतननगर के मैदान में इट्ठे हुए। धीरे-धीरे सभा की कार्रवाई शुरू होने को हुई। यूनियन के सेक्रेटेरी सभा में आ गये थे, सभापतिजी शीघ्र ही आनेवाले थे। मैं मजदूरों से शांतिपूर्वक बैठकर सभापतिजी के आने का इन्तजार करने के लिए प्रार्थना कर रहा था। तभी किसी मजदूर ने मेरे कन्धे पर पीछे से हाथ रखकर कहा, "उधर देखो, मंगरू भाई!"

"क्या है?" फिरकर मैंने पूछा।

"एक आदमी तुमसे मिलना चाहता है।"

"कौन है?"

"मैं नहीं जानता। देखो, उधर खड़ा है।"

भीड़ की बगल में खड़ा एक आदमी मेरी ओर देख रहा था। मैं आदमी के पास गया और बोला, "तुम मुझे खोजते हो?"

"हां।" उसने कहा।

"क्या बात है?"

"बड़ोदकर बाबू ने एक चिट्ठी दी है।" उस आदमी ने मेरे कान में मुँह सटाकर कहा।

"कहाँ है चिट्ठी, दो।"

"उधर अलग चलकर पढ़ो। एकांत में देने के लिए कहा है।"

"चलो।"

मैं उस आदमी के साथ मैदान की बगल में, जहाँ बिजली-बत्ती जल रही थी, गया। उसने मेरे हाथ में एक छोटा-सा कागज का टुकड़ा देकर कहा, "देखो, उन्होंने मना किया है, यह बात किसी को मालूम न होने पाये।"

"अच्छा।" मैंने कहा और बड़ोदकर बाबू की चिट्ठी पढ़ने लगा—

प्रिय मंगरू,

तुम्हारी अक्ल पर इस तरह क्यों परदा गिर पड़ा, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मालूम होता है कि सोशलिस्ट पार्टीवालों ने तुम्हें गहरी लालच दी है। लेकिन याद रखो, न तुम मजदूरों के होकर रहोगे और न पार्टी के। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हुकूमत कांग्रेस के हाथ में आ गयी है। जो कोई या पार्टी कांग्रेस के खिलाफ चलेगी, सरकार उसे किसी-न-किसी तरह बरबाद कर देगी, तबाह कर देगी। कानून से तुम लड़ सकते हो, संघर्ष कर सकते हो, मगर देश में शांति की सुरक्षा कायम करने के नाम पर कांग्रेस अपनी हुकूमत के हर हथियार का प्रयोग करेगी, इसका विश्वास रखो। अगर तुम अपनी तरक्की और भला चाहते हो, तो अभी भी यह मैदान छोड़कर चले आओ। मैं पचास रुपये महीने तुम्हें अपने पास से दिया करूँगा और फैक्टरी इंचार्ज के यहाँ सिफारिश करके मैठ बनवा दूँगा। सोच-समझ लो। अपनी भूल महसूस करो और यह आखिरी मौका हाथ से न जाने दो।

—चड़ोदकर

चिट्ठी पढ़कर मैं दो मिनट तक सोचता रहा, आखिर यह सब क्या है? इस तरह की नीति इख्तियार करके मुल्क के मजदूर और किसान का कहाँ तक भला हो सकता है? मैंने चिट्ठी मोड़कर अपनी मुट्ठी में रख ली और उस आदमी का मुँह देखने लगा। लेकिन, उस आदमी ने मुझे अधिक देखने का मौका नहीं दिया, पूछा, "क्या विचार है? लौटोगे या कुछ जवाब देना है?"

"नहीं।"

"क्या नहीं?" उसने पूछा।

"यही कि न मैं लौटूँगा और न कुछ जवाब देना है।"

"चड़ोदकरबाबू से यह दूँगा?"

"हाँ। कहना, मंगल पार्टी नहीं छोड़ेगा—तब तक नहीं छोड़ेगा, जब तक उसमें कोई दाग न देखे।"

"चिट्ठी लाओ।" उसने कहा।

"कैसी चिट्ठी?"

"जो मैं ले आया हूँ।"

"यह चिट्ठी मेरे नाम लिखी गयी है। इसे रख लेने का मुझे पूरा-पूरा हक है। जाओ, अपना काम करो।"

"हड़ताल होगी ?"

"हाँ, आज ही ! दो बजे रात से।" मैंने कहा।

"अच्छा·······।" कहकर वह आदमी न-जाने किधर चला गया। मैं वहाँ से लौटकर जब तक सभा के मंच पर आऊँ कि तब तक मजदूरों ने सभापतिजी की जयजयकार मनायी ! चारों ओर आवाज गूँजने लगी—

मानिकबाबू की, जय !

मानिकबाबू, जिंदाबाद !!

करीब दस-बारह हजार मजदूरों के बीच में खड़े होकर मानिकबाबू व्याख्यान देने लगे। वे अपने भाषण में कांग्रेस सरकार की धज्जियाँ उड़ा रहे थे। बार-बार तालियाँ बज रही थीं। एक जगह उन्होंने कहा, "हड़ताल का प्रस्ताव सामने रखते ही कांग्रेस सरकार और मिल-मालिक की ओर से यह कहा जाता है कि अभी हमारी आजादी बची है। इसे दूध पिलाकर हमें पालना है। विदेशी सरकार देश के धन को चूसकर ले गयी है। अभी हम इस लायक नहीं हैं कि मजदूरों की माँग पूरी कर सकें। तो रतननगर के मजदूर साथियो, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि कांग्रेस सरकार के जो मंत्री, आजादी हासिल होने के पहले गाँधी-आश्रम और वर्धा आश्रम जैसे आदर्श आश्रमों में बैठकर सूतें काता करते थे, जो कहते थे, उनके रहने के लिए एक छोटी-सी झोपड़ी ही काफी है, वे सरकारी बँगले खाली न होने पर, तबादला होते हुए कमिश्नरों की कोठी में आनन्द कर रहे हैं। यही तो संकटकाल से गुजरते हुए मुल्क के नेताओं की पहचान है। जो मंत्री-पद को पाने के पहले, जेठ की चिलचिलाती धूप में सड़कों पर पैदल चला करते थे और मुल्क के किसान-मजदूरों को यह दिखलाते थे कि वे मजदूर-किसानों के साथ बढ़ने-घटनेवाले हैं। आज उन्हें सरकार की ओर से बीस-बीस हजार रुपये की मोटरगाड़ियाँ मिली हैं, उससे उतरकर पैदल चलना वे पाप समझते हैं। शायद अंग्रेजों ने कृपा कर इस सुख-सुविधा के लिए रुपये रख दिये थे।·······"

तड़् तड़्-तड़्-तड़्""।

तालियों की आवाज हुई। मानिकबाबू ने आगे कहा, "अपनी कोठियों पर ये मंत्री जो प्रेस-कान्फ्रेन्स बुलाते हैं, उसमें प्रेस के प्रतिनिधियों को पार्टी दी जाती है, जिसमें हजारों रुपये खर्च होते हैं और ये रुपये उन्हें जेब से नहीं देने पड़ते। वे रुपये सरकारी खजाने से दिये जाते हैं, जो आप-जैसे मजदूर भाइयों की कठिन कमाई हैं, जो आप पर लगाये गये कड़े टैक्स के रुपये हैं। ये रुपये इंगलैंड से अंग्रेज भेज रहे हैं या हिन्दुस्तान से खर्च होते हैं? कुल मिला-जुलाकर उन लोगों को तो यह कहना चाहिए कि यह संकटकाल सिर्फ मजदूरों और किसानों के लिए है—हमलोगों के लिए नहीं। हम तो सरकार हैं""।"

"सिर्फ टोपी बदल गयी है""टोपी""कंटोप की जगह खजवा टोपी हो गयी है""।" मजदूरों की भीड़ से आवाज आयी।

आखिर में, हड़ताल की घोषणा करते हुए मानिकबाबू ने मजदूरों से कहा, "मैंने कंपनी के मैनेजिंग एजेण्ट से कभी भी गर्म होकर बातचीत नहीं की। मैं आपका संदेश पहुँचाने के लिए जब भी उनसे मिला, ठंडे दिमाग से मिला। उनसे बातचीत के सिलसिले में मैंने शुरू से लेकर आखिर तक समझौते की कोशिश की।" मैंने कहा, "कुछ आप दबने की कोशिश करें, तो मैं कुछ मजदूरों को भी दबा सकूँगा।""" मगर उन्होंने मेरी कोई शर्त न मानी और हमारी रोजी और रोटी की जायज माँगें ठुकरा दीं। फिर आपलोगों की सलाह से, मजबूर होकर हम हड़ताल के लिए तैयार हो गये। मजदूर साथियो! इस पूँजीवादी सरकार और पूँजीपतियों से लड़ने के लिए हमारे पास हड़ताल के सिवा कोई रास्ता नहीं है। इसलिए, आपलोग आज दो बजे रात से आम हड़ताल करें और यह हड़ताल शांतिपूर्ण ढंग से तब तक चलती रहे, जब तक हमारी माँगें पूरी न हो जायें। सिर्फ पावर-हाउस छोड़कर सभी कारखाने आज से बन्द रहेंगे। और, जो भाई कंपनी के पिट्ठुओं के बहकावे में आकर काम पर जायेंगे, उन्हें सोचना चाहिए कि इससे सिर्फ उनका ही नुकसान नहीं, रतननगर के मजदूरों का गला कट जायेगा और इस पाप के भागी भी वही होंगे।"""

पूंजीवाद, नाश हो !
हक के लिए, लड़ेंगे !!
बोनस हमारा दे दो !!!

इसी सिलसिले में जब मानिकबाबू की जयजयकार मनायी जाने लगी, तो वे कुछ गर्म आवाज में बोले, "मानता हूँ, मिल-मालिक के पीछे कांग्रेस-सरकार की ताकत है। कांग्रेस के पास पुलिस है, कचहरी है, जेल है और कानून है, मगर दोस्तो ! इस बात को हर्गिज मत भूलना कि मुल्क के किसान-मजदूर और जनता की मजबूत मुट्ठियों में वह ताकत है जो ऐसी सरकार को एक बार नहीं हजारों बार बदल सकती है। जाओ आपस में एकता रखो, संगठन मत तोड़ो। अपनी ताकत की आजमाइश करो और आज दो बजे रात से कारखाने के एक-एक कल-पुर्जे बंद कर दो........

उसी रोज रात के दो बजे से हड़ताल हो गयी। मगर पेट ने हड़ताल न की। मेरा बेटा, जिसका नाम माँ ने 'जिउराखन' रखा था, दूध पीता रहा। सनीचरी बीमार ही रही। लेकिन फैक्टरी के कल-कारखाने बन्द हो गये। पेपर फैक्टरी, सीमेन्ट फैक्टरी की चिमनियों से धुएँ का निकलना बन्द हो गया। मशीनों के चलने की गड़गड़ाहट खत्म हो गयी। मुर्दा जलानेवाले नदी के घाट की तरह कारखानों के भीतर मौत की भयानक शांति छा गयी थी। पावर-हाउस के गिने-चुने मजदूर काम पर जाते और ड्यूटी से बाहर आने पर, सब काम छोड़कर अपने हड़ताली दोस्तों से मिलते थे। पार्टी के अखबारों के अलावे दूसरे अखबारों ने भी हमारी शांतिपूर्ण हड़ताल की तारीफ की। कोई भी मजदूर हड़ताल के खिलाफ नहीं था। कारखाने के फाटकों पर एक बार भी 'पिकेटिंग' नहीं करनी पड़ी।

इन्हीं दिनों मैं रिक्शा चलाने लगा। हरि भाई ने सचमुच आठ घण्टे के अन्दर सिखला दिया। किस जगह से किस जगह का कितना भाड़ा लेना चाहिए, उसने यह भी बतला दिया था। लगातार सोलह-सोलह घण्टे सवारी ढोने पर मुश्किल से तीन सवा तीन रुपये मिलते, जिनमें ढाई रुपया रिक्शा के मालिक को दे देने पड़ते। कभी-कभी तो तीन रुपये भी मुश्किल से हो पाते

थे। उस रोज से जिउराखन के लिए छः आने का दूध आता और हमलोग तीन आदमी दो-दो आने की कचौड़ी-फुलौड़ी खाकर, भरपेट पानी पीकर सो रहते थे। सनीचरी भी धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही थी। मैं मौका निकालकर चाहता था कि स्टेशन आनेवाले मुसाफिरों के सामान भी प्लेटफार्म तक पहुँचा आऊँ, तो कुछ पैसे मिल जायँगे। मगर रिक्शा रुकते-रुकते रेलवे कुली टूट पड़ते थे।

"कितने कुली चाहिए बाबू?"
"कहाँ की गाड़ी में बैठना है?"
"कितने नंबर प्लेटफार्म पर ले चलूँ?"
"दो कुली चाहिए।" उत्तर मिलता।

"नहीं, नहीं, ।.लाइये न, सब मैं ही ले चलता हूँ। डेढ़ कुली के पैसे दे दीजिएगा·····।" कुली कहता।

"ठीक है सामान उठाओ।" मंजूरी मिलती।

फिर गर्दन टूटने की हर उम्मीद रहने पर भी एक कुली दो गदहों का बोझ सिर पर लाद लेता। जो फिर पर न अँटता, उसे बगल में दबा लेता था। नहीं तो थरमस, बाल्टी या लालटेन आदि से उसके हाथ जरूर ही फँस जाते थे। ऐसी हालत में, जब मैं देखता कि पेट ही के लिए एक इंसान दो गदहे का काम कर रहा है, तो अपने रिक्शे पर आये हुए मुसाफिरों से यह कहना मेरे लिए बड़ा कठिन हो जाता कि उनका सामान प्लेटफार्म तक मैं ही ले जाऊँगा। कुली के पैसे वे मुझे ही दे देंगे। पेट ही के लिए तो मैं घोड़ा बना था। जब मानिकबाबू को इस बात की खबर मिली कि मगरू रिक्शा चला रहा है, तो मुझे यूनियन के दफ्तर में बुलाकर धीरे-से कहा, "तुम क्यों इतनी मुसीबत झेल रहे हो? तुम तो हमारी पार्टी के खास आदमी हो। जब तक हड़ताल है, तब तक अपने खर्च के लिए यहाँ से पैसे ले जाया करो। मैं सेक्रेटेरी से कह देता हूँ।"

"नहीं, मुझसे यह नहीं होगा।"
"क्यों, तुम्हें एतराज क्या है?"

"एक मैं ही तो नहीं हूँ। मेरी ही तरह कारखाने के कितने मजदूर संघर्ष कर रहे हैं।"

"लेकिन, सब के लिए तो ऐसा इन्जाम करना मुश्किल है। पार्टी के पास इतने पैसे कहाँ हैं ?"

"तो रहने दीजिए। संघर्ष तो सभी कर रहे हैं, हड़ताल में तो सभी शामिल हैं।"

"तुम बड़े जिद्दी हो मंगरू......।" कहकर मानिक सिंह चुप हो गये मैं लौट आया।

इसी हड़ताल और संघर्ष के दिनों में मैंने रिक्शे के मालिक को ढाई रुपये देकर, दो-तीन रोज तक ऊपर से तीन-तीन रुपये कमाये। बनगाँव के दक्खिन और बगीचे में; एक अजीब तरह के बालचरों का कैम्प हो रहा था। बाहर से बहुत बालचर आ-जा रहे थे। वे हाफ पैण्ट, हाफ़ उजली कमीज पहने होते। उनके माथे पर काले रंग की टोपी थी। उनकी गर्दन से एक बैज भी कमर के नीचे लटक रहा था, जिस पर सुंदर-सुंदर अक्षरों में लिखा था—'राष्ट्रीय स्वयंसेवक'। कैम्प में सुना कि वे लोग लाठी, भाले, लेजम और तलवार चलायेंगे। इसके लिए उन्हें मेडल और पदवी भी मिलेगी। खाने-पीने के लिए बड़े ठाठ का इन्तजाम था। पचासों तंबू गड़े थे। इनमें कुछ लोग 'शिक्षक' के नाम से पुकारे जाते थे और पता चला कि इसका प्रधान कार्यालय नागपुर और पूना में है। तंबुओं की बगल में कपड़े का एक बहुत बड़ा बोर्ड टँगा था, जिस पर लिखा था—'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, ओ० टी०सी० कैम्प।' मैं बड़ी दिक्कत से इस बात का पता चल पाया कि यह शुद्ध हिंदू-संस्था है और इसका कोई राजनीतिक लक्ष्य नहीं है। फिर भी यह जानना मुश्किल ही रहा कि आखिर ये लोग चाहते क्या हैं। खुलकर उनमें से कोई यह नहीं बतला पा रहा था कि इस तरह से हिंदू-संगठन कायम किया जा रहा है। कैम्प का जब कार्यक्रम शुरू होता, तो पहले यही गीत गाया जाता—

ले हाथों में तलवार, केसरिया बाना,
मैदानों में आ जाना.........।

इसी तरह वे और भी कई तरह के मंगल-गान गाते, जिनमें महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह की प्रशंसा की बातें होती थीं। साथ-ही-साथ हिन्दू-राष्ट्र के झंडे की भी जयजयकार की जाती थी। मुझे पूरी तरह याद है कि उस कैम्प में कोई भी ऐसा नारा नहीं लगाया गया, जिसमें हिंदू-मुस्लिम एकता की आवाज हो, जिसमें 'महात्मा गांधी' नाम के कोई शब्द आये हों, जिनसे हिन्दुस्तान के मेहनतकश मजदूर-किसानों की भलाई करने का जजबात टपकता हो। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि आगे चलकर ये लोग क्या करना चाहते हैं और तीन रोज के बाद कैम्प उजड़ जाने तक भी मैं कुछ न जान सका।

मजदूरों की एकता बिलकुल नहीं टूटी। हड़ताल पर कोई धब्बा न लग सका और पूरे सोलह रोज के बाद रतननगर के हम ग्यारह मजदूरों को नहीं; ग्यारह हजार मजदूरों को कामयाबी हासिल हुई। कम्पनी हमारे आगे झुक गयी और हमारी सैकड़े पंचानबे माँगों को उसने मंजूर कर लिया। हमें बोनस भी मिले, छुट्टी के दिन बढ़े और तनख्वाह भी बढ़ी। जिस रोज हमारे और कंपनी के बीच फैसला हुआ, मैंने सुना कि उसके दूसरे रोज बड़ोदकर बाबू अपने सहयकों के साथ, दफ्तर में ताला बंद करके कहीं चले गये। बोनस के जो रुपये मिले, उनसे मैंने सनीचरी के लिए दवा खरीदी, सूई खरीदी। फिर भी बोनस के रूप में इतने पैसे नहीं मिले थे कि मेरी गरीबी कुछ दिनों के लिए भी दूर हो जाती। मैं काम पर जाने लगा और काम पर से लौटकर, समय निकालकर मेरा रिक्शा खींचना जारी रहा। इन्हीं दिनों तीन रोज की छुट्टी लेकर मुझे झपसी भाई की जनाना और उनके बच्चों को, उनके घर पर भी छोड़ आना पड़ा था। वहाँ से लौटते वक्त मैंने झपसी बहू भउजी से कहा था, "सब भगवान की लीला है भउजी! घोंघा अभी नाबालिग है, बालिग होता, तो कारखाने में नौकरी मिल जाती। खैर, किसी तरह बच्चों का मुंह देखो। ये झपसी भाई की निशानी है। कभी-कभी आकर तुमलोगों से जरूर भेंट कर जाऊँगा।"

अब रतननगर में सोशलिस्ट पार्टी की पूरी धाक जम गयी। मुझसे मानिकसिंहजी बराबर कहते थे कि मेरे लिए अफसरों से सिफारिश कर कोई

अच्छी जगह दिलवाना चाहते हैं, मगर मैं भी उन्हें बराबर मना करता रहा। मैं सोचता था कि मेरा यह अकेले का फायदा मेरे सारे मजदूर भाइयों के लिए बहुत भारी गद्दारी साबित होगा। हाँ, मेरी तरह कुछ और मजदूर पार्टी में आने-जाने लगे थे, जो चाहते थे कि यूनियन के दावे पर उनकी तरक्की हो जाए और कुछ मजदूरों के साथ ऐसा हो भी गया। मगर मैंने उनके खिलाफ आवाज नहीं लगायी। मेरा खयाल था कि अभी उनमें समझदारी की कमी है। अब हमारे मजदूर भाई को कोई भी अफसर ठोकर नहीं लगा सकता था, कोई अफसर गाली नहीं दे सकता था। मजदूरों के गले में हाथ लगाने से दरबान भी डरने लगे थे। मजदूर तो अब भी मजदूर थे; तकलीफें सारी नहीं दूर हो गयी थीं, मगर वे सिर उठाकर चलते थे, सिर झुकाकर नहीं।

इसी तरह चार महीने बीत गये। आठ अगस्त को १९४२ की क्रांति की याद मनाने के लिए कारखाने में एक रोज की छुट्टी हुई। जुलूस निकला, रतननगर और धनगाँव में सभाएँ हुईं। आस-पास के राष्ट्रीय नेताओं ने आजादी की लड़ाई के इतिहास दुहराये। अगस्त-क्रांति में गोली के घाट उतरे शहीदों के प्रति श्रद्धांजलियाँ दी गयीं और पाँच मिनट तक चुप रहकर लोगों ने राष्ट्र में शांति कायम रखने की कसमें खायीं। इसी घटना के एक महीना बाद ही, शायद सितम्बर के दूसरे सप्ताह का अंत हो रहा था—अखबारों में यह समाचार आया कि पाकिस्तान में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो रहा है। पाकिस्तान के किसी बहुत बड़े अधिकारी ने कराची रेडियो से कहा था, "दुनिया के मुसलमानो, अब देर मत करो। होशियार हो जाओ। तुम्हारा इस्लाम खतरे में है।"

इन दिनों मेरी ड्यूटी छः बजे शाम से थी। मैं सुबह ही स्टेशन के उस पार, खटाल में, जिउराखन के लिए दूध ले आने जा रहा था। जैसे ही खटाल के नजदीक पहुँचा कि देखा, एक सिगरेट की दूकान पर बैठे मुसलमान दूकानदार को, एक सिक्ख ने अपने कृपाण से दो टुकड़े कर दिया। मैं तो पत्थर की तरह

उसी जगह खड़ा हो गया। तभी पूरब की ओर से बड़े ज़ोरों की आवाज सुनायी पड़ी—

बोलो, महावीर स्वामी की जय !
हर-हर महादेव !!
सत् गुरु गोविंद सिंह की जय !!!

तभी एक हिन्दू होटल से, जो बगल ही में था, पाँच सात सिक्ख और निकल आये। उनके पास भी तरह-तरह के हथियार थे। वे लोग पहले सिक्खों की टोली के साथ शामिल हो गये। इसी समय दक्खिन की ओर से आवाज आने लगी—अल्ला हो अकबर! मैं अल्मुनियम का लोटा लिये स्टेशन के पुल पर चढ़ता हुआ बड़े जोर से, अपनी झोपड़ी की ओर भागा। ऐसे मौके पर खुदा या भगवान से मिलकर यह पूछना बिल्कुल नामुमकिन काम था कि सचमुच वे खतरे में हैं या इन्सान खतरे में है। मगर दो ही रोज के बाद सड़कें लाश से पट गयीं। उन्हीं से होकर पुलिस की लारियाँ चलने लगी। धरती बदसूरत हो गयी थी। इन्सानियत अपनी जगह से टल गयी थी। लाशों की सड़ाँध तो ऐसी फैली कि लोग हैजे के शिकार हो गये।

● ● ●

२४

भगवान या खुदाताला के यहाँ से इस तरह का कोई भी खत नहीं आया कि वे खतरे में नहीं हैं मगर क्या बतलाऊँ दोस्त! इन्सान हैवानियत की आखिरी मंजिल तक पहुँच गया। आदमी, आदमी का खून पी रहा था। रतननगर के

दंगे को पुलिस ने तीन-चार ही रोज में दबा दिया। लेकिन लाहौर, अमृतसर, दिल्ली और कलकत्ते से जो खबरें मिलती थीं, उन्हें सुनकर रोएँ खड़े हो जाते थे। कितने मन्दिर तोड़ दिये गये, कितनी मस्जिदें बरबाद कर दी गयीं। न जाने, उस दंगे में कितनी चूड़ियाँ फोड़ी गयीं, कितना सिंदूर धो दिया गया। कितने मुन्ने बर्छियों की नोक पर उछाले गये, कितनी मुन्नियों के हजार टुकड़े किये गये। कितनी बस्तियाँ जला दी गयीं। दिल्ली से भागकर आये हुए कई लोगों ने बतलाया कि वहाँ के सिक्ख दिल्ली स्टेशन के प्लेटफार्म पर आकर रेलगाड़ियों में बैठे हिंदू मुसाफिरों से पूछते, "है कोई शिकार, है कोई मुर्गा ?"

"शिकार और मुर्गा क्या ?" मैंने पूछा।

"मुसलमानों को वे उस वक्त इसी नाम से पुकारते थे।" वे बोले।

नोआखाली के मुसलमान, हिंदुओं को तबाह कर रहे थे। सुना गया कि अपनी माँ-बहन की प्रतिष्ठा बचाने के खयाल से कई हिंदुओं ने उन्हें अपने-आप काट डाला। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी की नोआखाली-यात्रा शुरू हो गयी। हिंदू-मुस्लिम एकता कायम करने के लिए वे नोआखाली पहुँचे। अखबारों में मैंने पढ़ा कि वहाँ के मुसलमानों ने सच्चे दिल से इनकी खातिर की। वे मुसलमानों के घर में ठहरे और वहीं भोजन भी किया। पूरी बात याद नहीं, मगर उन्होंने ऐसा बुरा काम नहीं करने की शिक्षा लोगों को दी थी। कुछ ही दिन के बाद वे नोआखाली से फिर दिल्ली लौट आये। न-जाने दोनों देशों के नेताओं के बीच किस प्रकार की शर्तें तय हुईं। मगर पाकिस्तान के बहुत से हिंदू, हिंदूस्तान में चले आये और बहुत-से मुसलमान पाकिस्तान चले गये। पाकिस्तान से भागकर आये हुए हिंदुओं की हालत अजीब थी। वे सड़कों, बगीचों, स्टेशन के मुसाफिर-खानों, धर्मशालाओं और मस्जिदों में भर गये। उन लोगों को 'शरणार्थी' कहा जाने लगा। उनके मुँह से भी मुझे लाहौर, अमृतसर के हत्याकांड की बातें सुनने को मिलीं। मगर क्या करोगे सुनकर ? मैं तो तुम्हें अपनी कहानी सुना रहा हूँ एक-एक बात कहाँ तक कहूँ, इतिहास तो लिख नहीं रहा हूँ।

इसी तरह सन् १९४७ का साल भी बीत गया। फिर कम्पनी के सामने हमारी यूनियन ने बोनस की माँग रखी और कम्पनी के मैनेजिंग एजेंट ने फिर

चुप्पी मार ली। जनवरी का महीना आ गया। इस बार हमलोगों ने कम्पनी के सामने इस तरह की माँगें पेश कीं, जो बाद में किसी हद तक नहीं हो सकीं—

(१) कारखाने में कम्पनी जहाँ-जहाँ पर (ठेकेदारों के द्वारा) काम कराती है और अगर वहाँ साल-भर काम चलता है, तो वहाँ का ठेका तोड़ दिया जाये। वहाँ काम करनेवाले कम्पनी के आदमी समझे जायें और उनके साथ भी वही व्यवहार हो, जो व्यवहार कम्पनी अपने जरिये बहाल किये आदमी के साथ करती है। उनकी नौकरी भी पक्की समझी जाये।

(२) रतननगर के कुलियों को, हेल्परों को, मिस्त्रियों को जिस तरह से वेतन का हिसाब बँधा है, वह हिसाब बदला जाये। जैसे, एक कुली को बीस रुपये वेतन और पचीस रुपये महँगाई के मिलते हैं। लेकिन इसका हिसाब इस तरह होना चाहिए, बीस महँगाई के और पचीस रुपये वेतन।

(३) कुल मिला-जुलाकर मजदूरों को पैंतालिस रुपये नहीं, पैंसठ रुपये मिलने चाहिए।

(४) बोनस के रूप में चार महीने का वेतन महँगाई के साथ दिया जाये।

(५) कुलियों के रहने के लिए जो नाममात्र के क्वार्टर बने हैं, कंपनी उनकी संख्या बढ़ावे, उनमें बिजली-बत्ती का प्रबंध करे और जब तक कंपनी हर मजदूर को क्वार्टर नहीं दे देती, तब तक बाहर के किराये के रेट पर उन्हें क्वार्टर-एलाउन्स दे।

इनके अलावा और भी कई छोटी-छोटी माँगें थीं। मजदूर-संघ तो पिछले साल ही खत्म हो चुका था। रतननगर में सोशलिस्ट पार्टी की यूनियन बन रही थी। हमलोगों को पूरा विश्वास था कि हमारी माँगें मिलकर रहेंगी। माँगों का जवाब देने के लिए कंपनी को १९ जनवरी तक समय दिया गया था। माँगें पूरी न होने पर कहा गया था कि तीस जनवरी से मजदूर हड़ताल करेंगे। तीस जनवरी के दोपहर तक कंपनी की ओर से कोई जवाब न मिला। शाम को फिर जुलूस निकालकर, सभा करके हमलोग हड़ताल की घोषणा ही करनेवाले थे कि खबर मिली, दिल्ली के बिड़ला मंदिर में, प्रार्थना करते वक्त महात्मा गाँधी को किसी हिन्दू पागल ने गोली मार दी और उनकी मृत्यु हो गयी। अब हड़-

बपने-आप रुक गयी, मुल्क में तहलका मच गया। फिर कुछ ही दिनों बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बालचर, शिक्षक और भी उस संस्था के बड़े-बड़े अधिकारी गिरफ्तार किये जाने लगे। जेलों के अलावा कई कैंप-जेल खुल गये। पता चला कि महात्मा गाँधी का हत्यारा कोई महाराष्ट्रीय हिन्दू युवक है और उसका नाम नाथूराम गोडसे है। इस हत्याकांड के एक-दो रोज पहले किसी मदनलाल पहवा नामक आदमी ने भी बिड़ला भवन के पीछे बम फेंका था।

पटने से उन दिनों 'जन्मभूमि' नामक साप्ताहिक पत्र राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघवाले निकाल रहे थे। उसमें उन लोगों की ओर से सफाई दी जा रही थी कि महात्मा गाँधी की हत्या में 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ।' का कोई हाथ नहीं है, वे लोग निर्दोष हैं और महात्मा गाँधी की हत्या होने से वे बहुत ही दुःखित हैं। पटने से इन्हीं लोगों का साप्ताहिक पत्र 'प्रवर्त्तक' शायद इन्हीं दिनों निकलने लगा था। उस अखबार में भी इसी तरह के लेख होते, ऐसी ही कविताएँ होतीं। मगर इन लोगों की पोल खुलकर रही। जनता की नजरों से ये लोग सभी गिर गये।

मजदूरों की माँग और हड़ताल की बात कई महीने तक दबाकर रखी गयी। आखिर जून में कंपनी ने मजदूरों को सिर्फ पंद्रह-पंद्रह दिन का बोनस देना मंजूर कर लिया। सबके वेतन में भी पाँच-पाँच रुपये बढ़ गये। लेकिन, इनके अलावा जो और माँगें थीं, उन पर अगले साल विचार करने का वचन दिया गया। इससे मजदूरों का उत्साह नहीं टूटा। यूनियन के सभापति, सेक्रेटरी और पार्टी पर मजदूरों को पूरा विश्वास था। लेकिन, जब बोनस बँटने का वक्त आया, तब हर मजदूर से, दो-दो रोज की मजदूरी माँगी जाने लगी। कहा गया कि हमारी पार्टी के पास अपना प्रेस नहीं है। हम अपना प्रेस खोलना चाहते हैं। यह चंदा प्रेस खोलने में खर्च होगा। शहर से बड़ी खूबसूरत रसीद-बही छपकर आयी थी। चेक की तरह लगती थी। उस पर सोशलिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता का नाम भी छपा था। दो-तीन रसीद-बही देकर मुझे भी यह काम सौंपा गया। खजाने की जिस खिड़की पर मजदूरों को बोनस के रुपये मिल रहे थे, मैं रसीद-बही लेकर वहीं खड़ा रहता। और इस तरह मैं हर मजदूर

से, उसके बोनस के रुपये से, दो रोज की मजदूरी ले ही लेता था। मगर मैं उनका चेहरा देखता, वे बड़ी परेशानी और दबाव महसूस कर रहे थे। वे मेरी ओर अजीब नजर से देखकर कहते, "लो, दो रोज की मजदूरी मेरी होगी ही कितनी, ले लो। ले लो।"

"इस तरह क्यों बोलते हो ?" मैं पूछता।

"कुछ नहीं, ले लो न।"

"घबड़ाओ मत, पार्टी का ही काम होगा।" मैं कहता।

"घबड़ाने की क्या बात है, जब देना ही है, तो घबड़ाऊँगा क्यों ?"

"पार्टी का जब अपना प्रेस हो जाएगा, कांग्रेस सरकार हमारे आगे हाथ जोड़कर खड़ी रहेगी।" मेरी ही तरह कोई और प्रेस के लिए रुपये वसूल करनेवाला उन्हें धीरज देता। एक मजदूर ने बहुत ही दुःखित होकर कहा, "यह बोनस मिलना और न मिलना दोनों बराबर ही है।"

"सो क्यों भैया ? मैंने पूछा।

"सो तुम नहीं जानते क्या ?" कहकर उस मजदूर ने मेरे आगे अपनी दो रोज की मजदूरी की रकम फेंक दी और बिना वह छपी हुई खूबसूरत रसीद लिये चला गया। मेरे पास खड़े एक मजदूर ने कहा, "उसका देने का मन नहीं था, मंगरू भाई! शायद इसीलिए पिनपिनाता हुआ चला गया है।"

"हूँ.......।" मेरे मुँह से निकला और मैं न जाने क्या-क्या सोचने लगा।

उस रोज मेरा रेस्ट था। वैसे तो ड्यूटी खत्म होने पर भी मैं रिक्शा खींचता था, आज कारखाने से छुट्टी रहने पर भी मैं रिक्शा खींचने नहीं गया। शाम को सीधा यूनियन के दफ्तर में पहुँचा। मेरी आवाज सुनते ही मानिक सिंह ने मुझे अपने कमरे में पुकार लिया। इस कमरे में अकेले वही रहते थे। वहाँ एक बढ़िया-सा पलंग बिछा था। टेबुल पर पुस्तकें और बही-खाते रखे थे। उस कमरे की दीवार में, पलंग के सिरहाने की ओर, सोशलिस्ट पार्टी के सबसे बड़े नेता की तस्वीर भी टँगी थी।

"कहो, क्या खबर है ?" मुझे अन्दर पुकारकर उन्होंने कहा।

"अच्छी है।" मैं बोला।

"बैठो।"

"ठीक है।" मैंने कहा।

"नहीं, नहीं बैठो।" कहकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और जिस पलंग पर वे लेटे हुए थे, उसके पैताने की ओर मुझे बिठा दिया। मैंने जब सिरहाने की दीवार की ओर देखा, तो तस्वीर पर नजर पड़ी। पूछा, "यह किसकी तस्वीर है?"

"नहीं पहचानते?" उन्होंने अचरज से पूछा।

"नहीं।" मैंने सरल ढंग से जवाब दिया।

"अरे, यही हैं जयप्रकाशनारायण।"

"अच्छा, तो यही हैं जयप्रकाश बाबू?" मेरे मुंह से निकला।

"हाँ, अपनी पार्टी के सबसे बड़े लीडर। इनसे मिलो, तो तबियत खुश हो जाए। तुम-जैसे लोगों को गोद में उठा लें। ये उन सभी लोगों को प्यार करते हैं, जो संघर्ष कर रहे हैं, जो देश के मजदूर किसान के लिए अपनी कुर्बानी कर रहे हैं। राजनीति के बहुत बड़े सुलझे हुए विद्वान हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू तक इनके सवालों का जवाब देने में सोचने लग जाते हैं। सन् १९४२ के आंदोलन के ये अग्रदूत कहे जाते है। जेल की चहारदीवारी फाँदकर भाग गये थे।"

"अच्छा……।"

"जवाहरलाल नेहरू इनसे बहुत डरते हैं।"

"बाप रे बाप, ऐसे आदमी से क्यों नहीं डरेंगे?" मैंने कहा।

"इन्हीं की सलाह से तो प्रेस खरीदा जा रहा है।" वे बोले।

"हाँ, मैं आपसे एक बात कहने ही वाला था……।"

"क्या, कहो।" वे बोले।

"कई मजदूर दो रोज की मजदूरी देने में सकपका रहे हैं। क्या खयाल है, यह चन्दा लेना रोक दिया जाये?"

"अरे; तुम पागल तो नहीं हो गये मंगरू! यह तुम क्या कह रहे हो? प्रेस नहीं खरीदा गया, तो आगे काम कैसे होगा?"

"क्यों, प्रेस के बिना काम नहीं हो सकता?"

"अच्छा।" मैंने कहा। यहाँ आलमारियों से पुस्तकें
लिए दो आदमी थे। लाइब्रेरियन के कमरे के बाहर एक
जो पुस्तकों का नाम 'इसु बुक' पर चढ़ाया करता।
एक कुर्सी पर मैं बैठ रहा। वह आदमी, जिसकी चर्चा
रियन से इस तरह बातें करने लगा—

"और सुनाइये साहब, कोई नयी बात?"

"सब पुरानी बात हैं। लाइब्रेरी से क्वार्टर और ि

"मैंने तो आपके यहाँ का कैटलॉग देखा है।
पुस्तकें निकली हैं। उनका नाम कैटलॉग में नहीं

"हमारे यहाँ तो बजट है। अब नयी पुस्त
जायेंगी। आप अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा
का पता बतला दें, तो और उत्तम।"

"हिन्दी में तो अब तक मेरे दो ही

"अजी, आप-जैसे लोग तो बहुत
हैं।" लाइब्रेरियन बोले।

"हाँ, मेरा तो यही सिद्धान्त है। य
साहित्यकारों को जो जन-जीवन की रक्षा
का सामना करना पड़ता है।"

"इनसे जान-पहचान है या नहीं?'
लाइब्रेरियन ने मुझसे पूछा।

"नहीं।" मैंने सीधी तरह जवाब
घूर-घूरकर।

"कौन हैं आप?" उस आदमी ने मुझसे
ठण्ढी थी।

"......................" मेरे मुँह से कुछ भी न

"हमारे रतननगर के एक जागरूक मजदूर। स
इने-गिने कार्य-कर्त्ताओं में एक और पुस्तकों के कोढ़ा

जीवनियाँ बड़े चाव से पढ़ते हैं। इस लाइब्रेरी को तो शख्स ने छान मारा।" लाइब्रेरियन ने बतलाया।

"वाह साहब, आपने तो अच्छे आदमी से परिचय कराया ....।" कहकर उस आदमी ने मेरी ओर देखा और मुझसे पूछा, "यहाँ कौन-सा काम करते हो, किस फैक्टरी में हो ?"

"कुली हूँ, एसिड प्लाण्ट में काम करता हूँ।" मैं बोला।

"कुली हो ?"

"जी !"

"अरे यार, यह क्या कह रहे ? राजनीति की पुस्तकें समझते हो ?"

"जितनी दूर अक्ल दौड़ती है, उतनी दूर तक समझने की कोशिश करता हूँ।"

"शाबास कॉमरेड ! खुश रहो........।" कहकर उस आदमी ने मुझसे हाथ मिलाया।

"और आप....?" मैंने पूछा।

"अरे, ये बहुत बड़े लेखक और कवि हैं। ये जो कुछ भी लिखते हैं, सिर्फ तुमलोगों के लिए।" लाइब्रेरियन ने बतलाया।

"अच्छा ....।" मुझे अचरज हुआ।

"इनकी किताबें मँगवा रहा हूँ। ले जाना।"

"जरूर ले जाऊँगा।" मैं बोला।

"मैं तो ऐसी ही भाषा लिखता हूँ कि कुली से लेकर प्रोफेसर तक उसका आनन्द ले सकें।" लेखकजी ने लाइब्रेरियन से कहा।

"मैंने प्रेमचन्द की पुस्तकें पढ़ी हैं, कमाल की किताबें हैं ....।" मेरे मुँह से निकला।

"महात्मा गाँधी की हत्या के बाद मैंने उन पर एक कविता लिखी थी। अट्ठारह पत्र-पत्रिकाओं ने उसे छापा था।" लेखकजी बोले।

"आपका नाम ?" मैंने पूछा।

"अच्छा।" मैंने कहा। यहाँ आलमारियों से पुस्तकें निकालकर देने के लिए दो आदमी थे। लाइब्रेरियन के कमरे के बाहर एक क्लर्क भी बैठता था, जो पुस्तकों का नाम 'इसु बुक' पर चढ़ाया करता। लाइब्रेरियन के कहने से एक कुर्सी पर मैं बैठ रहा। वह आदमी, जिसकी चर्चा अभी मैंने की है, लाइब्रेरियन से इस तरह बातें करने लगा—

"और सुनाइये साहब, कोई नयी बात ?"

"सब पुरानी बात है। लाइब्रेरी से क्वार्टर और फिर क्वार्टर से लाइब्रेरी।"

"मैंने तो आपके यहाँ का कैटलॉग देखा है। हिन्दी में इधर बहुत-सी नयी पुस्तकें निकली हैं। उनका नाम कैटलॉग में नहीं है।"

"हमारे यहाँ तो बजट है। अब नयी पुस्तकें नये साल के बजट से खरीदी जायेंगी। आप अपनी पुस्तकों के नाम लिखवा दें, तो उन्हें मँगा लूँ। प्रकाशकों का पता बतला दें, तो और उत्तम।" लाइब्रेरियन बोले।

"हिन्दी में तो अब तक मेरे दो ही उपन्यास निकले हैं, एक कविता संग्रह।"

"अजी, आप-जैसे लोग तो बहुत कम लिखते हैं, मगर अच्छी चीज लिखते हैं।" लाइब्रेरियन बोले।

"हाँ, मेरा तो यही सिद्धान्त है। थोड़ा लिखो, ठोस लिखो। फिर मुझ-जैसे साहित्यकारों को जो जन-जीवन की रक्षा के लिए सङ्घर्ष कर रहे हैं, बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।"

"इनसे जान-पहचान है या नहीं ?" उस आदमी की ओर इशारा करके लाइब्रेरियन ने मुझसे पूछा।

"नहीं।" मैंने सीधी तरह जवाब दिया। तब वह आदमी मुझे देखने लगा, घूर-घूरकर।

"कौन हैं आप ?" उस आदमी ने मुझसे पूछा। उसके गले की आवाज बड़ी ठण्डी थी।

"....................." मेरे मुँह से कुछ भी न निकला।

"हमारे रतननगर के एक जागरूक मजदूर। सोशलिस्ट मजदूर यूनियन के इने-गिने कार्य-कर्त्ताओं में एक और पुस्तकों के कीड़ा। उपन्यास, राजनीति,

जीवनियाँ बड़े चाव से पढ़ते हैं। इस लाइब्रेरी को तो शख्स ने छान मारा।" लाइब्रेरियन ने बतलाया।

"वाव साहब, आपने तो अच्छे आदमी से परिचय कराया ....।" कहकर उस आदमी ने मेरी ओर देखा और मुझसे पूछा, "यहाँ कौन-सा काम करते हो, किस फैक्टरी में हो ?"

"कुली हूँ, एसिड प्लाण्ट में काम करता हूँ।" मैं बोला।

"कुली हो ?"

"जी !"

"अरे यार, यह क्या कह रहे ? राजनीति की पुस्तकें समझते हो ?"

"जितनी दूर अक्ल दौड़ती है, उतनी दूर तक समझने की कोशिश करता हूँ।"

"शाबास कॉमरेड ! खुश रहो........।" कहकर उस आदमी ने मुझसे हाथ मिलाया।

"और आप....?" मैंने पूछा।

"अरे, ये बहुत बड़े लेखक और कवि हैं। ये जो कुछ भी लिखते हैं, सिर्फ तुमलोगों के लिए।" लाइब्रेरियन ने बतलाया।

"अच्छा ....।" मुझे अचरज हुआ।

"इनकी किताबें मँगवा रहा हूँ। ले जाना।"

"जरूर ले जाऊँगा।" मैं बोला।

"मैं तो ऐसी ही भाषा लिखता हूँ कि कुली से लेकर प्रोफेसर तक उसका आनन्द ले सकें।" लेखकजी ने लाइब्रेरियन से कहा।

"मैंने प्रेमचन्द की पुस्तकें पढ़ी हैं, कमाल की किताबें हैं ....।" मेरे मुंह से निकला।

"महात्मा गाँधी की हत्या के बाद मैंने उन पर एक कविता लिखी थी। अट्ठारह पत्र-पत्रिकाओं ने उसे छापा था।" लेखकजी बोले।

"आपका नाम ?" मैंने पूछा।

"मेरा नाम ? युगान्तर।" लेखकजी ने अपना नाम बड़े ही गम्भीर स्वर में बतलाया।

"युगान्तर....?"

"हाँ, इसी नाम से रचनाएँ छपती हैं।" लाइब्रेरियन ने बतलाया।

"मैंने मार्क्स पर एक कविता लिखी थी। श्री पी० सी० जोशी ने मुझसे उन्नीस बार वह कविता सुनी।" लेखकजी बोले।

लेखकजी से मिलकर मैं सचमुच महानता को देखने लगा था, मैं निहाल हो गया। सच पूछो, तो जिन्दगी में मैंने पहली बार आज एक लेखक को देखा था। ऐसा लेखक जो उपन्यास लिखता है, जो कवि है। जिसकी कविताएँ अट्ठारह पत्र-पत्रिकाएँ छाप चुकी थीं। जिसकी कविता श्री पी० सी० जोशी एक-दो बार नहीं, उन्नीस बार सुन चुके थे, मैंने मन-ही-मन सोचा, नौजवान आदमी है। होगा, कलम का जादूगर! मैं अपनी कम जानकारी पर तरस खाने लगा कि ऐसे लेखक और कवि का नाम मुझे अब तक क्यों नहीं मालूम ? मार्क्स और पी० सी० जोशी का भी मैंने नाम सुना था, मगर उनके बारे में कोई अधिक जानकारी नहीं हासिल की थी। मार्क्स के बारे में इतना जानता था कि दलित जनता की तबाही दूर करने में मार्क्स का बहुत बड़ा हाथ रहा। उसने पुस्तकें लिख-लिखकर निम्न समाज की बिगड़ी हालत सुधारने के तरीके बतलाये थे। पी० सी० जोशी के बारे में यह मालूम था कि वे कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत बड़े लीडर हैं। किन्तु, इन दोनों आदमियों के नाम के साथ 'कम्युनिस्ट' लफ्ज हुआ था, इसलिए मैंने इनमें दिलचस्पी नहीं ली। मजदूरों के बीच या सोशलिस्ट मजदूर यूनियन के दफ्तर में, इस पार्टी की कोई चर्चा बड़ी घृणा के साथ की जाती थी। मेरे दिमाग के भीतर कोई ऐसा समाँ नहीं बँध पा रहा था कि जिससे इस पार्टी और इस पार्टी के लीडरों के नाम का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़े। मैं बराबर यही सुना करता था कि रूस में 'जनता की आवाज' नाम की कोई चीज नहीं है। पार्टी के फैसले के खिलाफ कोई भी अपना तर्क नहीं पेश कर सकता। स्तालिन के खिलाफ किसी भी तरह की दलील देना, सोवियत रूस में सबसे बड़ा पाप समझा जाता है। मुझे बड़ा दुःख होता कि ऐसे लीडर से

जनता कैसे खुश रहेगी, जो अपनी शिकायतें या अपनी कमजोरी सुनने का धीरज न रखता हो। लेखकजी ने मुझे 'कॉमरेड' कहकर शाबासी दी थी। मैंने समझ लिया कि वे जरूर ही कम्युनिस्ट हैं। तब मैंने उनसे अधिक बातचीत नहीं की और अपनी माँग की पुस्तक मिल जाने पर लौट आया।

सन् १९४९ का जनवरी महीना शुरू हुआ था। बड़ी कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। बर्फ की तरह हवा चलने लगी थी। हमारी यूनियन की ओर से फिर कम्पनी के पास माँगें भेजी गयी थीं। 'बोनस दो, वेतन बढ़ाओ, छुट्टियों के दिन बढ़ाओ, ठेके का काम तोड़ो—यही हमारी कुछ माँगें थी। दोपहर को पता लगा था कि आज मानिक सिंह और कम्पनी के मैनेजिंग एजेण्ट के बीच माँगों के सम्बन्ध में बातचीत हुई है। लेकिन क्या बातचीत हुई है। यह जानने के लिए मैं ठिठुरता हुआ, शाम में, सात बजे के बाद यूनियन के दफ्तर में पहुँचा। भीतर पहुँचते ही मानिक सिंह से भेंट हुई। मैंने उन्हें सलाम किया। मेरे सलाम का जवाब देकर वे भारी आवाज में बोले, "बैठो मंगरू !"

"आज मैनेजिंग एजेण्ट के यहाँ गये थे न ?" मैंने पूछा।

"हाँ, गया था।" वे बोले।

"क्या बातचीत हुई ?" मैंने पूछा।

"तुमलोग तो कान में तेल डालकर बैठे रहते हो, कुछ मालूम भी है ?"

"क्या ?" मैंने घबड़ाकर पूछा।

"इस साल सिर्फ हड़ताल ही नहीं करनी पड़ेगी।"

"फिर और क्या करना होगा ?"

"जंग लेनी पड़ेगी। इसी साल हमारी एकता, मजदूर-संगठन और पार्टी का इम्तहान हो जाएगा।"

"सो क्या बात है ?"

"कांग्रेस की यूनियन फिर आ गयी। तुमने वह दफ्तर देखा है, जिसमें चढ़ोदकर ताला बन्द करके चला गया था ?"

"नहीं, इधर कुछ दिनों से तो मैं उधर गया ही नहीं।"

"जाकर देख आओ। वह दफ्तर फिर खुल गया है। दफ्तर के सामनेवाली जगह में जीपगाड़ियाँ खड़ी हैं। कांग्रेस के कार्य-कर्त्ता वहाँ आ-जा रहे हैं। ऊपर में साइनबोर्ड टँग गया है–I. N. T. U. C.।

"इसका क्या माने ?" मैंने पूछा।

"इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस। अब फिर कांग्रेसियों को मजदूरों की भलाई करने का खयाल हो आया है। इसके पीछे समझो, कांग्रेस का बहुत बड़ा हाथ रहेगा। और कांग्रेस कौन, वर्तमान हिन्दुस्तान की सरकार! देखो, राजनीति का व्याकरण यह बतलाता है कि यह जो ट्रेड यूनियन कांग्रेस यहाँ आयी है, वह इसलिए नहीं कि मजदूरों की माँग पूरी करा दे, मगर हड़ताल न होने दे। कांग्रेस सरकार ने इन लोगों को इसलिए भेजा है कि यहाँ से सोशलिस्ट पार्टी उखड़ जाए। और पीछे देख लेना, यह लड़ाई मजदूरों के हक की लड़ाई न साबित होकर पार्टी के कायम रखने और न रखने की लड़ाई साबित होगी। अब हमलोगों को कल ही से बार-बार सभा बुलानी चाहिए और मजदूरों को समझाना चाहिए कि वे इस यूनियन के धोखे में मत आयें। यह पूँजीपतियों और कांग्रेस-सरकार की भाड़े की यूनियन है....।"

अपनी यूनियन के सभापति के मुँह से ऐसी बातें सुनकर मैं हक्का-बक्का रह गया। मैं उनका मुँह देखता रहा और पाँच मिनट तक मेरे मुँह से आवाज नहीं निकली। मैं सोचने लगा कि अचानक यह क्या हो गया! कांग्रेस-सरकार को भी क्या सूझी है, जो इस तरह से हुकूमत के बल पर देश के किसान-मजदूरों का खून चूसना चाहती है। गाँधीजी सत्याग्रह के बहुत बड़े हिमायती थे। अपनी माँग न पूरी होने पर वे भूख-हड़ताल कर देते थे। अपनी माँगों के लिए अगर मजदूर हड़ताल करना चाहते हैं, तो सरकार को क्या आपत्ति है? उचित तो यह था कि हुकूमत के बल पर वह देश के पूँजीपतियों को दबाकर मजदूरों की जिन्दगी में सुख और शान्ति के दिन ला देती। मेरे मुँह से निकला, "यह तो बड़े दुःख की बात है!"

"इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है?" वे बोले।

"मगर मजदूर तो उनकी यूनियन को मानते नहीं हैं।" मैंने कहा।

"मैंने सुना है कि कुछ मजदूरों को रुपये और तरक्की की लालच देकर ट्रेड यूनियन का मेम्बर बनाया जा रहा है।"

"उससे क्या होता है, मुट्ठी-भर मजदूर एक दर्जन कारखाने को नहीं चला लेंगे। हम तो हड़ताल करके रहेंगे।"

"मजदूरों में इस बात का बड़े जोर-शोर से प्रचार करना होगा।"

"सो तो करना ही होगा। इस यूनियन के सभापति कौन हैं ?" मैंने पूछा।

"इसी इलाके के एक एम० एल० ए० हैं।"

"मैं तो समझता हूँ कि ऐसा करके कांग्रेस-सरकार ने हमें अपनी एकता और संगठन को दिखलाने के लिए ललकारा है।" मैं बोला।

"हाँ, कल शाम में मजदूरों की एक सभा बुलानी है।"

"जरूर बुलायी जाए।"

यूनियन के दफ्तर से लौटकर मैं जब अपनी झोपड़ी में पहुँचा, तो पता चला कि माँ को बड़े जोरों का बुखार हो आया है। मैंने उसके सिर पर हाथ रख कर देखा, बुखार की गर्मी से वह जल रही थी। जिउराखन अलग बीमार था। अस्पताल में दिखलाने पर डाक्टर ने कहा कि लीवर बढ़ गया है। देखने से, एक-डेढ़ वर्ष का बच्चा तीन-चार महीने की तरह लग रहा था। हाथ-पैर सूखे-सूखे थे। पेट निकला था। शरीर में ताकत नहीं थी। बीमारी के कारण तो चंचल एकदम था ही नहीं। जहाँ रख दो, वहीं पड़ा रहता था। पैखाना बहुत होता, कभी-कभी बड़े जोरों से चिल्लाने और हाथ-पैर पटकने लगता था। कमजोरी की वजह से, सनीचरी अलग चुड़ैल की तरह लगती थी। रिक्शा खींचने से कुछ अधिक पैसे नहीं मिलते थे। कभी दूध के लिए पैसे जुटाता, तो कभी दवा का दाम घट जाता। डाक्टर ने बेटा जिउराखन के लिए कई तरह की दवाएँ लिख दी थीं, जिन्हें बाजार ही से खरीदकर ले आना पड़ता था। इसीलिए, कभी यह दवा खरीद लाता, तो कभी वह दवा नहीं रहती। मतलब यह कि पैसे की खतरनाक तंगी से मुझे फुर्सत नहीं मिली। दवाओं की कमी के कारण ही, आज से डेढ़ महीने पहले, मेरा रिक्शेवाला दोस्त, अपनी बीबी को

दफना चुका था। आखिरी हालत में पता लगा कि उसे टी० बी० हो गयी है। जान-पहचान हो जाने के बाद, जब भी जाता था, बेचारी बड़े प्रेम से बोलती और नाश्ता करने के लिए पूछती थी। माँ की भयानक बीमारी के कारण उसका छोटा बच्चा हमेशा उससे अलग रहता और माँ के प्यार के लिए दिन-रात बिलबिलाया करता था। दस-बारह घंटे रिक्शा खींचने के बाद, दिन-भर की कठिन कमाई के कुछ ही पैसे बटोरकर जब हरि अपने उस कच्चे और गंदे घर के दरवाजे पर आता, तो एक साथ उसके सभी बच्चे उसकी कमर और हाथ से लिपट जाते थे। हरि का दिल भर आता था।

माँ बुखार से बेचैन थी। मैंने भरपेट खाया नहीं। एक फिकर माँ की थी और दूसरी फिकर कांग्रेस की ओर से आयी हुई नयी यूनियन की। दो बजे रात से मुझे काम पर जाना था। नींद नहीं आयी। जिउराखन भी जाग-जागकर कोहराम मचा रहा था। डेढ़ का भोंपा बजते ही मैं उठा और कारखाने की ओर दौड़ा। भीतर आकर, काम करते वक्त मैंने मजदूर साथियों से सारी बातें समझायीं और उन्हें इस बात के लिए राजी किया कि वे कभी भी राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का साथ नहीं देंगे। मैंने उन लोगों से बड़ोदकर बाबू के काले कारनामे का जिक्र किया, मगर दयानाथ पेंढारकर की चिट्ठीवाली बात नहीं कही। सीधी तरह से इतना जरूर बतला दिया कि कांग्रेस सरकार की भेजी हुई यह यूनियन भी ऐसी ही होगी। दिन में दस का भोंपा बजने पर जब छुट्टी हुई, तो उसी ओर से मैं गुजरा, जिधर राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का दफ्तर खुला था। दफ्तर के सामने आकर मैं सड़क पर खड़ा हो रहा। वहाँ दर्जनों गाँधी टोपियाँ नजर आ रही थीं। लोग बातें करते हुए हाथ में खादी का रूमाल लिये बार-बार मुँह पोंछ रहे थे। दफ्तर के मकान के ऊपर छत के पास सचमुच एक बहुत बड़ा साइनबोर्ड टँगा था, जिस पर मोटे-मोटे हरफों में लिखा था।

राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस

र त न न ग र

सहन में बायीं ओर दो जीपगाड़ी खड़ी थीं। दफ्तर के मकान के ऊपर तिरंगा झंडा गड़ा हुआ था। झंडे के बीच में अशोक-चक्र का चिह्न था। मैंने

यहाँ उस आदमी को भी देखा, जो कांग्रेस होने और दो-एक बार जेल जाने के कारण साधारण टाइम-कीपर से राशनिंग अफसर हो गया था। मुझे अचरज होने लगा कि भला ऐसे-ऐसे गुरु लोग मजदूरों के किस काम आयेंगे ? तभी एक मोटे और नाटे कद का आदमी, जो कुछ गंभीर मालूम पड़ता था, दफ्तर के भीतर से निकला और दो-तीन लोगों के साथ, जीपगाड़ी पर सवार होकर कहीं चला गया। एक आदमी से पता चला कि इस यूनियन के वही सभापतिजी हैं। लेबर-मिनिस्टर के बड़े प्यारे हैं। कांग्रेस जब आजादी की लड़ाई लड़ रही थी, तब ये आध दर्जन बार जेल गये थे। आजकल असेम्बली के मेम्बर हैं। खूब चकाचक है!

हमलोगों ने कंपनी को जो हड़ताल करने की नोटिस दी थी, उसमें अब सिर्फ पाँच रोज बाकी रह गये थे। शाम को, आज ही, सोशलिस्ट मजदूर यूनियन की ओर से रतननगर के मैदान में मजदूरों की एक बहुत बड़ी सभा हुई। मानिक सिंह ने लगातार तीन घंटे तक व्याख्यान दिया और कांग्रेस यूनियन की कमजोरियों पर रोशनी डाली। आज उनकी आवाज में ठंढी-ठंढी गर्मी मालूम हो रही थी। उन्होंने व्याख्यान देते हुए कहा, "साथियो! याद रखो, अगर किसी के बहकावे में आकर, तुमलोगों ने कांग्रेस सरकार के एजेण्ट की, जो राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति हैं, झंडाबरदारी मंजूर कर ली, तो तुम फिर उसी गड्ढे में धकेल दिये जाओगे, जिस गड्ढे में तुम जमाने से सड़ रहे थे, जिस गड्ढे में तुम्हारे जजबात जोश मार-मारकर बार-बार मुंह की खा रहे थे। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि इस ट्रेड यूनियन के कोई भी अपने स्वतंत्र खयालात नहीं हैं। इनके हर खयालात कांग्रेसी मिनिस्टरों के स्कूल से पैदा हुए हैं और उन्हीं की ताकत पर ये तुम्हारे बीच अपनी धाक जमाने आये हैं।········ अगर तुम्हारे दिल में अपनी पार्टी के लिए मुहब्बत है, अगर तुम अपनी रोजी और रोटी की सच्ची लड़ाई लड़ना चाहते हो, तो आओ, इस लाल झंडे के नीचे खड़े होकर कसम खाओ कि मरते दम तक तुम इस कांग्रेसी-एजेंट राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को अपनी यूनियन के रूप में नहीं मंजूर करोगे····।"

"हम कसम खाते हैं !
हम कसम खाते हैं !!
लाल झंडे की जय !!!"

तब दस हजार मजदूरों ने एक साथ यही आवाज बुलंद की।

• • •

२५

निश्चित समय पर हड़ताल करने की बात पार्टी ने तय कर ली और जिस रोज हड़ताल होनेवाली थी, उसी दिन जीपगाड़ी में लाउडस्पीकर लगाकर राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की ओर से रतननगर के कोने-कोने में बड़े जोरों का प्रचार किया गया कि सोशलिस्ट मजदूर यूनियन की ओर से जो हड़ताल होनेवाली है, वह सरकारी तौर पर गैरकानूनी करार दी गयी है। जो मजदूर इस हड़ताल में भाग लेगा, उसे इसका फल भुगतना पड़ेगा। सरकार ने यह फैसला किया है कि हड़तालो लोगों को सजा देने के लिए वह अपनी किसी भी ताकत का इस्तेमाल कर सकती है। मजदूरों को चाहिए कि वे राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की झंडावरदारी मंजूर कर उसके द्वारा किये गये फैसले और सलाह पर चलें। आज मुल्क की हालत ऐसी नहीं है कि बात-बात पर कल-कारखाने बंद कर दिये जायें। अपनी रोजी और रोटी के लिए लड़ने का मजदूरों का हक है, जिसकी लड़ाई बगैर हड़ताल किये शांति के तरीके अपनाकर भी लड़ी जा सकती है। राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस से मजदूरों को कोई भलाई नहीं होगी, यह मजदूरों का गलत खयाल है।

राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को कम्पनी की ओर से सारी मदद तो मिल ही रही थी, रतननगर के सभी अफसर भी उसी के समर्थक हो गये थे। वैसे भी मजदूर और अफसरों में कभी पटती नहीं थी। कारखाने के भीतर काम करनेवाले अफसर, इंजीनियर, शीफ्ट-इन्चार्ज और सुपरवाइजर, फैक्टरी-इन्चार्ज वगैरह अपने ओहदे के बल पर मजदूरों को पार्टी से अलग करा रहे थे। पार्टी की ओर से यह प्रचार किया जा रहा था कि यह सब कांग्रेस सरकार की धमकी है। कांग्रेस सरकार क्या, किसी भी सरकार की यह ताकत नहीं है कि मजदूरों की सामूहिक हड़ताल को नाकामयाब साबित कर दे। अगर सरकार ने मुल्क के मजदूर और किसानों का अपमान करने का फैसला किया है, तो शायद सरकार के लिए अब वे दिन आ गये हैं, जब वह जनता से अपमानित होने लगेगी। ऐसा करके सरकार अपनी गद्दी आप उलटना चाहती है और ऐसी सरकार की गद्दी उलटकर ही रहती है। मजदूरों की जमायत में ऐसी बातें कहने के लिए मुझे मानिक सिंह ने सिखला दिया था।

सरकार की किसी भी नीयत का बिना कुछ परवा किये हड़ताल घोषित करने की सभा बुलायी गयी। फिर वही जुलूस, वही नारे—इन्कलाब, जिंदाबाद! रतननगर के मैदान में बहुत ही गंभीर सभा हुई। हड़ताल की घोषणा करते हुए मानिक सिंह ने कहा, "साथियो! दुनिया का इतिहास तुम्हें खबरदार करता है कि जब भी साम्राज्यवाद के खिलाफ देश के मजदूर-किसानों ने अपनी आवाज बुलंद की, सरकारी और पूँजीवादी व्यवस्था ने उन्हें दबाने की हर कोशिश की और जब मजदूरों ने अपनी एकता की दीवार कमजोर की, उन्हें तबाही और मायूसी के घेरे में गिरफ्तार कर लिया गया। जब-जब मजदूर-किसानों ने अपनी हिम्मत नहीं हारी, अपने अधिकार की पहरेदारी के लिए उन्होंने पुलिस की गोलियाँ और लाठियों के सामने अपनी पीठ नहीं दिखलायी, तब-तब साम्राज्यवाद की ताकत, पूँजीवाद का झंडा उनके कदमों से रौंद दिया गया। फ्रांस और रूस के इतिहास तुम्हें बतलाते हैं कि जनता की एकता की सत्ता सरकार को जब चाहे, बदल सकती है। मानता हूँ, अब हिंदुस्तान में साम्राज्यवाद नहीं रहा, हिंदुस्तान अब एक स्वतंत्र मुल्क हो गया मगर आजाद

मुल्क के मजदूर-किसानों को क्या-क्या हक मिलना चाहिए·······मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता। गांधीवाद के आदर्शों पर कायम की गयी यह कांग्रेसी सरकार, तुम्हारे हकों के बदले, आज तुम पर गोलियाँ चलाने को तैयार है। देश की जनता पर आज भी गाँधीजी के नाम का बहुत बड़ा प्रभाव है। मगर उनके नाम पर, समझ में नहीं आता कि इस हिंसापूर्ण नीति के दाग कब तक धुलते रहेंगे·······।"

मानिक सिंह, जिंदाबाद !
सोशलिस्ट राज्य, कायम हो !!
अंग्रेजों से भी खतरनाक, कांग्रेस, कांग्रेस !!!

"रतननगर के मजदूर साथियो ! *तुम यह कभी मत सोचोगे कि हड़ताल की* पूरी जिम्मेवारी मानिक सिंह ही पर है। वे चाहें तो हड़ताल कामयाब हो सकती है, वे चाहें तो हड़ताल नाकामयाब हो सकती है। तुम अपने में से हर मजदूर अपने को मानिक सिंह समझो। हड़ताल की जिम्मेवारी रतननगर के एक-एक मजदूर पर है। समूचे घड़े में एक जगह छेद होने से समूचा घड़ा खाली हो जाता है। मैंने सुना है कि हमारी आज की होनेवाली हड़ताल को सरकार ने गैरकानूनी करार दिया है। मगर, सरकार को क्या मालूम है कि जनता के जजबातों का मुँह बंद करके कानून की रक्षा नहीं की जा सकती। तुम्हारे हँसिये और हथौड़े में वह ताकत है कि तुम दुनिया के फासिज्म को इनसे काट और ठोंक-ठोंककर उसकी हस्ती हमेशा के लिए मिटा सकते हो। ऐसी सरकार के खिलाफ किसी भी मुल्क के मजदूर-किसान अपनी गर्म आवाज बुलंद कर सकते हैं, जो उनके ही पैसे और ताकत से उन्हें तबाह करना चाहती हो, उन्हें बरबाद करनी चाहती हो, उन पर गोलियाँ चलाने को आजाद हो। अभी-अभी चुनाव के वक्त कांग्रेस के नेताओं ने आपसे वादे किये थे कि अपनी सरकार कायम होने पर हम सबसे पहले देश की गरीब जनता, मजदूर और किसानों के हर सुख और सुविधा का इंतजाम करेंगे। और, आज तुम देख रहे हो कि अपनी सरकार बनाने के बाद, तुम्हारे सुख और सुविधा का इंतजाम करना दूर रहा, *देश के सेठों के हाथ के* खिलौने बनकर वे तुम पर गोलियाँ बरसाने का सारा इंतजाम कर चुके हैं,

तुम्हारा पेट भरने के बदले वे तुम्हारी छाती पर संगीन की नोकें लिये खड़े हैं....।"

मजदूर-क्रांति, जिन्दाबाद !
हक के लिए, लड़ेंगे !!
कांग्रेस सरकार से होशियार !!!

"तुम्हारे पास न तो गोलियाँ हैं, न मशीनगन, न जेल, न कचहरी, न कानून। तुम्हारे पास एक ताकत है, वह ताकत है—संगठन और सोशलिस्ट पार्टी के लाल झंडे के नीचे खड़े होकर शांतिपूर्ण हड़ताल। कांग्रेस सरकार अब तुम्हारी इस ताकत को भी हड़प लेना चाहती है। मैं समझता हूँ कि तुम किसी भी मूल्य पर अपनी इस ताकत को नहीं बेचोगे और याद रखो, अगर तुमने यह ताकत बेचने की कोशिश की, तो उसकी कीमत तुम्हें मिलेगी—तबाही, गरीबी, मायूसी, भुखमरी।"

मानिक सिंह के भाषण को मजदूर गुरु-मंत्र की तरह सुन रहे थे। रतननगर का वह विशाल मैदान बीसों हजार मजदूर से भरा था। उनमें से किसी मजदूर को खाँसी आती, तो थूक घोटकर वह उसे दबा देता था। सभा लगातार चार घंटे तक होती रही। मजदूरों में से कोई भी मैदान छोड़कर अपनी-अपनी जगह से पेशाब करने के लिए भी नहीं उठ रहा था। हाँ, मैदान के किनारे कुछ मजदूर खड़े-खड़े आपस में काना-फूसी कर रहे थे। उनके हिलने-डुलने, झाँकने-देखने से ऐसा पता चलता था कि वे राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल हो गये हैं। वे मैदान में बैठे मजदूरों से बहुत अलग हटकर खड़े थे। इसी समय इस मैदान की बगल की सड़क से बहुत धीरे-धीरे ट्रेड यूनियन कांग्रेसवालों की जीपगाड़ी गुजरी जिसमें तिरंगा झंडा लगाये वे मजदूरों को खबरदार करते चले गये कि यह होनेवाली हड़ताल गैरकानूनी करार दी गयी है। इसमें शामिल होनेवालों के साथ सरकार कड़ी-से-कड़ी कार्रवाई करेगी। मजदूरों को चाहिए कि वे हड़ताल करने की मंशा त्यागकर काम पर आयें। राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन उनकी हर माँग की पूर्ति के लिए कंपनी से लड़ेगी, यहाँ वह मजदूरों की सेवा के लिए ही आयी है।

"....कंपनी के पूंजीपति मालिक का दम तोड़ने और रोटी का झगड़ा हल करने के लिए तुम्हारे पास एक ही रास्ता है और वह रास्ता है—हड़ताल। जाओ, संगठन बनाये रखो और आज दो बजे रात से पावर-हाउस के सिवा सभी कारखाने बन्द कर दो....।"

मानिक सिंह के इन आखिरी शब्दों के साथ सभा भंग हो गयी। हमलोगों ने अपने नारे बुलन्द किये और एक मशाल जुलूस के साथ मजदूरों की विशाल भीड़ वहाँ से आगे बढ़ी। हाथों में मशाल लिये हमलोग नारे लगाते हुए रतन-नगर के रास्ते से गुजरे। मिल-मालिक के बँगले के सामने से भी हमारी भीड़ गुजरी। हजारों तेज मशाल की रोशनी में बिजली की रोशनी बहुत ही फीकी जान पड़ती थी। हमारे नारों की भयानक बुलंद आवाज इस तरह गरज रही थी, जैसे रतननगर के आस-पास से भी कोई ऐसी ही आवाज हमारा साथ दे रही हो। स्टेशन के पास आकर भीड़ कई टुकड़ियों में बँट गयी और मजदूर अपने-अपने घरों की ओर जाने लगे। हम पाँच-सात मजदूर, जो इस हड़ताल के अगुआ थे, यूनियन के दफ्तर में पहुँचे। आगे की हड़ताल किस तरह चलायी जाये, इस पर बातचीत होने लगी। मानिकबाबू ने हमलोगों को सलाह दी कि जो मजदूर राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन में चले गये हैं वे तो काम पर जरूर जायेंगे। उन्हें काम पर जाते हुए रोकने के लिए पिकेटिंग करनी होगी। जुलूस निकालने होंगे। गिरफ्तार होना पड़ेगा, जेलों में जाना होगा। उन्होंने बतलाया कि ऐसी तो उम्मीद नहीं है कि सरकार मजदूरों को दबाने की हर कोशिश करेगी, मगर मजदूरों को सरकार के हर जुर्म सहने के लिए तैयार करना होगा। जब जोरों की गिरफ्तारियाँ होंगी, जब मजदूर जेल जाने लगेंगे, तब सरकार की खूब बदनामी होगी और अगर कहीं गोली चल गयी, तो राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और कांग्रेस सरकार की मिनिस्टरी कहीं मुँह दिखलाने के लायक नहीं रह जाएगी।

यह बात मेरी समझ के बाहर थी कि सोशलिस्ट मजदूरों के खिलाफ सरकार कौन-कौन से रुख इख्तियार करेगी। मगर, मैं अपने सभापति के इशारे पर चलने के लिए हर वक्त तैयार था। हड़ताल की वह पहली रात तो खुशी-खुशी

फट गयी। हड़ताल कैसी चल रही है, कितने मजदूर काम पर जा रहे हैं, इन बातों का पता लगाने के लिए मैं अपने तीन-चार दोस्तों को लेकर कारखाने के मेन-गेट पर पहुँचा। दिन के साढ़े नौ बज रहे थे। रोज की तरह कारखाने में साढ़े नौ का भोंपा बजा। भोंपा बजना तो कोई अचरज की बात नहीं थी, क्योंकि पावर-हाउस के मजदूरों को हड़ताल करने का हुक्म नहीं दिया गया था। गेट पर मेरी ही तरह और भी हजारों हड़ताली मजदूर पहुँचे थे। रोज की तरह वे कारखानों में नहीं घुसे; बल्कि लोहे के विशाल फाटक के सामने चौड़ी सड़क पर खड़े रहे। भोंपा बजते ही मेन-गेट खुलने पर मैंने बाहर ही से भीतर की ओर झांका, तो देखा, गेट के भीतर आठ संगीनधारी पुलिस अकड़कर खड़ी थी। गेट खुलते ही कई तरफ से मजदूर आ-आकर कारखाने में घुसने लगे। कुछ को तो मैंने चेहरे से पहचान लिया कि वे पावर-हाउस में काम करते हैं।

"कहाँ चले भाई ?"

"काम पर।"

"कहाँ काम करते हो ?

"तुम क्यों पूछते हो ?"

"ऐसे ही, बतलाओ न।"

"पेपर फैक्टरी।"

"पेपर फैक्टरी में कैसे जा रहे हो, हड़ताल का फैसला तुमने नहीं सुना था क्या ? सिर्फ पावर-हाउस के मजदूर काम पर जायेंगे।"

"चलो, चलो ! हड़ताल की ऐसी-तैसी.....।"

मैंने कई मजदूरों से इस तरह की बातें की और वे मेरी किसी भी बात को बिना ध्यान से सुने कारखाने में घुस गये। मजदूरों की इस हड़ताल को नाकामयाब साबित करने के लिए शायद तीसरे या चौथे रोज पूरे रतननगर में १४४ दफा लागू कर दिया गया। फिर पाँचवें रोज रतननगर क्लब के मैदान में पाँच सौ हथियारबन्द सिपाही उतर गये। मैदान में उनके तम्बू गिर गये। संगीनें चमकने लगीं—चमाजम ! इस मैदान को चारों ओर से कँटीले तारों से घेर दिया गया। बाहर से दो स्पेशल दारोगा और कुछ पुलिस अफसर भी

कारखाने के हर फाटक, हर दफ्तर पर पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। पोस्ट-आफिस, टेलीफोन एक्सचेञ्ज और पावर-हाउस के फाटक पर तो एक-एक छोटी मशीनगन भी तैनात की गयी थी। अब सोशलिस्ट मजदूरों ने बड़े साहस से जुलूस निकाला, पिकेटिंग शुरू हो गयी। नारे लगने लगे—

कांग्रेस सरकार को एक धक्का और दो !

गद्दार मजदूरों, होशियार !!

हड़ताल हमारी, जारी है !!!

पार्टी की ओर से हड़ताली मजदूरों को एक-एक बैंज मिला था। बैंज लाल रंग का था। उन पर हँसिया और हथौड़े की तस्वीर बनी थी और उन पर लिखा था—

ह ड़ ता ली म ज दू र

र त न न ग र

फिर धीरे-धीरे गिरफ्तारी भी शुरू हुई। मजदूर गिरफ्तार होने लगे। गिरफ्तार हुए मजदूरों पर अभी कोई मुकदमा नहीं चलाया जा रहा था। वे उसी कँटीले तार से घेरे हुए मैदान के बीच पुलिस की तहकीकात में रखे जाने लगे। लेकिन, इससे मजदूरों के संघर्ष और सत्याग्रह की गर्मी खत्म नहीं हो गयी। सरकार के कड़े कानून की हवा से राख फिर-फिर से आग बनती जा रही थी। बन्द कारखानों को चलाने के लिए, अपनी तरक्की की लालच में इञ्जीनियर जी-जान से कोशिश कर रहे थे। अब मुट्ठी-भर मजदूरों के बल पर, जो हमसे फूटकर ट्रेड यूनियन कांग्रेस में चले गये थे, कारखानों का चलना मुश्किल जान पड़ने लगा, तो देहातों से बिलकुल नये-नये आदमी बहाल किये जाने लगे। इस तरह पंद्रह रोज और लग गये, मगर कारखाने चालू नहीं हुए। देहातों से काम पर आनेवाले नये मजदूरों को हमारे हड़ताली मजदूर दोस्त टोली बना-बनाकर, उन्हें जब रास्ते में रोकने लगे, तो कंपनी की ओर से ट्रक का इंतजाम हो गया। सैकड़ों ट्रकें उत्तर के देहातों की कच्ची सड़कों पर दौड़ने लगीं। वे मजदूर ट्रक ही पर आते और ट्रक ही पर जाते थे। रतननगर के बाहर १४४ दफा नहीं लागू किया गया था, इसलिए हड़ताली मजदूर रतननगर के पास के देहातों से आनेवाले नये कमकरों को

बाहर ही चलकर समझाने-बुझाने की कोशिश करते थे। ऐसा करने के लिए मैं भी जाया करता था। मगर, देहातों में भी तो बेरोजगारी का सवाल था। वहाँ भी तो बड़े किसानों के द्वारा छोटी कमकर जाति का शोषण हो रहा था। शायद इसीलिए वहाँ के लोग नौकरी की लालच में कारखाने में घुस जाना अच्छा समझते थे। कंपनी और राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन की ओर से उन्हें विश्वास दिया गया था कि उनकी नौकरी पक्की होगी और उन्हें कभी हटाया नहीं जायेगा। वे कंपनी के वफादार नौकर समझे जायेंगे। जब उनकी ट्रकें रतननगर के अहाते में घुसतीं, तो वे नारे लगाते—

ट्रेड यूनियन, जिंदाबाद!
मजदूरों का दोस्त, ट्रेड यूनियन!!
तिरंगे झंडे की, जय!!!

हर एक ट्रक पर मजदूरों के साथ दो-तीन संगीनधारी सिपाही बैठे होते थे। इसी वक्त हमलोगों को यह पता लगा कि कुछ कारीगर बाहर के कारखानों से आ रहे हैं, जो मशीनों को चलायेंगे। उन कारीगरों को लंबी-लंबी तनख्वाहें देने का वादा किया गया है। उसी रोज रात को हमारी यूनियन ने यह फैसला किया कि अब पावर-हाउस के मजदूरों को भी हड़ताल करने का हुक्म दे दिया जाये। दूसरे मजदूरों के जरिए यह खबर पावर-हाउस के मजदूरों तक पहुँचा दी गयी। उन्हें हुक्म दिया गया कि वे एकाएक पावर-हाउस की सभी मशीनें बंद कर दें, पावर-हाउस के ब्वायलर को ठंढा कर दें। इसकी खबर किसी अफसर को न दी जाये।

पावर-हाउस के मजदूरों ने यह फैसला किया कि दिन के साढ़े ग्यारह बजे पावर-हाउस बंद करके वे एकाएक हड़ताल की घोषणा कर, कारखाने से बाहर आयेंगे। मगर, कोई मजदूर गुमराह हो गया। उसके जरिए यह खबर ऊपर के अफसरों तक पहुँच गयी। दिन के दस बजे ही जब पावर-हाउस अपनी पूरी ताकत के साथ काम कर रहा था, तभी पावर-हाउस के सुपरिंटेंडेंट, चीफ इंजीनीयर के साथ पावर-हाउस में आये। उनके पीछे एक दर्जन राइफलधारी सिपाही थे। उनलोगों ने मजदूरों को एकाएक हुक्म दिया—

(१) अब तुमलोग किसी भी मशीन में हाथ मत लगाओ।

(२) अपने हाथ के सभी औजार जहाँ-का-तहाँ रहने दो। और

(३) पाँच मिनट के अंदर चुपचाप पावर-हाउस से बाहर निकल जाओ।

मैं तो उस जगह था नहीं, मगर पीछे मजदूरों ने बतलाया कि उनके साथ वे लोग बड़ी बेरहमी से पेश आये। पाँच मिनट का वक्त खतम होते ही राइफल-धारी सिपाही उन्हें पकड़-पकड़कर पावर-हाउस से बाहर करने लगे। ब्वायलर के कुलियों को कुरता पहनने में तनिक देर हुई, तो उन्हें सिपाहियों ने बूट की ठोकरें लगायीं। कमकरों को तमाचे मार-मारकर सिपाही उन्हें पावर-हाउस से बाहर निकाल रहे थे। जब पावर-हाउस इन पुराने मजदूरों से खाली हो गया, तो उसमें एक ही साथ, कुछ पुराने कारीगरों को लेकर, जो राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का साथ दे रहे थे, पाँच-पाँच इंजीनियर पावर-हाउस की ताकत को बरकरार रखने के लिए काम करने लगे। पावर-हाउस चलता रहा और सोश-लिस्ट मजदूर बाहर आकर हम हड़ताली मजदूरों में शामिल हो गये।

इस घटना के दूसरे ही दिन पता लगा कि बाहर से करीब डेढ़ सौ फिटर, हेल्पर और मशीन ड्राइवर कम्पनी ने बुला लिये हैं। पावर-हाउस में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हो पायी थी। फिर बाहर से आये हुए कारीगर काम पर लग गये। मशीनें चलने लगीं। मशीनों की गड़गड़ाहट शुरू हो गयी। अब ऐसा लगने लगा, जैसे हड़ताली मजदूरों की गर्दन पर छुरा रखा जा रहा है। पार्टी के दफ्तर में हड़ताली मजदूर बराबर ही जुटते और हमारे समाजवादि साथी यह विश्वास दिलाते कि इतने लोगों से कम्पनी का काम नहीं चलेगा। हड़ताल सफल होकर रहेगी।

इसी समय कम्पनी के मैनेजिंग एजेन्ट ने एक बहुत बड़ी सभा बुलायी। बाहर से प्रेसवाले भी आये थे। खबर मिली थी कि इस सभा में लेबर मिनि-स्टर भी आ रहे हैं। सभा का पण्डाल बहुत बड़ा बना था। चारों ओर संगीन-धारी पुलिस पहरा दे रही थी। इस सभा के लिए शायद १४४ धारा नहीं लागू था। शाम के करीब पाँच बजे लेबर मिनिस्टर मोटरकारों से आये। उनके आने के समय हम कई राष्ट्रीय गीतों के रेकार्ड बजाते रहे।

पहले एक कांग्रेसी सज्जन ने लेबर मिनिस्टर की देश-सेवा, त्याग-तप, ईमानदारी और उनकी तेज बुद्धि पर छोटा-सा व्याख्यान दिया। पीछे लेबर मिनिस्टर बोलने लगे। अपने भषण में उन्होंने कहा, मैं अभी हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय मजदूर सभा में भाग लेने के लिए हिन्दुस्तान की ओर से जेनेवा गया था। मैंने वहाँ के मजदूरों को देखा कि वे कारखाने के भीतर काम के वक्त में जी-तोड़कर परिश्रम करते हैं। वहाँ हर मजदूर के पास रहने के लिए एक छोटा-सा मकान है। करीब-करीब सबके दरवाजे पर एक गाय है। मिल-मालिक की ओर से उन्हें काफी पैसे मिलते हैं। मैं यह नहीं कहता कि वहाँ के मजदूर मिल-मालिक के सामने अपनी कोई मांग ही नही रखते। वहाँ के मजदूर भी अपनी माँगें मिल-मालिक के सामने रखते हैं। मगर उनकी माँगों का फैसला हड़ताल के जरिए नहीं, पञ्च और समझौते के जरिए होता है।''

''..........मुझे खबर मिली है कि अपनी हड़ताल को नाकामयाब होते देखकर, हड़ताली मजदूरों ने अपने उन दोस्तों को, जो पावर-हाउस में काम कर रहे थे, एकाएक पावर-हाउस बन्द कर देने के लिए उकसाया। अगर कारखाने के जिम्मेदार अफसर पावर-हाउस को अपनी निगरानी में न ले लिये होते, तो क्या होता। मालूम है? तकलीफ सिर्फ मिल-मालिक को ही नहीं होती। रतन-नगर में रहनेवाले किसी भी आदमी को रोशनी नहीं मिलती, पीने के लिए पानी नहीं मिलता। विदेशों में जाकर मैंने सुना कि अगर किसी-न-किसी तरह वहाँ मजदूर हड़ताल भी कर देते हैं, तो वे पावर-हाउस को कभी भी बन्द नहीं करते। और, उनका जो हड़ताली दोस्त पावर-हाउस को बन्द करने की सलाह देता है, उसे वे शर्मिन्दा करते हैं........।''

''आपको शायद नहीं मालूम कि आपके ऊपर अपने मुल्क की क्या-क्या जिम्मेदारियाँ हैं। आपके मुल्क की हालत आज कितनी खराब है, यह कारखाने बन्द कर देने से नहीं सुधर सकती। आप कारखाने बन्द कर देंगे। सीमेण्ट नहीं तैयार होगा, कागज नहीं तैयार होगा; चीनी नहीं बनेगी और ये सब चीजें हमें विदेशों से मँगानी पड़ेंगी। क्या आप इस बात को पसन्द करेंगे कि आपके मुल्क की महँगी पूँजी विदेशवालों के हाथ लगे? मैं तो समझता हूँ कि मुल्क का कोई

भी वफादार आदमी ऐसी हालत में कल-कारखाने बन्द कराना नहीं चाहेगा। और जो लोग ऐसा करते हैं, जो लोग मजदूरों को ऐसे काम के लिए बहकाते हैं, मैं उन्हें मुल्क का सबसे बड़ा गद्दार समझता हूँ। हमने सुना है कि सोशलिस्ट यूनियन आपकी राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के खिलाफ भद्दी-भद्दी शिकायतें फैला रही है। मैं तो इस ट्रेड यूनियन की तारीफ करूँगा कि जिसने मजदूरों की हर खिलाफत के बावजूद भी कारखाने को बन्द न होने दिया और मुल्क के उद्योग को एक बहुत बड़े धक्के से बचा लिया। सोशलिस्ट पार्टी अगर सरकार में आना चाहती है, तो मुल्क के लिए काम करे, मुल्क की हिफाजत के तरीके पैदा करे, मुल्क उसे खुद सरकार मान लेगी। मगर इस तरह हड़ताल कराने से तो मुल्क के लिए कोई अच्छा काम नहीं हो सकता""।"

""मुझे बतलाया गया है कि काम पर जाते हुए मजदूरों के ऊपर हड़ताली मजदूर ढेले-पत्थर फेंकते हैं। यह आपके लिए बहुत ही शर्म की बात है। मुझे मालूम है कि आप हड़ताली मजदूर यह जो कुछ भूल कर रहे हैं, सब सोशलिस्ट पार्टी के बहकावे में आकर। तो याद रखिये, ऐसी पार्टी को, जो मुल्क के उद्योग को तबाह करना चाहती है, मुल्क के मजदूरों को भड़काकर सरकार में आना चाहती है, यहाँ से उखाड़ फेंकने के लिए सरकार अपनी कोई भी ताकत छिपाकर नहीं रखेगी। अगर ऐसी पार्टी को उखाड़ फेंकने के लिए रतननगर में खून की नदी बहाने की भी जरूरत समझी गयी तो उसका भी इन्तजाम हो जायेगा""।"

"""""मजदूर भाइयो! आपको शायद नहीं मालूम कि आज हमारे मुल्क के आसमान में युद्ध और अशांति के बादल मँडरा रहे हैं। इस वक्त हमें कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए कि युद्ध और अशांति के बादल हमारी मुल्क पर बरस पड़ें। अँग्रेज यहाँ से चले गये, मगर जाकर वे हमारी ओर से हाथ-पर-हाथ धरे नहीं बैठे हैं। हमारे सामने पाकिस्तान की दोस्ती निभाने का सवाल है, हमारे सामने हिंदुस्तान और हैदराबाद के झगड़े का सवाल है, हमारे सामने भारत और कश्मीर का मामला पड़ा है""हम संसार के किसी भी राष्ट्र के सामने बदनाम होना नहीं चाहते""। ऐसी हालत में जब मुल्क में, इस तरह की अशांति फैली रहेगी, तो हम मुल्क की हालत हर्गिज नहीं सँभाल सकेंगे, आपकी हालत

भी नहीं सुधर पायगी""।" मैं तो आपसे यह अपील करने आया हूँ कि आप काम पर जायें, अपने कारखानों को चलायें और अपनी माँगों के लिए ट्रेड यूनियन कांग्रेस के झण्डे के नीचे आकर शांतिपूर्ण ढंग से कम्पनी के साथ समझौता करें""।"

"मुझे आपसे एक बात कहनी है""।" कहता हुआ भीड़ से एक मजदूर आगे बढ़ा।

"क्या कहना है?" मिनिस्टर ने पूछा।

"मैं आपसे कुछ सवाल करना चाहता हूँ""।"

"अच्छा, अभी चुप रहो। भाषण खतम हो लेने दो। सवाल का जवाब दिया जाएगा।" पंडाल पर मिनिस्टर की बगल में खड़े एक पुलिस अफसर ने कहा। मैं उस मजदूर को पहचानता था। वह वर्क शॉप का मिस्त्री था और हड़ताल में शामिल था। मगर, लेबर मिनिस्टर का भाषण खतम होते ही पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद कम्पनी के मैनेजिंग एजेंट ने एक छोटा-सा व्याख्यान देते हुए कहा, "मैंने मानिक सिंह के साथ बराबर समझौते की कोशिश की। मैंने उनसे कहा कि दोनों यूनियन रहने दिया जाये। दोनों यूनियन मिलकर काम करें। कुछ ही रोज में यह पता चल जाएगा कि मजदूर किस यूनियन को चाहते हैं। मगर, इस पर वे तैयार नहीं हुए। तब मैंने उनसे यहाँ तक कहा कि तब दो रोज के भीतर मजदूरों से वोट ले लिये जायें कि वे किस यूनियन को चाहते हैं। वोट के बाद जो यूनियन विजयी होगी, मैं उसी के साथ समझौता करने की कोशिश करूँगा""मगर वे इस पर भी तैयार न हुए। आखिर मैं लाचार हो गया। रतननगर के सभी हड़ताली मजदूरों से मेरी प्रार्थना है कि वे काम पर चले आयें""मगर पाँच रोज के भीतर वे काम पर नहीं आ गये, तो उनकी नौकरी की जिम्मेवारी कम्पनी के ऊपर नहीं होगी""।"

सभा खतम होने के बाद फिर १४४ दफा लागू कर दिया गया। इस घटना के दूसरे रोज पुलिस अफसरों ने दूसरा रास्ता इख्तियार किया। हमारी यूनियन के दरवाजे पर एक दर्जन राइफलधारी सिपाही तैनात कर दिये गये। अब मजदूर जत्थे बाँधकर यूनियन में नहीं जा सकते थे। चार-पाँच मजदूर एक साथ टहल

भी नहीं सकते थे। ऐसा करनेवालों को पुलिस अपने हिरासत में ले लेती थी। इसी रोज शाम को मैं अकेला यूनियन के दफ्तर में पहुंचा। सुना था कि हमारे सभापतिजी अनशन करने जा रहे हैं। जाकर मैंने मानिक सिंह से भेंट की और कल की मीटिंग की सारी बातें उन्हें बतलायीं।

"क्या मैनेजिंग एजेण्ट ने आपसे यह कहा था कि दोनों यूनियन को मैं मजदूरों का नुमाइन्दा मानता हूं ?" मैंने पूछा।

"नहीं, बिलकुल गलत बात है।" वे बोले।

"क्या आपसे उन्होंने यह भी कहा था कि मजदूरों से वोट लिये जायँ, जिस यूनियन की जीत होगी, मैं उसके साथ समझौता करूँगा ?"

"नहीं तो।" उन्होंने जवाब दिया। इसके बाद वे मेरा मुँह देखने लगे।

"अगर ऐसा भी होता, तो कुछ बेजा न था। हमलोग तो अवश्य ही जीत जाते। फिर इतनी परेशानियों का मुकाबला भी न करना पड़ता।" मैं बोला।

"तुम किसकी बात में पड़े हो, मंगरू ? कम्पनी बाहर से इतनी जिन्दादिली जाहिर कर रही है। भीतर कुछ जान नहीं है। हमें हड़ताल में कामयाबी मिलेगी।"

"सो तो है। मगर मैंने एक बात कही। वोट लेने का रास्ता भी कुछ बुरा न था।"

"एक बात बतलाऊँ तुमसे ?"

"बतलाइए।"

"वोट लेनेवाली बात सही है। मगर, मैंने इसे अच्छा नहीं समझा। जब यहां के मजदूर सोशलिस्ट मजदूर यूनियन पर निर्भर ही थे, तो यहां एक दूसरी यूनियन को आना ही नहीं चाहिए था। जबरदस्ती एक सरकारी यूनियन को बुलाकर वोट लेने की सारी बातें बेकार हैं।" वे बोले।

"जो भी हो, मगर यह एक सहूलियत का रास्ता जरूर होता।" मैंने जोर देकर कहा, "अब मान लीजिए, अगर हमारी हड़ताल नाकामयाब हो गयी, तो हड़ताली मजदूरों के साथ कम्पनी कैसा बर्ताव करेगी ?"

"कुछ नहीं होगा। देख लेना, हड़ताल सफल होगी। इतनी बात पर झुककर मैं सोशलिस्ट पार्टी के पैरों में कुल्हाड़ी नहीं मार सकता था। मेरे ऊपर भी तो पार्टी के और बड़े-बड़े लोग हैं। तुम घबड़ाते क्यों हो, दो रोज का हाल और देख लो। दफा १४४ तो रतननगर में ही लागू है न ? हम अपने हड़ताली मजदूरों की एक सभा बीच नदी में बुलायेंगे। तुम आज ही से इसका प्रचार शुरू कर दो। नदी में घुटने-भर से अधिक पानी नहीं है। तुमने तो देखा होगा, पहले दो छोटी-छोटी धाराएँ हैं। आगे तो सिर्फ बालू-ही-बालू है। सभा वहीं बालू पर होगी। वहाँ मजदूरों के बीच में एक जोरदार भाषण देकर सबका जोश बढ़ा दूँगा।" उन्होंने कहा।

"जी, अच्छा होगा। हड़ताली कुली तो भूखों मरने लगे हैं।" मैं बोला।

"मगर, एक बात याद रखो। किसी भी मजदूर से वोट लेकर समझौता करनेवाली बात मत बतलाना। बल्कि किसी-न-किसी तरीके से उन्हें यह समझाना पड़ेगा कि मैनेजिंग एजेण्ट ने जो वे बातें कही थीं, वे सरासर गलत हैं। वोट लेकर अपने भाग्य का फैसला आज बड़े-बड़े राष्ट्र कर रहे हैं। भला, इसमें मानिक सिंह को क्या एतराज होता ?" मानिक सिंह ने मुझे सिखलाया।

"जी।" मैंने कहा।"

"पार्टी-पॉलिटिक्स की भीतरी बातें गुप्त रखी जाती हैं।" वे बोले, धीरे से।

"जी।"

फिर रात-भर मैंने रिक्शा खींचा। सुबह थोड़ी देर कुछ सोया भी नहीं और रतननगर के कुली क्वार्टर में मानिक सिंह के सन्देश का प्रचार करने पहुँचा। यहाँ आने पर कुलियों से दूसरी ही बात सुनने को मिली। सुनकर मैं अवाक् रह गया।

"एक बात तुम्हें मालूम है कि नहीं, मंगरू भाई ?"

"क्या ?"

"हमारी हड़ताल को दबाने के लिए घुड़सवार फौज आ गयी है।"

"घुड़सवार फौज आ गयी है, मैंने तो नहीं देखा।"

"जाकर देख आओ।"

"उत्तर की चहारदीवारी के बाहर। बगीचे में।"

"सच ?"

"सांच को आंच क्या, चलो तुम्हारे साथ मैं भी चलता हूं।" कहकर एक कुली मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो गया।

यहाँ से मैं अपने उस मजदूर दोस्त के साथ रतननगर के उत्तर की चहारदीवारी के बाहर घुड़सवार फौजों को देखने गया। सचमुच बगीचे में करीब डेढ़ सौ घुड़सवार फौज आ गयी थी। एक खुले तम्बू के भीतर सैकड़ों राइफलें खड़ी करके रखी थीं और वहाँ एक सिपाही संगीन लिये खड़ा था। खूबसूरत और बड़े-बड़े मजबूत घोड़े चना खा रहे थे। कभी-कभी उनकी हिनहिनाहट से सारा बगीचा गूँज उठता था। घुड़सवार सिपाही आपस में न तो हिन्दी बोल रहे थे, न उर्दू, न अंग्रेजी, न हिन्दुस्तानी। वे बड़े लम्बे और तन्दुरुस्त दीख पड़ते थे। उनका बदन खून से लाल दीख पड़ता था।

"ये लोग कहाँ के रहनेवाले हैं ? मैंने एक मिवाय हड़ताली से पूछा।

"ये लोग काबुल के रहनेवाले हैं। पश्तो बोलते हैं।"

"अच्छा....।" मैंने कहा।

कुलियों से बातें करके मैं पार्टी यूनियन की ओर लौटने लगा। सवा नौ बज रहे थे। दाढ़ीवाले एक काबुली घुड़सवार सिपाहियों के सरदार का चेहरा मुझे याद आ रहा था, जो बन्दूक की नली साफ करता हुआ हमलोगों को देख रहा था और एकाएक उसने हमलोगों के सामने आकर कहा, "जाओ, भागो। यहाँ भीड़ मत लगाओ। भागो, नहीं तो जूते मारूँगा....।" तब तक कारखाने में साढ़े नौ का भोंपा बज गया। फिर मैं कारखाने के मेन-गेट पर आ पहुँचा। पहले ही की तरह मेनगेट खुल गया था और मजदूर कारखाने में जा रहे थे। मगर ये हड़ताली मजदूर नहीं थे। तभी मैंने देखा कि मेरा रिक्शावाला दोस्त हरि कारखाने में घुसा जा रहा है। मैंने उसे ऊँची आवाज देकर पुकारा, "हरि, ओ हरि भाई ?"

मेरी आवाज सुनकर हरि अपने चारों ओर देखने लगा। जब मुझ पर नजर पड़ी, तो उसने दूर ही से पूछा, "क्या बात है, कोई जरूरी बात है तो कहो। वरना, मैं काम पर जा रहा हूँ। सुना नहीं, पहला भोंपा बज चुका है ?"

"सुना है, मगर जरा आओ न। जरूरी बात है।" मैं बोला। तब हरि लौटकर मेरे पास आ गया।

"कहाँ जा रहे हो ?" मैंने पूछा।

"काम पर।"

"तुम्हें कारखाने में नौकरी कैसे लग गयी।"

"यही हड़ताल में। नये लोग बहाल हो रहे थे, मैं भी बहाल हो गया।"

"तुम्हें नहीं मालूम कि अगर हड़ताल नाकामयाब हो गयी, तो तुम्हारे-जैसे रतननगर के दस हजार मजदूर बेकार हो जायेंगे।" मैंने पूछा।

"हो जायँ तो मेरी बला से। दस हजार मजदूरों ने मेरी बेकार रहकर ही मेरे लिए क्या किया। क्यों नहीं, किसी ने अपने साहब से सिफारिश करके मुझे नौकरी दिलवा दी ? और, जब दस हजार मजदूरों ने मेरे एक के लिए कुछ नहीं किया, तो मैं अकेला भला दस हजार के किस काम आ सकता हूँ ?"

"अरे भाई, मजदूर तो खुद लाचार हैं, वे तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं ? कुछ करना होता, तो क्या मैं तुम्हारे लिए बाज आता ?"

"और मैं मजदूर नहीं तो क्या साहब हूँ ? चलो।" इस तरह जवाब देकर हरि कारखाने के गेट की ओर देखने लगा। मैंने कहा, "तुम असल बात नहीं समझ रहे हो। माँग पूरी होते ही हड़ताली काम पर चले जायेंगे। भगवान के लिए तुम हड़ताली मजदूरों का साथ दो। छोड़ दो, काम पर मत जाओ।"

"असल बात और कुछ नहीं है। मेरे लिए तो असल बात यह है कि मुझे पचास रुपये की *परमामिण्ट नौकरी लग गयी है। तुम्हारे कहने पर मैं नौकरी छोड़ दूँ ···· हूँ ···· ! पचास रुपये महीना देने का ठेका लेते हो ? रिक्शा खींचते-खींचते तो मैं बूढ़ा हो गया। तुमने देखा नहीं, बीमार पड़ने पर मुझे जानवरों के

*स्थायी।

अस्पताल में एलाज कराना पड़ता था ···· ? तुम भी क्या बात करते हो, हरि इतना बेवकूफ नहीं है।"

मैं उसका मुँह देखने लगा और वह बड़ी तेजी के साथ बढ़कर कारखाने के गेट में घुस गया। मैं भी वहाँ से सीधे यूनियन के दफ्तर में चला आया। नदी के बीच बालू पर सभा करने का समय चार बजे निश्चित किया गया था। मजदूर डेढ़-दो बजे से ही नदी की ओर जाने लगे। मैं भी अपनी झोपड़ी से ढाई बजे निकला। रतननगर की सड़कों पर आकर देखता क्या हूँ कि घुड़सवार फौज चारों ओर गश्त लगा रही है। प्रत्येक फौजी जवान के साथ मोटी और मजबूत बेंत थी। घोड़े की पीठ पर एक ओर राइफल भी लटक रही थी। नदी रतननगर से पूरब की ओर थी। जैसे ही मैं अपने दो-चार हड़ताली दोस्तों के साथ रतननगर से निकलकर पूरब की ओर बाहर खेतों में आया कि देखा, हमलोगों से आगे जो मजदूरों का जत्था नदी की ओर जा रहा था, उसे घुड़सवार फौज तितर-बितर कर रही थी। फौजी जवान घोड़े दौड़ा-दौड़ाकर मजदूरों का पीछा करते हुए उन पर बेंत चला रहे थे। आगे का यह हाल होते देख हमलोग अपनी जगह पर खड़े हो गये और सोचने लगे कि अब क्या करना होगा। तभी हमलोगों के पीछे से घोड़ों की टाप सुनायी पड़ने लगी, टप् टप् टप् टप् टप्···· । हमलोगों के पीछे फिरकर देखते-देखते घुड़सवार फौज की एक दूसरी टुकड़ी हमारे पास आ गयी। उनमें से एक ने, जो तगड़े घोड़े का लगाम खींचता हुआ चारों ओर देख रहा था, हमलोगों को देखता हुआ बोला, "ठहरो मादरचोद! कहाँ जाते हो? अंग्रेज सरकार थी, तो साले को जूते मारती थी, क्या समझते हो साले, यह कांग्रेस सरकार कोई चीज ही नहीं ···· ?" तब घुड़सवार फौज ने हमलोगों को घेर लिया और बेंतों की मार से हमलोग तितर-बितर हो गये।

●●●

उस रोज मैंने अपने हाथों और पीठ पर घुड़सवार फौज की दर्जनों बेंत बर्दाश्त कर ली थी। कितने लाल निशान उग आये थे। सभा नहीं हो सकी। रात में मैं पार्टी यूनियन के सभापति से मिला। बाहर तो पुलिस का पहरा था। हड़ताल के सभी पहलुओं पर बहस हुई।

"अब ऐसे काम नहीं चलेगा।" वे बोले।

"कोई रास्ता निकालिये। सुना है, पेपर-फैक्टरी भी चालू हो रही है।"

"अच्छा ?"

"हाँ, मैं पक्की खबर बतला रहा हूँ।"

"तो ?"

"अब आप जो कहिए। हमें तो आपके ही बतलाये हुए रास्ते पर चलना है।"

"अब जमकर पिकेटिंग करने की जरूरत है। कांग्रेस-सरकार को अब पञ्ज लग गये हैं। जब जुल्म की हद हो जायेगी, सभी हड़ताल को नाकामयाब कराने की नीयत से काम करनेवाले मजदूर हड़तालियों का साथ देंगे।" मानिक सिंह ने कहा।

"जमकर पिकेटिंग करने का क्या अर्थ है ?" मैंने पूछा। इस पर मानिक सिंह मेरा मुँह देखने लगे।

"हजारों-हजार की तादाद में, जहाँ तक अधिक हो सके, हड़ताली मजदूर कारखाने के मेन-गेट और मैनेजिंग एजेण्ट के बङ्गले के सामने नारे लगावें। ऐसे वक्त पर कुछ खास किस्म के नारे लगाने होंगे। उन्हें नोट कर लो और इस बात की अपील करने के लिए मैं भी मजदूरों के क्वार्टरों में तुम्हारे साथ चलूँगा।" वे बोले।

"कब चलेंगे ?"

"रात को, दस बजे के बाद।"

"अच्छा, ठीक है।"

"तब तक तुम भी जाओ। अपने यहाँ जाकर खाना खा लो और थोड़ी देर आराम भी कर लोगे।" वे बोले।

बात तब हो गयी। मैं अपनी झोपड़ी में चला आया। माँ या सनीचरी से मैंने बेंत की चोट खानेवाली बात नहीं कही। वैसे तो रोज ही रूखा-सूखा भोजन करता था, मगर आज भरपेट रूखा-सूखा भोजन भी नहीं किया गया। मुँह धोकर मैं पेट के बल टाट पर सो रहा। जहाँ-जहाँ बेंत लगी थी, वहाँ-वहाँ के अङ्ग टिसटिसा रहे थे। नींद बिलकुल नहीं आयी। मैं जितनी देर अपनी उस किराये की झोपड़ी में टाट पर पड़ा रहा, उतनी देर यही अन्दाज लगाता रहा कि अभी दस बजे होंगे या नहीं। एक बार अन्दाज से ही मैं उठकर यूनियन के दफ्तर की ओर चला। चलते वक्त माँ से कहा, "एक काम से जा रहा हूँ। लौटने में देर होगी, घबड़ाना मत।" और, वहाँ से सीधा यूनियन के दफ्तर में आया। मानिक सिंह जैसे पहले से तैयार थे। बाहर से भी दो-तीन सोशलिस्ट साथी आ गये, जो दूसरी जगह के कारखानों में मजदूरों की यूनियन चला रहे थे। उनके ऊपर दफ्तर छोड़कर मैं, सभापतिजी और यूनियन के सेक्रेटरी, तीनों आदमी कुली-क्वार्टर की ओर चल पड़े।

रतननगर में कोई भी ऐसा मजदूर नहीं था जो, सभापतिजी को न पहचानता हो। वहाँ पहुँचते ही हमलोग एक कुली के क्वार्टर में घुस गये। टाट बिछी और उस पर हमलोग बैठ रहे। धीरे-धीरे क्वार्टरों में रहनेवाले कुली वहाँ इकट्ठे हो गये। क्वार्टर में रेल-पेल हो गयी। कुछ कुली बाहर ही बैठे और कुछ खड़े रहे। दफा १४४ लागू होने के कारण हमलोग एक जगह इतने आदमी इकट्ठे नहीं हो सकते थे, फिर सभा करने की बात तो अलग है। हथियारबंद पुलिस और घुड़सवारों का डर बना हुआ था। इसलिए इन कुलियों के बीच मानिक सिंह बहुत ही धीरे-धीरे भुनभुनाने लगे। चाहे जैसे भी हो, मगर हम मजदूरों की इस गुप्त मीटिंग में आज उन्होंने यह साबित कर दिया कि अब काम पर जाते हुए मजदूरों को, उनको शर्मिन्दा करनेवाले नारे लगा-लगाकर रोकना बहुत जरूरी है। इस काम में एक रोज की भी देर करने से खाली नहीं। मजदूरों

को चाहिए कि वे ज्यादा-से ज्यादा तादाद में कारखाने के मेन-गेट के सामने खड़े होकर गद्दार मजदूरों को काम पर जाने से रोकें।

रतननगर के हड़ताली मजदूर, जो जहाँ रह रहे थे, अपने नेता के हुक्म का इन्तजार कर रहे थे। सुबह के नौ बजते-बजते यह खबर सभी हड़ताली मजदूरों को, उन मजदूरों ने पहुँचा दी, जो उस रात की गुप्त मीटिंग में शामिल थे। दिन के बारह बजते-बजते करीब छः हजार मजदूरों की भीड़ कारखाने के मेन-गेट पर खड़ी हो गयी। किसी के हाथ में लाल झंडा, किसी के लाल अंगोछा! इस भीड़ और पिकेटिंग का नेतृत्व मेरे ऊपर सौंपा गया था। मैं हड़ताली मजदूरों की इस बड़ी भीड़ के आगे खड़ा होकर नारे लगवा रहा था—

गद्दार मजदूरों, होशियार!
रोटी हमारी कौन छीन रहे, ये गद्दार, ये गद्दार!!
देशी अंग्रेज कौन हैं, कांग्रेस कांग्रेस!!!

'रोटी हमारी कौन छीन रहे, ये गद्दार, ये गद्दार' नारा लगाते हुए हमलोग काम पर जाते हुए मजदूरों की ओर हाथ उठाते थे। काम पर जानेवाले मजदूर हमलोगों की ओर बहुत गुस्सा होकर देखते और कारखाने में घुस जाते थे। हड़ताली मजदूरों ने उस वक्त दो-तीन ऐसे नारे भी बुलन्द किये थे—

हिम्मत हो जाएगी पस्त, कांग्रेस सरकार की!
दमन-नीति यह बंद करो, नहीं तो गद्दी छोड़ दो!!
कांग्रेस-सरकार को, एक धक्का और दो!!!

लेकिन मैं देख रहा था कि हड़ताल-विरोधी मजदूर कारखानों में चले जा रहे हैं। जैसे उनके दिल पर हमारे नारों का कोई असर न हो रहा हो, जैसे कारखानों के भीतर तक पहुँच जाने के लिए उनके पैरों में मशीनें लग गयी हों। तभी मैंने देखा, उत्तर की ओर से, करीब पचास-साठ घुड़सवार फौज चली आ रही है। उनके पास वही दो हथियार थे—राइफल और बेंत। मैंने भौंह बनाकर खड़े हड़ताली मजदूरों की ओर देखकर बड़े जोरों के साथ कहा, "घबड़ाओ मत साथियो! अब सोच लो कि अपना खून बेचकर तुम्हें अपनी रोजी और रोटी का मुकदमा लड़ना है।" तब मैंने ये नारे लगवाने शुरू किये—

कांग्रेस का गहरा दाग, हम पर बेंतों की बौछार !
बेच रहे बापू का नाम, मिट जायेगी यह सरकार !!
बापू की टट्टी की आड़, हो रहा मजूरों का शिकार !!!

टप् टप् टप् टप् टप् टप्.......। घुड़सवार फौज हमलोगों के आगे आकर खड़ी हो गयी।

"हटो साले, भागो, भागो मादरचोद....भागो भागो....।" फौज ने आवाज लगायी।

कांग्रेस सरकार को, एक धक्का और दो !
नहीं हटेंगे हम हड़ताली, जब तक माँग न पूरी होगी !!—नारे लग रहे थे।
"भागो मादरचोद....।" फौज कह रही थी।
संगीनों की नोक से, रोटी छीन रहे हो आज।
संगीनों की नोक पर, आज लटककर हम जायेंगे !!
कांग्रेस सरकार, मुर्दाबाद....मुर्दाबाद....
कांग्रेस...........।

"अबे साले, जम्प कर....।" तब इस तरह कहकर उस फौज की टुकड़ी के हेड ने अपने खतरनाक घोड़ों को हमारी छाती पर उछलने-कूदने का हुक्म दे दिया। दर्जनों अड़ियल घोड़े मजदूरों की भीड़ पर टूट पड़े, साथ ही फौज ने बेंतों की मार शुरू कर दी। मजदूर बेंतों की चोट खाने और घायल होने लगे। भीड़ की दोनों बगल से फौज बेंत चलाती हुई आगे बढ़ी और उसने मजदूरों को आगे-पीछे दोनों ओर से घेर लिया। एक ओर कारखाने के गंदे पानी का नाला बह रहा था। मैंने देखा, नारे लगाते हुए कई मजदूर, फौज की मजबूत बेंत से चोट लगने और सर फटने पर कटे पेड़ की तरह नालों में गिर गये।

बापू की टट्टी की आड़, हो रहा मजूरों का शिकार !
संगीनों की नोक से, रोटी छीन रहे हो आज !!

मैं चोट खाते हुए मजदूरों के बीच खड़ा होकर बड़े जोश के साथ नारे लगवा रहा था। तभी दो-तीन घुड़सवार फौज मेरे सामने चली आयी। मेरे कंधे और पीठ पर उन लोगों ने दर्जनों बेंत लगायी। मुझे याद है कि मैं तब भी नारे

लगा रहा था। तभी आगे बढ़कर एक घुड़सवार ने कहा, "नेता बना है मादर-चोद! साले टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।" और, तब उसने मेरे माथे पर कस-कसकर दो-तीन बेंत मारी। मेरा सर चक्कर खा गया। आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। मैंने देखा कि सामने का एक घुड़सवार सिपाही अपने घोड़े की दोनों अगली टापों को मेरी छाती पर रखना चाहता है। एक बेंत रोकने के लिए जब मैंने अपने माथे पर हाथ रखा, तो मेरी हथेली और उँगलियाँ खून से सराबोर हो गयीं। मेरे माथे से खून निकलने लगा। इसी बीच, जबकि मैं अपने को सम्हालने की कोशिश कर रहा था, सामने का घोड़ा मेरी छाती पर सवार होने लगा। इसके बाद याद नहीं कि भीड़ को फौज ने क्या किया, मैं बेहोश होकर वहीं जमीन पर गिर गया। मगर उस बेहोशी की ही हालत में, मेरे कानों में थोड़ी देर तक हड़ताली मजदूरों के नारे बहुत धीरे-धीरे सुनायी दे रहे थे, जैसे मील-दो-मील की दूरी पर मजदूरों की भीड़ नारे लगा रही हो—

बेच रहे बापू का नाम, मिट जायगी यह सरकार…!

कांग्रेस सरकार को, एक धक्का और दो!!

संगीनों की नोंक पर, आज लटककर…………?"

जब मुझे होश हुआ, तब मैंने अपने को वनगाँव के सरकारी अस्पताल में पाया। मेरे सिर में पट्टी बँधी थी और मैं थोड़ा-थोड़ा जख्म का दर्द महसूस कर रहा था। सुना कि मेरे कई दोस्त यहाँ भरती हैं और उस मार-पीट में दो-तीन मजदूर मौत के घाट उतर गये। जब मैंने आँखें खोलीं तो सबसे पहले मेरी नजर अपनी बूढ़ी माँ पर पड़ी। मेरे मुँह से निकला, "माँ, मैं यहाँ कैसे………?"

"…………।" जवाब देने के बदले मेरी माँ रोने लगी।

"तुम हड़ताल में शामिल थे न?" बगल के एक आदमी ने पूछा।

"जी………।"

"घुड़सवार फौज ने तुमलोगों पर बेंत चलायी थी।"

"जी………।"

"मुझे तो लोगों ने बतलाया है कि तुम्हें उसी वक्त चोट लगी।"

"जी, मैं हड़ताली दोस्तों के साथ………।"

तब मुझे फिर सारी बातें याद आने लगीं। वह मारपीट की तसवीर ही मेरी आँखों के सामने नाचने लगी। उस वक्त का हो-हल्ला और कोहराम भी मेरे कानों में गूँजने लगा। मैंने माँ के रोने का अभी तक क्यों न कुछ ख्याल न किया, नहीं कह सकता। मैंने उस आदमी से पूछा, "हाँ, घुड़सवार फौज हमलोगों की छाती पर घोड़े दौड़ाना चाहती थी। आपको मालूम है, फिर क्या हुआ उन हड़ताली मजदूरों का ?"

"मुझे नहीं मालूम, मैं तो पास के देहात का रहनेवाला हूँ।"

"अच्छा·······।"

यह सरकारी अस्पताल बनगाँव में, बिल्कुल नदी के किनारे पर था। अस्पताल के आस-पास तीन ओर सिर्फ आम, महुआ, नीम और पीपल के पेड़ थे। मैं जिस कमरे में था, वहाँ खिड़की की राह से झाँकने पर नदी का दूसरा किनारा बड़ी आसानी से नजर आता था। मैं धीरे-धीरे उठकर बैठ गया। खिड़की की राह से मैंने देखा कि पेपर-फैक्टरी के लिए फुलिया बाँस के व्यापारी उन बाँसों की बड़ी-बड़ी मचानें पानी में टहलाते हुए लिये आ रहे हैं। उन मचानों को देखकर मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि अभी इन बाँसों को भला कौन खरीदेगा! पेपर-फैक्टरी में तो कुत्ते और गीदड़ दौड़ रहे होंगे। दैत्य की तरह उन बड़ी-बड़ी मशीनों में जंग लग रही होगी। शायद इस व्यापारी को नहीं मालूम कि रतननगर के दस हजार मजदूर अभी कारखानों को बंद करके अपनी रोटी की लड़ाई लड़ रहे हैं। उन्हें इस बात की जानकारी कर लेनी चाहिए थी कि अभी कागज का कारखाना चालू हुआ है या नहीं। तभी माँ ने मुझसे कहा, "लेट जाओ न बेटा! डाक्टर बाबू ने उठने के लिए मना किया है!"

"उठने के लिए मना किया है ?"

"हाँ····।" माँ बोली।

"तुम रोती क्यों हो माँ, अब तो हमलोगों ने बाजी मार ली है।"

"चुप रहो, लेट रहो····।" माँ ने कहा।

"अच्छा, लेट जाता हूँ। और जिउरासन कहाँ है, और उसकी माँ ?" पलङ्ग पर धीरे-धीरे लेटकर मैंने पूछा।

"वह पलानी में है। भात पकाती होगी।" माँ बोली।

भात पकाने की बात सुनकर तबियत ने जानना चाहा कि वह भात कैसे पका रही होगी। यहाँ तो रोज रिक्शा खींचकर कुछ लाता था, तब तुम चूल्हा गर्म करती थी। भात के लिए चावल का इन्तजाम कहाँ से हुआ ? मगर, बगल के सीटों पर मरीजों के पास कई लोग बैठे थे। इसीलिए इन सवालों को पूछने की इच्छा रहते हुए भी मैंने उन्हें दबा दिया। तभी मैंने देखा कि सामने के दरवाजे से बीलट भाई भीतर घुसे और सीधे मेरे पास चले आये। माँ खिसककर जरा बगल हो गयी और वे वहीं पर रखी स्टूल को खींचकर, मेरे मुँह के सामने बैठ रहे। मेरे मुँह से निकला, "पाव लागू, बीलट भाई !"

"पाव लागू।" वे बोले।

"क्या खबर है ?" मैंने पूछा। देखा, उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। आँखों में पहले की तरह रौनक नहीं थी।

"समाचार अब क्या पूछना है, समाचार तो खराब ही है।"

"तो क्या, हड़ताली मजदूर काम पर चले गये ?"

"नहीं, मगर अब नहीं जाने से ही क्या होनेवाला है ?"

"मतलब ?"

"हड़ताल तो समझो, फेल ही हो गयी। सभी कारखाने चालू हो गये।"

"सभी कारखाने चलने लगे ? यह तुम क्या कह रहे हो, बीलट भाई ?" मैंने पूछा। मुझसे रहा नहीं गया। मैं झट उठकर बैठ रहा।

"मैं ठीक कह रहा हूँ, मंगरू ! अस्पताल से बाहर निकलोगे, तो सब हाल मालूम हो जायेगा।" बीलट भाई बोले।

"एसिड प्लांट चल रहा है ?" मैंने पूछा।

"कह तो दिया; सभी कारखाने चालू हो गये।" उन्होंने जवाब दिया।

"मानिक सिंह की क्या सलाह है, वे क्या कह रहे हैं ?"

"वे हैं कहाँ, जो सलाह देंगे। उस रोज पिकेटिंग को दबा देने के बाद पुलिस ने उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया।"

"वे भी गिरफ्तार कर लिये गये ?"

"हाँ, यूनियन के दफ्तर में पुलिस ने ताले लगा दिये हैं।"

"फिर तुमलोग क्या सोच रहे हो, कंपनी की ओर से क्या कहा जा रहा है?"

"अब तो कंपनी अड़ गयी है।"

"सो क्या?"

"मैनेजिंग एजेंट ने हुक्म दिया है कि अब हड़ताली मजदूरों में से वही मजदूर काम पर रखे जायेंगे, जिनको रखना फैक्टरी इन्चार्ज ठीक समझेगा। बाकी हड़ताली मजदूरों को काम नहीं मिलेगा। जनरल-आफिस और लेबर आफिस के दरवाजे पर एक नोटिस लगी है, जिसमें हड़ताली मजदूरों को यह आगाह किया गया है कि हड़ताल के पहले वे जिस फैक्टरी में काम करते थे, वहाँ के फैक्टरी इन्चार्ज से मिलकर अपनी नौकरी का फैसला करा लें। अगर वे फिर रखने के के काबिल नहीं समझे गये, तो उन्हें दरखास्त देकर हड़ताल होने के एक रोज पहले तक की मजदूरी ले लेनी चाहिए और अगर वे कम्पनी के क्वार्टर में रहते हों; तो इसी के साथ उन्हें क्वार्टर भी छोड़ देना होगा, वरना पुलिस की मदद ली जाएगी।"

"यह तो बड़ी आफत हुई, वीलट भाई!"

"हाँ।"

"और, मजदूर भाइयों का क्या हाल है?" मैंने पूछा।

"हाल अच्छा नहीं है। भुखमरी चल रही है और क्या?"

"तुम अपनी नौकरी के लिए क्या सोच रहे हो?"

"मैं तो काम पर चला जाना चाहता हूँ।"

मैं कुछ दिनों के बाद अस्पताल से छोड़ दिया गया। पीछे पता चला कि अपनी गिरफ्तारी के थोड़ी देर पहले रमापतिजी ने किसी आदमी के हाथ से मेरे यहाँ पचास रुपये भिजवा दिये थे। उन्हीं रुपयों से अब तक मेरे घर का खाना-खुराक चल रहा था। अब तक मानिक सिंह रिहा होकर नहीं आये थे। मेरे अस्पताल से आने के पहले तक आधे से अधिक हड़ताली मजदूर काम पर चले गये थे। पूरी फैक्टरी धकाधक चलने लगी थी। पहले की ही तरह समय

पर भोंपा बजता था, मजदूर मेन-गेट की ओर दौड़ते हुए नजर आ रहे थे। ठेकेदार का मुंशी वैसे ही सीमेण्ट फैक्टरी के गेट से अपने आदमियों को कारखाने के भीतर लिवा जा रहा था। अभी तक शायद पाँच हजार मजदूर काम पर नहीं रखे गये थे। अपनी-अपनी फैक्टरी के इन्चार्जो के पास दौड़ते-दौड़ते उनके तलवे घिस रहे थे। खुशामदी बातें बोलते-बोलते जुबान से खुशामद की बू आने लगी थी। ऐसे वक्त पर देहातों में रहनेवाले हड़ताली मजदूरों ने फैक्टरी इन्चार्ज के यहाँ कँटियों में घी पहुँचाये। सिफारिश करने के लिए शोफट इन्चार्जो से महीने दो महीने की तनख्वाह दे देने की बात तय हुई। हड़ताल के नाकामयाब होने से कम्पनी ने बड़ा लाभ उठाया। हड़ताली मजदूरों को काम पर रख लेने के बदले जितना दबाया जा सकता था, उतना दबाया गया। हड़ताल नाकामयाब होने के बाद काम पर लिये जानेवाले मजदूरों से मेरी बातचीत हुई।

"फिर काम पर रख तो लिए गये न ?" मैंने पूछा।

"रख तो लिया गया, मगर अजीब-अजीब शर्तों पर।" उन लोगों ने कहा।

"शर्तें, कैसी शर्तें ?"

"हमलोगों की फिर बहाली हो गयी। बहाल होते वक्त एक छपे हुए फारम को पढ़कर इन्चार्ज ने सुना दिया। उसी फारम पर अपने अँगूठे का निशान देने के बाद काम पर आने का हुक्म हुआ और फिर हाजिरीवाला नया कार्ड मिला।" वे बतलाये।

"फारम में क्या लिखा था ?'

"चार-पाँच शर्तें थीं। पहली शर्त यह थी कि मैं वादा करता हूँ कि कम्पनी के वर्क्स मैनेजर और मैनेजिंग एजेण्ट के हुक्म के प्रति हमेशा वफादार रहूँगा। दूसरी शर्त यह थी कि मैं किसी भी यूनियन के बहकावे में आकर कभी हड़ताल न करूँगा। तीसरी शर्त यह थी कि अगर मैं ऐसी यूनियन का मेम्बर बनूँ, जो हड़ताल कराने के पक्ष में है, तो कम्पनी को यह हक होगा कि वह मुझे नौकरी से बर्खास्त कर दे। चौथी शर्त थी, अगर कंपनी यह महसूस करे कि कारखाने में जरूरत से अधिक मजदूर हैं; तो वह अपने अफसरों के जरिए छँटनी करा सकती है और अगर मैं छँटने लायक समझा गया, तो नौकरी से हटने में न

तो मुझे कोई एतराज होगा और न मैं इस तरह की कोई भी दरखास्त सरकार के मजदूर यूनियन या राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में ही दे सकूँगा। और पाँचवीं शर्त यह थी दोस्त, इस फारम में जितनी बातें लिखी हैं, उन्हें मैंने पढ़वाकर अच्छी तरह समझ ली हैं और पूरा सोच-विचार करने के बाद ही इस पर अँगूठे का निशान दे रहा हूँ या दस्तखत कर रहा हूँ।"

मजदूरों ने मुझे इन शर्तों से वाकिफ कराया। मुझे यह भी पता लगा कि रतननगर के जो मजदूर, हड़ताली मजदूरों के अगुआ बने थे,उन्हें कम्पनी किसी भी शर्त पर रखने को तैयार नहीं है और राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति की सलाह से ही यह सब कुछ किया जा रहा है। इसलिए अपनी नौकरी के लिए फिर एसिड प्लांट के इन्चार्ज के पास जाना मैंने उचित नहीं समझा। मैंने रतननगर में घूम-घूमकर देखा कि अब फौज का कैसा इन्तजाम है। घुड़सवार फौज वापस जा चुकी थी। टेलीफोन एक्सचेंज, पोस्ट आफिस, खजाना और जनरल आफिस के दरवाजों पर सिर्फ एक-एक मिलिटरी पहरा दे रही थी। आस-पास के गाँवों से आनेवाले नये बहाल किये गये हड़ताल-विरोधी मजदूर अब पैदल आने-जाने लगे थे। पिकेटिंग का सवाल उठानेवाला अब कोई नहीं रह गया था। जिन हड़ताली मजदूरों को काम पर रख लिया गया था, उनके चेहरे पर मायूसी छायी हुई थी। वे तन से बहुत थके और मन से बहुत ही हारे नजर आ रहे थे।

इन्हीं दिनों एक दिन मैं अपनी कोठरी से निकलकर रिक्शे के मालिक के यहाँ पहुँचा। सोचा था कि अब अपनी पार्टी के दिन लौटेंगे, तब नौकरी की कोशिश करूँगा। तब तक दिन-रात पेट भरने के लिए रिक्शा खींचना ही कुछ बुरा न रहेगा। मेरे सर पर जख्म का गहरा दाग देखकर रिक्शे के मालिक ने पूछा, "तुम्हें यह क्या हो गया?"

"चोट लगी थी।"

"कैसे?"

"हड़ताल में। घुड़सवार फौज की बेंत से......"

"मुझे सब मालूम है। हरि आकर बतला गया था।" मेरी बात काटकर रिक्शे के मालिक ने बतलाया।

"जी, सरकार! अब तो नौकरी भी जाती हुई नजर आ रही है।"

"इधर कैसे आये………?"

"रिक्शे के लिए सरकार! सोचता हूँ, खटकर सवारी खींचने से भर-पेट आध-पेट रोटी का सवाल पूरा ही हो जाएगा।"

"सो तो है। मगर अब तो मैं रिक्शा भी नहीं दे सकता। एक तो तुम्हारी नौकरी नहीं रही, दूसरे तुम बहुत दूर के रहनेवाले हो। अगर तुमने गाड़ी ही इधर-उधर कर दी, तो बेकार तीन सौ, साढ़े तीन सौ के धन पर पानी फिर जाएगा। हरि कह गया है कि अब मैं मंगरू की जिम्मेवारी नहीं ले सकता।"

"जी………।" मेरे मुँह से इतना ही निकला।

"हाँ भाई, अब रिक्शा नहीं मिल सकता है। मैं रोजगारी आदमी हूँ, रोजगार करूँगा या मुकदमा लड़ूँगा।"

"लेकिन सरकार, मुझसे ऐसा नहीं होगा। मुझ पर विश्वास कीजिए। अगर आपने कृपा न की, तो हम चार प्राणी भूखों मर जायँगे। मेरे साथ मेरी माँ है, मेरी जनाना है और मेरा एक बच्चा भी है। बड़ा गरीब आदमी हूँ। घर पर रहने के लिए चार धुर अपनी परती जमीन तक नहीं है। आप से झूठ बोलकर क्या नफा होगा, अगर काम करके खाने का जरिया दे दिया जाय, तो मेरे रोएँ रोएँ आपके गुण गावेंगे।"

"नहीं भाई, मैं ऐसी माया में नहीं पड़ता।"

"क्यों, मुझ पर आप विश्वास कीजिए न।"

"नहीं, मैं आदमी पर विश्वास नहीं करता। मैं रुपये और जमानत पर विश्वास करता हूँ। एक रिक्शावाला ऐसे ही तीन सौ की चपत देकर चला गया। मैं रुपये तो बनाता नहीं हूँ।" रिक्शे के मालिक ने कहा और मेरी ओर से मुँह फेरकर दूसरी ओर देखने लगा।

"सरकार, सभी सिक्के खोटे नहीं होते । मैं समझता हूँ कि आप हरि की बात मन में गड़ाये हुए हैं । उसने चिढ़ से ऐसा कह दिया होगा । जब हड़ताल जोरों से चल रही थी, तब उसने कारखाने में नौकरी पकड़ ली । मैंने उसे काम पर जाने से रोका था । कहा था कि ऐसी नौकरी छोड़ दो । वह भी इसलिए कि उस समय रतननगर के दसों हजार मजदूर हड़ताल करके कम्पनी के साथ हक की लड़ाई लड़ रहे थे, उनकी रोटी का सवाल था ।"

"और अब क्या हो रहा है ?"

"अब तो हड़ताल फेल हो गयी सरकार"" ।" मैंने शरमाकर कहा ।

"मिल-मालिक का क्या बिगड़ा ? अरे, तुम्हारे जैसे लोग तो एक नहीं लाखों, नौकरी के लिए वहाँ नाक रगड़ते हैं ।"

"जी"" ।"

"तुमलोगों के हड़ताल करने से क्या हुआ ?" तुम मेरा रिक्शा नहीं खींचते, तो इससे क्या, मेरा रोजगार चौपट हो गया या मैं भूखों मर रहा हूँ ? अरे, अब तो ऐसा जमाना आ गया है मंगरू कि मिल-मालिक और व्यापारी तो दूर रहा, एक मजदूर ही दूसरे मजदूर के मुँह की रोटी छीन लेगा । तुमलोग हो किस फेर में, जरा वक्त को पहचानने की कोशिश करो"" ।"

"जी सरकार, आप ठीक कह रहे हैं ।" मैंने कहा ।

"ठीक है, जाओ । जैसे-तैसे कारखाने में घुसने की कोशिश करो । मैं अपना रिक्शा किसी तरह नहीं दे सकता ।"

"जी "" ।"

मैं वहाँ से निराश होकर लौट आया । शाम के पाँच बजे एसिड प्लांट के इंचार्ज के बंगले पर इस नीयत से गया कि अगर वे आसानी से काम पर रखने को तैयार हो जायेंगे, तो काम पर चला जाऊँगा । अगर उन्होंने आना-कानी की, तो हड़ताल के एक रोज पहले तक की मजदूरी के लिए दरख्वास्त दे दूँगा । अब आगे राम हैं मालिक देखा जायेगा । मैंने इस तरह दरखास्त लिखकर पाय में रख ली थी । साहब बंगले के बाहरी बरामदे में बैठे अपने दो दोस्तों के साथ चाय पी रहे थे । मैं धीरे-धीरे जाकर नीचे की सीढ़ी पर खड़ा हो गया ।

साहब ने जब मेरी ओर देखा, तो मैंने हाथ जोड़कर कहा, "सलाम हुजूर !"

"क्या है ?" सलाम के जवाब में साहब ने यही पूछा।

"सरकार, हड़ताल तो अब खत्म हो गयी। काम के लिए आया था। पाँच रोज हुए, अस्पताल से निकला हूँ।"

"मुझे सब मालूम है। तुम-जैसे लोगों को अब काम नहीं मिलेगा। कारखाने में काम करने के लिए मजदूरों की जरूरत जरूर है, मगर जिनके दिमाग में मजदूरी करके पेट भरने की बात के सिवाय नेता बनने और नाम कमाने की भी धुन सवार हो, उनके लिए मेरे यहाँ कोई जगह नहीं। तुम नेताजी हो गये थे न ?" साहब ने ये बातें बड़ी कड़ी आवाज में कहीं।

"सरकार, हक के लिए तो हर कोई लड़ता है·····।"

"तो जाओ, लड़ना छोड़ क्यों दिया ? लड़ो, अभी खूब लड़ो।" साहब ने मेरी बात काट दी।

"सरकार, मेरी यह दरखास्त ले ली जाये।" कहकर मैंने अपनी बाकी मजदूरी की दरखास्त उनकी ओर बढ़ायी।

"क्या है, दरखास्त कैसी ?"

"पढ़ लिया जाय, हुजूर ···· ?"

साहब ने मेरी दरखास्त बहुत जल्द पढ़ ली। उसे टेबुल के नीचे गिराकर वे चाय की चुस्की लेने लगे। न जाने, तब मुझसे क्यों नहीं बोले। वे अपने दोस्तों से शायद इस विषय पर बातें कर रहे थे कि आजकल सबसे बढ़िया रेडियो कौन निकला है। मैं वहाँ खड़ा भी हूँ, साहब शायद इस बात को भूल गये। मैंने उन्हें याद दिलायी, "तो क्या हुक्म होता है सरकार ?" तब साहब ने मेरी ओर चौंककर देखा, बोले, दरखास्त वहीं 'पे आफिस' में दे देना। मैंने तुम्हारे डिसमिसल की रिपोर्ट भेज दी है। पैसे मिलने में कोई दिक्कत हो, तो फिर मेरे पास आना। जाओ, अपनी दरखास्त उठा लो।"

"अच्छा, सलाम हुजूर !"

चाय की टेबुल के नीचे से झुककर मैंने अपनी दरखास्त उठा ली और वहाँ से साहब को सलाम कर वापस चला आया। करीब छः रोज तक बड़ी दौड़-

धूप करने के बाद कंपनी ने बत्तीस रुपये ग्यारह आने दे दिये। अब मैंने सोच लिया था कि फिर घर चला जाऊँगा और फिर पहले की तरह बच्चाबाबू के यहाँ रहकर किसी तरह पेट पालूँगा। मन-ही-मन यह फैसला कर लिया था कि अब माँ हवेली कमायेगी, सनीचरी गोबर सानेगी, गोंइठा ठोंकेगी और मैं कुट्टी काटूँगा। बच्चाबाबू के खेतों की रखवाली करूँगा। बीलट भाई को फिर नौकरी मिल गयी थी, उन्होंने कंपनी की सारी शर्तें मान ली थीं। एसिड प्लांट को अब मुझ-जैसे मजदूरों का इंतजार नहीं था।

आखिर, एक रोज सुबह की गाड़ी से मैं अपने छोटे परिवार के साथ घर के लिए चल पड़ा। उस रात को मुझे नींद नहीं आयी थी। कभी मुझे रकटू याद आता, कभी बुधिया याद आती और कभी झपसी भाई याद आते। रात को टाट पर पड़ा-पड़ा मैं कई बार रोया था। रेलगाड़ी में बैठा-बैठा मैं अपने गाँव घर की, अपनी आँखों देखी सारी घटनाएँ याद करने लगा। दादा किस तरह मारे गये, बाबू किस दुर्गति से मरे, हमलोगों की मजबूरी से जमींदार ने हमें कितना सताया था? जब कारखाने में नौकरी लग गयी थी, तब मैंने सोचा था कि मेरा नया जन्म हो गया है, मेरी तकदीर का सितारा गर्दिश के घेरे से निकल आया है। अब जमाना तरक्की कर रहा है, सरकार बदल रही है, लोग बदलते जा रहे हैं, गरीब किसानों की पीठ पर कोड़े लगवानेवाले बच्चाबाबू जेल जाने लगे। मगर, अब आँखों के आगे विचित्र दूरबीन लग गयी थी। लगता था, जैसे जमाना दस-बीस वर्ष पीछे की ओर खिसक गया है। माँ मेरी हर सलाह पर हुँकारी भरती जाती थी, मगर उसके चेहरे को देखने से ऐसा पता चलता था, जैसे उसका मन गाँव पर जाने का नहीं है। वह फिर उसी नर्क में नहीं समाना चाहती। अपने बेटे जिउराखन को गोद से चिपकाये सनीचरी कभी सोती, कभी जागती और कभी मेरा मुँह देखने लगती थी। गया तक गाड़ी में बड़ी भीड़ रही। यहाँ से एक गाड़ी एक बजे दिन में पटना जाने के लिए मिली। गया से पटना जाने के लिए ही यह गाड़ी थी, इसलिए यहाँ हमलोगों को भीड़ का सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन, गाड़ी के डिब्बे भर जरूर गये। पैसिंजर बहुत धीरे-धीरे चलती थी। आगे आनेवाले स्टेशनों पर कुछ लोग उतरते, कुछ

लोग चढ़ते। मगर रेल-पेल और धक्कम-धुक्की की नौबत नहीं आयी। जहानाबाद स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो एक काले रंग का बूढ़ा आदमी मेरी बगल में बैठ रहा। देखने में वह बड़ा बदसूरत था। उसके शरीर में साफ कुरता और मैली धोती थी। कंधे पर एक साफ गमछा रखे हुए था। पैर खाली थे। पास बैठते ही उसने पूछा, "कहाँ जाओगे ?"

"छपरा।"

"यह जनाना लोग तुम्हारे साथ हैं ?" उसने सनीचरी और माँ की ओर इशारा करके पूछा।

"हाँ।" मैंने कहा।

"मकान छपरा ही है ?"

"हाँ, पटना अब यहाँ से कितने स्टेशन होगा ?"

"बस, दो टीसन।"

"अच्छा।"

"कहाँ से आ रहे हो, कहीं परदेश कमाते हो ?"

"हाँ, कमाता था। अब नौकरी छूट गयी। घर लौट रहा हूँ।

"कौन*आसरे हो ?"

"मोची""।" मैंने कहा, फिर मेरे मुँह से निकला, "और तुम ?"

"हम दोनों जाति-बिरादर ही हैं।"

"रहते कहाँ हो ?"

"पटना।"

"क्या करते हो ?" मैंने पूछा।

"रिक्शा चलाता हूँ। मेरा घर हाजीपुर है। बूझो, तो हमलोग जवारिए हैं। इस पार सोनपुर, बीच में गंडक और उस पार हाजीपुर, इधर छपरा जिला, उधर मुजफ्फरपुर। है न बेटा ?" उसने कहा।

"हाँ, बस इतने ही का तो फर्क है। एक बात बताओगे ? पटने में कोई काम-धंधा लग सकता है ? तुम तो पुराने आदमी हो। मेरे बाप पौतिया की उम्र होगी तुम्हारी। तुमसे क्या छिपाना है ? गाँव पर न अपने बाप-दादे का घर है,

न कट्ठा-भर खेत। कहीं भी खटकर ही खाना है। रिक्शा चलाना तो मैं भी जानता हूँ, कुछ रोज चलाया भी है।" मैंने कहा।

"चलाओगे रिक्शा ?"

"क्यों नहीं, कोई जोगार लगने की उम्मीद हो, तो कहो....।"

"जहानाबाद से पटना जंकशन तक गाड़ी के पहुँचते-पहुँचते थोड़े में मैंने अपना सारा हाल उसे बतला दिया था। समझ लो कि बूढ़ा मेरी हर मदद करने को तैयार था।

• • •

२७

गुदड़ी चाचा को भूल जाना मेरे लिए मुश्किल बात है। बाँकीपुर जंकशन से बाहर निकलने पर उन्होंने मुझे जहाज-घाट नहीं जाने दिया। बड़ी हिम्मत करके मुझे परिवार सहित अपने डेरे में ले आये। डेरा उनका यहीं पुरंदरपुर मुहल्ले में था और आज भी है। देखते होंगे, इस मुहल्ले में एक 'चमरटोली' भी है। यहाँ चमार, दुसाध, धोबी और मेहतर ही अधिक बसे हुए हैं। दो-एक पर कोठरी है, बस। पूरब की ओर कायस्थ लोगों के मकान हैं, उसे 'कैथटोली' कहकर पुकारते हैं। चार-पाँच दुसाधिनें कन्या विद्यालयों में दाई का काम करती हैं। उन लोगों को सालों-भर लड़कियों के उतारन ही पहनने को मिलते रहते हैं। अपने पैसे से नये कपड़े वे शायद ही खरीदती हैं। पूजा-पाठ और व्रत के अवसरों पर लड़कियों के घर से प्रसाद और भोजन भी मिलता है। जब लड़कियाँ इम्तहान में पास करती हैं, तब इनाम भी देती हैं।

चमरटोली कमीनों की टोली है न, इसलिए दिन-रात काँव-कीच होता रहता है। मुझे तो बड़ा ही अचरज होता है कि इन लोगों को बगल में रहकर तुम पुस्तकें कैसे लिख लेते हो। दिन-रात मार-पीट, थूकम-फजीहती ! खैर, तो उसी मुहल्ले में गुदड़ी चाचा ने दूसरे रोज मुझे किराये पर एक कच्ची कोठरी दिलवा दी। किराया तय हुआ, सात रुपये मासिक। और, तीसरे रोज उन्होंने रिक्शा भी दिलवा दिया। रिक्शे का मालिक रमना रोड में रहता था। जहाँ आज डी-लक्स होटल है, ठीक उसी के सामने। दो-तीन रोज में अपनी फोटो के साथ मैंने लाइसेन्स भी ले लिया। अब लगा, रिक्शा चलाने। मालिक को दो रुपये देने की बात तय हुई थी। किसी तरह मालिक को देकर डेढ़-दो रुपया बचने लगा। ज्यादा बचने की उमीद नहीं नजर आती थी। स्टेशन पर रेलगाड़ी आने के वक्त हजारों रिक्शे लगे रहते हैं, जानते ही हो।

एक रोज की बात है। मैं स्टेशन पर, रिक्शा लगाये खड़ा था। पूरब से कोई पैसेंजर गाड़ी आयी थी। मैं स्टेशन से निकलकर बाहर आनेवाले मुसाफिरों की ओर देख-देखकर कह रहा था—

"चलिये, चलिये। कदमकुआँ, लोहानीपुर, नयाटोला, मछुआटोली, भिखना-पहाड़ी, अदालत, लोदीपुर, जहाज-घाट, महेंद्रू, गर्दनीबाग""बाकरगंज""।"

तभी एक बूढ़ा सिक्ख अपने कन्धे पर कोई वजनदार गट्ठर लिये रिक्शा स्टैंड के नजदीक पहुँचा। मैंने सोचा, सवारी मिल गयी, अब इसे छोड़ना नहीं चाहिए पूछा, "कहा जाना है, सरदारजी ? कहाँ जाइयेगा, आइए बैठिए।"

"अबे साले, मैं कहीं भी जाऊँगा, तुम्हें इससे क्या ?" सिक्ख गुस्सा होकर बोला।

"आइए, बैठिए हुजूर ! आराम से पहुँच जाइएगा""।" मैंने पतित होकर कहा; क्योंकि भय बना था कि वह कहीं दूसरा रिक्शा न कर ले।

"कितना लेगा, मुरादपुर का ?"

"आइए, बैठिए हुजूर ! जो मुनासिब होगा, दे दीजिएगा।"

"मैं तो दुअन्नी देता हूँ, चलोगे ?"

"दुअन्नी में नहीं परता पड़ता, सरदारजी !" मैं बोला।

"तो चुप रह, मैं पैदल ही चला जाऊँगा।" कहकर सिक्ख आगे बढ़ने लगा।

"एक बात सुनिए न।" मैंने पुकारकर कहा।"

"क्या कहेगा ?"

"आइए बैठिए, मगर एक सवारी और ले लूंगा।"

"नहीं, एक सवारी के लिए मेरी दूकानदारी का हर्ज करायेगा ?"

"तो एक काम कीजिये, तीन आने दे दीजियेगा।"

"बस, एक बात।" कहता हुआ सिक्ख चला गया।

तो रिक्शेवालों की कमाई की यह हालत थी। उस रोज मुश्किल से मैं सवा दो रुपये पैदा कर सका था, जिसमें दो रुपये मालिक को दे देने पड़े। शाम को घर लौटा, तो चार इकन्नियाँ माँ के आगे रख दीं। जिउरखना पैसे के लिए तंग करने लगा। उसके लिए दिल में मुहब्बत नहीं थी, ऐसी बात नहीं, मगर उस वक्त मुझे बड़ा गुस्सा आया और मैंने उसके गालों पर जोर-जोर से दो तमाचे रख दिये। वह गला फाड़-फाड़कर रोने लगा और आखिर रोता-ही-रोता सनीचरी की गोद में चिपककर सो रहा। माँ, दौड़कर चार आने का चावल ले आयी और चूल्हा गर्म कर उसने घट्ठा पका लिया। घट्ठा तुमने कभी खाया है या नहीं ? वह भात ही की तरह बनता है, मगर उससे माड़ नहीं निकाला जाता और जब चावल पक जाता है, तब उसमें हल्दी और नमक छोड़ देते हैं।

घट्ठा खाकर जब मैं टाट पर लेटने गया; तो लेटा नहीं जा सका। शाम हो गयी थी। सावन के बादल जमीन और आसमान के बीच गरज रहे थे। मैंने फिर हिम्मत की। सोचा, सात बजे से लेकर तीन बजे तक एक ट्रीप और मार लूँ। भाग्य साथ देगा, तो एक-डेढ़ रुपया बना लूंगा। मैंने माँ से कहा, "माँ, अब मैं चलता हूँ।"

"कहाँ ?" माँ ने पूछा।

' रिक्शा लेने। आज रात-भर चलाऊँगा। भोर होते-होते आ जाऊँगा।"

"अरे, अभी तो दिन-भर चलाकर आया है। अब क्या चलायेगा, मरेगा क्या ?" माँ बोली।

"मरूँगा नहीं, और मैं खाने के लिए भी तो कुछ नहीं है। तुम क्या खाओगी, तुम्हारी पतोहू, जिउरसना और मैं ?"

"सबके राम हैं। अब मत जा बेटा, सो रह।" वह बोली।

"बेकार हर बात में राम का नाम मत लिया कर। देख, अपनी पुरानी आदत छोड़ दे।"

"क्यों, भगवान सबके मालिक नहीं हैं ? जिसने मुँह चीरा है, वही आहार देगा।" माँ बोली। मुझे गुस्सा आ रहा था। मैंने कहा, "तुमने भी तो मुझे अपने कोख में रखा था। क्यों नहीं, बैठे-बिठाये खिला रही हो ? कहाँ है वह भगवान, जो बैठे-बिठाये किसी को खाना दे देता है ? अजगर भी जब तक लम्बी साँसें नहीं खींचता, तब तक उसके मुँह में भी कोई जीव-जन्तु नहीं समाता। दस हजार हड़ताली मजदूरों के लिए राम कहाँ अन्तर्ध्यान हो गये थे ? फिजूल की बातें मत बका कर। ला मेरा अँगोछा, मैं चला।"

"ले, जब नहीं मानता, तब जा। मगर देख, पानी में रिक्शा मत खींचना। कहीं रुक-बीरिछ के नीचे खड़ा हो जाना। जब तू ही बीमार हो जायेगा, तब कहाँ से कमायेगा और कैसे हमलोगों को खिलायेगा ?" माँ ने मेरा गमछा मुझे देकर कहा।

"अच्छा.....।" मैंने कहा और उठकर चल दिया।

बुरा न मानना भैया, तुम लेखक करोड़ों जनता के भाग्य-विधाता हो, तुम लोग बड़े भावुक होते हो। मन की बातें खुलकर कहने में बड़ा डर लगता है। तुम तो कहोगे कि मंगरुआ मार्क्सवादी छौंक से बातचीत की दाल में स्वाद डाल रहा है। मगर, बात ऐसी नहीं है। तुम्हारे विचार मुझसे बहुत हद तक मिलते-जुलते हैं, इसीलिए कह दे रहा हूँ। दुनिया में चाहे जो आदमी हो, अगर वह प्रारब्धवादी है, तो मैं उससे नफरत करता हूँ। और किस्मत की चक्की में अपने को पीसना मैं मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं समझता। जिंदगी में मैंने बड़ी-बड़ी हारें खायी हैं। मगर उसका बोझ 'किस्मत' नाम के जीव ने कभी न उठाया। मैं नहीं समझता, यह कौन-सी बला है। व्यवस्था का भार समाज पर है, प्रारब्ध पर नहीं।

खैर, भाई ! तो मालिक के यहाँ जाकर मैंने फिर रिक्शा ले लिया और चला सवारी की खोज में । एक खेप सवारी लेकर स्टेशन आया, तो बादल टिप-टिप-कर धीरे-धीरे बरसने लगे । रात के पौने आठ बज रहे थे । मुंगेर की ओर से कोई गाड़ी आनेवाली थी । पानी बरसने की वजह से स्टेशन पर सवारियों की कमी थी । मैंने सोचा, पानी में भींगकर सवारी खोजते रहने से कहीं अच्छा है कि थोड़ी देर ठहर जाऊँ । मुंगेर से जो गाड़ी आनेवाली है, उसमें सवारी जरूर मिलेगी । मैंने पास की दूकान से दो पैसे की बीड़ी खरीद ली और एक को सुलगाकर लगा सोंटने । कुछ ही मिनट के बाद गाड़ी झक्-झक् करती हुई आ गयी । पानी की बौछार कुछ तेज हो गयी थी । मैं रिक्शे का हैण्डिल पकड़े सवारी का इंतजार करने लगा । मुसाफिर बाहर निकलने लगे । मेरे आस-पास में खड़े रिक्शेवाले सवारी लेकर निकलने लगे । मैं भी चिल्ला रहा था—"आइए, अदालत चलिए । मोटर-स्टैंड, महेंद्र, जहाजघाट, गर्दनीबाग, नयाटोला, कदम-कुआँ, मछुआटोली, लोदीपुर""।"

"न्यू एरिया चलोगे ?" किसी मुसाफिर ने मेरे आगे आकर पूछा ।

"चलूँगा मालिक, आइये""""।" कहकर मैंने रिक्शे को आगे की ओर खींचा ।

"कितना लोगे ? मुसाफिर ने पूछा ।

"जो दे दीजियेगा मालिक, ले लूँगा ?" मैं बोला ।

"नहीं, नहीं, बात पक्की कर लो । मैं लटपट-सटपट नहीं जानता ।"

"क्या दीजिएगा सरकार, आप ही कहिए न ।"

"नहीं, तुम बतलाओ और जल्दी करो । पानी बरस रहा है, ऐसे कब तक खड़ा रहूँगा ।

'आइए बैठिए छः आने दे दीजियेगा ।

"छः आने? लूट मची है क्या ?"

'छः आने अधिक तो नहीं है मालिक ! क्या दीजियेगा आप ?

"चार आने ।"

"अच्छा आइये, पाँच आने दे दीजियेगा। पानी बरस रहा है सरकार, मैं भी तो भींगता-भागता चलूँगा।" मैंने कहा।

"चार आने से एक पैसा ज्यादा नहीं दूँगा। चलना है, तो चलो। तुम क्या समझते हो, पानी बरस रहा है, इसलिए लूट लिया जाय? अरे आज न सही, कल ही जाऊँगा। फर्स्ट क्लास का वेटिंग रूम भी कहीं पानी में है?" मुसाफिर बोला।

"अच्छा, आइये मालिक! आप ही की बात सही।" मैं बोला।

मुसाफिर रिक्शे पर आकर बैठ गया। पानी की बौछार तेज होती जा रही थी, इसलिए मुसाफिर को पानी से बचाने के लिए मैंने आगे का भी परदा गिरा दिया और रिक्शा लेकर आगे बढ़ा। सड़क भींग जाने की वजह से रिक्शे के पहियों के नीचे से 'चप्-चप्' की आवाज आ रही थी। पीरमुहानी के मोड़ पर पहुँचते ही मुसाफिर ने मुझसे कहा, "जरा रोको जी।"

"जी, बाबू?"

"जरा रोको।"

"क्या है?" मैंने उतरकर पूछा। अब तक मैं पानी से बिलकुल भींग चुका था।

"देखो, वह सामने की दुकान खुली है न, जरा दौड़कर सिगरेट लेते आओ।"

"अच्छा।"

"यह लो।" कहकर मुसाफिर ने मेरी ओर एक दो रुपये का नोट बढ़ाया।

"कौन सिगरेट बाबू, कैंची मार?"

"अरे, कैंची सिगरेट भी कोई सिगरेट है? गोल्ड फ्लेक ले आओ। देखना, पाकेट भींग मत जाये।"

"अच्छा, सरकार!"

दौड़कर मैं गया और सामने की दुकान से एक पाकिट वही सिगरेट ले आया। फिर मैंने रिक्शा आगे की ओर बढ़ाया। मुसाफिर मुझे जिधर-जिधर रिक्शा ले चलने के लिए कहा करता, मैं उधर-उधर रिक्शा घुमा दिया करता।

आखिर एक पक्के मकान के सामने रिक्शा रोकना पड़ा। मुसाफिर ने मेरी ओर एक चवन्नी बढ़ाकर कहा, "यह लो, ठीक तो है ?"

"दूसरी चवन्नी हैं, तो दे दीजिए बाबू !" मैंने बत्ती के नीचे देखकर कहा।

"वह चवन्नी तुम्हीं ने तो लायी है। लाओ तो, जरा मैं देखूँ...।" कहकर मुसाफिर खुद बत्ती के सामने आकर चवन्नी को देखने लगा।

"अरे, आप, लेखकजी ?" मेरे मुँह से निकला।

"लेखकजी, तुम मुझे कैसे पहचानते हो ?"

"आपको मैंने रतननगर मजदूर लाइब्रेरी में देखा था। आप वही लेखकजी हैं न, जिनकी कविताएँ पी० सी० जोशी उन्नीस बार सुना करते हैं, आप ही न मजदूरों के लिए लिखते हैं, अपनी कलम के जरिये आप ही न हमलोगों के लिए सङ्घर्ष कर रहे हैं ?" मैंने पूछा।

"ओह, तो तुम पहचान गये ! तुम्हारा नाम भी मुझे याद था। भूल गया। क्या नाम है, तुम्हारा ?" लेखकजी ने पूछा।

"मेरा नाम मंगरुआ है, सरकार !"

"अच्छा, अब याद आया। मगर तुम यहाँ कैसे ?" लेखकजी ने पूछा।

"कारखाने की हड़ताल नाकामयाब होने पर नौकरी छूट गयी। अब यहीं रिक्शा खींच रहा हूँ।"

"खैर, कोई बात नहीं। सङ्घर्ष करो, कामरेड ! बिना सङ्घर्ष के परिवर्तन सम्भव नहीं है।"

"जी।"

"देखो, मैं यहीं रहता हूँ। वह जो बायीं ओर का कमरा है, उसी में। आकर मिलोगे। मेरे दोस्त तो तुम्हीं लोग हो बाबू ! तुम्हें एक बात मालूम है या नहीं ? मैं प्रेसों के दफ्तरी और कम्पोजिटरों के साथ भी बैठकर चाय पी लेता हूँ।"

"जी, आप जैसे लोग विरले ही मिलते हैं। आप अपनी कोई किताब पढ़ने के लिए देते, तो बड़ी कृपा होती। दो रोज में पढ़कर लौटा दूँगा। पैसे की बड़ी किल्लत है, वरना मैं तो खरीद भी लेता।" मैंने कहा।

"नहीं, ऐसी क्या बात है ? कभी आओगे, मैं अपनी पुस्तकें तुम्हें दूँगा।" लेखकजी बोले।

"जी, मेरा अहोभाग्य !"

"अच्छी बात है। अब मैं चला। चवन्नी रख लो। अगर नहीं चले, तो फिर मुझे वापस करके चार आने पैसे ले लोगे।"

"जी, कोई बात नहीं।" मैं बोला।

मैंने वही चवन्नी रख ली और रिक्शा लेकर महेंद्रू जहाज-घाट की ओर दौड़ा। पहलेजा से जहाज के आने का वक्त हो गया था। सवारी मिलने की उम्मीद थी। रास्ते में मैं लेखकजी के बारे में बहुत कुछ सोचता रहा। लेकिन, उनकी लिखी हुई किताब पढ़ने की तमन्ना दबी नहीं। तीसरे ही रोज सूरज निकलते-निकलते मैं लेखकजी के यहाँ पहुँच ही गया। भेंट होने पर दोनों हाथ जोड़कर मैंने उन्हें नमस्कार किया।

"आओ आओ, कामरेड !" कहकर लेखकजी ने मुझे अपनी चारपाई पर बैठने का इशारा किया। मेरी हिम्मत न हुई कि उस चारपाई पर उनके साथ बैठूँ। उस पर कई किस्म के बिछावन थे। कमरे के एक कोने में टेबुल पर पुस्तकें सजाकर रखी थीं। दूसरी ओर छोटी-सी टेबुल पर डिबियों में न जाने क्या-क्या रखा हुआ था। दीवार में बहुत बड़ा एक कीमती आईना टँगा था, जिसमें कंघी रखने की भी जगह बनी थी।

"ठीक है, आप की चारपाई पर मैं कैसे बैठूँ ?" मैंने संकोचवश कहा।

"क्यों ?"

"यह भी कहना होगा ?"

"अरे, बैठो-बैठो। मुझमें और तुममें क्या फर्क है यार ? मैं कलम का मजदूर हूँ और तुम रिक्शे के मजदूर हो। हम बराबर ही तो हैं।"

"और बुलाया था आपने, कोई अपनी किताब दीजिए न।"

"पहले बैठो तो प्यारे……" कहते हुए लेखकजी ने जबरदस्ती मुझे चारपाई पर बिठा लिया। अब मैं चुपचाप बैठ रहा। उन्होंने मुझसे कहा, "तुम तो किताबों के शौकीन हो। मैं अपना नया उपन्यास तुम्हें देता हूँ।" इस सोके

का हिंदी का यह सबसे अच्छा उपन्यास माना गया है। विद्वानों का कहना है कि लेखक ने प्रेमचन्दजी की कला को आगे की ओर बढ़ाया है।"

"अच्छा!"

"जरा, खूब ध्यान से पढ़ना।"

लेखकजी ने तब टेबुल पर रखी हुई पुस्तकों में से एक पुस्तक निकालकर मेरी ओर बढ़ायी और स्वयं एक पतली और लंबी डिबिया से चूना निकालकर ब्रश से दाँत साफ करने लगे। मैंने उस पुस्तक की जिल्द उल्टी। उपन्यास के नाम के नीचे लिखा था—

[भारतीय मजदूर-जीवन पर एक महान प्रगतिशील उपन्यास]

लेखक

श्री युगांतर

लेकिन, तभी मेरी नजर लेखकजी के मुँह की ओर गयी। मैंने देखा, वे एक बड़ी भूल कर रहे हैं। भला चूने से दाँत साफ करने की क्या जरूरत? और इसके तीखापन को वे कैसे बर्दाश्त कर ले रहे हैं? मैंने कहा, "एक बात कहूँ लेखकजी?"

"कहो।"

"आप चूने से क्यों दाँत साफ कर रहे हैं? दतवन ले लीजिए। पटना में दतवन तो बहुत बिकता है। अस्पताल के सामने तो कितने दतवन बेचनेवाले बैठे रहते हैं।"

"दतवन का काम इसी तरह चल जाता है।"

"अरे, आपका मुँह नहीं कट जाता?"

"तुम जिसे चूना समझ रहे हो, वह चूना नहीं है मंगरू?"

"तो फिर यह क्या है?"

"यह मैक्लिन्स टूथपेस्ट है। इस पेस्ट की आजकल बड़ी तारीफ हो रही है। सिलोन रेडियो से इसका विज्ञापन होता है।" वे बोले।

"तो इससे दाँत साफ होता है? मुझे तो जब कभी दतवन नहीं मिलता, तो मैं मिट्टी या चूल्हे की राख से काम चला लेता हूँ।"

"हाँ, वह भी ठीक है।"

"मगर लेखकजी, आप तो कहते हैं कि मैं मजदूर-जीवन की तरक्की के लिए संघर्ष कर रहा हूँ। लेकिन, हम मजदूर लोग तो पेस्ट का नाम भी नहीं जानते। है न यह बात...।" इतना कहते-कहते मुझे हँसी आ गयी। मैं बोला, "मेरा तो खयाल है कि आप मजदूरों से कच्ची दोस्ती निबाह रहे हैं।"

मेरे इतना कहने पर लेखकजी ने दाहिने हाथ के ब्रश को बायें हाथ में ले लिया और मुझसे हाथ मिलाते हुए बोले, "वाह कामरेड! क्या क्लीयर सटायरबाज़ी की तुमने! जीते रहो!! मैं इस बात को कहीं जरूर लिखूँगा।"

"नहीं; मैं लिखने के लिए नहीं कहता। क्यों, आपने बुरा मान लिया क्या?"

"नहीं जी, बुरा क्यों मानूँगा? इस तरह की आलोचनाएँ होनी चाहिए। खैर, यह सब तो चलता ही रहता है। लेकिन, मैं तुम्हारी सूझ की दाद देता हूँ। आदमी तुम बड़े जिंदादिल हो यार, इसमें कोई शक नहीं।" लेखकजी बोले और फिर दाहिने हाथ में ब्रश लेकर दाँत साफ करने लगे।

इसके बाद लेखकजी से मेरा बराबर मिलना-जुलना होता रहा। मैं उनसे राजनीतिक बातें करता, तो वे बहुत ही खुलकर दिलचस्पी लेते। हाँ, वे यह भी कहते कि जनता में सोशलिस्ट पार्टी की अब कोई आवाज नहीं रह गयी। यह पार्टी और कुछ नहीं, कांग्रेस की छोटी बहन है। बड़ी बहन तो पावर में आ गयी है, छोटी फिसड्डी होकर रह गयी। उन्होंने मुझे बतलाया कि संसार में कम्युनिस्ट पार्टी ही एक ऐसी राजनीतिक संस्था है, जो जन-जीवन के लिए सुख और शांति की व्यवस्था कर सकती है। बातचीत के सिलसिले में वे स्तालिन और लेनिन की प्रशंसा करते हुए अघाते नहीं थे। उन्होंने मुझे बतलाया था कि स्तालिन सिर्फ सोवियत जनता का नायक ही नहीं, बहुत बड़ा क्रांतिकारी कवि भी था। सोलह वर्ष की उमर में ही स्तालिन ने अपनी एक कविता 'इवेरिया' में छपवायी थी। उस वक्त स्तालिन का नाम 'सोसो' था। लेखकजी ने ही उस कविता का अनुवाद मुझे सुनाया—

"जिसकी कमर अन्तहीन मेहनत से टूट गई,
जो अभी कल तक दासता के सामने नतशिर था,
मैं कहता हूँ, वह उठेगा पर्वतों का ईर्ष्यापात्र हो,
आशा के पंखों पर, सबसे ऊँचे, ऊपर।"

प्रगतिशील साहित्य का अर्थ मैंने इन्हीं लेखकजी से समझा। युगान्तरजी का कहना था कि जिस साहित्य में जन-जीवन की तस्वीरें न हों, वह साहित्य रद्दी की टोकरी में फेंकने के लायक है।

एक दिन मेरी उनसे बहस हो गयी। बात उनके उसी उपन्यास की चल गयी थी, जिसके लिए वे बहुत ही ख्याति पा चुके थे। उनके उपन्यास का हीरो एक मिल-मजदूर था। पूरा उपन्यास पढ़ लेने के बाद मैंने निश्चित रूप से यह समझ लिया कि कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों के जीवन के बारे में उनकी कोई वास्तविक जानकारी नहीं थी। उन्होंने कल्पना की उड़ान से काम चलाया था। जिस चीज के कारखाने में उनके उपन्यास का हीरो काम कर रहा था, उसके बारे में उन्होंने बहुत-सी गलत बातें लिखी थीं। मजदूरों पर मिल-मालिक की ओर से जो कानून लादे जाते हैं, उन्होंने इसका भी कहीं जिक्र नहीं किया था। लगता था, लेखक को न तो मजदूरों के बीच में रहने का मौका मिला है, न उसने कारखानों में घुसकर कारखाने की भीतरी हालतों की जानकारी प्राप्त की है। जब मैं उन्हें उनका उपन्यास लौटाने गया, तो मैंने यह नहीं सोचा कि इस पर उनसे किसी तरह की बहस भी करनी होगी। उनके डेरे में जाकर मैंने वह उपन्यास उनके हाथ में दे दिया।

"पूरी किताब पढ़ गये न?"

"जी।"

"कैसा लगा?" लेखकजी ने पूछा।

"अच्छा लगा, बड़ा तगड़ा उपन्यास है।" मैंने कहा।

"अच्छा तो सभी कहते हैं, मगर मैं तो अपनी रचनाओं की शिकायतें सुनने पर खुश होता हूँ। उसमें जो कमजोरियाँ हैं, मुझे बताओ।"

लेखकजी ने इतनी बातें कहकर मेरी आँखों में अजीब तरह से देखा था; जैसे उनकी पुस्तक में किसी तरह की कमजोरी न हो। वे यों ही पूछ रहे हैं। भला, मंगरुआ इतने बड़े लेखक की रचना में कैसे कोई गलती ढूंढ सकता है? मगर, न जानें, मुझमें कुछ हिम्मत क्योंकर हो आयी। अपने संकोच का परदा हटाकर मैंने कहा, "यह तो आपमें बहुत बड़ी खूबी है कि आप अपनी शिकायतें भी सुनना चाहते हैं। यह खूबी सभी लोगों में नहीं। यों अगर आप मुझसे पूछेंगे, तो मैं इतना कहूँगा कि उपन्यास में कुछ बड़ी-बड़ी भूलें अवश्य हैं।"

"सो क्या, कहो।"

"नहीं। आप कहेंगे, छोटा मुंह बड़ी बात कर रहा है। सो, मैं इस विषय का जानकर भी नहीं हूँ।" मैं बोला।

"नहीं, नहीं, बतलाओ कामरेड!" वे बोले।

"उपन्यास के हीरो के संबंध में आपने बहुत कच्ची सूचनाएँ दी हैं। आपको मिल-मजदूरों के बीच में रहने का मौका मिला है?" मैंने पूछा।

"नहीं, कोई खास मौका तो नहीं मिला। रतननगर कभी-कभी दो-चार रोज के लिए जाता था। वहीं लाइब्रेरियन मेरे दोस्त थे।"

"वही तो मैंने कहा, कच्ची जानकारी की मदद से किताबें नहीं लिखनी चाहिए। फिर मजदूरों के जीवन पर पुस्तकें लिखने में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। देखिये, मुझे भाषा की जानकारी नहीं है। लेकिन, बार-बार मन में यह विचार जरूर पैदा होता है कि लेखक को सिर्फ यह नहीं सोचना चाहिए कि उसे क्या लिखना है। लिखने के पहले, मेरी समझ से, उसे यह भी सोचना चाहिए कि कैसे लिखा जाये। मुल्क में पुस्तकों की कमी नहीं है, मगर वैसी पुस्तकों की सचमुच बड़ी कमी है, जो आदमी को बहुत नजदीक से छू सके, इन्सान को टोक सके। मेरा खयाल है कि जब तक लेखक मजदूरों के बीच में घुसकर रहने की कोशिश नहीं करेगा, अपने दिमाग को उनकी तरह बनायेगा नहीं, तब तक मजदूरों के बारे में सिर्फ कूड़ा-कर्कट ही लिखता रहेगा। आपका हीरो अगर सिर्फ 'कम्युनिस्ट पार्टी, जिंदाबाद!' करे और अनाप-सनाप बके, तो

क्या उससे मजदूर-साहित्य धनी हो जायेगा ?" मैंने इतनी बातें बड़ी हिम्मत करके कहीं।

"मगर तुम्हें एक बात मालूम है, मंगरू ?"

"क्या ?"

"जितने प्रगतिशील लेखक या कवि हैं, वे सभी कम्युनिस्ट हैं।"

"हाँ, और वे सभी गोल्ड फ्लेक पीते हैं ? रिक्शा-भाड़ा में एक आना कम कराने के लिए रिक्शेवाले से पंद्रह मिनट बहस करते हैं ? जिन मजदूरों की छाती पर हिंदुस्तान में कम्युनिस्ट पार्टी की नींव डाली जा रही है, उन मजदूरों को तो बीड़ी भी मुहाल है। पटने में रिक्शा यूनियन को कम्युनिस्ट पार्टी चलाती है। इससे क्या फायदा हुआ है ? रिक्शेवाले तो हर महीने चंदा दिया करते हैं। क्या, अब रिक्शेवालों को नगर के सिपाही तंग नहीं करते, क्या मुझे मुफ्त में पुलिसवालों की सवारी नहीं ढोनी पड़ती, क्या पुलिसवाले हमलोगों को गालियाँ नहीं देते, क्या अब वे मुझ पर हाथ नहीं उठाते ?"

"तुम इन बातों को यूनियन के दफ्तर में क्यों नहीं कहते ?"

"वहाँ पार्टी की शिकायतें सुनने के लिए किसी के पास कान नहीं है। देहातों से आनेवाले कामरेड कँटिया में भर-भरकर घी लाते हैं। थाल में जब भोजन दिया जाता है, तब वे अपनी-अपनी कँटिया से छटाँक-छटाँक-भर घी निकालकर दाल में डाल देते हैं। और जिस बेचारे के पास घी नहीं है, वह चुपचाप उनका मुँह देखकर रह जाता है। क्या मार्क्स ने यही कहा था ? वे हर बात में मार्क्स और ऐंजल्स के सिद्धांतों का उदाहरण देते हैं, मगर मेरा अंदाज है कि इन दो महान विचारकों ने अपनी पुस्तकों में न तो ऐसे सिद्धांत दिये होंगे और न कहीं ऐसे सिद्धांतों का किसी रूप में समर्थन ही किया होगा। आपका क्या खयाल है ?"

"तुम ठीक कहते हो मंगरू, यही तो कामरेड लोग भूल करते हैं। लेकिन ऐसी बात नहीं कि सभी पार्टी कामरेड ऐसे ही होते हैं। तुम्हें इतना संकुचित होकर नहीं देखना चाहिए। सरोवर में कुछ मेढकों के रहने से हंस का महत्व

नहीं खत्म होता। जहाँ दस समझदार हैं, वहाँ दो नासमझ भी तो होते हैं।" वे बोले।

रतननगर के मजदूरों के बारे में मुझे यह खबर मिल रही थी कि अब वहाँ छँटनी हो रही है। बहुत मजदूर छाँट दिये गये। कंपनी अब बिलकुल मनमानी करने लगी। तभी १९५२ का चुनाव आ गया। चुनाव खत्म होने पर सुना कि मानिकसिंहजी, जो रतननगर में सोशलिस्ट मजदूर यूनियन के सभापति थे, अपने इलाके से असेम्बली के लिये मेम्बर चुन लिये गये। मानिकसिंह मुजफ्फरपुर जिले के रहनेवाले थे। पता चला कि उन्हें चुनाव में विजयी बनाने के लिए सोशलिस्ट पार्टी ने रुपये और अखबार से बड़ी मदद की थी। उस इलाके में हंगामा किया गया था कि इनकी सेवाओं का कोई अंत नहीं है। इसका सबूत है, रतननगर के मजदूरों की हड़ताल। तो, हमलोगों की उस हड़ताल के पीछे तो ऐसी की तैसी हुई ही, मगर मानिकसिंह इस चुनाव में एम० एल० ए० होकर ही रहे।

दस रोज पहले की बात है। एम० एल०ए० क्वार्टर से मैं एक एम० एल० ए० साहब के दो बच्चों को रोज ही रिक्शे पर स्कूल पहुँचा आता और छुट्टी होने पर ले आता था। इसके लिए मुझे रोज ही निश्चित पैसे मिल जाते थे। एक दिन मैं अपनी बोली की वजह से हटा दिया गया। मैं उन बच्चों को रिक्शे पर बिठा रहा था कि एम० एल० ए० साहब दरवाजे पर आ गये। मुझसे पूछा, "तुम्हारे भी बच्चे हैं न?"

"जी, सरकार! एक है।"

"क्या करता है?"

"पढ़ता है।"

"अच्छी बात है। जरूर पढ़ाओ।"

"पैसे की बड़ी कमी है, सरकार! मेरा जिउरखना बहुत तरक्की करेगा, तो कहीं चपरासी हो जायेगा, उसके लिए भी आप-जैसे बाबू, राजा लोग सिफारिश करेंगे, तभी होगा। और हुजूर के बबुआ लोग तो अफसर होंगे।" मैंने कहा।

"सो कैसे ?"

"हुजूर, सुनता हूँ कि सेण्ट जेवियर्स में बड़े-बड़े लोगों के लड़के ही पढ़ते हैं और आगे चलकर उनका अफसर होना जरूरी हो जाता है। मेरा बेटा, जिउरखना तो अच्छी तरह हिंदी भी नहीं बोल सकता। बबुआ लोग तो फटर-फटर अंग्रेजी बोलते हैं।"

शायद उसी रोज मेरी बातों से एम० एल० ए० साहब रंज हो गये। दूसरे रोज मैं रिक्शा लेकर पहुँचा, तो मुझे लौटा दिया गया। मैं तुरत लौट आया।

● ● ●

२८

दिन तो अब भी परेशानी में गुजर रहे हैं, तब भी गुजर रहे थे। मैं रिक्शा यूनियन का मेम्बर हो गया था। यूनियन की देख-रेख कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी। उन्हीं दिनों रिक्शावालों को यूनियन ने हड़ताल मनाने की आज्ञा दी। किसी रिक्शेवाले को एक सिपाही ने बुरी तरह पीटा था। बेचारा अस्पताल भेजा जा चुका था। यहाँ तो रोज का कमाना-खाना था। पास में कहाँ पैसे थे, जो हड़ताल की शान रखता! सड़क पर रिक्शा चलाना बंद हो गया। यूनियन के अधिकारी नुक्कड़ों और चौक पर खड़े-खड़े हड़ताल का नेतृत्व कर रहे थे। साथ में कुछ रिक्शेवाले भी थे। अगर कहीं से कोई रिक्शा आ भी जाता, तो वे लोग उसे घेरकर पहिए से हवा निकाल देते थे। खजांची रोड से मैं भी एक सवारी लेकर गर्दनीबाग जा रहा था। रूपक सिनेमा के पास मुझे हड़ताली रिक्शेवालों ने घेर लिया और पहिए की हवा निकाल दी।

आज मेरे घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं पका था। थोड़ा-सा बासी भात था, जिसे सनीचरी ने, जिउरखना को खिला दिया। शाम में माँ रात-भर के लिए एक ललाइन के साथ अस्पताल चली गयी। उनका दूल्हा घर पर नहीं था। उन्हें बच्चा होनेवाला था और जानते ही हो कि पटना अस्पताल के जच्चा वार्ड में जच्चा की देख-रेख के लिए कोई औरत ही तो रह सकती है। मर्दों के रहने का हुक्म नहीं है। ललाइन ने कहा था कि जितने रोज रहेगी, डेढ़ रुपये के हिसाब से मजदूरी दे दूँगी। और बाहरी दाइयों को, जो मरीजों की सेवा के लिए वहाँ अस्पताल में रहती हैं, उन्हें शायद दो रुपये के हिसाब से लोग मजदूरी देते हैं। माँ मेरी सस्ते ही पट गयी।

गुदड़ी चाचा की हालत मुझसे कुछ अच्छी थी। उनके तीन बेटे थे। एक की शादी हुई थी, दो क्वाँरे थे। गुदड़ी चाची मर चुकी थी। जो दो बड़े-बड़े थे, रिक्शा खींचते थे। सबसे छोटा अभी इस काम के लायक नहीं था। नाम था उसका—पतरुआ! गुदड़ी चाचा के डेरे से मेरा डेरा बहुत नजदीक था। सिर्फ पचास-साठ कदम की दूरी थी। सनीचरी और माँ, गुदड़ी चाचा के डेरे में बराबर आती-जाती रहती थीं। कभी-कभी उनकी पतोहू भी मेरे यहाँ चली आती। वह मुझसे शर्म करती थी, मगर नल पर पानी के लिए जाते वक्त मैंने उसे कई बार देखा था। वह मेरी सनीचरी से अवस्था में बड़ी थी। सनीचरी का कहना था कि स्वभाव की बड़ी अच्छी है।

मैं हड़ताल का मजा चख चुका था। सवारी को रिक्शे से उतारकर रिक्शा मालिक को लौटा आया। मगर फिर भी, न जाने क्यों, मन में यह बात पैदा हो आयी कि अपने रिक्शा-मजदूर दोस्तों को इस हड़ताल में साथ देना चाहिए। मैं बाहर-ही बाहर मुरादपुर की ओर चला गया। शहर के लोग रिक्शे के लिए परेशान थे। आउटो रिक्शा और बसें खूब चल रही थीं। आज इक्केवालों को भी सवारी की कमी नहीं थी। गर्मी के दिन थे। आजकल जहाँ टी० बी० हास्पीटल है, उसी के सामने एक पनशाला चल रही थी। पानी पिलानेवाला पानी पिलाने के पहले थोड़ा फुलाया हुआ चना और गुड़ भी खिलाता था। अपनी भुखमरी और मजबूरियों का बयान कहाँ तक करूँ, दोस्त! बड़ी भूख

लगी थी। प्यास तो उतनी नहीं लगी, मगर चना और गुड़ खाने की लालच से बार-बार पानी पीने गया। और, इस तरह शाम तक मैंने किसी तरह अपना पेट भर लिया। डर तो लगता था कि पानी पिलानेवाला कहीं पहचान न ले। मगर दोस्त, जिंदगी में सचमुच कई बार ऐसी मजबूरियाँ आती हैं, जब आदमी लाज-शर्म त्याग देता है, इंसान जलील किये जाने की फिकर नहीं करता।

यों, पटना-जैसे शहर में रिक्शेवालों की कमी नहीं थी और उनमें से करीब-करीब कम्युनिस्ट पार्टी की देख-रेख में काम करनेवाली नगर-रिक्शा-मजदूर-यूनियन के मेम्बर थे। मगर रतननगर की तरह, इस यूनियन में भी, मैं एक खास तरह का रिक्शा-मजदूर समझा जाता था। मैं इस यूनियन की सलाहकारिणी समिति में भी भाग लेता।

शाम के सात बजे के बाद रिक्शेवालों की भीड़ तितर-बितर हो गयी और मैं वहाँ से यूनियन के दफ्तर में पहुँचा। भीतर जाते ही यूनियन के सेक्रेटेरी और कई पार्टी कामरेड ने, जो उस वक्त दफ्तर में मौजूद थे, मुझे बैठने के लिए कहा। मैं एक स्टूल पर चुपचाप बैठ रहा। वे लोग आपस में कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी की बुराइयाँ कर रहे थे। वे अमरीका की युद्धनीति की भी आलोचना कर रहे थे। उनका कहना था कि संसार में अगर तीसरे विश्व-युद्ध को कोई पार्टी रोकनेवाली है, तो वह है कम्युनिस्ट पार्टी। दुनिया के बड़े-बड़े कम्युनिस्ट-विरोधी नेता भी मानते हैं कि मार्शल स्तालिन ने जहाँ-जहाँ और जब भी युद्ध की नीति अपनायी, वहाँ-वहाँ और तब उनके दिल में विश्व-शांति की भावना काम कर रही थी।

"मैं ख्वाहमखाह किसी की तारीफ करना ही नहीं चाहता। स्तालिन हों या लेनिन, उनमें भी कुछ कमजोरियाँ रही होंगी।" मैंने कहा।

"तुमने अभी समझा नहीं है, कामरेड। स्तालिन की पुस्तकें बारह खंडों में प्रकाशित हुई हैं। हर एक का दाम आठ आने है। पढ़कर देखो, तो तुम्हारा दिमाग खुल जाये। यही तो हमारी पार्टी के साथ खूबी है कि इसके पास अपने कामों की फिहरिस्त है। और, कम्युनिस्ट पार्टी के लोग ऐसे नहीं हैं कि अपनी कोई भूल स्वीकार ही नहीं करते। हम अपनी भूल खुलकर स्वीकार करते हैं

और उसके सुधार के लिए हर कोशिश करते हैं। इस तरह की छिछली आलोचनाओं से काम नहीं होता, कामरेड !" एक पार्टी कामरेड ने कहा।

"........।" मैं चुप रहा।

यह तब की घटना है, जब १९५२ के बाद भी कई महीने गुजर चुके थे। चीन में कम्युनिस्ट राज्य कायम किया जा चुका था। मैंने देखा कि बीच की चौड़ी टेबुल पर एक गोल प्याले में छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े रखे हुए थे। उन पर मेरी नजर तो पड़ी, मगर मैं समझ न सका कि ये पत्थर के टुकड़े यहाँ और इस प्याले में क्यों रखे हुए हैं। मैंने एक पार्टी कामरेड से पूछा, "ये पत्थर किसलिए हैं ?"

"नहीं, जानते ?"

"नहीं, जानता तो पूछता क्यों ?"

"तब क्या तुम संसार की राजनीति पर बातें करते हो ?"

"आखिर बतलाओ तो सही, कामरेड !"

"यह चीन के एक लाख कम्युनिस्टों के खून से रंगे पत्थर हैं।" पार्टी कामरेड ने कहा।

"चीन के एक लाख कम्युनिस्टों के खून से रंगे पत्थर हैं ....।" मुझे बड़ा अचरज हुआ और मैं उस प्याले से उन पत्थर के लाल-लाल दो-चार टुकड़ों को उठाकर देखने लगा। मैंने कहा, "यह तो तुमने अजीब बात सुना दी कामरेड ! इसीलिए इनका रंग कुछ-कुछ लाल है क्या ? मगर इन पत्थरों में खून के रंग की तरह लाली नहीं है।"

"तुम बड़े उल्लू-बसंत हो मंगरू ! आखिर रिक्शा ही तो खींचते हो। तुम्हारी बुद्धि कुछ जानवरों-सी हो गयी है।" सेक्रेटरी ने कहा।

"सो तो मानता हूँ। मगर माफ करना, क्या सचमुच ये पत्थर खून से रंगे हैं ?" मैंने पूछा।

"अरे, सचमुच तो ये खून से नहीं रंगे हैं। मगर हाँ, ये पत्थर के टुकड़े उस इलाके के हैं, जहाँ लगभग एक लाख कम्युनिस्टों की हत्या च्यांग-काई-शेक ने करवा दी थी। हाल में अभी जो लोग चीन गये थे, ये पत्थर उन्हीं के लाये हुए हैं।"

"हाँ, मुझे उन लोगों के भाषणों को सुनने का मौका मिला था। रूस से आनेवाले स्तालिन-चालीसा सुनाते हैं, चीन से आनेवाले माओ-चालीसा का पाठ करते हैं। यहाँ भी कोई विदेश का राजदूत आता है, तो उसे सेक्रेटेरियट और हाई-कोर्ट की सड़कों से टहलाया जाता है। गर्दनीबाग के आर० ब्लाक की सड़कों से उनकी मोटरगाड़ी जरूर दौड़ती है। अदालत के पास जो भिखमंगों की टोली है, वे वहाँ-कहाँ जा पाते हैं? नाला रोड पर जो अछूतों का गंदा मुहल्ला बसा है, वे उधर कहाँ जाते हैं? वे मछुआटोली के मछुओं से कहाँ मिल पाते हैं? वे राजदूत मुझे जैसे मजदूर मंगरुआ की गन्दी और तंग कोठरी कहाँ देख पाते हैं? वे तो मजबूर होकर अपने देश के लोगों से कहते फिरते होंगे कि इण्डिया के लोग बड़े सुखी हैं। वहाँ की सड़कें बड़ी अच्छी बनी हैं। लोगों के रहने के लिए बड़े अच्छे-अच्छे क्वार्टर और बंगले हैं।"

"तुम्हारा मतलब?" यूनियन के सेक्रेटेरी ने पूछा। और तभी उनके हाथ में एक छोटे-से मटके में कोई हलवाई का नौकर, रसगुल्ले दे गया। मुझसे, "तुम्हारा मतलब?" सवाल करके वे भीतर के कमरे में जाने लगे। मैंने कहा, "आइए, तो मतलब समझाऊँ।"

वे लौटकर आये तो मैंने कहा, "मेरा मतलब यह है कि यह सोचना बिलकुल गलत बात है कि रूस या चीन में एक-एक आदमी सुखी है। इसकी सच्चाई तो वही आदमी बता सकता है, जो वहाँ के देहातों में वर्षों तक रह चुका हो। हिंदुस्तान के कामरेड जो जाते हैं, हफ्ते-हफ्ते-भर रहकर लौट आते हैं। रूस की सारी जनता सिर्फ क्रेमलिन और रेड-स्क्वायर में ही तो नहीं बसती है? वहाँ भी हिन्दुस्तान के एक मंगरू की तरह कितने मंगरू होंगे, जिन्होंने बहुत दूर से क्रेमलिन और रेड-स्क्वायर का नाम-भर ही सुना होगा, देखा नहीं होगा। जैसे मैं राष्ट्रपति भवन, पार्लियामेण्ट और इण्डिया गेट का नाम-भर ही सुना करता हूँ, देखा कभी नहीं। दिल्ली तक का रेलभाड़ा जुटाने में तो मेरी जिन्दगी ही बिक जाएगी।"

"हटाओ यार! क्या यह सब चंडूखाने की गप करने लगे। जानकारी नहीं है, तो चुप रहो। किसी भी पार्टी के पास जादू की छड़ी या अलादीन का चिराग

नहीं होता, जो मिनटों में सारी व्यवस्था बदल दे। संगठन और संघर्ष के लिए सबको मरना होता है।" अब कामरेड लोग झल्ला पड़े।

वहाँ से भागा-भागा मैं वहीं पुरंदरपुर की गलियों में आया, जहाँ मेरी तंग और छोटी कोठरी थी। देखा, दीया जल रहा है। सनीचरी को देखा, सिंगार किये हुये है। पूछा, "आज क्या बात है, किसी से वादा है क्या ?"

"......।" सनीचरी हँस पड़ी। मैंने चिराग की रोशनी में देखा, उसके होंठों पर पपड़ी पड़ गयी थी। सुबह से भूखी जो थी। जिउरखना सो गया था। मैंने पूछा, "बाल में तेल कहाँ से ?"

"गुदड़ी चाचा की पुतोहू ने डाल दिया था। उसी ने जूड़ा भी बाँधा है।" सनीचरी बोली।

"और यह छटाँक-भर सेनुर कैसे लगाया ? मैंने पूछा। वह गँवारिन जो थी। नाक से लेकर आधे माँग तक सिंदूर पहन रखा था।

"यह तो मेरा सुहाग है। जिसके पास सेनुर होगा, वही तो पहनेगी।" वह बोली।

"आज कुछ खाया भी तो नहीं होगा ?"

"......।" सनीचरी मुस्कुराकरार रह गयी। उसने पूछा, "तुमने कुछ खाया है ?"

"हाँ, भरपेट।"

"कहाँ ?"

"एक दोस्त ने खिलाया है।" मैं बोला।

इसके बाद उसने मेरे आगे एक लोटा पानी लाकर रख दिया। बोली, "हाथ-पैर धो लो। अब सोओगे न ?"

"हाँ।" मैं बोला। वह लौटकर टाट पर चली गयी। मैंने देखा, चलने-फिरने में वह थरथरा रही थी। मैं लोटे में पानी लिये बड़ी देर तक चौखट पर बैठा रहा। सनीचरी को अब शायद आलस सता रही थी। वह बार-बार टाट पर सोयी-सोयी ही मुझे बुलाती, "आओ न, वहाँ क्या कर रहे हो ?"

इस तरह रात के दो बज गये। सारा मुहल्ला सो गया। गलियों में सिर्फ कुत्ते भूँक रहे थे। मुझे बार-बार बुलाती हुई सनीचरी शायद सो गयी। आज भूखी रहने पर भी, जरा सिंदूर पहनने और बाल सँवार लेने की वजह से बड़ी भली लग रही थी। दिल बार-बार चाहता कि उसके पास जाकर बैठूँ, उसे जगाकर जरा मुहब्बत की दो-चार बातें करूँ। मगर, तुरत ही यह बात याद आ जाती कि वह भूखी जो है। उसका बच्चा मारे भूख के रोता-रोता सो गया है। एक बार धीरे-से उठकर टाट के बिछावन तक गया भी। उसके पेट पर से आँचल हटाकर देखा, भूख से उसका पेट पीठ से सट चुका था। तब मुझे अपने ऊपर बड़ा गुस्सा आया। मुझे इस वक्त ऐसी बात सोचनी नहीं चाहिए थी। वह मेरी बीवी है, जनाना। उसकी माँ ने सिखलाया होगा कि औरतों को अपने मर्द के लिए हर तकलीफ बर्दाश्त करनी चाहिए। मगर, दो मिनट की गुदगुदाहट के लिए क्या मैं राक्षस हो जाता? नहीं नहीं, मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। मैंने उसके आँचल से उसका पेट ज्यों-का त्यों ढँक दिया और फिर चौखट पर बैठा-बैठा ही मैं झपकियाँ लेने लगा। मगर अभी पूरी तरह नींद भी न आ पायी थी कि कानों में कौओं और मुरगों के बोलने की आवाज सुनायी पड़ने लगी। मस्जिदों में अजान पड़ने लगे।

थोड़ी देर बाद मैं रिक्शा चलाने के लिए दौड़ा। दोपहर में कुछ पैसे लेकर लौटा, तो सनीचरी ने खिचड़ी पकायी। खिचड़ी खाकर मैं फिर रिक्शा खींचने चला गया। शाम में जब लौटने लगा, तो पता चला कि लॉन में बिजली-मजदूरों की एक बहुत बड़ी सभा होनेवाली है। बिजली-कंपनी के मालिक और सरकार ने उनकी माँगें नहीं पूरी की हैं, इसलिए वे हड़ताल की घोषणा करेंगे। राजनीति से दिल तो बार-बार उचट रहा था, मगर फिर दौड़ा-दौड़ा लॉन में पहुँच गया। बिजली-कंपनी के मजदूरों की बड़ी भीड़ थी। नेताजी समय से कुछ देर करके आये। मगर, आये तो मोटरगाड़ी में बैठकर। मजदूरों ने छाती ऊँची कर-करके उनकी जयजयकार मनायी। बिजली-कंपनी के मालिक और सरकार की दमन-नीति पर उन्होंने बड़ा लंबा-चौड़ा भाषण किया। फिर हड़ताल की घोषणा करने के बाद बोले," साथियो! यदि मैं जेल के बाहर रहा, तो

तुमलोगों के बीच रहकर तुम्हारी उचित सेवा करता रहूँगा''''और मान लो, इस सरकार ने मुझे कहीं जेल में बंद कर दिया तो याद रखो, हमारी पार्टी के साठ हजार सदस्य हैं; वे तुम्हें भूखों नहीं मरने देंगे। हड़ताल में पैर पीछे मत होने पावे''''''''''''"

'''और, मैंने देखा कि एक छोटे नेता ने संतरे के रस से भरा गिलास उनके हाथ में थमा दिया। संतरे का रस पीकर अभी वे आगे भी कुछ और बोलना ही चाहते थे कि मजदूरों की भीड़ से एक मजदूर उठ खड़ा हुआ। उसने बड़े जोरों की आवाज लगायी और कहा, "जनाब, आप हमारे नेता नहीं हो सकते। आप तो मोटरगाड़ी पर चढ़कर आते हैं और संतरे का रस पीकर स्पीच झाड़ते हैं और कहते हैं कि मजदूर भाइयो, मैं तुम्हारी ही तरह मजदूर हूँ। मेरा जीवन तुम्हीं लोगों के लिए है।।"

"चुप रहो। किसी के बहकावे में मत पड़ो। मैंने मार्क्स और लास्की का अध्ययन किया है। मुझे लास्की के लाखों सिद्धांत जुबानी याद हैं। मैंने एम० ए० तक पालीटिक्स पढ़ी है, कोई घास नहीं काटी है। सुनो, मैं जो कह रहा हूँ''''''''।" नेताजी बोले।

तब वह मजदूर और तनकर खड़ा हो गया। उसने कहा, "मैं बी० ए० पास करके पचास रुपये तनख्वाह पर वर्कशाप में रोज हथौड़े चला रहा हूँ। मार्क्स और लास्की की किताबें याद कर लेने से मजदूरों का सच्चा नेता हो जाना कोई जरूरी नहीं है। मजदूरों का सच्चा नेता तो वही होगा, जो खान्दानी मजदूर रहा हो, जिसने मजदूर-जीवन की तकलीफें खुद बर्दाश्त की हों। यहाँ पावर-हाउस में कोयला झोंकनेवाले मजदूर छुट्टी मिलते ही मीठापुर की ओर दौड़ते हैं और दो-दो आने की शकरकंद खाकर भरपेट नल का पानी पीते हैं। नल के पानी की उस मोटी धार से उनकी छाती पर जो धक्के लगते हैं, आपने उन धक्कों की तकलीफ कभी महसूस की है, नेताजी? मेरे ऊपर बूढ़ी माँ, बूढ़ा बाप, तीन छोटी बहनें और दो छोटे भाई का भार है। मेरे यहाँ सप्ताह में चार चार चूल्हा ठंडा रहता है, आपके घर में तो बराबर हीटर गर्म रहता होगा, आप कैसे मजदूर हो सकते हैं''''''''?

उस मजदूर के इतना बोलते ही सभा का सारा रंग, भंग हो गया। बाकी मजदूरों ने शोर किया, "मारो-मारो गद्दार है।" और, सैकड़ों मजदूर उसके ऊपर थप्पड़-लात चलाने लगे। जहाँ तक मुझे याद है, सैकड़ों थप्पड़ की चोट वह बर्दाश्त न कर सका था और सभा-मैदान में हो बेहोश हो गया। मैंने समझा; अब मीटिंग आखिरी कोशिश करने पर भी नहीं जमेगी। मैं वहाँ से लौट आया। अब किसी-किसी तरह मैं रिक्शा खींचता हूँ। माँ और सनीचरी मिलकर, इस छोटी सी कचड़ी, घुघुनी और पकौड़ी की दूकान चलाती हैं। स्कूल से आकर जिउरखना भी अपने ग्राहकों को पानी पिलाता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि देश के नेताओं ने तरह-तरह के सिद्धांतों की रट लगा-लगाकर मजदूर किसानों के दिमागी कन्धे पर लोहे के पंख बांध दिये हैं। वे इतने बोझिल हो गये हैं कि सुख और शांति के आसमान में उड़ने की बातें सोच तो सकते हैं, लेकिन उड़ नहीं सकते। वे सोच नहीं सकते कि किस पार्टी का झण्डा मुझे ऊपर उठायेगा। देखो न, इस छोटी दूकान का किराया हरामी मकान-मालिक पंद्रह रुपये लेता है। हर पहली तारीख को छाती पर आकर सवार हो जाता है। दो रोज भी देर हुई, तो दूकान के सामान फेंकने पर उतारू हो जाता है। जब पास में पैसे नहीं होते, और हालत नाजुक देखता हूँ, तो दौड़कर अस्पताल में आकर पंद्रह रुपये का खून दे आता हूँ। अभी महीने रोज से खुद मेरे मुँह से खून आ रहा है। कल किराया देने के लिए ही खून बेचने गया था, मगर जाँच करने पर डाक्टर ने खून खरीदने से इन्कार कर दिया। उसने सलाह दी है कि मुझे अपनी जाँच टी० बी० हास्पीटल में करानी चाहिए।

लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं वर्तमान या भविष्य में घोर निराशा के सपने देख रहा हूँ। यह दूसरी बात है कि दिन-रात रिक्शा खींचने के कारण दिल जला रहता है और क्रोध के कारण तुमसे कुछ अनाप-सनाप भी बक गया हूँ। लेकिन, हर पार्टी में अच्छे-बुरे लोग हैं। मजदूरों को आज जो भी सुविधाएँ मिली हैं, पार्टियों के संगठन और संघर्ष के ही फल हैं ये। तुम्हीं सोचो न, आखिर उद्धार का रास्ता क्या है? कभी-कभी कुछ कामरेड भूल कर बैठते हैं; और पूरी पार्टी बदनाम हो जाती है। राजनीति को वर्तमान जीवन से अलग

करके कहाँ रहोगे ? अपनी-अपनी सुविधाओं के लिए हर पार्टी के आदर्श को अपनाना चाहिए, मैं अपनी ही घुटन अथवा चिढ़ से सारी पार्टी को तौलना अनुचित समझता हूँ। हृदय के एक कोने से बार-बार यह आवाज आती है कि मजदूरों का समाज उठेगा और उसकी ऐसी स्थिति होगी, जब वह चैन की साँस लेता हुआ यह सोचेगा कि हम भी मनुष्य हैं—हमारी रक्षा के साधन हमें मिल गये हैं और उनके दिमागी कन्धे पर जो लोहे के पंख लगे हैं—वे धीरे-धीरे कट रहे हैं।

नये उपन्यास के लिए कहाँ-कहाँ हीरो खोजते फिरोगे ? मुझे ही अपने उपन्यास का हीरो बना लो न। लेकिन; एक बात। अपनी कला को लेकर एक-एक पाठक या आलोचक को खुश करने के फेर में पड़ोगे, तो मेरी सच्ची कहानी के साथ इन्साफ नहीं कर सकोगे। कोई कहेगा, मंगरुआ को ऐसा नहीं होना चाहिए था। कोई कहेगा, मंगरुआ वैसा होता, तो ठीक था। मगर, तुम तो जानते हो कि मंगरुआ वास्तव में क्या है ?

• • •

मुद्रक—भार्गव भूषण प्रेस, त्रिलोचन, वाराणसी।
१२/११–७५